8.3

हनुमान के देवत्व तथा मूर्ति का विकास

लेखक

डॉ० राय गोविन्दचन्द्र

शक १८९८ : सन् १९७६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
प्रभात मिश्र शास्त्री
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
⊙
शक १८९८ : सन् १९७६
मूल्य : ३०.०० रुपए
⊙
मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

50

प्रकाशकीय

⊙

प्राचीन भारतीय संस्कृति का विभिन्न दृष्टियों से विद्वानों ने अध्ययन किया है। भारतीय पुरातत्त्व, कला और साहित्य का गहन एवं शोध-दृष्टि से अध्ययन करने वाले मनीषियों में राय गोविन्दचन्द्र जी का विशिष्ट स्थान है। 'प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा'; 'प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन', 'वैदिक युग में भारतीय आभूषण' आदि कृतियों का प्रणयन करके आपने सराहनीय एवं स्तुत्य कार्य किया है। आपकी इन कृतियों का हिन्दी-जगत् में विशेष सम्मान है।

हिन्दी में भारतीय पुरातत्त्व एवं इतिहास संबंधी उच्चस्तरीय ग्रंथों के अभाव की पूर्ति करनेवाले विद्वानों में राय गोविन्दचन्द्र जी अग्रणी हैं। हिन्दू देवी-देवताओं के स्वरूप के विकास के अध्ययन-क्रम को बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने 'हिन्दू देव परिवार का विकास' ग्रंथ लिखकर अग्रसरित किया था। बाद में रामाश्रय अवस्थी जी का 'खजुराहो की देव प्रतिमाएँ' ग्रंथ प्रकाशित हुआ। उसी क्रम में राय गोविन्दचन्द्र जी की 'प्राचीन भारत में लक्ष्मी प्रतिमा' कृति बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित हुई। आपने भारतीय पुरातात्त्विक साक्ष्यों एवं वाङमयी निष्कर्षों के सहारे 'हनुमान के देवत्व तथा मूर्ति का विकास' पुस्तक का प्रणयन किया है।

हर्ष का विषय है कि ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति के प्रकाशन का सुयोग हिन्दी साहित्य सम्मेलन को प्राप्त हुआ है।

राय गोविन्दचन्द्र जी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन को विविध रूपों में सहकार प्राप्त है। सम्मेलन उनकी इस महती कृति को हिन्दी-जगत् के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गौरव का अनुभव कर रहा है।

विश्वास है, डॉ० राय गोविन्दचन्द्र जी की इस कृति का हिन्दी-जगत् में विशेष समादर होगा।

गुरु पूर्णिमा संवत् २०३३

डॉ० प्रेमनारायण शुक्ल
साहित्य मंत्री

प्रस्तावना

हनुमान पर काम करने की प्रेरणा मुझे लक्ष्मी की प्रतिमा पर कार्य करते समय मिली थी। जब वह कार्य समाप्त हो गया तो मैंने प्राय: १९६४ ई० में इस देवता पर ध्यान दिया और इनके विषय में सामग्री एकत्रित करना प्रारम्भ किया। प्रश्न यही उठा कि इस अर्ध मनुष्य तथा अर्ध कपि का स्वरूप कब से हिन्दुओं में पूजित होने लगा। इनकी आधुनिक मूर्तियों को जो देखना प्रारम्भ किया तो उनमें बहुत से भेद मिले। किसी में ये एक हाथ में पर्वत लिए और दूसरी में गदा लिये हुए दिखाई दिये तो किसी में एक हाथ उठाये हुए और दूसरे में कमल लिये हुए। कोई मूर्ति वीर आसन में बैठी हुई और कोई गदा उल्टी लिये हुए खड़ी दिखाई दी। इन्हें देख कर यह विचार उठा कि इनका ध्यान क्या किसी साहित्यिक कृति पर आधारित है या केवल कल्पना पर। राम कथा के साहित्य पर रेवरेण्ड बुल्के ने बहुत सुन्दर कार्य किया था। जब उसे देखने लगा तो बहुत-सी सामग्री प्राप्त हुई। तब मैंने इस विषय पर जो भी साहित्य उपलब्ध हो सका उसकी छानबीन प्रारम्भ की तथा अपने मित्रों से हनुमान की मूर्तियों के चित्रों को मँगाना प्रारम्भ किया। मुझे इनके प्राचीन मूर्तियों के चित्रों के प्राप्त करने में भारतीय पुरातत्त्व संस्थान (आर्कोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया); प्रो० कृष्णदत्त वाजपेयी, सागर; श्री प्रमोदचन्द्र, अमेरिकन अकादमी, काशी; श्री नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी; श्री आर० बी० नरायन; श्री नारायण दत्तात्रेय कालेकर इत्यादि से बहुत सहायता मिली; इन सब का मैं बड़ा आभारी हूँ।

मुझे दुःख है कि पूज्यवर डॉ० वासुदेवशरण जी के आकस्मिक स्वर्गवास के कारण मैं उन्हें इस कार्य को दिखा न सका और उनका निर्देश प्राप्त न कर सका। यों जब मैंने यह कार्य प्रारम्भ किया था उस समय उनसे इस विषय पर चर्चा हुई थी और उन्होंने कुछ प्रश्न पूछे थे। कितना सुन्दर होता यदि मैं यह कार्य उन्हें दिखा सकता? मुझे विश्वास है कि वे इसे देख कर प्रसन्न होते।

डॉ० मोतीचन्द्र जी का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरी समय-समय पर इस कार्य में सहायता की है। अपने सभी बन्धु जैसे डॉ० ए० के० नरायण, डॉ०

बलराम श्रीवास्तव आदि के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जो मेरे इस कार्य में सहायक हुए हैं। श्री शाह ने इस पुस्तक का वड़े परिश्रम से टंकण किया। मैं उनके प्रति भी कृतज्ञता-प्रकाश करता हूँ। श्री रामचन्द्र मालवीय तथा श्री विश्वनाथ त्रिपाठी शास्त्री का आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ जिन्होंने इस पुस्तक के पाठ को शुद्ध किया है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के प्रधानमंत्री स्वनामधन्य श्री प्रभात शास्त्री तथा मुद्रणालय के प्रवन्धकों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिनके सहयोग से यह पुस्तक इस सुन्दर रूप में प्रकाशित हो रही है।

—राय गोविन्द चन्द्र

कुशस्थली, वाराणसी कैण्ट
अप्रैल; १९६८

विषयानुक्रमणिका

१. प्रस्तावना ५
२. भूमिका १
३. वैदिक वाङ्मय में कपि ११
४. बौद्ध साहित्य में हनुमान २५
५. जैन साहित्य में हनुमान का स्वरूप ३०
६. पुराणों में हनुमान का चरित्र ५६
७. तन्त्रों में हनुमान ८१
८. संस्कृत साहित्य में हनुमान ९०
९. भाषा साहित्य में हनुमान १८३
१०. विदेशों में हनुमान का चरित्र २३१
११. हनुमान की कथा का विस्तार २६१
१२. हनुमान की मूर्तियाँ और उनका विकास ३०५
१३. भारतीय सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति ३५०
१४. कपि पूजन ३५६
१५. भारत के आदिवासियों में कपि पूजन ३६९
१६. निष्कर्ष ३७५
१७. परिशिष्ट क—ज ३८६
१८. लेख ४३८

भूमिका

आज भारत के कोने-कोने में हनुमान के मंदिर बने हुए हैं और इनकी पूजा होती है। बंगाल से लेकर महाराष्ट्र तक, पंजाब से लेकर कन्याकुमारी तक सभी स्थानों में जनता इनकी अर्चना करती है। उत्तर प्रदेश में विशेष रूप से इनके मंदिर प्रत्येक गाँव में स्थापित हैं और ग्रामीण जीवन में इनका विशिष्ट स्थान है। सभी नगरों में भी इनके मंदिर हैं और वहुत से स्थान इनके नाम से विख्यात हैं, जैसे काशी का हनुमान घाट तथा हनुमान फाटक मुहल्ला, गोरखपुर और अयोध्या की हनुमानगढ़ी, हिमालय की कुल्लू के पास की हनुमानटिव्वा की चोटी, चित्रकूट की हनुमानधारा, नेपाल का हनुमानगोडा, राजस्थान का हनुमानगढ़ इत्यादि। आजकल इनके मंदिर के चवूतरे पर प्रायः तुलसीकृत रामायण का पाठ होता है और समय समय पर इसी चवूतरे पर बैठ कर विविध विद्वान् रामायण की चौपाइयों पर व्याख्यान देते हैं। इनके मंदिर के पास ही एक अखाड़ा वनाया जाता है जहाँ गाँव के नवयुवक कुश्ती-कसरत करते हैं। नागपंचमी के दिन इस अखाड़े में विशेष दंगल होता है। इनको भारतीय जनता महावीर, महाबली, वजरंगवली, संकटमोचन, अंजनीनन्दन, पवनसुत, हनुमान इत्यादि नामों से स्मरण करती है। उत्तर प्रदेश में वहुत से लोग नित्यप्रति हनुमान चालीसा तथा हनुमान वाहुक का पाठ करते हैं। जनता का ऐसा विश्वास है कि हनुमान जी सव संकट का हरण करते हैं। परीक्षा के दिनों में हनुमान जी के मंदिरों में विद्यार्थियों की भीड़ लगी रहती है और ये उसी तरह मनौती मानते हैं जैसे फ्रांस के विद्यार्थी शात्र की यात्रा की मनौती मानते हैं अथवा रोम के विद्यार्थी वाटिकन में पोप के दर्शन की मनौती मानते हैं।

प्रायः हनुमान जी के दो दिन माने जाते हैं मंगलवार तथा शनिवार। इन दोनों दिन इनकी विशेष रूप से पूजा होती है, क्योंकि इनके जन्म के दो दिन माने जाते हैं। कुछ पुस्तकों में कार्तिक के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को शनिवार के दिन जव सूर्य मेष राशि पर थे तथा चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर, तव इनका जन्म माना गया है।[1] परन्तु 'उत्सव सिन्धु' में इनका जन्म मंगलवार को माना गया है—

---

[1] विजयमित्र शास्त्री—शनिग्रह ने हनुमान का भी पीछा किया—"आज" दीपावली अंक, २८-१०-६२, पृ० १६।

ऊर्जस्य चासिते पक्षे स्वात्यां भौमे कपीश्वरः।
मेष लग्नेऽञ्जनीगर्भाच्छिवः प्रादुरभूत् स्वयम्॥[1]

सिन्दूर, फूल-माला, इत्र इत्यादि इनको चढ़ाया जाता है तथा बेसन का लड्डू भोग लगाया जाता है। प्रायः लोग स्नान करके बिना भोजन किये इनके दर्शन और पूजन को जाते हैं। दिवाली के एक दिन पूर्व कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को इनकी विशेष पूजा होती है। ऐसा माना जाता है कि इनका उस तिथि को जन्म हुआ था। चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को भी इनका पूजन होता है। इन दोनों दिन इनका विशेष श्रृंगार होता है और पूजा की जाती है। उत्तर प्रदेश में तुलसी की माला इन्हें धारण कराई जाती है तथा तुलसी, सिन्दूर के साथ प्रसाद में मिलती है। दक्षिण में इनको तेल चढ़ाया जाता है तथा नारियल की बलि दी जाती है। नेपाल में नारियल के स्थान पर पशु-बलि दी जाती है। महाराष्ट्र में शनिवार को तेल तथा आक के फूल की माला चढ़ाई जाती है।

इनकी मूर्ति में वर्तमान समय में मुख बन्दर का तथा शरीर मनुष्य का रहता है। शरीर के पीछे वृषभ की भाँति लम्बी पूँछ रहती है। आज प्रायः ये दक्षिण की ओर उड़ते हुए दिखाये जाते हैं। इनका दक्षिण पग उठा हुआ रहता है। इसी के नीचे एक राक्षस की पददलित मूर्ति बनाई जाती है। इनके दक्षिण हाथ में गदा तथा बायें हाथ में एक पर्वत रहता है। इनके शरीर पर एक उत्तरीय तथा एक अधोवस्त्र या जाँघिया बनाया जाता है। हनुमान की मूर्ति विविध आभूषण जैसे मुकुट, कुण्डल, हार, वलय, केयूर तथा करधनी से आभूषित प्रदर्शित की जाती है। पर्वों के दिन मूर्ति पर ऊपर से भी आभूषण धारण कराये जाते हैं तथा नेत्र लगाये जाते हैं। प्रायः इनके शरीर पर सिन्दूर, घी में घोल कर लगाया जाता है। मूर्ति पर से चैत्र शुक्ल चतुर्दशी को सिन्दूर उतारा जाता है और नया सिन्दूर फिर चढ़ाना प्रारम्भ होता है। भक्त लोग इस सिन्दूर को मस्तक पर लगाते हैं। प्रायः हनुमान जी की मूर्ति को स्त्रियाँ स्पर्श नहीं करतीं क्योंकि इन्हें बाल ब्रह्मचारी समझा जाता है। मल्ल लोग जय बजरंगबली कहकर और हनुमान जी का स्मरण कर जोड़ लड़ते हैं और नित्य अखाड़े में उतरते समय इनका नाम लेकर ताल ठोकते हैं। इन लोगों का यह विश्वास है कि जैसे इनका वज्र के समान शरीर था वैसा उनका भी इनके स्मरण से हो जायगा। आज कसरत कुश्ती करने वालों के ये विशेष देवता माने जाते हैं।

---

[1] श्रीराम मेहरोत्रा —पहुँचा एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास-'आज' २०-१०-६२ पृ०, १६।

इनकी और मूर्तियों में हमें बैठी हुई मूर्ति भी मिलती है। ऐसी मूर्तियाँ विशेष रूप से इस समय नैपाल में हैं। इन मूर्तियों में इनके दक्षिण हाथ में गदा रहती है और बायाँ कर घुटने पर रहता है। प्रायः ये वीर आसन में बैठे हुए दिखाये जाते हैं। कुछ मूर्तियों में ये कन्धे पर राम और लक्ष्मण को लिये हुए भी मिलते हैं। इन मूर्तियों में इनके दक्षिण कर में गदा तथा बायें में पद्म रहता है। काशी में कुछ मूर्तियाँ इनकी ऐसी भी हैं जिनमें ये अपने वक्षःस्थल को चीर कर दिखा रहे हैं और इनके वक्षःस्थल के भीतर राम की मूर्ति बनी हुई है। ये दोनों घुटनों को टेके हुए बैठे हुए हैं। इनके दक्षिण ओर गदा लटक रही है। एक ऐसी मूर्ति काशी में नरसिंह चबूतरे के पास है। पंचमुखी हनुमान का भी काशी में दर्शन होता है, ऐसी एक मूर्ति नैपाल के प्राचीन राजप्रासाद के निकट हनुमान गोडा नाम से विख्यात बने हनुमान जी के मंदिर में भी है। काशी में ऐसी मूर्ति राजमंदिर के पास के हनुमान मंदिर में तथा सोनारपुरा के एक मंदिर में है।[1] बीकानेर के संग्रहालय में भी काँसे की बनी पंचमुखी हनुमान की दो मूर्तियाँ विद्यमान हैं।[2] काशी में हाथ जोड़े हुए ध्यानमग्न अवस्था में भी हनुमान की मूर्ति राम मंदिर में दिखाई देती है। यह समपाद में खड़ी मूर्ति है जिसमें गदा दाहिने ओर दिखाई गयी है। बजरंगबली हनुमान की मूर्तियों में एक अभय-मुद्रा में बनी हुई मिलती है। इस प्रकार की मूर्ति काशी में बिन्दुमाधव घाट पर गंगाजी की ओर मुख किये खड़ी है। दाहिना हाथ अभय मुद्रा में ऊपर उठा हुआ है और बायाँ हाथ जंघे पर है। ऊपर उठे हुए पैर के नीचे राक्षस है। एक मूर्ति में ये एक हाथ उठाये हुए हैं और दूसरे में गदा पकड़े हुए हैं।

प्रायः आज की मूर्तियाँ जो उत्तर भारत में प्राप्त होती हैं वे तुलसी कृत रामायण[3] में वर्णित हनुमान से सम्बन्धित घटनाओं पर आधारित हैं। इन्हीं का ध्यान निर्धारित करके शिल्पियों ने विविध आकार की मूर्तियाँ गढ़ी हैं। ध्यान के अनुसार आज इनकी पूजा की विधियों में भी अन्तर है। इसे सात्विक, राजस, तामस की संज्ञा दी गयी है। इस पूर्व पीठिका के अनुसार हनुमान की मूर्ति जो एक हाथ में गदा और दूसरे में पर्वत लिये हुए दिखायी जाती है वह उसी घटना की ओर संकेत करती है जो रामायण में लक्ष्मण को शक्ति

---

[1] नारायण दत्तात्रेय कालेलकर—काशी में हनुमान की कुछ दर्शनीय मूर्तियां—"आज" २१ अप्रैल, १९५७ ई०।

[2] डा० रत्नचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्राप्त सूचना के आधार पर।

[3] तुलसीकृत रामायण प्रक्षिप्त सहित—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

लगने पर वर्णित की गई है। इनके पैर के नीचे वहीं कालनेमि राक्षस है, हाथ में द्रोणाचल पर्वत है और ये लंका की ओर उड़ते हुए जा रहे हैं। इसी प्रकार राम लक्ष्मण को कंधे पर बैठाये हुए मूर्ति इनके अहिरावण के साथ युद्ध की घटना की ओर संकेत करती है। ऐसे ही वक्षःस्थल को चीरते हुए इनकी मूर्ति इनके राम का परम भक्त होने की द्योतक है। ऐसे ही एक हाथ उठाये हुए, दूसरे में गदा लिये हनुमान की मूर्ति इनके द्वारा अशोक वन में अक्षयकुमार के वध की घटना की ओर संकेत करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज शंकर के समान हनुमान भी भारत में व्यापक देवता के रूप में पूजे जाते हैं। प्रश्न यह उठता है कि इनकी पूजा कब से प्रारम्भ हुई और किस रूप में।

यों तो कपि-मूर्तियाँ हमें भारत तथा दूसरे देशों की प्राचीन सभ्यताओं में प्रागैतिहासिक युग से मिलने लगती हैं। सिंधु घाटी की सभ्यता में कई मूर्तियाँ एक प्रकार के चूने के पलस्तर की बनी हुई मोहनजोदाड़ो से प्राप्त हुई हैं।[1] इन मूर्तियों में एक कपि का सिर तथा एक पूरी मूर्ति सफेद पलस्तर की है। इनके ऊपर की चमक अब अदृश्य हो गयी है[2], दो और मूर्तियाँ इसी पलस्तर की और नीचे के स्तरों से प्राप्त हुई हैं।[3] इन मूर्तियों की बनावट में तथा ऊपर के स्तरों की मूर्तियों की बनावट में बहुत कम अंतर है। एक और मूर्ति पकाई हुई मिट्टी की मिली है यह बहुत सुन्दर बनी हुई है। इसमें वास्तविकता लाने का प्रत्यक्ष प्रयत्न किया गया है। बन्दर के ऊपर का होंठ नीचे के होंठ पर बैठा हुआ है और ऐसा लगता है कि वह चौकन्ना होकर देख रहा हो।[4] इस मूर्ति का बनानेवाला कोई अच्छा कारीगर था। इसी प्रकार की पकाई हुई मिट्टी की दो मूर्तियाँ हड़प्पा से मिली हैं[5]। इनमें एक तो बहुत सुन्दर है, यह अपने हाथों और पैरों से एक वृक्ष की डाल को पकड़े हुए है, पूँछ नीचे की ओर झुकी हुई है। इसके शरीर के बाल तथा रीढ़ की हड्डी रेखाओं द्वारा अंकित की गयी है। (फलक १, ख) इससे बहुत कुछ मिलती-जुलती मूर्ति पहिले मार्शल को मोहनजोदाड़ो से

---

१. ई० जे० एच० माके—फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजोदाड़ो—ख० १ पृ० २९३।

२. उपरोक्त, प्लेट ७८-२, ७८-४।

३. उपरोक्त—प्लेट ८०-१, ८०-३।

४. उपरोक्त—प्लेट ८१-२।

५. माधोस्वरूप वत्स—एक्सकवेशन्स एट हड़प्पा—७८-३५, ७८-३६.

मिल चुकी थीं।[१] दूसरी हड़प्पा की मूर्ति इतनी सुन्दर नहीं है। इसमें कपि थोड़ा पैर फैलाकर बैठा है और उसके हाथ उसके घुटनों पर हैं। उसका उठा हुआ मुख ऐसा लगता है कि किसी को बुला रहा हो। बायें पैर का अग्रभाग, दायें पैर, हाथ का कुछ भाग तथा पूँछ टूट गयी है। प्रायः सिन्धु घाटी की सभ्यता से प्राप्त मूर्तियाँ बैठी हुई हैं। मोहनजुदाड़ो से एक केश में लगाने की कटिया का ऊपर का भाग ऐसा प्राप्त हुआ है जिसमें तीन बन्दर एक दूसरे को पकड़े हुए बैठे दिखाये गये हैं।[२] (फलक १ क)

खड़ी कपियों की मूर्तियाँ भी मोहनजुदाड़ो तथा लोथल से प्राप्त हुई हैं।[३] इनको बनमानुष की मूर्तियां माना गया है परन्तु हैं ये कपि-मूर्तियाँ ही जैसा इनके हाथ पैर तथा मुख की बनावट को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है। (फलक २, क, ख)। इनके अतिरिक्त नावदाटोली के प्रागैतिहासिक युग के स्तर से प्राप्त एक खपड़े पर एक कपि की मूर्ति दौड़ कर जाते हुए अंकित की गयी है। इसी प्रकार एक बनमानुष की आकृति कालीबेंगन से हाल में मिली है।[४]

बड़ी विचित्र बात यह है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता में बन्दर की हड्डियाँ नहीं मिली हैं परन्तु सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। मोहनजुदाड़ो की बैठी हुई कपिमूर्तियों से 'सुमेर तथा एलाम' की मूर्तियाँ बहुत कुछ मिलती हैं। वहाँ भी कपि अपने घुटनों पर हाथ रखे हुए बैठे हुए दिखाये गये हैं। ईरान के सूसा स्थान से जो कपिमूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं ये वहाँ के सबसे प्राचीन स्तरों के ठीक ऊपर के स्तर से मिली हैं।[५] ये पाषाण की बनी हुई हैं जो इस बात का द्योतक है कि इस सभ्यता में कपि का महत्व बहुत अधिक था क्योंकि इस स्थान के आसपास पत्थर बहुतायत से नहीं मिलता और इसे दूर से लाना पड़ता है। इस कारण विशिष्ट मूर्तियों के बनाने में ही पाषाण का प्रयोग हुआ है।[६] 'उर' से प्राप्त कपि-मूर्ति केशों में लगाने की कटिया के ऊपर बनी हुई है, यह स्वर्ण की है तथा बड़ी

---

१. जान मार्शल—मोहनजुदाड़ो एण्ड इण्डसवाली सिविलिजेशन—प्लेट ९६-११।

२. माके—उपरोक्त प्लेट १७०-१३।

३. माके—उपरोक्त प्लेट ७८ १२-लोथल, इण्डियन आर्केआलोजी १९५७ ५८ प्लेट १८ए तथा प्लेट ३४ बी।

४. इण्डियन आर्केआलोजी, १९६०-कवर।

५. मेमुआर डेलिगासियो आँपर्स—ख० १३, प्लांश ३९, फिग्युर ५, ७।

६. लेयोनार्ड वुली—अण्टिकेरीज जनरल-ख० ८ प्लेट ५६ फिगर २।

सुन्दर हैं। सुमेर के 'खाफाजे' से फ्रांकफोर्ट को लाजवर्द[1] तथा चाँदी की वनी कपि-मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिससे ऐसा भान होता है कि इस स्थान पर कपि की पूजा होती थी। इसी आसन में वैठी हुई कपिमूर्तियाँ प्राचीन वावुल तथा मिस्र से भी प्राप्त हुई हैं।[2] इन मूर्तियों के थूथन आगे निकले हुए होने के कारण इनके मुख को कोल्डवे ने कुत्ते के मुख के सदृश बताया है। इसी प्रकार की कपिमूर्ति रामजेज द्वितीय के अस्वानवाले मंदिर के द्वार पर वनी हुई थी जो अपने स्थान से उठाकर पहाड़ की चोटी पर ले जाई गयी है।[3] इन मूर्तियों में देवता के दोनों हाथ उठे हुए हैं। (फलक ३)। इन्हें मिस्र के थोथ देवता की मूर्तियाँ कहा गया है। थोथ देवता की मिस्र में कपि की भाँति की मूर्ति वनती थी और उन्हें हनुमान के सदृश व्याकरण का पण्डित, आयुर्वेद का ज्ञाता, ज्ञान का सागर तथा जादू-टोने का विशेषज्ञ माना जाता था।[4] इनकी मिस्र में पूजा भी होती थी। हो सकता है कि हनुमान के ये गुण इन्हीं थोथ देवता से भारतीयों ने लिये हों। थोथ देवता की ऐसी ही मूर्तियाँ वियना के राष्ट्रीय संग्रहालय में भी हैं। ये विग्रह काँसे के हैं और इनमें इनको गले से घुटनों तक का लबादा पहिने हुए दिखाया गया है इनके दोनों हाथ इनके घुटनों पर हैं।

मिस्र में कपियों का जन-जीवन से सम्वन्ध स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। अमेरिका के आन आरवर नामक नगर के संग्रहालय में खेम होटेप की समाधि के भित्तिचित्र हैं। इन चित्रों में जो वेनी हसन के हैं कपियों को पेड़ों से अंजीर तोड़ कर खाते हुए दिखाया गया है। ये चित्र प्रायः ई० पू० १९०० के माने जाते हैं। इसी संग्रहालय में दो पालतू कपियों के शवों की ममी बना कर रखी है जो उन कपियों के स्वामियों के प्रेम को प्रदर्शित कर रही है। अमेरिका के पेन्सेलवानिया विश्वविद्यालय के संग्रहालय में मिस्र से प्राप्त एक फलक पर एक कपि घण्टा बजाते हुए भी दिखाई देता है। कपियों को यहाँ होपी देवता का अवतार भी समझा जाता था जिन्हें मिस्री अपना रक्षक मानते थे और जिनकी वे पूजा भी करते थे।

इसी प्रकार प्राचीन यूनान की सभ्यता के जो अवशेष क्रीट के द्वीप से प्राप्त

---

[1] फ्रांकफोर्ट—ईराक एक्सकवेशन्स आफ दी ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, शिकागो १९३२-३३, पृ० ७१, फिगर ६१।

[2] लाइफ इण्टरनेशनल ख० ३९ नं०१० नवम्बर १५, १९६५, पृ० २८।

[3] लाइफ इण्टरनेशनल—ख० ३९ नं० १०, नवम्बर १५, १९६५, पृ० २८।

[4] माके—उपरोक्त, पृ० २९४।

हुए हैं, उनमें इंटों से बने एक राजप्रासाद के पास से एक हाथी दाँत की मोहर प्राप्त हुई है जो कपि के आकार की है।[1] इसे प्राय: ईसापूर्व २५०० से २३०० की माना जाता है। ऐसे ही पालेस्टाइन से एक गले में पहिनने का लटकन प्राप्त हुआ है जो कपि के आकार का है कदाचित् यह मिस्र का बना हुआ है।[2] क्योंकि अमेरिका के आन आरबर में एक शीशी का काग भी कपि आकृति का है जो मिस्र का है।

बाइबिल के अनुसार सालोमन के हेतु जो सामान ओफीर या भारत से गये थे उनमें कपि भी थे[3]। इन्हें हिब्रू में कोफ तथा मिस्री भाषा में कफू कहा गया। केन्नेडी के अनुसार यह शब्द कपि शब्द से नहीं बना है अपितु तमिल भाषा से लिया गया है जैसे हिब्रू का ढूकी शब्द तमिल के तोगेई से लिया गया है जो कबूतर का द्योतक है,[4] परन्तु हर्षे को लुशाकपि शब्द असीरिया के लेखों में अब मिल गया है[5] जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि हिब्रू का कोफ शब्द कपि से ही बना है। कपि जब पालेस्टाईन पहुँच गये तो उनकी खूब वृद्धि हुई होगी जैसा हमें असीरिया के सलामानसर द्वितीय के काले खम्बे पर उत्कीर्ण प्रशस्ति के साथ पालेस्टाईन के खुबरी राजा के पुत्र के यहाँ से राज्यकर के रूप में एक आदमी को दो वन्दरों को लाते हुए चित्र से पता लगता है। इन वानरों की ग्रीवा में पट्टे पड़े हुए हैं।[6] जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये पालतू थे। (फलक[4] क)

उत्तर पश्चिमी इटली के प्राचीन निवासियों में जिन्हें एट्रुस्कन कहते हैं कपियों के लिये बड़ा आदर था। एक लम्बी सुराही के समान बरतन पर जो प्राय: ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी का है एक घुड़सवार के पीछे एक लंगूर अंकित है।

---

१. जे० डी० एस पेण्डलबरी—डीसकवरीज इन ए हाण्टेड केव—इलस्ट्रेटेड लण्डन न्यूज, नवम्बर २८, १९३६, पृ०, ६०-९६१ फिगर ४।

२. जे० एल० स्टार्क—दी न्यू लाशिश डिसकवरीज—इलस्ट्रेटेड लण्डन न्यूज, अक्टूबर ३, १९३६, पृ० ५७१ फिगर १८।

३. बाइबिल—१ किंगस १०, ११; २१।

४. जे केन्नेडी—दी अर्ली कामर्स आफ बाबिलान विथ इण्डिया ७००-३०० ई० पू०—जे० आर० ० एस० १८९८, पृ० २४१-२८८ पृ०, २५६।

५. आर जी० हर्बे—वैदिक नेम्स इन असीरियन रिकार्ड्स—अडेयर लाइब्रेरी बुलेटिन, खण्ड २१, भाग १-२, नं० १०, पृ० १३।

६. जेनेड ए० रागोजिन-असीरिया-टीफ़िशर—उनविन, लन्दन प्लेट ३२, फोर्थ फेस आफ दी ओबेलिस्क, थर्ड लाइन-प्लेट ३३।

यह बरतन द्रागलिया टेल्ला से प्राप्त हुआ है।[1] इसी प्रकार चियुसी के मकवरे की भीत पर एक चित्र में एक बन्दर पेड़ पर बैठा है और इसके समक्ष कुश्ती और घुड़दौड़ हो रही है[2] जैसे हमारे यहाँ हनुमान के मंदिर के समक्ष आज भारत में कुश्ती और कसरत के दंगल होते हैं। यह चियुसी का चित्र प्रायः ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी का समझा जाता है। एक और चित्र सेट्ट कामिनि के मकवरे की भीत पर है। इसमें भी एक वन्दर चित्रित है। यह चित्र ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी का है[3]। एट्रूस्कन अपनी भाषा में बन्दर को अरिम कहते थे। इन्हीं लोगों ने अरमिनियम नाम का नगर भी बसाया था जो आधुनिक रामिनी नगर के पास था और कदाचित् अरिम से सम्बन्धित था।

यूनान की प्राचीन कहानियों में भी हमें ऐसे विवरण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि प्रायः यहाँ रईस लोग बन्दर पालते थे और उनको बड़े प्रेम से रखते थे।[4] कारथाज के पालतू वानरों का विवरण प्लाटस के प्लोयेनुलुस में प्राप्त होता है। प्युनिक भाषा में इन्हें 'हरिन्न' कहते थे जिसका अर्थ था चिपटी नाकवाला, कदाचित् यह शब्द संस्कृत के 'हरि' शब्द से बना हो। टसकनी में बन्दरों की पथराई हुई हड्डियाँ भी मिली हैं जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि इस भूभाग में वानर बहुत पहले पहुँच गये थे परन्तु यह कहना कठिन है कि इनकी यहाँ उस काल में पूजा भी होती थी या नहीं।

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में विदेशों में भी वानर का बहुत आदर था और मिस्र में तथा सुमेर में तो इसकी पूजा भी होती थी। पैगम्बर मोहम्मद साहब के समय तक पहुँचते पहुँचते ऐसा ज्ञात होता है कि कपिपूजा बन्द हो गयी थी क्योंकि कुरानशरीफ की एक आयत में इजराइलवालों को जिन्होंने धर्म की पाबन्दियों को तोड़ा था यह शाप दिया जाता है कि 'तुम बन्दर हो जाओ तथा उन्हीं की भाँति तुमसे लोग घृणा करें इत्यादि।[5]

मनुष्य अपने जीवन के उस प्रारम्भिक काल में जब वह आखेट करके अपना उदरपोषण करता था तो अपने अस्त्रों की पूजा करता था जिसमें वे उसे काम के समय धोखा न दें। इसी प्रकार वह उन जानवरों की भी पूजा करता था जिनसे

---

१. जेक्स ह्यूरगान—डेली लाइफ आफ दी एट्रुस्कन्स, पृ० ११९।
२. उपरोक्त फिगर १९।
३. उपरोक्त पृ० १२०।
४. उपरोक्त पृ० १२०, दी ब्रागार्ट वारियर आफ माइल्स ग्लोरियोसस।
५. कुरानशरीफ—अध्याय ७, पाराग्राफ १६६, अध्याय २, पैराग्राफ ६६।

उसका उदरपोषण होता था या जो उसको पेट भरने या युद्ध में सहायक होते थे। लंगूर और बन्दरों का ऐसा स्वभाव है कि वे जब किसी संकट को सामने देखते हैं तो चिल्लाने लगते हैं। हो सकता है कि इस प्रकार मनुष्य को इस काल में ये अपने सहायक प्रतीत हुए हों और इनकी इसने पूजा प्रारम्भ की हो। युद्ध के समय भी पालतू लंगूर और बन्दरों ने प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य की सहायता की होगी क्योंकि स्वभाव से ही ये बड़े स्वामिभक्त होते हैं। हो सकता है कि इस कारण भी इनकी पूजा प्रारम्भ हुई हो।[1]

डा० वासुदेवशरण जी का मत है कि भारत में हनुमान की पूजा का सम्वन्ध यक्षपूजन से था।[2] इनका कहना है कि रामायण के सुन्दर काण्ड के अनुसार इनके महावल को देखकर राक्षसगण इन्हें महद्भूत समझने लगे (सु० ४६-६।) यह महत् विशेषण यक्षों के हेतु प्रयुक्त होने लगा था क्योंकि अथर्ववेद में कहा गया है कि भुवन के वीच में कोई महत् यक्ष है इसे भी राष्ट्रधर वलि देते हैं—

महद् यक्षं भुवनस्यमध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति। (१०, ८, १५)

इस मत का वुल्के ने भी समर्थन किया है।[3] डी० डी० कोशाम्वी का मत है कि हनुमान से वेताल का कुछ सम्वन्ध होना चाहिये।[4]

परन्तु इन मतों से भारत के वाहर कपि पूजन का समाधान नहीं होता। प्रश्न ये उठते हैं कि विश्व में मनुष्य ने कव से कपिपूजन करना प्रारम्भ किया और क्यों? हनुमान से इस पूजन से क्या कोई सम्वन्ध है? हनुमान की मूर्ति आधे नर और आधे कपि के रूप में लम्वी पूंछ के साथ कैसे बनाई जाने लगी? रामायण

---

१. जे० ए० माककुलोच—केल्ट्स (सेल्ट्स) इण्ट्रोडक्सन—ई० आर० ई० ख० ३ पृ० २७८-२७९; यों पंचतन्त्र में शालिहोत्र का एक वाक्य यह उद्धृत है कि कवि के मेद से घोड़ों के जले हुए शरीर की चिकित्सा होती है।

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाह समुद्भवः।
अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा।—५ अपरीक्षितकारकम्-७२।

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म, ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद, जुलाई १९६४, पृ० १२२-१३५।

३. रेवरेण्ड सी० बुल्के—दी कारेक्टेराइजेशन आफ हनुमान, जनरल आफ दी ओरियण्टल सोसाइटी, एम० स० युनिवर्सिटी, बड़ौदा ख० ९; जून १९६०, पृ० ३९३-४०२।

४. डी० डी० कोशाम्बी – मिथ एण्ड रियाल्टी, पृ० ९८, १२४, १४३।

के हनुमान एक ओर तो वैयाकरण हैं और दूसरी ओर आकृति में वन्दर हैं इस विरोधाभास का समाधान कैसे किया जाय। फिर ये सौ योजन का समुद्र लाँघ जाते हैं और लंका को जलाते हैं तो क्या रामायण के हनुमान का रूप शुद्ध कल्पना पर आधारित है अथवा इस कल्पना के पीछे कुछ आधार है क्योंकि प्रायः सभी कल्पनाओं का आधार कुछ न कुछ सत्य होता ही है। इन्हीं प्रश्नों पर यहाँ भारतीय तथा भारतेतर साहित्य के आधार पर विचार करना है।

वैदिक वाङ्मय में कपि

आर्यों के प्रायः सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में हमें हनुमान शब्द तो नहीं मिलता, परन्तु वृषाकपि के दर्शन होते हैं[१]—

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

यह कथोपकथन यहाँ इन्द्र तथा इन्द्राणी के आपसी वार्तालाप के रूप में वृषाकपि के समक्ष वर्णित है। यहाँ इस कपि को हरित मृग कहा है।[२] यहाँ यह इन्द्र का मित्र है तथा इन्द्राणी को कष्ट देनेवाला है, इसे पीटा भी जाता है।[३] इन्द्र से हनुमान का सम्बन्ध पीछे की पौराणिक कथाओं में मिलता है परन्तु इस वृषाकपि से हनुमान का कितना सम्बन्ध है यह ठीक नहीं कहा जा सकता। यों यह तो स्पष्ट ही है कि इस काल में मनुष्य ने बन्दरों को पालतू बनाना प्रारम्भ कर दिया था। तैत्तिरीय संहिता में भी हमें कुछ ऐसा ही संकेत मिलता है।[४] यहाँ 'मयु' को जंगल का निवासी कहा है, यह लंगूर प्रतीत होता है।

---

१. ऋक् १०, ८६, १-५, ८, १२, १३, १८, २०, २१, २२; वैदिक इण्डेक्स खण्ड १ पृ० १३६। राल्फ० टी० एच० ग्रिफिथ—दी आरयन्स आफ ऋग्वेद, द्वितीय संस्करण, ई० जे० लाजरस एण्ड कम्पनी, बनारस, १८९७ खण्ड २, पृ० ५०७-५०९। वृषाकपि का अर्थ श्री चक्रपाणिनाथ ने भावोपहार में अधोलिखित पंक्ति की टीका करते हुए किया है—प्राक्षाल्य धारणाम्भोभिर्गन्ध पंचक मौक्तिकम् अनर्घ्यं मर्घपादेभ्यः प्रयच्छामि वृषाकपे।२०। हे वृष-स्वशक्तिरस वर्ष प्रवण तथा अकपे—अचपल कूटस्थ किया है। रजनीकान्त विरचित विवरण।

२. वाल्मीकि रामायण में हनुमान को शाखामृग कहा है। किष्किन्धा १, १३०; २-१०; २-१।

३. ए० ए० मैकडोनेल—वैदिक माइथोलाजी (अनु० रामकुमार राय) चौखम्बा विद्या भवन, बनारस १९६१, पृ० १२०।

४. तैत्तिरीय संहिता ४,२, १०, १; वैदिक इण्डेक्स खण्ड १ पृ० १३६; ख० २ पृ० १३८।

इमं मा हिंसीर्द्विपादं पशुनाँ सहस्राक्षमेघ आ चीयमान।
मयुमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तनुनु वोनिषीद।

यह 'मयुं' शब्द वाजसनेयि संहिता में भी अश्वमेघ के प्रकरण में मिलता है।[1] यह मयु शब्द लंगूर के हेतु प्रयुक्त हुआ ज्ञात होता हैं क्योंकि एक दूसरे स्थान पर इसे मनुष्य के स्थान पर रखा गया हैं। इसी अर्थ में शतपथ में भी इस शब्द का प्रयोग हुआ हैं। मर्कट शब्द भी वाजसनेयि संहिता तथा तैत्तिरीय संहिता में मिलता हैं।[2] अथर्ववेद में कई बार कपि का वर्णन आया है। इन्हें बालों से युक्त तथा कुत्तों का शत्रु कहा गया हैं।[3]

छान्दोग्य उपनिषद् में हमें 'कप्यआस' पद मिलता है जिससे ऐसा ज्ञात होता हैं कि इस काल तक पहुँचते पहुँचते कपिपूजा प्रारम्भ हो गई थी तथा कपिपूजकों का एक पंथ भी बन गया था।[4]

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति हवै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद।

काठक संहिता में हमें लुशाकपि शब्द मिलता हैं—

....होवाच लुशाकपिः खार्गलैः कयंग्रहानग्रहीष्ठे तीत्यमिति हास्या ऊच्चस....(३०, २, ४) यह 'लुशाकपि' शब्द हमें असीरिया के एक लेख में भी देखने को मिलता हैं[5] जिससे यह धारणा बनती है कि हिब्रू का कोफ शब्द कपि से बना हैं जो बन्दर का द्योतक है। इसी संहिता में कापेय शब्द भी प्राप्त होता हैं जो चित्ररथ के पुरोहितों के हेतु प्रयुक्त हुआ हैं।[6] पंचविंश ब्राह्मण में

---

[1] वाजसनेयि—२४-३, ८-४७; वैदिक इण्डेक्स खण्ड २ पृ० १३९; शतपथ—७-५, २, २२।

[2] वाजसनेयि—२४-३०; तैत्तिरीय ५, ५, ११, १।

[3] अथर्ववेद—३-९, ४; ४-३७, ११; ६-४९, १।

[4] छान्दोग्योपनिषद्—१-६, ७। इस 'कप्य आस' का पदच्छेद कपि+आस होगा। आस का आलंकारिक अर्थ आसन हो सकता है। कपि को आसन देना कपि-पूजक ही कर सकते हैं। जब तक उनको विशिष्ट जीव न समझा जाय उनको आसन देने का कोई अर्थ नहीं होता, वैदिक इण्डेक्स—ख० १ पृ० १३६ में यह पदच्छेद दिया हुआ है।

[5] आर० वी० हर्वे—वैदिक नेम्स इन असीरियन रिकार्ड्स—अडेयर लाइब्रेरी बुलीटन खण्ड २१, भाग १-२, नं० १०, पृष्ठ १३।

[6] काठक संहिता—१३-१२।

भी हमें काप्य लोगों का दर्शन होता है[1], इन्हें वैदिक इण्डेक्स में कपि गोत्र का कहा गया है।[2] हो सकता है कि ये कपिपूजकों के श्रेणी के लोग रहे हों।

'मर्कट' शब्द जो बन्दरों के हेतु पीछे के संस्कृत साहित्य में स्थान स्थान पर प्रयुक्त हुआ है सर्वप्रथम ऐतरेय तथा तैत्तिरीय आरण्यकों में मिलता है[3]। जैमिनीय ब्राह्मण में भी इस शब्द का हमें दर्शन होता है।[4] हो सकता है कि यह शब्द बन्दरों की कोई दूसरी जाति का द्योतक रहा हो।

ऋग्वेद की वृषाकपि की कथा के विषय में मेकडानेल ने लिखा है कि ऋग्वेद का यह सूक्त प्रक्षिप्त ज्ञात होता है। इसमें वृषाकपि के कारण इन्द्र तथा इन्द्राणी के बीच हुए झगड़े का विवरण प्राप्त होता है। यह वृषाकपि इन्द्र का मित्र था तथा इसने इन्द्राणी की कुछ सामग्री नष्ट कर दी थी, इस पर दोनों में झगड़ा होता है। वृषाकपि को अच्छी तरह पीटा जाता है और वह भाग जाता है। परन्तु इन्द्र तथा इन्द्राणी में मेल हो जाने पर वह लौट आता है।[5] गैल्डनर तथा वेलंकर के अनुसार यह सूक्त इन्द्र तथा इन्द्राणी और वृषाकपि तथा इसकी स्त्री कपाई के बीच हुए कथोपकथन के रूप में प्रस्तुत किया गया है[6]। यह सर्वमान्य है कि इन्द्राणी तथा वृषाकपि में कुछ झगड़ा हुआ था तथा इन्द्र ने इस झगड़े को सुलझाने का प्रयत्न किया था जैसा इस सूक्त में संकेत है। गैल्डनर महोदय की इस विषय में यह उक्ति है कि "वृषाकपि ने इन्द्राणी के साथ कुछ अभद्र व्यवहार किया था और उनसे कहा था कि उनका कोई पति नहीं है या वह अपने पति की प्रिया नहीं है। कदाचित् उसने इन्द्राणी से प्रेम-प्रस्ताव भी किया था और तिरस्कृत होने पर उसने इन्द्राणी के रूप की निन्दा की थी। इसने कुछ इन्द्र के घर पर भी उत्पात किया था जिससे इसे इन्द्र के घर को छोड़ कर धनी लोगों के आश्रय में

---

[1] पंचविंश ब्राह्मण—२०, १२, ५।

[2] वैदिक इण्डेक्स—खण्ड १ पृष्ठ १४८।

[3] ऐतरेय आरण्यक—३, २, ४; तैत्तिरीय आरण्यक ३, ११, ३२।

[4] जैमिनीय ब्राह्मण—१, १८४।

[5] ए० ए० मेकडानेल—वैदिक माइथालोजी, पृ० ६४।

[6] के० एफ० गेल्डनर—डेर ऋग्वेद ३, पृ० २७३ तथा आगे; एच० डी० वेलंकर-हिम्स टू इन्द्र इन मण्डल १०, जनरल आफ दी यूनिवर्सिटी आफ बाम्बे, सेप्टेम्बर १९५३, पृ० २ तथा आगे।

जाना पड़ा था। इससे लोग ऐसे प्रभावित हो गये थे कि इन्द्र को ही भूल गये इस पर इन्द्र को सोम याज्ञिक ढूढ़ना पड़ा।"[1]

यह सूक्त इस सूचना से प्रारम्भ होता है कि इन्द्र तथा इन्द्राणी को सोमरस नहीं अर्पित किया जा रहा है, इनके स्थान पर वृषाकपि को सोमरस मिल रहा है[2]। सायण ने भी इस मंत्र का यही अर्थ किया है। वेलंकर ने इस मंत्र का दूसरा अर्थ किया है परन्तु 'विश्वस्माद्इन्द्र उत्तर:' पद से ऐसा ज्ञात होता है कि वृषाकपि के प्रति लोगों के आकर्षण अधिक होने के कारण इन्द्र की सार्वभौमता में सन्देह हो गया था इससे उसे पुन: स्थापित करने की आवश्यकता पड़ी और इसी कारण यह अंश मंत्रों में बार बार दोहराया गया। हो सकता है कि वृषाकपि का कोई अलग पंथ रहा हो। यों वेलंकर ने यह स्पष्ट कहा है कि "यहाँ वृषाकपि के किसी स्वतंत्र पंथ की जो इन्द्र के विरुद्ध हो कोई कल्पना नहीं है"[3] परन्तु इस मत से दूसरे विद्वान् सहमत नहीं हैं। यदि इस समस्या पर यों विचार किया जाय कि वृषाकपि को ऋग्वेद में इन्द्र स्वयं मत्सखा कहते हैं[4] और इन्द्राणी कहती है 'य इमम् त्वम् वृषाकपिम् प्रियम् इन्द्र अभिरक्षसि।'[5] इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि यदि वृषाकपि का कोई पंथ था तो इस ऋचा के समय तो वह इन्द्र के विरुद्ध नहीं था। यहीं यह भी पता लगता है कि वृषाकपि को सोमपान का अधिकार प्राप्त हो गया था और लोग इन्द्र के स्थान पर उसे सोम रस प्रदान करने लग गये थे। सम्भव है कि उस काल तक जब इस सूत्र की रचना हुई हो तो वृषाकपि के पंथ को आर्य लोग अपनाने की बात सोच रहे हों। इस बात की भी झलक दिखाई देती है कि इन्द्र वृषाकपि और इन्द्राणी के झगड़े को निपटाने को व्यग्र हैं परन्तु फिर भी इस सूक्त को छोड़ कर और कहीं वृषाकपि का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता। इससे यह सम्भव प्रतीत होता है कि भारत के प्राचीन निवासियों में किसी देवता का पंथ रहा हो जो आगे चलकर आर्यों ने अपना लिया हो तथा उस देवता का नाम वृषाकपि दिया हो। वेलंकर ने वृषाकपि को दासों का राजा तथा इन्द्र का मित्र बताया है।[6] पारजिटर ने वृषाकपि को हनुमन्त से जोड़ा

---

१. गैल्डनर—उपरोक्त, पृ० २७३।
२. ऋग्वेद १०, ८६, १।
३. वेलंकर—उपरोक्त पृ० १३ पाद टिप्पणी।
४. ऋग्वेद—१०, ८६, १।
५. ऋग्वेद—१०, ८६, ४।
६. वेलंकर—उपरोक्त पृ० १४, पादटिप्पणी पृ० १५ को देखिये।

है।[1] सुनीतिकुमार चटर्जी ने भी पारजिटर के मत का समर्थन किया है और लिखा है कि 'पारजिटर के हनुमन्त नाम पर किये गये अन्वेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि किसी वन्दर देवता की पूजा अनार्यों में प्रचलित थी। आर्यों को जव इस देवता का पता लगा तो उन्होंने इसे वृषाकपि की संज्ञा दी। इस देवता का नाम नर वन्दर था और इसे द्रविड़ भाषा में अणमन्ति कहते थे। इसी देवता की आर्यों के धर्म में समावेश की कथा ऋग्वेद के दसवें मण्डल में मिलती है। पीछे चलकर अणमन्ति से हनुमन्त शब्द वना जिस रूप में आज भी वे हिन्दुओं द्वारा पूजे जाते हैं।"[2] गेल्डनर का यह कहना है कि वृषाकपि के कथोपकथन के विषय का सारा इतिहास नष्ट हो गया है।[3] परन्तु पारजिटर ने व्रह्मपुराण में से इन्द्र, इन्द्राणी तथा वृषाकपि की एक कथा ढूंढ़ निकाली है[4] जिसमें गौतमी या गोदावरी के माहात्म्य का वर्णन है। वहाँ गोदावरी के फेना या फेनगंगा के संगम के तीर्थ का नाम मारजार, हनुमत, वृषाकपि और अवजक वताया गया है। ये नाम दो कथाओं पर आधारित हैं। पीछे के दो नामों के विषय में यहाँ कथा मिलती है कि दैत्यों का प्रथम पुत्र हिरण्याक्ष तपस्या के कारण देवताओं से अबध्य हो गया। उसका पुत्र महाशनि था। इसको भी वड़ा प्रतापी कहा गया है—पूर्वेषां पूर्वउत्तरः।[5] उसने एक समय इन्द्र को उनके हाथी के सहित बाँध कर अपने पिता को समर्पित कर दिया था। हिरण्य ने इन्द्र को अपने यहाँ कारागार में बाँध कर रखा। महाशनि ने फिर वरुण पर चढ़ाई कर दी परन्तु वरुण ने उसे अपनी पुत्री देकर मित्र वना लिया।[6] इन्द्ररहित होकर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की कि हमें हमारा इन्द्र दीजिये और दैत्य को मार डालिये। इस पर विष्णु ने कहा कि वे इस महाशनि को नहीं मार सकते। इस पर देवताओं ने वरुण से

---

१. एफ० ई० पारजिटर—सजेश्चन्स रिगार्डिंग ऋग्वेद १०-६८, जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९११, पृ० ८०३ तथा आगे; १९१३, पृ० ३९६ तथा आगे।

२. एस० के० चटर्जी—वैदिक एज, पृ० १६४।

३. गैल्डनर—वैदिक स्टडीज, खण्ड २ पृ० २२।

४. एफ० ई० पारजिटर—जे० आर० ए० एस० १९११ पृ० ८०३; ब्रह्म पुराण अध्याय ७७-१७५।

५. यही पद ऋग्वेद के उपरोक्त सूक्त से इन्द्र के हेतु प्रयुक्त हुआ है।

६. उपरोक्त पृ० ८०४; यह विचारणीय है कि इस ऋग्वेद के सूक्त के देवता भी वरुण ही हैं।

सहायता माँगी। वरुण अपने जामाता के पास गये और उससे इन्द्र को छोड़ देने की प्रार्थना की। महाशनि ने इन्द्र को छोड़ तो दिया परन्तु उनका बड़ा तिरस्कार किया और कहा कि वे वरुण के सेवक होकर रहें। इन्द्र जब स्वर्ग पहुंचे तो इन्होंने शची से परामर्श किया तथा इन्द्राणी के साथ विष्णु और शिव की आराधना करने के हेतु ये दण्डक वन में गोदावरी के तीर पर गये। पहिले इन्होंने शिव से इस दैत्य को मारने के हेतु प्रार्थना की परन्तु शिव ने इनसे कहा कि वे अकेले उस दैत्य का वध नहीं कर सकते। इन्द्र को विष्णु को भी तुष्ट करना चाहिये। इस पर इन्द्र तथा शची ने आपस्तम्ब की सहायता से फेना तथा गोदावरी के संगम पर विष्णु की अर्चना प्रारम्भ की। विष्णु प्रसन्न हुए। इस पर शिव, विष्णु तथा गोदावरी के सम्मिलित अंशों से एक पुरुष पानी से उत्पन्न हुआ। इसने रसातल जाकर महाशनि को मार डाला। यह पुरुष इन्द्र का मित्र बना। इसका अब्जक या वृषाकपि नाम हुआ।[1] जब इन्द्र ने स्वर्ग प्राप्ति के पश्चात् भी वृषाकपि का अनुसरण किया तो इन्द्र को इस प्रकार वृषाकपि पर आसक्त पाकर शची क्रुद्ध हुई इस पर इन्द्र ने इन्द्राणी से कहा कि 'मैं वृषाकपि के बिना अपूर्ण हूं।' उसके दिये हुए हवि से अग्नि प्रसन्न होते हैं। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। यह मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—"नाहमन्यत्र गन्तास्मि" इत्यादि तुम्हारे ही परामर्श देने पर मैं गोदावरी के तट पर गया और वहाँ मैंने शिव और विष्णु की प्रार्थना की और उन्हीं की कृपा से वृषाकपि की जल से उत्पत्ति हुई, यही मेरा मित्र अब्जक है। इसी से मेरा सिंहासन सुरक्षित हुआ है (१०१-१०६, ११३-११५)।

दूसरा स्थल ब्रह्मपुराण में जहाँ वृषाकपि की कथा मिलती है वह है। जहाँ वृषाकपि को अरिन्कम (अरिंदम) कहा है और इन्हें और राजाओं और ऋषियों के साथ तीर्थों का स्थापित करनेवाला बताया गया है। यह अंश ऋग्वेद के मंत्रों से बहुत कुछ मिलता हुआ है। यहाँ इन्द्र इन्द्राणी को शांत कर रहे हैं जैसे १०वें मण्डल के ८६वें सूक्त में करते हैं। इस अध्याय के मंत्रों से ऐसा नहीं ज्ञात होता कि इन्द्र की तपस्या से वह गोदावरी और फेना का संगम एक महत्वपूर्ण तीर्थ बना परन्तु वह पहिले से ही तीर्थ था[2]। पारजिटर के अनुसार इन्द्र को यहाँ

---

[1] संभव है कि यह 'अबजक' शब्द 'आबजा' से बना हो जिसका ईरानी भाषा में अर्थ होगा पानी से उत्पन्न। हो सकता है कि इस कथा का आधार कोई ईरानी कथा हो। वरुण को अवस्था में विशेष महत्व दिया गया है और यह कथा वरुण से सम्बन्धित है।

[2] एफ० आई० पारजिटर—उपरोक्त पृ०८०५-८०६; ब्रह्मपुराण ७०-४०।

वड़ी तुच्छ दृष्टि से देखा गया है इस कारण हो सकता है कि इस कथा का उद्गम भारत का मध्यदेश न होकर दक्षिण हो जहाँ के निवासियों के अपने देवता थे और जहाँ आर्य देवताओं का पीछे चलकर पूजन होने लगा।[1] यह भी सम्भव है कि यह कथा ईरान की हो क्योंकि अवेस्ता में इन्द्र को देवताओं का शत्रु माना गया है। ब्रह्म पुराण के ८४ वें अध्याय में एक और कथा मिलती है जिसके अनुसार केसरी की दो स्त्रियाँ थीं (जैसा अद्भुत रामायण में लिखा है)। अंजना तथा अद्रिका। ये दोनों अप्सरायें थीं, शापवश अंजना का मुख वंदर का और अद्रिका का मार्जारी का हो गया था। वायु तथा निर्ऋति से इन दोनों को दो पुत्र हुए हनुमत तथा अद्रि। अंजना को अद्रि तथा अद्रिका को हनुमान ने गौतमी या गोदावरी तथा फेन के संगम पर स्नान कराया इस प्रकार इस तीर्थ का नाम हनुमत, मार्जा तथा वृषाकपि पड़ा। (अध्याय १२९-९)। इस अध्याय में वृषाकपि का कहीं वर्णन नहीं आता परन्तु इस तीर्थ का नाम तीनों दिया गया है। इस प्रकार हनुमत तथा वृषाकपि में कुछ सम्बन्ध होना चाहिए।[2] हनुमत दक्षिण के देवता थे और इस दक्षिण के तीर्थ का सम्बन्ध वृषाकपि तथा हनुमत दोनों से है। हरिवंश में (९६, ५३३३) में दक्षिण के एक राजा का नाम महाकपि भी मिलता है जो क्रौंचपुर में राज्य करते थे। पारजिटर ने यह प्रतिपादित किया है कि द्रविड़ कदाचित् वन्दरों की पूजा करते थे तथा वृषाकपि कोई द्रविड़ कपि देवता थे। जव आर्य अपना प्रभुत्व उधर जमा रहे थे उस समय वहाँ ये वृषाकपि देवता इन्द्र से भी वड़े माने जाते थे। इन्द्र का दक्षिण के गौतमी (गोदावरी) और फेना के संगम पर तपस्या करना इस वात का द्योतक हो सकता है कि उनको दक्षिणवाले मानने को उद्यत नहीं थे। तपस्या करने पर ही ये वृषाकपि के मित्र अर्थात् उनके वरावर के देवता वने। कदाचित् आर्यों का प्रभाव दक्षिण में मान्धातृ यौवनाश्व तथा देवापी के वीच के काल तक हो गया था। यह घटना पाण्डवों के १०० वर्ष से पूर्व की होनी चाहिये।[3] ब्रह्मपुराण की ये कथायें कदाचित् ऋग्वेद की ऋचा से पूर्व की हैं क्योंकि यहाँ वृषाकपि को इन्द्र को महाशनि के कारावास से छुड़ानेवाला माना गया है और ऋग्वेद की ऋचाओं में इन्द्र को अधिक

---

[1] उपरोक्त पृष्ठ ८०७, यों यह शब्द — अदम्यो जातः अब्जः स एव अब्जकः संस्कृत भाषा का है।

[2] उपरोक्त पृ० ८०८।

[3] एफ० आई० पारजिटर—एनशण्ट इण्डियन जिन्योलोजी एण्ड क्रानालोजी जे० आर० ए० एस० १९१० पृ० ६५३।

महत्व देने का प्रयत्न दिखाई देता है। यों आर्यों का प्रभुत्व दक्षिण में जम जाने पर तो स्वाभाविक था कि इन्द्र को अधिक महत्व दिया जाता।[1] पीछे चलकर इन्द्र को उनकी प्रभुता दिखाते हुए उन्हें 'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः' कहा गया है। पारजिटर ने उपर्युक्त दो कथाओं के आधार पर यह वताने का प्रयत्न किया है कि वृषाकपि और हनुमन्त का कुछ सम्वन्ध होना चाहिये। यहाँ इन्हें गौतमी (गोदावरी) से सम्वन्धित किया गया है। हनुमन्त को दक्षिण का मानना चाहिये उसी प्रकार वृषाकपि को भी। "दूसरी कथा के अनुसार ये एक ही व्यक्ति थे क्योंकि इस स्थान का नाम वृषाकपि इस कारण पड़ा कि हनुमान ने अपनी विमाता को यहाँ स्नान कराया था और उससे वे शापमुक्त हुई"।[2] वृषाकपिः दो शव्द हैं जिसका अर्थ होता है "पुल्लिग वन्दर।" पारजिटर के अनुसार रामायण में हनुमान और दूसरे वन्दरों को गोदावरी के दक्षिण पश्चिम का माना गया है (पृ० ३९७)। वृष शव्द तमिल, कनारीज तथा मलयालम के 'अण' शव्द से मिलता है जिसका अर्थ पुरुष होता है (स्त्री नहीं)। अण शव्द दूसरे शव्दों के साथ मिला देने से वह पुरुषवाची हो जाता है। कुरंग शव्द का अर्थ तामिल में वन्दर होता है परन्तु दूसरी तीन भाषाओं में कुरंग का अर्थ मृग होता है। वृषाकपि को उपर्युक्त ऋचाओं में 'हरित मृग' भी कहा है। मलयालम में कुरंग का अर्थ हिरन तथा कुरंगु का वन्दर। कदाचित् इसी कारण वन्दर को शाखामृग कहा गया है। मण्डी शव्द का अर्थ तामिल में साधारण रूप से वन्दर होता है परन्तु आजकल इसका अर्थ वन्दरिया किया जाने लगा है।[3] मलयालम में यह शव्द लंगूर के लिये प्रयुक्त होता है परन्तु कन्नड़ तथा तेलुगु भाषाओं में व्यक्ति के अर्थ में प्रयोग होता है, यो वहुत व्यापक रूप में इसका व्यवहार नहीं होता। शाब्दिक दृष्टि से तामिल तथा कन्नड़ में हमें इस शव्द का अर्थ ढूंढ़ना चाहिये। तामिल और तेलगु में मण्डि ही प्राचीन शव्द कपि के हेतु प्रयुक्त मिलता है। इस प्रकार वैदिक वृषाकपि शव्द आणमण्डि शव्द का द्योतक हो सकता है। यों भी सम्भव है कि वृष शव्द कपि के साथ इस कारण कदाचित् जोड़ा गया जिसमें यह शव्द नर वन्दर का द्योतक हो जो वृष के समान वलवान हो।[4]

---

१. पारजिटर—जे० आर० एस० १९११, पृष्ठ ८०९।

२. पारजिटर—वृषाकपि एण्ड हनुमन्त, जे० आर० ए० एस०, १९१३ पृष्ठ ३९६-४००, पृ० ३९७।

३. उपरोक्त पृष्ठ ३९८।

४. मोनियर विलियम्स—संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी १९५६ संस्करण-पृ० २५०।

पारजिटर के अनुसार यही शव्द आणमण्डि संस्कृत होने पर हनुमन्त हुआ अन्यथा हनुमन्त शव्द का जिसका अर्थ होता है ठुड्ढीवाला, प्रयोग कुछ समझ में नहीं आता। आर्यों ने द्रविड़ शव्दों को संस्कृत में लेते समय कभी तो प्रारम्भ के दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर दिया और कभी 'ह' प्रारम्भ में जोड़ दिया इस प्रकार 'आण' स्वर 'अणं' हो गया और 'मण्डि' का 'मन्त' हो गया 'ण' के स्थान पर 'न' हो जाना स्वाभाविक था 'अ' के स्थान पर 'ह' भी इसी प्रकार जोड़ा गया प्रतीत होता है। आणमण्डि से अणमण्ड, इससे हनमण्डी फिर हनमन्ती जिससे हनुमन्ती तथा अन्त में हनुमन्त शव्द वना। पारजिटर के अनुसार जैसे महाभारत की हिडिम्वा राक्षसी (१, १५२) का नाम तामिल में इडुम्वी था जिसका अर्थ होता है क्रोधी स्त्री, इस शव्द को जव संस्कृत वनाया गया तो यह हिडिम्वा हो गया।[1] पीछे के प्राकृत ग्रंथ जैसे गुणभद्र के उत्तर पुराण में हनुमान का नाम अणुमन्त है। इस प्रकार यदि यह वात ठीक है तो यह मानना पड़ेगा कि स्थानिक धर्मों को पहिले तो आर्यों ने दवाने का प्रयत्न किया परन्तु उनका जव अन्त नहीं हुआ और वे पुनः जीवित हो उठे तव इनके देवताओं को आर्य धर्म में सम्मिलित कर लिया गया होगा।[2] यदि कपिपूजा द्रविड़ों में प्रचलित थी तो उसे पहिले आर्यों ने नष्ट करने का प्रयत्न किया होगा परन्तु पीछे इसे अपना लिया होगा और आज वह सारे भारत में शिवपूजा की भाँति व्यापक रूप में पायी जाती है।

उमाकान्त पी० शाह का मत है कि वृषाकपि को हनुमान से जोड़ना ठीक नहीं है क्योंकि संस्कृत शव्द हनुमन्त नहीं अपितु हनुमान् या हनुमत् है दूसरे हनुमान का वृषाकपि नाम पीछे के संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। इसके विपरीत वृषाकपि विष्णु सहस्रनाम में विष्णु का एक नाम है तथा रुद्र के ग्यारह नामों में एक है फिर वृषाकपि सायण के अनुसार इन्द्र के पुत्र हैं और हनुमान वायु के पुत्र वताये गये हैं।[3] इस पूरे सूक्त पर यदि मनन किया जाय तो इन्द्र का सम्वन्ध वृषाकपि से मित्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता। उमाकान्त पी० शाह का यह मत कि पाणिनि रामायण तथा महाभारत से परिचित थे[4] कुछ जँचता नहीं।

---

[1] उपरोक्त फुटनोट पृ० ३९९--२।

[2] पारजिटर--उपरोक्त पृ० ४००।

[3] उमाकान्त पी० शाह--वृषाकपि इन ऋग्वेद, जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट एम० ए स० यूनिवर्सिटी आफ बड़ौदा, बड़ौदा, खण्ड ८, सेप्टेम्बर १९५८, नं० १, पृष्ठ ४५।

[4] उपरोक्त--पृष्ठ ४६।

इसके अतिरिक्त इन्होंने गुणभद्र कृत उत्तर पुराण के अणुमन्त शब्द की ओर कदाचित् ध्यान नहीं दिया। यों जिस रूप में शाह द्वारा संकेत किये हुए ग्रन्थ आज मिलते हैं क्या इसी रूप में वे पाणिनि के काल में थे? क्या वे उस समय तक लिपिवद्ध हो चुके थे? पाणिनि की अष्टाध्यायी का काल प्रायः ईसा पूर्व ४४०-४३० के वीच रखा जाता है[1] और महाभारत तथा रामायण का संकलन-काल ईसापूर्व पहिली शताब्दी अथवा ईसा के पश्चात् पहिली शताब्दी माना जाता है। शाह के अनुसार वृषाकपि एक शृंग वाराह का नाम था इसे इन्होंने 'राइनोसेरस' से जोड़ा है[2] परन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वाराहपूजन अनार्यों में अथवा वैदिक आर्यों में होता था। विष्णु के वाराह रूप में अवतार की बात पुराण में ही मिलती है। यों रामायण में वाराह अवतार ब्रह्म का कहा गया है विष्णु का नहीं।[3] यदि वृषाकपि को हरित मृग कहा गया है "किमयम् त्वाम् वृषाकपिश्चकार हरितोमृगः"[4] तो क्या बन्दर या लंगूर का रंग हरित नहीं कहा जा सकता है?[5] यह भी ध्यान रखने की वात है कि इन्द्र को मरुत्सखा भी कहा गया है[6] और मरुत् हनुमान के पिता हैं। दूसरे इस सूक्त के देवता वरुण हैं और वरुण को आर्यों ने वहुत पीछे से अपनाया। ये ही वरुण ब्रह्मपुराण में इन्द्र को छुड़ानेवाले वताये जाते हैं।

श्री चट्टोपाध्याय का मत है कि वृषाकपि आदित्य हैं जिन्हें महाभारत में 'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च' कहा गया है[7] इनके मत से कवित्व ढंग से आदित्य को वाराह वताया गया है[8] परन्तु यह मत भी कुछ जँचता नहीं। क्योंकि सूर्य को विष्णु से जोड़ने की वात पीछे की ज्ञात होती है। हनुमान को रामायण के किष्किन्धा काण्ड में सूर्य से जोड़ा गया है और सूर्य को कपि की भी संज्ञा पीछे के संस्कृत

---

[1] वासुदेवशरण अग्रवाल—पाणिनिकालीन भारतवर्ष, पृष्ठ ४७६।

[2] उमाकान्त पी० शाह—उपरोक्त, पृष्ठ ४७।

[3] सी० वी० वैद्य—दी रिडिल आफ रामायण, पृ० ३०-३१।

[4] ऋग्वेद १०, ८६, ३।

[5] हरित शब्द का अर्थ पीला, भूरा, मटमैला किया जाता है।

[6] ऋग्वेद १०, ८६, ९।

[7] महाभारत १२, ३३०, २४।

[8] के० सी० चट्टोपाध्याय—वृषाकपि हिम, इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज ख० १, १९२५, पृष्ठ १०४, १३६, १४८।

साहित्य में दी गई है परन्तु सूर्य का इस प्राचीन सूक्त से कोई सम्वन्ध नहीं जोड़ा जा सकता है।

वृषाकपि के पंथ की कदाचित् ऋग्वेद के पीछे के काल में भी वहुत मान्यता थी। इसी कारण कदाचित् वृषाकपि को इन्द्र से, विष्णु से, कृष्ण से, रुद्र से महाभारत में जोड़ने का प्रयत्न किया गया; अन्यथा इस प्रकार कई देवताओं से इनका सम्वन्ध स्थापित करने की क्या आवश्यकता थी? वृषाकपि के विषय में महाभारत में अधोलिखित सामग्री मिलती है—

वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत।
नैघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥८८॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ॥९८॥

"वृष ही भगवान् धर्म लोक में विख्यात है, ऐसा निघण्टु के पद आख्यान में कहा गया है मुझे उत्तम वृष समझो।" ॥८८॥ "कपिश्रेष्ठ वराह को कहते हैं तथा वृष धर्म को इसी कारण प्रजापति कश्यप मुझे वृषाकपि कहते हैं।" ॥८९॥ यह प्रसंग ६६ श्लोक से १३७ तक क्षेपक ज्ञात होता है[1] क्योंकि व्यास जी को निघण्टु के साक्षी की आवश्यकता तो थी नहीं। इसी प्रसंग में ८३वें श्लोक में—

निरुक्तं वेदविदुषो वेदशब्दार्थचिन्तकाः।
ते मां गायन्ति प्राग्वंशे अधोक्षज इति स्थितिः ॥८३॥
निर्वाणं परमं ब्रह्म धर्मोऽसौ पर उच्यते।
तस्मान्न च्युतपूर्वोऽहमच्युतस्तेन कर्मणा ॥८४॥

यहाँ निघण्टु पद आख्यान के आधार पर ही कृष्ण या विष्णु को वृषाकपि कहा गया है और निघण्टु का काल महाभारत के पूर्व का नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार महाभारत में अधोलिखित देवताओं से वृषाकपि को जोड़ने का प्रयत्न दिखाई देता है—

इन्द्र—महर्षयस्तुष्टुवुरंजसा च तं वृषाकपिं सर्वचराचरेश्वरम्। २२, २२०, ११७; श्रीमद्भागवत ६, १३, १०।

कृष्ण—महाभारत १२, ४३, १० पृष्ठ १८०।

रुद्र—अनुशासन पर्व १५०, ५, १३ पृष्ठ ३०३; श्रीमद्भागवत ६, ६, १७; ८, १०, ३२; विष्णु पुराण १, १५, १३३।

---

१. महाभारत—गीता प्रेस गोरखपुर, शान्तिपर्व, अध्याय ३४२, पृ० ५३७४।

वाराह—विष्णु-हरिवंश-ततो विभुः प्रवर वाराहरूपधृक् वृषाकपिः प्रसममथैकदंष्ट्रया। ३, ३४, ४८ (बम्बई)।

शिव—कपिः श्रेष्ठः इति प्रोक्तो धर्मश्च वृष उच्यते। स देवदेवो भगवान्कीर्त्यतैऽस्तो वृषाकपिः—द्रोणपर्व २०३, ५, ३६ पृष्ठ ३४१।

यहाँ एक ऋषि का भी नाम वृषाकपि मिलता है—

ऋषि—ततोऽगस्त्यश्च कण्वश्च भृगुरत्रिर्वृषाकपिः—अनुशासनपर्व ६६, २३ (गीताप्रेस)।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि महाभारत के काल तक आर्यों के मन में यह निश्चय नहीं हो पा रहा था कि वृषाकपि को अपने यहाँ के किस देवता के साथ जोड़ें। महादेव को वैदिक रुद्र से जोड़ चुके थे परन्तु वृषाकपि को जोड़ नहीं पा रहे थे। पीछे के काल में कभी इन्हें इन्द्र से जोड़ते थे तो कभी रुद्र से और कभी वाराह रूप विष्णु से।[1] अमर सिंह ने अमरकोष में "वृषाकपि" शब्द को शंकर और विष्णु का पर्यायवाची कहा है—"हरोविष्णु वृषाकपिः"। इस पर व्याख्याकार श्री भानुजी दीक्षित ने इसकी अनेक व्युत्पत्तियाँ की हैं:

१. वृषं धर्मं न कम्पयति, २. वृषाद् धर्मात् आकम्पयति दुष्टान्।

३. वर्षति कामानिति वृषः आकम्पयति पापानि इति आकपिः वृषश्चासावाकपिश्च वृषाकपिः।

४. वृषा इन्द्रः आकम्पते अस्मात्।

५. वृषो धर्मो वृषा इन्द्रो वा कपिरिव वशे यस्य

६. वृष्णः इन्द्रस्य अकं वृषाकं पिबति अर्थात् इन्द्रदुःखं प्राप्नोति प्रापयति वा दैत्यान् अन्तर्भावितण्यर्थत्वात्।

मेदिनी कोष के रचयिता ने वृषाकपि शब्द को अग्नि, कृष्ण और शंकर का वाची कहा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वृषाकपि शब्द अनेकार्थवाची था इसीलिए अमरकोषकार ने इसे नानार्थवर्ग में लिखा है। ऐसी स्थिति में वृष के समान बलशाली कपि से हनुमान अर्थ का बोध किया जा सकता है। हनुमान का एक नाम महावीर भी है, अमरकोष—भानुजी दीक्षित की रामाश्रमी टीका, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, संस्करण सन् १९२९, पृ० ४१९। सम्भव है कि इस देवता की पूजा यक्ष के रूप में ऋग्वेद काल में तथा पीछे भी जनता में प्रचलित रही हो

---

[1] विष्णुसहस्रनाम में विष्णु का एक नाम वृषाकपि भी मिलता है।

जैसा बुल्के ने लिखा है[1] क्योंकि यक्ष पूजा आज भी वीर पूजा के नाम से प्रचलित है।

आज हनुमान की पूजा दो प्रकार से होती है जैसा वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है एक तो इनकी अर्धकपि और अर्ध मनुष्य की मूर्ति बना कर तथा वृषभ की भाँति की पूंछ लगा कर और दूसरी कोण के आकार का ढूहा बना कर[2]। इनका विचित्र स्वरूप, इनके चरित्र की आश्चर्यजनक घटनायें जैसे समुद्रलंघन, लंकादहन, हिमालय से विशल्या अथवा संजीवनी नाम की औषधि लंका में लाना इत्यादि तथा इनका इच्छानुसार अपना स्वरूप बनाने की क्षमता भी यक्षों की कथाओं की भाँति ही प्रतीत होती है।[3] यों रामायण में इन्हें प्रभञ्जन पुत्र कहा गया है महा मायूरी में प्रभञ्जन एक यक्ष का नाम है।[4] इससे इनका नाम वृषाकपि कदाचित् इस कारण पड़ा कि इनकी पूंछ वृषभ के समान लम्बी कल्पित की गयी थी। इसी प्रकार की पूंछ आज भी इनकी मूर्ति में बनाई जाती है। यों वृष को प्रागैतिहासिक युग का मनुष्य शक्ति का द्योतक मानता था और इसकी पूजा सुमेर,[5] हिटाईट[6] तथा भारत[7] में तो प्रचलित थी ही। हो सकता है कि इसको वृषभ की भाँति शक्तिशाली बताने के लिये वृषभ की पूंछ लगा दी गयी हो तथा इनका नाम वृषाकपि आर्यों ने रख दिया हो।

---

१. रेवरेण्ड सी० बुल्के—दी कारकटराईजेशन आफ हनूमान-जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट एम० एस० युनिवर्सिटी आफ बड़ोदा खण्ड ९, जून १९६० नं० ४ पृ० ४०२।

२. वासुदेव शरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म, ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद, जुलाई १९६४, पृष्ठ १३२।

३. दिव्यावदानम्—पी० एल वैद्य, दरभंगा, पृ० १३० सी २११, ३०-३१, पृ० १३२सी २१४, २३-२४ इत्यादि।

४. पी० सी० बागची—साइनो इण्डयन स्टडीज ख० ३, भाग १-२ अप्रैल-जुलाई १९४७, पृ० २७, पद ३३ पृ० ३९, पद ९२।

५. सामुअल नोहक्रामर—दी सुमेरियन्स, देयर हिस्ट्री, कल्चर एण्ड कारेक्टर, पृष्ठ १६० के समक्ष।

६. ओ० आर० गिरनी—दी हिटाइट्स, पेलिकन बुक पृ० १२९ के सामने प्लेट १६।

७. सिन्धु घाटी से प्राप्त अनेक मोहरों पर अलंकृत वृषभ को देख कर ऐसा अनुमान किया गया है।

पीछे चलकर जब दक्षिण के आदिवासियों को राम के सहायक के रूप में वाल्मीकि को दिखाने की आवश्यकता हुई तो कदाचित् उनको एक ऐसे पात्र की खोज हुई जो आदिवासियों का बड़ा शक्तिशाली देवता हो और अपने कार्यों से पाठक को आश्चर्यचकित कर दे। ऐसा चरित्र उनको वृषाकपि का ही मिला। इसे लेकर उन्होंने हनुमान के रूप में चित्रित कर दिया। पीछे के साहित्य में भी जैसे भट्टिकाव्य में हनुमान को ही वृषाकपि माना है।[1]

गमाऽऽगम-सहं द्रुतं कपिवृषाः परिप्रैषयम्।
गजेन्द्र-गुरु-विक्रमं तरुमृगोत्तमं मारुतिम्॥

यों भी देखा जाय तो हनुमान की कथा को यदि हम रामायण में से निकाल दें तो कथा के प्रवाह में कोई अन्तर नहीं आता क्योंकि रावण का निवास सुग्रीव जानते थे तथा राम को जटायु से यह ज्ञात हो गया कि सीता को रावण ले गया है। इस प्रकार एक अनार्य यक्ष का आर्यों के सहायक के रूप में चित्रित होने पर पहिले तो ये राम के मूर्ति के साथ ही रखे गये। जैसे मणिभद्र की मूर्ति बौद्ध और जैन दोनों मंदिरों के द्वार पर बनती हैं। पीछे चलकर बुद्ध के मंदिर के द्वारपाल के रूप में भी ये बैठाये गये।[2] परन्तु इन सब कालों में भारत के ग्रामों में इनकी यक्ष के रूप में पूजा चलती रही। अन्त में इनकी पूजा स्वतन्त्र रूप से रामभक्त तथा महावीर के रूप में एक हाथ में द्रोण पर्वत तथा दूसरे में गदा लिए हुए होने लगी।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वृषाकपि एक यक्ष का नाम था जिसकी पूजा भारत में आर्यों के पहिले से प्रचलित थी। यह बड़ा शक्तिशाली था इसी कारण इसे वृषभ से जोड़ा गया था और इसी कारण इसकी पूँछ वृषभ की पूँछ की भाँति की कल्पित की गयी। अपने को शक्तिशाली दिखाने के हेतु वृषभ की पूँछ और सींग लगाना सिंधुघाटी की सभ्यता में प्रचलित था जैसा वहाँ की एक मोहर से विदित होता है (फलक १ ग)। इस यक्ष की पूजा कपिपूजा से सम्बन्धित ज्ञात होती है। पीछे चलकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस यक्ष को हनुमान में अन्तर्हित कर दिया गया। हो सकता है कि आर्यों को इस अनार्य यक्ष देवता का नाम न मालूम रहा हो और उनके स्वरूप को देखकर उनका नाम वृषाकपि दिया गया हो, पीछे अनार्यों के सम्पर्क में आने पर इस यक्ष का आण मण्डी नाम ज्ञात होने पर इस नाम को हनुमन्त या हनुमान के रूप में स्वीकार किया गया हो। ये दोनों नाम वाल्मीकि के रामायण में मिलते हैं।

---

[1] भट्टिकाव्य—सर्ग ७, ५४२, १०८।

[2] हरमन जकोबी—दस रामायण, अनु० एस० एन० घोषाल, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा, १९६० पृष्ठ २८-३३, ३७।

बौद्ध साहित्य में हनुमान

यों बौद्ध साहित्य में कपियों की अनेक कथाएँ मिलती हैं विशेष रूप से जातकों में जैसे मक्कट जातक में (१७३) यह कथा मिलती है कि एक बन्दर तपस्वी का वेश बना कर बोधिसत्व के पास पहुँचा। बोधिसत्व ने उसे पहिचान लिया और उसे भगा दिया। दुब्बामय मक्कट जातक (१७४) में यह कथा मिलती है कि एक तपस्वी ने एक प्यासे बन्दर को पानी पिलाया बन्दर ने अपने उपकारी पर मल विसर्जन कर दिया। आदिच्चु पट्ठान जातक में बन्दर सूर्य की पूजा का ढोंग रचता है (१७५)। कालय मुट्ठी जातक (१७६) में बन्दर को बड़ा लालची दिखाया गया है उसका एक हाथ और मुँह मुहर से भरा था पर उन सबको गँवा कर वह एक मुहर को खोजने लगता है। तिन्दुक जातक (१७७) में यह कथा मिलती है कि फल खाने जानेपर सभी बन्दर फँस जाते हैं। गाँव वाले उन्हें मार डालने को उद्यत हैं परन्तु बोधिसत्व के सेवक नाम का भान्जा उन्हें अपनी बुद्धि से बचा लेता है। संसुमार जातक (२०८) में यह कथा है कि मगरमच्छ की भार्या अपने पति के मित्र कपिराज का कलेजा खाना चाहती है कपिराज उसे बुरी तरह चकमा देता है। गरहित जातक (२१९) में मनुष्यों के बीच रह कर कपि मनुष्य जीवन की बड़ी निन्दा करता है। चुल्लनिन्दिय जातक में (२२२) एक शिकारी एक बन्दर और उसकी माता को मार डालता है तो उसके घर पर इस अपराध के कारण बिजली गिरती है। कपिजातक (२५०) में एक ढोंगी बन्दर आग तापने के निमित्त एक तपस्वी की कुटी के द्वार पर बैठ जाता है, तपस्वी उसकी चाल को समझ कर उसे भगा देता है इत्यादि। इन जातकों के अनुसार कपि को लोग ढोंगी परअपकारी इत्यादि समझते थे। एक कथा यहाँ और भी मिलती है कि एक बार बोधिसत्व ने कपि की योनि में जन्म लिया सब कपि फल खाने को एक पेड़ पर चढ़े तो नीचे राजा के कर्मचारी इनको पकड़ने को उद्यत हुए। उसी पेड़ के नीचे से एक नदी बह रही थी दूसरे किनारे पर भी पेड़ थे। बोधिसत्व ने अपने शरीर को बढ़ा करके दूसरे पेड़ की डाली को पकड़ लिया और उनके शरीर पर से होकर दूसरे सब कपि पार चले गये और बच गये।[1] एक कथा और मिलती है जिसके अनुसार बुद्ध को तपस्या के पश्चात्

---

[1] दिनेशचन्द्र सेन—बंगाली रामायण पृ० ४६; हेनरिख जिम्मर—दी आर्ट आफ़ इण्डियन एशिया प्लेट ३१ बी साँची।

कपियों ने मधु अर्पण किया था।[1] बौद्ध दशरथ जातक में राम कथा मिलती है[2] परन्तु वह विचित्र ढंग से दी हुई है। यहाँ राजा दशरथ वाराणसी के राजा बताये गये हैं। इनको अपनी ज्येष्ठ रानी से दो पुत्र राम पण्डित और लक्ष्मण तथा एक पुत्री सीता देवी थी। इस महिषी के मरने के पश्चात् राजा ने एक दूसरी महिषी को पट्ट महिषी बनाया। इसका पुत्र भरत था। इस महिषी ने राजा के रोगग्रस्त होने पर बड़ी सेवा की इस पर राजा ने उसे एक वर दिया जिससे इसने अपने पुत्र के हेतु राज्य माँगा परन्तु राजा इसे यह वर देने को उद्यत नहीं हुए। अन्त में इस डर से कि कहीं यह रानी उसके पुत्रों को मरवा न डाले अपने पुत्रों को वन भेजने को उद्यत हुए। ज्योतिषियों से अपने जीवन की अवधि इन्होंने पूछा तो उन ज्योतिषियों ने उनके जीवन की अवधि १२ वर्ष निर्धारित की इस पर राजा ने अपने पुत्रों को १२ वर्ष तपोवन में रहने को कहा परन्तु ९ वर्ष पश्चात् दशरथ की पुत्र शोक से मृत्यु हो गयी और तब भरत ने राज्य स्वीकार नहीं किया तथा राम को वापस लाने के हेतु वन गये। राम ने यह कहा कि मुझे पिता ने १२ वर्ष तक वन में रहने की आज्ञा दी है परन्तु भरत के आग्रह पर उन्होंने अपनी तृण पादुका दी तथा सीता देवी तथा लक्ष्मण को भरत के साथ वापस कर दिया। तीन वर्ष पश्चात् राम वापस आए तथा अपनी सहोदरा से विवाह किया और सोलह वर्ष तक राज्य किया। इसमें कहीं हनुमान का चरित्र नहीं मिलता। अनाकम जातक में भी राम कथा के सदृश ही एक कथा मिलती है परन्तु इसमें राम इत्यादि का नाम नहीं मिलता। प्राय: तीसरी शताब्दी में कांग-संग द्वारा चीनी त्रिपिटक में इस जातक का अनुवाद हुआ था। उलू सीकिंग नामक पुस्तक में यह संग्रहीत है। इसमें भी हनुमान का नाम नहीं है यहाँ इन्द्र एक छोटे वन्दर का रूप धारण करते हैं[3] बौद्ध साहित्य के दशरथ जातक की कथा को कई पाश्चात्य विद्वानों ने जिनमें डा० वेबर, दिनेशचन्द्र सेन, ग्रियर्सन इत्यादि मुख्य हैं राम कथा का आधार माना है[4]।

---

[1] हेनरिख जिम्मर—उपरोक्त प्लेट ११ ए।

[2] सी० वी० वैद्य—दी रिडिल आफ रामायण—लन्दन १९०६–पृ० ६८।

[3] चीनी त्रिपिटक—तैशो संस्करण न० १५२। अनुवाद बुल्तिों एकोल फ्रांसेज एक्स्ट्रेम ओरियाँ-४ (१९०४) पृ० ६९८-७०१।

[4] दिनेशचन्द्र सेन—दी बंगाली रामायन्स पृ० ७; ग्रियर्सन—जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी १९३३ पृ० १३५-३९; जे चिलुस्की—इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली भाग १५ पृ० २८९।

परन्तु इस कथा से राम कथा का सम्बन्ध बहुत दूर का ज्ञात होता है। कदाचित् यह रूप प्रचलित राम कथा की हँसी उड़ाने की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया था।

समुग्ग जातक में एक स्त्री की कहानी मिलती है।[1] इस स्त्री पर एक राक्षस मोहित हो गया था उसने उसे एक बक्स में रख कर अपने उदर में रख छोड़ा था। एक दिन उसने बक्स से निकाल कर उस स्त्री को खुली हवा में रखा और स्वयं नहाने चला गया। इतनी देर में उस स्त्री ने पवन के पुत्र को जो जादूगर था आकाश मार्ग से जाते देखा। वह उस पर मोहित हो गयी और उसने उसे बुला कर अपने बक्स में रख लिया। इतनी देर में वह राक्षस आ गया और उसने उस बक्स को निगल लिया। पवनसुत तथा स्त्री दोनों ही उस बक्स में रह गये। थोड़ी देर पश्चात् राक्षस एक बौद्ध भिक्षु के पास पहुँचा तो उस भिक्षु ने उससे कहा कि "तुम्हारी आसक्ति स्त्रियों के प्रति व्यर्थ है देखो तुमने बक्स में बन्द करके जिस स्त्री को रखा है उसके पास भी उसका प्रेमी है।" इस पर राक्षस चकित रह गया और उसने बक्से को उगल कर देखा। जब उसमें उसे स्त्री के ऊपर पवनसुत लेटा हुआ मिला तो उसे बड़ी विरक्ति हुई। यहाँ पवन से नहीं अपितु पवनसुत से एक स्त्री के अवैध सम्बन्ध की चर्चा मिलती है जैसी अवैध सम्बन्ध की कथा अंजना और पवन की रामायण में मिलती है।[2] कुछ विद्वानों का मत है कि इस कथा के आधार पर पवनसुत के जन्म की कथा का निर्माण हुआ है परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता। इस कथा को बुद्ध ने अपने शिष्यों में संसार से विरक्ति उत्पन्न करने के हेतु कहा था। इसका विवरण किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित नहीं प्रतीत होता।

बर्मा में एक कथा राजा जनक तथा शिवली देवी की मिलती है जिसमें सीता के स्वयंवर की कथा का कुछ आभास मिलता है। यह कथा वहाँ के जातकों में सम्मिलित है परन्तु लंका के जातक-संग्रह में नहीं मिलती। इस कथा में राम का नाम तो नहीं आता परन्तु फिर भी इस कथा का कुछ सम्बन्ध सीता की कथा से प्रतीत होता है। इस बौद्ध कथा के अनुसार अरित जनक जब लड़ाई में मार डाले गये उस समय उनकी रानी गर्भवती थी। वह चम्पा चली गयी वहाँ उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया जिसका नाम इसने जनक रखा। जनक ने व्यापार करना प्रारम्भ किया। उसका जहाज कामवतार के स्थान पर जाते हुए समुद्र में नष्ट हो गया। उसको एक देवकन्या ने अपने बाहुओं में उठा कर मिथला पहुँचा

---

[1] समुग्ग जातक—नं० ४३६ ई० बी० कोवेल—दी जातक ख० ३ पृ० ३१३-३१६ कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी १९५७।

[2] किष्किन्धा काण्ड—४, ६६, ८-२५।

दिया और एक पत्थर पर सुला दिया। उसी दिन उसके चाचा जो मिथला के राजा थे मर गये थे। उनके एक ही कन्या थी जिसका नाम शिवली था। मृत्यु के पूर्व राजा ने अपने मंत्रियों को यह आदेश दिया था कि उनकी कन्या के हेतु एक ऐसा वर ढूँढ़ा जाय जो सुन्दर हो और अपने पुरुषार्थ तथा ज्ञान के हेतु विख्यात हो। इसके अतिरिक्त एक बड़ा धनुष जिसे दस सहस्त्र आदमी नहीं उठा सकते थे उसे वह झुका कर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा सके। मन्त्रियों ने एक मायामय रथ ऐसे पुरुष के खोजने के हेतु भेजा। यह रथ सीधे उस पाषाण खण्ड के सम्मुख पहुँच गया जहाँ जनक सोये हुए थे। मन्त्रियों ने इस पुरुष में महापुरुष के सभी लक्षण पाये। इनको जगा कर मंत्री राज्यप्रासाद में लाये। यहाँ उन्होंने उस धनुष को झुका कर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। इस पर उनका विवाह शिवली से कर दिया गया[१] इसमें सीता के स्वयंवर की कथा का कुछ आभास मिलता हैं और शिवली नाम भी सीता से कुछ मिलता जुलता हैं परन्तु शक लोगों की भाँति यहाँ भी विवाह चचेरी बहन से होता हैं जैसे दशरथ जातक में राम का अपनी सगी बहन से। यहाँ भी हनुमान की कथा का कोई संकेत नहीं है।

कन्निघम का कहना हैं कि राम कथा का प्रचार प्राचीन बौद्धों के काल में हो गया था। इन्होंने स्पेंस हार्डी द्वारा दिये गये सिंघली 'अमवतर' का संकेत उद्धृत किया हैं जिसमें लिखा है कि तीर्थंकरों के उपदेश वैसे ही व्यर्थ हैं जैसे कि भारत तथा रामायण की कहानियाँ। यह परिश्रम उसी प्रकार निरर्थक है जैसे केले में गड़ी लकड़ी को खोजना या पुआल में चावल के दाने का पता लगाना।[१] यों कन्निघम ने भारहुत के दो फलकों को राम सीता की कहानी से सम्बन्धित भी माना हैं। इन दोनों में राम सीता, लक्ष्मण को भारद्वाज के आश्रम में जाने की कथा अंकित हैं। परन्तु यहां हनुमान का दर्शन नहीं होता। यों भारहुत के दो फलकों पर वन्दरों को हाथी को पकड़ कर ले जाते हुए दिखाया गया हैं। इसमें दो वन्दर बाजा बजाते हुए भी दिखाये गये हैं। एक फलक में कतिपय बन्दर एक मनुष्य के नाक का बाल उखाड़ते हुए दिखाये गये हैं। एक और फलक पर वन्दरों को मनुष्यों से लड़ते हुए दिखाया गया है तथा एक फलक पर वन्दर ऊपर पेड़ पर चढ़े हुए हैं नीचे आदमी वन्दरों द्वारा तोड़े हुए फलों को एकत्र करने के हेतु चटाइं विछाये हुए हैं।[२] इन फलकों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इस काल में वन्दरों को विविध कार्यों के करने की शिक्षा दी जाती थी जिससे ये मनुष्य की सहायता

---

१. कॉंनिघम—दी स्तूप आफ भारहुत—पृष्ठ ९५।

२. उपरोक्त पृष्ठ १०३।

करने में समर्थ हो जाते थे परन्तु भारहुत तथा साँची में प्रचलित हनुमान की कथा से सम्बन्वित कोई दृश्य नहीं दिखाई देता।[1]

यह मानना ही पड़ेगा कि बौद्ध साहित्य की जातक कथाओं में तात्कालिक जनजीवन की झाँकी मिलती है। यदि वानर पूजन जनता में प्रचलित न होता तो बौद्धों को कपि के विषय में इतने आख्यान जोड़ने की आवश्यकता न पड़ती।

सूर्य पुराण में जो कदाचित् रमई पण्डित का लिखा हुआ कलकत्ता के साहित्यिक परिषद् से प्रकाशित हुआ है, दलाई लामा की पूजा विधि इत्यादि मिलती है। इसमें हनुमान को बुद्ध के मंदिरों का द्वारपाल बताया गया है।[2] शून्य पुराण में यह कथा मिलती है कि जब राजा हरिश्चन्द्र की स्त्री मदना धम्म में मन देकर भगवान् (बुद्ध) की अर्चना की गयी तो उसे मंदिर के दक्षिण द्वार की रक्षा करते हुए हनुमान के दर्शन हुए।[3] यहीं हमें बुद्ध के मंदिर की सूर्य, चन्द्रमा तथा हनुमान रक्षा करते हुए मिलते हैं। इसी पुराण में हनुमान को दक्षिण द्वार का रक्षक बताया गया है।[4] इसी पुराण में स्थापत्य कला के भी हनुमान विशेषज्ञ माने गये हैं। इनको एक सुवर्ण के घाट बनाने पर बुद्ध इन्हें पान देते हैं।[5] ये यहाँ बुद्ध की बड़े स्नेह से पूजा करते हुए दिखाये गये हैं।[6] इनको बुद्ध का एक स्थान पर मंत्री भी बताया गया है।[7] इसी पुराण से यह भी पता लगता है कि लंका में ये महावीर हनु द्वारपाल के नाम से विख्यात थे तथा इनकी मूर्ति सीलोन के स्वर्ण के विहार में बनी हुई थी।[8]

ऐसा ज्ञात होता है कि हनुमान की पूजा जनता में प्रचलित होने के कारण बौद्धों को इन्हें भी पीछे अपनाना पड़ा जैसे कुवेर यक्ष, मणिभद्र यक्ष तथा श्री मां देवी यक्षिणियों को इन्होंने अपनाया था जिनकी मूर्तियाँ भारहुत के स्तूप के चारों ओर बने पाषाण के वेस्टिका पर अंकित हैं।

---

[1] उपरोक्त प्लेट ४४ फिगर ४, ४६, फिगर ४।
उपरोक्त पृष्ठ १०४-१०५ प्लेट ३३।

[2] दिनेश चन्द्र—बंगाली रामायण—पृष्ठ ४८।

[3] शून्य पुराण—पृष्ठ ३०।

[4] शून्य पुराण—पृष्ठ ३२।

[5] शून्य पुराण—पृष्ठ ८२।

[6] शून्य पुराण—पृष्ठ ८९।

[7] शून्य पुराण—पृष्ठ ९५।

[8] शून्य पुराण—पृष्ठ ९५।

जैन साहित्य में हनुमान का स्वरूप

जैन साहित्य में हनुमान के विषय में विशद कथाएँ प्राप्त होती हैं परन्तु ये कथाएँ आज की प्रचलित विचारधाराओं से भिन्न हैं। यों हनुमान का चरित्र यहाँ भी राम के चरित्र से सम्बन्धित दिखाई देता है।

रविषेणाचार्य द्वारा विरचित पद्म पुराण या पद्म चरित्र में राम को तिरसठ शलाका पुरुषों में वासुदेव के रूप में गिनाया गया है। इसके अनुसार राम का दूसरा नाम पद्म था। जैन पुराणों में राम का यही नाम प्रायः ग्रहण किया गया है। राम चरित्र से सम्बन्धित जैन पुराणों में रविषेण कृत पद्मपुराण, विमलसूरि कृत पउम चरियं और अपभ्रंश में स्वयम्भू कृत पउम चरिउ हैं। राम का चरित्र जिनसेन गुणभद्र कृत संस्कृत महापुराण में, पुष्पदंत कृत अपभ्रंश के महापुराण में, हेमचन्द्र कृत त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में भी पाया जाता है। इन चरित्रों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। एक श्रेणी में विमलसूरि, रविषेण, स्वयंभू तथा हेमचन्द्र की रचनाएँ रखी जा सकती हैं और दूसरी में गुणभद्र तथा पुष्पदंत की रचनाएँ। दूसरी श्रेणी के ग्रंथों में दशरथ वाराणसी के राजा माने गये हैं तथा सीता को मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है जैसा विवरण अद्भुत रामायण में मिलता है।

जैन राम कथा का सबसे प्राचीन रूप रविषेण कृत पद्मपुराण तथा विमलसूरि कृत पउम चरियं में है। दोनों ही के कथानक एक से हैं। एक दूसरे का भावात्मक रूपान्तर मात्र ज्ञात होता है। रविषेण ने अपनी रचना वि० सं० ७३३ में समाप्त की तथा विमलसूरि ने अपनी कृति की समाप्ति ६० वि० सं० में बताया है। विमलसूरि की रचना तिथि पर विद्वानों में मतभेद है। डा० हर्मन जकोबी के मतानुसार यह ग्रंथ ईसा की पहिली शताब्दी का नहीं तीसरी या चौथी शताब्दी का है। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि पउम चरियं की कथा पद्मपुराण के पूर्व की होनी चाहिए। इस ग्रंथ में तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथ के तीर्थकाल में राम का जन्म माना गया है।[1] पद्मपुराण के अनुसार जो वंशावली मिलती है

---

[1] पद्मपुराण (पद्म चरितम्) रविषेणाचार्य—सं० पन्नालाल जैन—प्रथम भाग, जुलाई १९५८; द्वितीय भाग, फरवरी १९५९ भूमिका पृष्ठ १, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

उसमें राक्षसवंश तथा वानरवंश के उल्लेख हैं इन दोनों ही को विद्याधरों की श्रेणी में रखा गया है।[1] राक्षसवंश में रत्नश्रवा तथा केकसी की चार संतानें गिनाई गई हैं यथा रावण, कुम्भकर्ण, चन्द्रनखा तथा विभीषण। चन्द्रनखा का विवाह खरदूषण से होता है। जिससे उसे अनंगकुसमा नाम की पुत्री होती है जिसका विवाह हनुमान से होता है।[2] यहाँ हनुमान की कथा यों मिलती है—

विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी के दस योजन पार एक नगर आदित्यपुर था जिसमें राजा प्रह्लाद राज्य करते थे उनकी रानी का नाम केतुमती था। इनको पवनगति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।[3] भरत क्षेत्र के अन्त में महासागर के निकट आग्नेय दिशा में दन्ति नामक पर्वत पर महेन्द्र नामक राजा राज्य करता था। इस महेन्द्र नामक राजा को हृदयवेगा रानी के गर्भ से अंजना सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इसके सौ भाई थे। ये दोनों राजा कैलाश पर्वत पर जिनेन्द्र की अर्चना को गये वहीं इनका मिलन हुआ। संयोगवश इन दोनों के संतानों का विवाह वहीं निश्चित हो गया। विवाह के पूर्व पवनंजय अपनी वाग्दत्ता को देखने को व्यग्र हो गया। किसी प्रकार अपने मित्र प्रहसित की सहायता से उसने अंजना सुन्दरी को छिप कर देखा। जब वह इस प्रकार देख रहा था उसी समय अंजना की एक सखी मिश्रकेशी ने विद्युत्प्रभ नामक राजकुमार की अंजना के समक्ष बड़ी बड़ाई की और पवनंजय की बहुत बुराई, इससे पवनंजय क्रुद्ध हो गया। उसने अंजना से विवाह करना भी अस्वीकार कर दिया फिर बहुत समझाने पर विवाह तो उसने कर लिया परन्तु विवाह के पश्चात् अंजना को छोड़ दिया, बात भी नहीं करता था।[4] इसी बीच रावण का वरुण से विरोध हो गया। रावण ने अपनी सहायता के हेतु पवनंजय के पिता प्रह्लाद को बुलवाया। पवनंजय पिता से आग्रह करके स्वयं इस युद्ध में सेना के साथ चला। मानसरोवर के तट पर जब यह अपनी सेना के साथ पड़ाव पर विश्राम कर रहा था इसने चकई को चकवे के विरह में तड़पते देख कर बड़ा पश्चाताप किया और उसे अपनी प्रिया का स्मरण हो आया। उसे अपनी प्रिया से मिलने की उत्कट इच्छा जागृत हो गयी और वह अपने मित्र प्रहसित के साथ पुनः अपने नगर में आया तथा अपनी प्रिया से

---

[1] १. ये मनुष्यों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली तथा गगनचारी बताये गये हैं।

[2] २. पद्मपुराण भाग १ पृष्ठ १३।

[3] ३. उपरोक्त भाग १ पर्व १५ पृष्ठ ३३४।

[4] ४. उपरोक्त अध्याय १६ पृष्ठ १५४, १६।

मिला। पवनंजय अंजना से मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ[1] तथा उसने रात्रि में उससे संभोग किया[2]। अपने आने के प्रमाण स्वरूप अंजना को पवनंजय ने अपना नामांकित कड़ा दिया।[3]

कुछ दिन पश्चात् अंजना के शरीर में गर्भ के लक्षण प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे इस पर अंजना की सास सशंकित हुई उसने अंजना से इस विषय में पूछा। इस पर अंजना ने पवनंजय का कड़ा दिखाया तथा उसकी सखी ने पवनंजय के आने का वृत्तान्त बताया परन्तु अंजना की सास को इस पर विश्वास नहीं हुआ। सास ने अंजना पर परपुरुष के सहगमन का आरोप लगा कर उसे उसके पीहर महेन्द्र नगर भेज दिया।[4] राजा महेन्द्र ने जब अंजना के आने का समाचार सुना तो बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु उसे जब अंजना के दुराचरण का विवरण ज्ञात हुआ तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और उसने अंजना को अपने नगर से निष्कासित करके वन में भेज दिया।[5] अंजना ने वन में पहुँच कर हृदय विदारक विलाप करना प्रारम्भ किया। थोड़ी देर पश्चात् जब अंजना अपनी सखी बसन्तमाला के साथ वन में घूमती हुई एक गुफा के पास पहुँची तो वहाँ उसने एक मुनि को देखा। मुनि जी से अंजना की सखी ने अंजना की सब कथा बतायी। मुनि जी ने अंजना को आशीर्वाद दिया तथा उस गुफा में रहने के लिए आमंत्रित भी किया। इन मुनिराज का नाम अमितगति था। मुनि जी उस गुफा को छोड़ कर चले गये और अंजना तथा उसकी सखी वहीं निवास करने लगीं। इसी बीच एक विकराल सिंह उस वन में प्रकट हुआ जिसकी दहाड़ सुन कर अंजना बड़ी भयभीत हो गयी।[6] पास में ही रहने वाले एक गंधर्व को अंजना पर दया आ गयी और उसने उस सिंह को नष्ट कर दिया। उसकी सखी जो सिंह के डर से सहायता की खोज में आकाश में उठ गयी थी वह सिंह के निधन के पश्चात् पुनः अंजना के पास आ गयी।[7] इस घटना के थोड़े ही देर के पश्चात् कन्दरा में हनुमान का जन्म हुआ[8] ये उत्तम लक्षणों से

---

[1] उपरोक्त पृ० १६८, १६९।

[2] उपरोक्त पृष्ठ २१३।

[3] उपरोक्त पृष्ठ २३७।

[4] उपरोक्त अध्याय १७ पृष्ठ ३७०-३७१।

[5] उपरोक्त पृष्ठ ३७२-३७५।

[6] उपरोक्त पृष्ठ ३८६।

[7] उपरोक्त पृ० ३८८, ३८९।

[8] उपरोक्त पृ० ३९३, श्लोक ३०७।

युक्त थे।[1] अंजना के विलाप करने पर वसन्तमाला ने अंजना को सान्त्वना दी। इसी समय आकाश में एकाएक एक विमान प्रकट हुआ (श्लोक ३२०) और उसमें से एक विद्याधर नीचे उतरे। उन्होंने अंजना के विषय में बसन्तमाला से पूछा। जब वसन्तमाला ने अंजना का पूरा इतिहास उनको सुनाया तो विद्याधर ने अंजना से कहा कि "तू मेरी भांजी है (श्लोक ३४५) मेरा नाम प्रतिसूर्य है और हनरूह द्वीप का मैं राजा हूँ।" इतना सुनने पर अंजना ने मामा को पहिचान लिया। पार्श्वर्ग नामक ज्योतिषी जो प्रतिसूर्य के साथ था उसने हनुमान के लक्षणों को देखकर उसके विषय में भविष्यवाणी की कि यह लड़का बड़ा तेजस्वी होगा (श्लोक ३९७)। प्रतिसूर्य ने अंजना को हनरूह नगर में ले जाने का प्रबन्ध किया। पुत्र को लेकर जब अंजना विमान पर चढ़ने लगी तो उसके हाथ से बालक छूट गया। वह विलाप करने लगी। प्रतिसूर्य ने बालक की खोज की तो उसे एक शिला पर पड़ा हुआ पाया। उस शिला के सौ टुकड़े हो गये थे (श्लोक ३९१, ३९२, ३९३)। सबने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया, इसके पश्चात् हनुमान हनरूह द्वीप अपनी माता तथा माँ के मामा के साथ गये।

जब पवनंजय रावण के युद्ध से विजय प्राप्त करके लौटे तो उसे अंजना अपने नगर में नहीं मिली। इस पर उसने बहुत विलाप किया और अपनी माता को सब बात बताई। माता को अंजना पर दोषारोपण करने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ। पवनंजय अंजना को ढूंढ़ने निकला और महेन्द्र नगर में भी जब उसे अंजना का पता नहीं लगा तो वह उसे वनों में खोजने लगा। राजा प्रह्लाद को अपने पुत्र के इस प्रकार वन में प्रवेश करने से बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने सब विद्याधरों के यहाँ सूचना भेजवाई। प्रतिसूर्य के पास भी यह सूचना पहुँची। वह भी पवनंजय को खोजने निकले। उनको एक स्थान पर पवनंजय का पता लग गया। उन्होंने पवनंजय को आश्वासन दिया कि अंजना जीवित है और उसके पुत्र के जन्म के विषय में भी पवनंजय को सूचना दी। प्रतिसूर्य ने कहा कि चूँकि बालक ने विमान से गिर कर शिला के सौ टुकड़े कर दिये थे इस कारण हम लोगों ने उसका नाम श्रीशैल रखा है[2]—

चूर्णितश्च ततः शैलस्तेनासौ पतनात्तदा।
श्री शैल इति नाम्नासावस्माभिर्विस्मितैः स्तुतः॥ (१२२)
ततो हनुरुहाभिख्ये पुरे संवर्द्धितः शिशुः।
हनुमानिति तेनास्य द्वितीयं नाम निर्मितम्॥ (१२४)

---

[1] उपरोक्त—पृ० ३९४ श्लोक ३१७।
[2] उपरोक्त—अध्याय १७, पृ० ३९४-३९७।

हनुरुह नगर में इसका पालन हुआ इस कारण इसका दूसरा नाम हनुमा दिया गया।[1] (इस विषय में रामायण की कथा यह है कि हनुमान ने उदि होते हुए सूर्य को ग्रस लिया था तब संसार में हाहाकार होने लगा, इस पर इ ने इनके ऊपर वज्र छोड़ा जिससे इनकी ठुड्डी टेढ़ी हो गई इस कारण इनका ना हनुमान पड़ा।) इसके पश्चात् प्रतिसूर्य के साथ पवनंजय हनुरुह द्वीप में गय और वहाँ उसने अपनी प्रियतमा अंजना से भेंट की और अपने पुत्र हनुमान को देखा। वहीं उसने कुछ समय व्यतीत किया।

रावण का कुछ दिन पश्चात् वरुण से पुनः वैर बढ़ गया और उसने अपने दू पवनंजय तथा प्रतिसूर्य के पास भेजे। इसी बीच हनुमान भी युवावस्था को प्राप् हो चले थे। हनुमान ने अपने पिता तथा प्रतिसूर्य से युद्ध में जाने के हेतु बड़ा आग्रह किया। गुरुजनों की स्वीकृति प्राप्त करके ये लंका की ओर अपनी सेना के साथ चले। रावण ने इनका बड़ा स्वागत किया तथा हनुमान की बड़ी प्रशंसा की। रावण ने इस प्रकार हनुमान की सहायता प्राप्त करके वरुण पर आक्रमण कर दिया।[2] युद्ध में जब रावण घायल हो गया तब हनुमान युद्ध के हेतु उद्यत हुए। इन्होंने बड़े वेग से आक्रमण कर वरुण के पुत्रों को इधर उधर भगा दिया। हनुमान ने अपने लांगूल रूपी पाश से इन सब को बाँध भी लिया (५४ श्लोक)।[3] हनुमान की ध्वजा वानर चिह्न से विभूषित थी क्योंकि ये वानर वंश के थे।[4] रावण ने अवसर पाकर वरुण को पकड़ लिया (६१ श्लोक), इससे वरुण की सेना इधर उधर भाग गई। इस प्रकार वरुण के हारने पर कुम्भकर्ण ने वरुण के नगर को नष्ट कर दिया तथा वहाँ की स्त्रियों को पकड़ कर रावण के सामने ले आया। रावण ने इस कार्य पर कुम्भकर्ण की भर्त्सना की तथा वरुण की स्त्रियों को नगर में वापस भेजवा दिया[5] और रावण ने वरुण को पुनः उसके नगर में राजा बना दिया। इस युद्ध के पश्चात् मैत्री स्थापित करने के हेतु वरुण ने अपनी सुन्दरी कन्या का विवाह रावण से कर दिया। जब कैलाश को कम्पित करनेवाला रावण लंका

---

[1] १. उपरोक्त अध्याय १८ पृ० ४०९-१२२, १२४।

[2] २. उपरोक्त—अध्याय १९ पृष्ठ ४११-४१२।

[3] ३. उपरोक्त—पृष्ठ ४१३-४१५(५४२ श्लोक)—यहाँ लांगूल का अर्थ पूंछ के स्थान पर पाश किया गया है।

[4] ४. उपरोक्त पृष्ठ ४१५, ५६२ श्लोक। महाभारत में अर्जुन को कपिध्वज बताया गया है।

[5] ५. उपरोक्त पृष्ठ ४१७।

पहुँचा तो वहाँ उसने हनुमान का बड़ा सत्कार किया तथा अपनी बहन चन्द्रनखा की लड़की अनंगपुष्पा (श्लोक १०१-१०२) से उसका विवाह कर दिया तथा कर्णकुण्डल नामक नगर का उसे राज्य भी दिया (१०३ श्लोक)। इसके पश्चात् किष्कपुर के राजा नल ने अपनी पुत्री हरिमालती हनुमान को अर्पित किया (१०४ श्लोक)। कुछ दिन पश्चात् किन्नर गीत नामा नगर की किन्नर जाति के विद्याधरों की सौ कन्यायें हनुमान ने प्राप्त किया (१०५)।[1] इसी श्रेणी के एक पर्वत पर हनुमान भ्रमण करते हुए ठहर गये थे इस कारण उस पर्वत का नाम भी श्रीशैल पड़ गया (१०६ श्लोक)।[2]

किष्किन्धापुर में सुग्रीव राज्य करते थे। उन्होंने अपनी कन्या पद्मरागा हनुमान को अर्पित किया। यह कन्या सुग्रीव को तारा के गर्भ से हुई थी। यह विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ।[3]

जब राम सुग्रीव के पास पहुँचे और उन्होंने विटसुग्रीव को मार डाला तो सुग्रीव ने राम की सहायता करने के हेतु हनुमान को बुलाने को कर्मभूति नाम के दूत को भेजा। कर्मभूति जब श्रीशैल (हनुमान) के पास पहुँचा तो वह वहाँ के ऊँचे-ऊँचे महलों से सुशोभित लक्ष्मी से पूर्ण इस श्रीपुर नगर को देख कर स्तम्भित रह गया। इसके पश्चात् श्रीशैल के भवन में उसने प्रवेश किया। यह भवन स्वर्ण के पानी से लिपा हुआ था। इस दूत के नगर में पहुँचने पर ही खरदूषण तथा चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसमा को अपशकुन होने लगा था। जब कर्मभूति ने खरदूषण के वध का वृत्तान्त सुनाया तो अनंगकुसमा मूर्छित हो गई। इस पर हनुमान को राम पर बड़ा क्रोध आया।[4] दूसरे दिन कर्मभूति ने विटसुग्रीव के निधन का समाचार दिया जिस पर हनुमान ने हर्ष प्रकट किया तथा पद्मरागा सुग्रीव की पुत्री बड़ी प्रसन्न हुई (श्लोक २९-३०)। पद्मरागा ने यह समाचार सुन कर दानपूजा की। इसके पश्चात् हनुमान ने किष्किन्धा की ओर बहुत बड़ी विद्याधरों की सेना लेकर आकाश मार्ग से प्रयाण किया (श्लोक ३२)। सुग्रीव ने अपने नगर को हनुमान के स्वागत के हेतु सजवाया। हनुमान के तुरही के शब्द से वानर वंश के लोगों को बड़ा हर्ष हुआ। हनुमान ने इसके पश्चात् नगर में प्रवेश किया तथा सुग्रीव के साथ वे राम के पास गये (५१ श्लोक)। वहाँ जाकर राम का जिनके स्तनों के

---

[1] उपरोक्त पृष्ठ ४१८-४१९ श्लोक १०१-१०५।

[2] उपरोक्त पृष्ठ ४१९ श्लोक १०६।

[3] उपरोक्त पृष्ठ ४१९-४२१।

[4] उपरोक्त दूसरा खण्ड ४९ अध्याय पृष्ठ २९९-३०७।

बीच में श्रीवत्स का चिह्न था[1] हनुमान ने दर्शन किया। राम ने हनुमान आलिंगन किया तथा सत्कार किया। हनुमान का सुविस्तृत मुकुट वानर चिह्न अंकित था[2] तथा इसका पराक्रम देवराज इन्द्र के समान था। वह वहाँ लोक की भाँति सुशोभित हो रहा था (७४ श्लोक)। हनुमान ने राम से कहा कि जाकर रावण को समझाऊँगा, वह वुद्धिमान है अतः वह अवश्य समझेगा और शीघ्र ही आपकी पत्नी को ले आऊँगा (९६ श्लोक)।" सुग्रीव के मंत्री जाम्बू ने हनुमान को लंका की ओर जाने को उद्यत देख कर समझाया कि उसको किसी से विरोध नहीं करना चाहिये। हनुमान एवमस्तु कह कर लंका जाने उद्यत हुए तथा राम ने सीता के हेतु संदेश तथा अपनी अंगूठी दी। तब रत्न वानर चिह्न से अंकित मुकुट पहिने हुए हनुमान ने लंका की ओर प्रस्थान किया हनुमान ने सुग्रीव से कहा कि जब तक वह वापस न आ जाय तब तक वह ठहरे। तदनन्तर हनुमान शिखरयुक्त विमान पर चढ़े और वायु के समान अथ देवों के समान अपने सैनिकों से घिरे हुए जाने लगे।[4] मार्ग में जाते हुए उन्हों अनेक नगरों को देखा तथा उस गुफा को भी देखा जहाँ वे उत्पन्न हुए थे। स्थान को देखते ही उन्हें राजा महेन्द्र पर क्रोध चढ़ आया। हनुमान ने राजा महे पर चढ़ाई कर दी तथा महेन्द्र के पुत्र को पकड़ लिया, उसके पश्चात् राजा महे को भी पकड़ लिया। पीछे हनुमान ने अपने नाना महेन्द्र से क्षमा याचना तथा उनको सुग्रीव के पास भेज दिया फिर लंका की ओर उन्होंने प्रस्थान किया वहाँ से हनुमान विमान पर बैठ कर ऊँचे उठे तथा उन्होंने दधिमुख द्वीप का द किया और वहाँ के दधि के समान श्वेत भवनों को देखा। उसी द्वीप में एक में दो मुनियों और उनसे कुछ दूर पर तीन कन्याओं को तपस्या करते हुए उस देखा। उसी समय मुनि लोग अग्नि से लिपटे हुए दिखाई दिये तथा कन्याएँ धूम से विह्वल हो रही थीं। हनूमान ने समुद्र के जल को खींच कर उन पर

---

[1] उपरोक्त पृष्ठ ३०१-३०२—"श्रीवत्स कान्ति सम्पूर्ण महाशोभ नान्तरम्"। श्लोक ५७।

[2] उपरोक्त पृष्ठ ३०२ "वानराभोग मुकुटः सुरवारण विक्रमः। श्लोक ७४।

[3] उपरोक्त पृष्ठ ३०५-३०६—यथा ज्ञापयसीत्युक्त्वा रत्नवानर मौ कृत—श्लोक ११०।

[4] उपरोक्त पृष्ठ ३०६-श्लोक ११५।

[5] उपरोक्त अध्याय ५० पृ० ३१०-३११।

किया तथा दावाग्नि को शांत कर दिया। हनुमान ने मुनियों का पूजन किया तथा कन्याओं से उनका इतिहास पूछा।[१] कन्याओं ने उत्तर दिया कि "हम राजा गन्धर्व की अमर नामक रानी की कन्यायें हैं। हमारा पिता दधि द्वीप का राजा है। हमारा नाम चन्द्रलेखा, विद्युत्प्रभा तथा तरंगमाला है। एक विद्याधर कुमार अंगारक ने हमें पाने के हेतु यह उत्पात कर रखा है। हमारे पिता को ज्योतिषियों ने यह बताया था कि जो श्रेष्ठ सहसगति (विट सुग्रीव) को मारेगा वही हमें वरण करेगा। यहाँ हम मनोगामनी विद्या सिद्ध करने को आयी थीं। यहाँ अंगारक ने अग्निवर्षा करके हम सबको जलाने का प्रयत्न किया। हमारी विद्या अब सिद्ध हो गयी है।" कन्याओं का समाचार सुनकर राजा गन्धर्व भी उस स्थान पर आ गये तथा अपनी कन्याओं सहित किष्किन्धा को चले गये और उन्हें राम को समर्पित किया। हनूमान ने इसके पश्चात् त्रिकूटाचल की ओर प्रयाण किया। अचानक उसकी सेना धनुषाकार होकर रुक गयी तब हनुमान ने उस मायामय कोट का दर्शन किया जो अनेकों आकारों के मुखों से सुशोभित था तथा भयंकर पुतलियों से युक्त था।[२] वह कोट सूर्य के मार्ग को रोककर खड़ा था। अपनी सेना को आकाश में स्थित करके हनुमान गदा हाथ में लेकर कवच पहन कर अपने सामने की पुतली के मुख में घुस गये और उस पुतली को नष्ट कर दिया। उस पुतली के नष्ट होते ही कोट नष्ट हो गया। इसके पश्चात् उस कोट का राजा वज्रमुख हनुमान के सम्मुख आया तथा वज्रमुख की सेना से हनुमान की सेना का युद्ध हुआ। हनुमान के द्वारा फेंके गये चक्र से वज्रमुख की मृत्यु हो गयी। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी पुत्री लंका सुन्दरी युद्ध करने को निकली। लंका सुन्दरी ने हनुमान को काम बाणों से विद्ध कर दिया। तब हनुमान ने उसे प्रेमदान किया तथा आलिंगन किया। हनुमान ने लंका सुन्दरी को समझाया तब हनुमान की सेना का उस नगर में प्रवेश हुआ। लंका सुन्दरी के साथ हनुमान ने विहार किया फिर जब हनुमान रावण के पास जाने को उद्यत हुए तो लंका ने रोकने का प्रयत्न किया (७३)। उसने कहा कि "रावण के साथ आपका जो पहिले सौहार्द्र था वह नष्ट हो चुका है जिस समय उसका हृदय शुद्ध एवं उद्वेगरहित हो उस समय उससे आपका साक्षात्कार करना उत्तम होगा।" इस पर हनुमान ने कहा कि "मैं रावण का अभिप्राय जानना चाहता हूँ। यह भी देखना चाहता हूँ कि सीता कैसी रूपवती है जिसने रावण के हृदय को विचलित कर दिया है (८१-८२)।" हनुमान ने लंका प्रवेश किया तथा सर्वप्रथम

---

[१] उपरोक्त अध्याय ५१ पृष्ठ ३१३-३१४।

[२] उपरोक्त पृ० ३१५-३१८।

वे विभीषण के घर गये।[१] विभीषण ने उनका स्वागत किया। हनुमान ने विभीषण से पूछा कि 'तीन खण्ड के अधिपति को क्या क्षुद्र मनुष्य की भाँति परस्त्री का हरण करना उचित है? राजा मर्यादा का मूल है आप उसे समझाइये वह इस निन्द्य कर्म का परित्याग कर दे।" विभीषण ने हनुमान को उत्तर दिया कि "रावण इस समय मेरी बात नहीं सुनता"। विभीषण ने पुनः कहा कि "सीता को अन्नजल छोड़े आज ग्यारह दिन हो गये हैं परन्तु अभी भी रावण इस कार्य से विरत नहीं हुआ है।" हनुमान इसके पश्चात् प्रेमोद्यान में गये और वहाँ सीता का दर्शन किया। सीता उस समय यही सोच रही थी कि 'मैं इस पर्वत से गिर कर क्यों न मर जाऊं क्योंकि मैं अब राम का विरह सहन नहीं कर सकती।' तदनन्तर हनुमान ने सीता की गोद में राम की अंगूठी डाल दिया। अंगूठी देख कर सीता हँसी तथा रोमांचित हो गयीं। दूतियों द्वारा रावण को सूचना मिलने पर मंदोदरी सीता के पास गयी। मंदोदरी ने सीता को रावण की पत्नी बनने का आवाहन किया। सीता ने मंदोदरी का तिरस्कार किया तब हनुमान ने विचार किया कि जो मनुष्य भीरुता के कारण अपने को छिपाता है वह निन्द्य है। हनुमान ने फिर प्रकट होकर राम का सन्देश सुनाया (५५-५६), सीता इस संवाद को सुन कर हर्षित हुई। सीता के पूछने पर हनुमान ने राम के चरित्र का वर्णन किया। इसके पश्चात् हनुमान ने कहा कि 'रावण दयालु है, विनयी है, धीर है, हृदय से कोमल है, नीतिज्ञ है, सत्य व्रत का पालन करने वाला है निश्चित ही मेरा कहना करेगा।' मंदोदरी ने कहा कि 'इस हनुमान ने रावण की सहायता की है और वानर ध्वजों में यह श्रेष्ठ है। यह सबसे बड़ी आश्चर्य की बात है कि भूमि गोचरों ने इसे अपना दास बनाया है' (९९)। हनुमान ने जब इसका प्रतिकार किया तो उसका मंदोदरी से झगड़ा हो गया। सीता के दुर्वाक्य कहने पर रावण की स्त्रियाँ सीता को मारने दौड़ीं। हनुमान बीच में आकर खड़े हो गये। हनुमान ने सीता से भोजन करने की प्रार्थना की। सीता ने हनुमान के कहने पर आहार ग्रहण किया तथा विभीषण के घर पर हनुमान ने भोजन किया।

सीता के विश्राम कर लेने के पश्चात् हनुमान ने सीता से निवेदन किया कि 'हे देवी (१४२-१४४) तुम मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं अभी समुद्र को पार करके क्षण भर में आपको ले चलता हूँ तुम राम के ध्यान में रत राम का दर्शन करो।' सीता ने हनुमान को उत्तर दिया कि 'स्वामी की आज्ञा बिना मेरा जाना उचित नहीं है (१४८)। जब तक रावण की ओर से कोई उपद्रव नहीं होता तब तक तुम यहाँ से चले जाओ।' यह कह कर सीता ने हनुमान को राम के हेतु संदेश तथा चूड़ामणि दिया। हनुमान ने 'जैसी आज्ञा' कह कर प्रस्थान किया। उद्यान की

---

[१] उपरोक्त अध्याय ५३ पृ० ३१९-३२५।

स्त्रियाँ हनुमान पर आसक्त हो गयीं। रावण को जब यह सब समाचार मिला तो उसने आज्ञा दी कि "जो पुरुष उद्यान से बाहर जा रहा है वह हमारा द्रोही है उसे मारो।" आज्ञा पाते ही रावण के सेवक सब हनुमान पर दौड़ पड़े। रावण के किंकरों से हनुमान को युद्ध करना पड़ा। हनुमान आयुधहीन थे इस कारण इन्होंने वृक्षों से ही लड़ाई की तथा रावण के किंकरों को पराजित किया। इस पर इन्द्रजीत हाथियों के रथ पर चढ़ कर मेघवाहन के साथ आया तथा हनुमान को नागपाश में बाँध लिया। इस अवस्था में वे रावण की सभा में लाये गये। तब दूतों ने हनुमान के किये हुए अपराधों से रावण को परिचित कराया तो रावण ने क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि "इसे लोहे की साँकलों से बाँधो" फिर रावण ने कहा कि "यह दुष्ट है इसे क्यों न मारा जाय।" रावण की स्त्रियों ने भी हनुमान की भर्त्सना की इस पर हनुमान को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि "प्रचण्ड बल धारण करनेवाले लक्ष्मण आ रहे हैं। रावण की यह पर-स्त्री तृष्णा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होगी। रावण तू ने अपने कुल के गौरव को नाश कर दिया" (२५६-२५७)। रावण ने इस पर यह आज्ञा दी कि हनुमान को नगर में ले जाकर उसकी दुर्दशा की जाय (२६२)। विविध प्रकार के अपशब्दों से हनुमान क्रोधित हो गये और सब बन्धनों से अपने को मुक्त करके वे चले गये। उनके पैर के आघात से रावण के प्रासाद के गोपुर इत्यादि बिखर कर नष्ट हो गये तथा भवन सब हिल उठे। वे आकाश में उड़ कर चले। रावण का स्वर्णमय कोट भूमि में मिल गया उसमें अनेकों गढ़े पड़ गये। ऐसा ज्ञात होता था कि वह इन्द्र के वज्र से चूर-चूर हो गया है। वानरवंशी हनुमान के ऐसे पराक्रम की कथा सुन कर सीता को बड़ा हर्ष हुआ (२६६)। इसके पश्चात् वज्रोदरी ने सीता को दिखाया कि "वह देखो हनुमान सब बन्धनों को तोड़ कर आकाश मार्ग से चला जा रहा है।" सीता ने हनुमान को देखकर पुष्पांजलि छोड़ी। हनुमान अपनी सेना के साथ फिर किष्किन्धा पहुँचे। सेना को ठहरा कर सुग्रीव से लंका का सब हाल बताया। इसके पश्चात् शोकग्रस्त राम के पास सुग्रीव तथा हनुमान गये और उन्हें सीता का सन्देश सुनाया तथा सीता की दी हुई चूड़ामणि दी। राम ने हनुमान का आलिंगन किया और पूछा कि क्या सीता जीवित हैं ? हनुमान ने इस प्रश्न के उत्तर में सीता की दशा का वर्णन किया। राम जब बहुत दुखी होने लगे तो हनुमान ने उन्हें समझाया कि "आप व्यर्थ में शोक कर रहे हैं इस समय जो कर्त्तव्य है उसमें मन दीजिये।" किष्किन्धा के राजा सुग्रीव की दीर्घसूत्रता दिखाई देती है, सीता का भाई भामण्डल भी बार बार बुलाने पर देर कर रहा है (२६) इसलिये हम लोग नौकाओं से अथवा भुजाओं से समुद्र पार करके कल ही लंका चलें (२७)।" सिंह-

नाद नामक विद्याधर ने कहा कि रावण इस समय क्रोध में है हो सकता है कि हमारी सामूहिक मृत्यु हो जाय। दूसरे विद्याधर चन्द्र मारीच ने कहा कि रावण का भय नहीं होना चाहिये हमारे पास भी अनेक विद्याधर हैं। विचार-विमर्श के पश्चात् सभी विद्याधर प्रस्थान के हेतु उद्यत हुए। मार्गशीर्ष पंचमी को राम ने सेना सहित प्रस्थान किया। सबके आगे अत्यन्त तेजस्वी भूतनाद थे और लोकपाल के सदृश हनुमान उनके पीछे थे। हंस द्वीप में सेना ठहरी और लंका के युद्ध की तैयारी की जाने लगी। विभीषण ने रावण को समझाया कि "परस्त्री सीता को राम को सौंप दिया जाय (११)। राम यहाँ पधारें हैं यह अवसर भी ठीक है" इस पर इन्द्रजीत ने कहा कि "तुम उन्मत्त की भाँति क्यों इस प्रकार बोले जा रहे हो ? विभीषण ने इन्द्रजीत को डाँटा और कहा कि जिसके पास सागरावर्त घनुष है, आदित्यमुख बाण हैं तथा भामण्डल जिसके पक्ष में हैं और जिसके महेन्द्र, मलय, तीर, श्रीपर्वत, इत्यादि राजा सहायक हैं उसे तुम कैसे जीत सकते हो। इस पर रावण ने विभीषण को डाँटा। विभीषण ने कहा कि 'क्या मैं रत्नश्रवा का पुत्र नहीं हूँ' यह कह कर वह राम के समीप तीस अक्षौहिणी सेना के साथ चला गया।

यहाँ रावण के दल का प्रमाण चार हजार अक्षौहिणी बताया गया है। भामण्डल की सेना का एक हजार तथा सुग्रीव की सेना का एक हजार।

राम रावण का युद्ध प्रारम्भ हुआ। इसी बीच में वानर सेना के त्रस्त होने पर सुग्रीव लड़ने को उद्यत हुआ। जव तक सुग्रीव कवच पहन कर युद्ध करने को उठें तव तक हनुमान हाथियों से जुते रथ पर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगा उसे देख कर राक्षस इधर-उधर भागने लगे। माली नाम का राक्षस हनुमान से युद्ध करने आया और हनुमान के हाथ मारा गया। इसके पश्चात् उसका वज्रोदक के साथ युद्ध हुआ। पीछे हनुमान जव घिर गये तव वानरसेना ने युद्ध किया। राक्षस सेना नाश को प्राप्त हुई। कुम्भकरण ने युद्ध में निद्रा नामक विद्या का प्रयोग किया। उसके निवारणार्थ सुग्रीव ने प्रतिवोधिनी विद्या का प्रयोग किया। इसके पश्चात् इन्द्रजीत युद्ध में उतरा और उसने सवको घायल कर दिया। इससे युद्ध करने को सुग्रीव तथा भामण्डल युद्ध में उतरे। कुम्भकरण हनुमान को काँख में दाव कर आगे चला तव सुतारा के पुत्र अंगद ने छिपे छिपे जाकर कुम्भकरण का अधोवस्त्र खोल दिया (११६-११७) इससे हनुमान की उसके भुजपाश से मुक्ति हो गयी। लक्ष्मण ने गरुड़विद्या का प्रयोग करके इन्द्रजीत के नागपाश से सुग्रीव तथा भामण्डल को मुक्त किया। रावण द्वारा चलाई हुई शक्ति से लक्ष्मण को मूर्छा आ गयी तव राम ने रावण से युद्ध किया। भाई कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत तथा मेघनाद को शत्रु के पाश में बँधा हुआ सुन कर रावण को दुःख हुआ।

लक्ष्मण के हेतु राम विलाप करने लगे इस पर विद्याधरों ने विचार करना प्रारम्भ किया तथा चन्द्र प्रतिभ गन्दोदक की उत्पत्ति इन्होंने राम से बताई और विशल्या के स्नान के जल मँगाने की सलाह दी। हनुमान, अंगद और भामण्डल अयोध्या गये तथा भरत को इन्होंने सोते से जगाया। भरत के पूछने पर उन्होंने कहा कि 'द्रोण मेघ की पुत्री विशल्या का स्नानजल दिलवाइये।' भरत ने यह विचार किया कि द्रोण मेघ की पुत्री ही लंका जाय। द्रोण मेघ ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया तथा युद्ध के हेतु उद्यत हो गया तब कैकेई ने उसे समझाया। फिर द्रोण मेघ ने अपनी कन्या लक्ष्मण के हेतु दिया उसके साथ १००० से अधिक कुमारियों का उसने दान किया। सब युद्ध स्थल पर पहुँचीं। विशल्या ने लक्ष्मण की शक्ति का निवारण किया तब हनुमान ने उस शक्ति को पकड़ लिया। इस पर उस शक्ति ने कहा कि मैं अमोघ विजया नाम विद्या हूँ प्रज्ञप्ति की बहिन हूँ केवल विशल्या के वश में आती हूँ इत्यादि।' इस पर हनुमान ने उस शक्ति को छोड़ दिया। इसके उपरान्त विशल्या से लक्ष्मण का विवाह हुआ। अब रावण जिनेन्द्र के मंदिर में गया तथा वहाँ उसने बहुरूपिणी विद्या को सिद्ध किया। इसके पश्चात् रावण युद्ध के हेतु तैयार होकर लक्ष्मण के साथ युद्ध करने आया (पृ० ६०)। युद्ध में दोनों ने विविध अस्त्रों का प्रयोग किया। लक्ष्मण ने गरुड़ के रथ पर चढ़ कर युद्ध किया, इनके ध्वजा में भी गरुड़ का चिह्न बना हुआ था। रावण ने इन पर चक्र रत्न छोड़ा (पृ० ६५) जिसने (श्लोक ६०) लक्ष्मण तक पहुँच कर तीन प्रदक्षिणा किया (पृ० ६६)। तब लक्ष्मण ने उस चक्र रत्न को धारण करके रावण पर छोड़ा। रावण का वक्षस्थल चक्ररत्न द्वारा विदीर्ण हो गया। रावण की मृत्यु पर मंदोदरी इत्यादि स्त्रियाँ विलाप करने लगीं तथा युद्ध समाप्त हो गया (पृ० ७२)।

राम ने जब लंका में प्रवेश किया तो हनुमान को देख कर कोई स्त्री कह रही थी कि "देख-देख सखी इस ऊँचे सुन्दर रथ को जिसमें वायु को कम्पित करनेवाले हाथी जुते हुए हैं," कोई कह रही थी "कि जिनकी वानर चिह्नित ध्वजा रणांगन में शत्रुओं को अत्यन्त भय उत्पन्न करती है ऐसे ये पवनंजय के पुत्र हनुमान हैं (२२ श्लोक)"। इस प्रकार जिनकी पूजा हो रही थी तथा जो उत्तर प्रताप से युक्त थे ऐसे राम इत्यादि ने लंका के राजमार्ग में प्रवेश किया। इसके पश्चात् राम तथा सीता का मिलन हुआ तथा राम ने लंका में ६ वर्ष व्यतीत किये (पृ० १०१)। अयोध्या में जब राम सेना सहित पहुँचे तो वहाँ की स्त्रियाँ कहने लगीं कि 'देखो यह वानर चिह्नित पताका धारण करनेवाला पवनंजय का पुत्र श्रीशैल है।' अयोध्या से लौटने के पश्चात् हनुमान ने अपने १९ वर्ष पूर्व पुण्य के प्रभाव से कर्ण कुण्डल नगर में देवों के समान परम ऐश्वर्य का उपभोग किया (२० श्लोक)

तथा विद्याधरों के माहात्म्य से विभूषित उत्तमोत्तम क्रियाओं से युक्त हनुमान ने हजारों स्त्रियों का परिवार लिये इच्छानुसार पृथ्वी पर भ्रमण किया। उत्तम विमान पर आरूढ़ होकर उत्तम विभूतियों से युक्त श्रीहनुमान उत्तम वन इत्यादि प्रदेशों में देवों के समान क्रीड़ा करते रहे।

कुछ दिन पश्चात् वसन्त ऋतु के आगमन पर (श्लोक २३) हनुमान अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ मेरु पर्वत की ओर चले (२४)। मेरु पर्वत पर जिनेन्द्र के मंदिर का दर्शन किया तथा जिनेन्द्र का पूजन किया। कैलाश पर्वत पर बैठे बैठे हनुमान को ज्योतिर्बिम्ब का दर्शन हुआ तथा ज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके पश्चात् हनुमान ने संसार का त्याग कर दिया तथा वे धर्मरात्र मुनि के पास पहुँचे और उनसे उन्होंने दीक्षा ली। उन्हीं के साथ ७५० और विद्याधरों ने भी अपने पुत्रों को राज्य सौंप कर दीक्षा ले ली।

‘प्रवज्यामष्टवीराणाम् ज्ञात्वा वायुसुतस्य च। रामो जहास किं भोगो भुक्तस्तैः कातरैरिति।’

आठ कुमारों तथा हनुमान की दीक्षा का समाचार सुन कर रामचन्द्र जी ने कहा कि ‘अभी इन लोगों ने क्या भोग भोगा जो इतने शीघ्र उससे कातर होकर मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ने लगे।’

कविराज स्वयंभू देव प्रणीत पउम चरिउ[1] में हनुमान का जो चरित्र प्राप्त होता है वह बहुत कुछ पद्मपुराण से मिलता ही हुआ है परन्तु कुछ कहीं कहीं अन्तर है जैसे—

‘महेन्द्रनगर में सब कामनाओं से तृप्त राजा महेन्द्र रहता था उसकी स्त्री मनोवेग से अंजना नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। एक दिन यह बालिका गेंद खेल रही थी। राजा को उसके स्तन देखकर उसके विवाह की चिन्ता हुई। उसने विचार किया कि यदि मैं कैलाश पर्वत पर जिनेन्द्र की अर्चना को जाऊँ तो वहाँ अनेक विद्याधर मिलेंगे उनमें से कोई न कोई इस कन्या के अनुरूप पात्र होगा ही। इस प्रकार इसे वर मिल जायगा। वह यह सोच कर कैलाश गया। इसी बीच आदित्यपुर का राजा प्रह्लाद अपनी पत्नी केतुमति के साथ कैलाश पर्वत पर जिनेन्द्र की अर्चना के हेतु पहुँचा। उसके साथ उसके विमान, सेना, परिवार तथा उसका पुत्र पवनंजय थे। सर्वप्रथम विद्याधरों ने फाल्गुन मास में नन्देश्वर द्वीप के त्रिलोकी नाथ की पूजा की इसके पश्चात् राजाओं का आपस में परिचय हुआ। राजा प्रह्लाद ने हँसी-हँसी में राजा महेन्द्र से कहा कि ‘तुम्हारी लड़की है हमारा

---

[1] कविराज स्वयम्भू देव—पउम चरिउ—ख० १, अनुवादक—देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, नवम्बर १९५७।

लड़का है राजन् इनका विवाह क्यों नहीं कर देते।' राजा महेन्द्र ने वचन दे दिया तीसरे दिन विवाह निश्चित हुआ।

पवनंजय तीन दिन प्रतीक्षा न कर सका। उसे काम की अग्नि सताने लगी पूछने पर उसने अपने मित्र से कहा कि वह बिना अपनी प्रेयसी को देखे रह नहीं सकता। दोनों मित्र तपस्वी का वेष बनाकर झरोखे की जाली से अंजना को देखने लगे। झरोखे से देखने पर प्रहसित ने कहा कि जिसके हाथ यह सुन्दरी लगेगी उसका जीवन सुषमा से पूर्ण हो जायगा। इतने में अंजना की सखी वसन्तमाला ने कहा कि तुम्हारा जीवन धन्य है कि तुमने पवनंजय-सा पति प्राप्त किया है। इस पर दुष्ट-वेशा मिश्रकेशी ने कहा कि पवनंजय में कौन-सा गुण है। पवनंजय तथा विद्युत्प्रभा मेंवैसा ही अन्तर है जैसा समुद्र और गोपद में, सूर्य और जुगनू में इत्यादि। यह सब सुन कर पवनंजय ने तलवार खींच ली और क्रोध से लाल हो गया। उसने कहा कि क्या इन बाहरी औरतों के द्वारा शत्रु रक्षित रखा जा सकता है मैं अभी इन दोनों का सिर उड़ाये देता हूँ। तब पवनंजय के मित्र प्रहस्ति ने उसे बहुत सी कड़ी कड़ी बातें कह कर पकड़ लिया। प्रातः काल होते ही वह वहाँ से चलने को उद्यत हो गया परन्तु मित्र राजाओं ने उसे हाथ पैर जोड़ कर रोक लिया। इस पर उसने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि एक बार पाणिग्रहण करके १२ वर्ष तक के लिये वह अंजना को छोड़ देगा।

कुमार ने अपने निश्चय के अनुसार विवाह करके अंजना को १२ वर्ष के लिये छोड़ दिया। अंजना बड़ी दुखित हुई और घुलने लगी यहाँ तक कि उसकी अस्थि मात्र रह गयी। इसी बीच रावण ने अपने दुर्मुख नाम के दूत को प्रह्लाद के पास भेजा और अपने साथ युद्ध में चलने को आमन्त्रित किया। रावण के बहनोई खर-दूषण को वरुण के पुत्र राजीव तथा पुंडरीक ने पकड़ लिया था। पवनंजय ने अपने पिता से आज्ञा प्राप्त करके प्रस्थान करना चाहा तो अंजना मंगलकलश लेकर उपस्थित हुई परन्तु इसने उसे झिड़क दिया। अपने नगर से चलकर उसने मानसरोवर पर अपना डेरा डाला। सन्ध्या समय उसने देखा कि चकई अपने पति के विरह में पंख फड़फड़ा रही है और विरह से पीड़ित होकर चिल्ला रही है। इसकी वेदना को देख कर उसके हृदय में अंजना के हेतु दया का भाव जाग्रत हो गया। उसने अपने मनोभावों को प्रहसित कर प्रकट किया। इसके पश्चात् दोनों आकाश मार्ग से अपने नगर को चले। वहाँ से वह अपने भवन में पहुँचा और वहाँ उसने अंजना से रमण किया।

रात के अंतिम प्रहर में प्रवास पर जाते हुए पवनंजय ने कहा कि 'हे मृगनयनी जो मैंने भ्रम से तुझे ठुकराया उसके लिये मुझे क्षमा कर दो।' अंजना ने कहा कि

'मैंने आज ही रजस्वला होने के पश्चात् स्नान किया है यदि गर्भ रह गया तो मैं क्या कहूँगी।' इस पर पहिचान के हेतु कुमार ने अपना कंगन उतार कर उसे दे दिया फिर अपने खेमे में मानसरोवर पर चला गया। कुछ दिन पश्चात् बहू का भारी पेट देख कर उसकी सास केतुमति ने पूछा कि 'यह तूने कौन-सा पाप किया है। महेन्द्र कुल को कलंकित कर दिया, दुर्धर्ष शत्रुओं को नाश करनेवाले मेरे पुत्र का मुँह काला कर दिया।' बसन्त माला ने कहा कि 'सपने में भी इसने कोई कलंक का काम नहीं किया है। कुमार पवनंजय का यह कंगन परिधान और स्वर्णमाला है परीक्षा करा लो और बात साफ कर लो।'

इस पर केतुमति उठी और उसने दोनों को कोड़े से पीटा तथा कहा "क्या यार के घर में सोना नहीं होता ? क्या वह गढ़वाकर इसे नहीं पहिना सकता ?" इस प्रकार के कड़ुवे शब्दों से उन दोनों को बहुत अपमानित किया फिर भट को बुलाकर यह आज्ञा दी कि 'इन दोनों को रथ पर बैठा कर महेन्द्र नगर से दूर छोड़ आओ'(१०)। भट ने अपनी स्वामिनी की आज्ञा मान कर उन दोनों को नगर से बहुत दूर वन में ले जाकर रोती हुई अंजना तथा उसकी सखी को छोड़ दिया।

बड़े कष्ट से उस रात को बिताकर दूसरे दिन सूर्योदय के समय अंजना अपने पिता के नगर में पहुँची।

राजा ने पहिले आज्ञा दी कि नगर को सजाया जाय और अंजना का स्वागत किया जाय परन्तु यह जानने पर कि वह गर्भवती है यह आज्ञा दी कि उसे नगर से निकाल दिया जाय। मंत्री ने यह सलाह दी कि 'बिना परीक्षा किये कुछ नहीं करना चाहिये। सासें बहुत बुरा कर डालती हैं। वे महासती को भी दोष लगा देती हैं। बहुओं के लिये सासें वैसी ही शत्रु होती हैं जैसे सुकवि की कथा के लिये दुर्जन की बुद्धि या कमल के लिये हिम। अनादि काल से यह बात चली आती है। इनका एक दूसरे से वैर होना स्वाभाविक है।' राजा ने मंत्री से पूछा कि 'अंजना तो घर पर थी और उसका पति युद्धक्षेत्र में यह गर्भ कहां से आया ?' यह सुन कर किसी एक आदमी ने अंजना को धक्का देकर बाहर निकाल दिया। अंजना वन में जाकर रोने लगी और अपनी सखी बसन्तमाला से कहने लगी "सास ने मुझे निकाल ही दिया, माता और पिता भी मुझे नहीं रख सके।" इस प्रकार रुदन करती हुई वे दोनों वन की पर्यंक गुफा में पहुँच गयीं। वहाँ अंजना तथा उसकी सखी की अमृतगति नामक महामुनि से भेंट हुई। उनसे अंजना ने इस दुःख का कारण पूछा इस पर महामुनि ने कहा कि यह दुःख इस गर्भ के दोष से नहीं प्राप्त हुआ है। यह पुत्र रण विजयी चरम शरीर वाला होगा। पिछले जन्म में तुमने सौत की डाह से अपने हाथ से जिन प्रतिमा को आँगन में छिपा दिया था उसी से तुम्हें दुःख भोगना

पड़ रहा है। अब सुख भी पाओगी। यह कहकर वे महामुनि वहाँ से चल दिये। उनके जाने के थोड़ी देर पश्चात् उस वन में एक सिंह प्रकट हुआ उसे देख कर अंजना संज्ञाहीन हो गई। उसकी सखी वसन्तमाला ने आकाश में जाकर चिल्लाना प्रारम्भ किया। रत्नचूड़ से मणिचूड़ नामक यक्ष ने आकर अष्टापद पशु का रूप धारण करके सिंह को विमुख कर दिया। अंजना की सखी आकाश से उतर आयी और उसने अंजना को सम्हाला।

ये आपस में बातें कर रही थीं कि इन्होंने किसी को गाते सुना। चैत्र कृष्ण अष्टमी को श्रवण नक्षत्र में रात के अंतिम प्रहर में अंजना को पुत्र हुआ। इस पुत्र के हाथ में और पैर में हल, कमल, वज्र, मछली आदि के शुभ चिह्न थे। चक्र, अंकुश, कूर्म, शंख चिह्नों से युक्त यह बालक अत्यन्त सुलक्षण था। एक दिन शत्रु सेना को नाश करनेवाले प्रतिसूर्य आकाश मार्ग से जा रहे थे। एक स्त्री का क्रन्दन उनके कानों में पड़ा। उधर देखने पर उन्हें सूर्य के समान तेजस्वी यह बालक दिखाई दिया। विमान से उतरकर उन्होंने पूछा कि "यह किसकी पुत्री है तथा यह किस कुल का बालक है, कौन-सा दुःख पड़ा है कि यह स्त्री रो रही है।"

वसन्तमाला ने सारा वृत्तान्त सुनाया। उसने राजा से कहा कि मनोवेग से उत्पन्न यह राजा महेन्द्र की पुत्री है, प्रसन्नकीर्ति की बहन है तथा पवनंजय की स्त्री है। यह सुन कर प्रतिसूर्य ने कहा कि 'मैं राजा महेन्द्र का साला हूँ प्रसन्नकीर्ति मेरा भांजा है हनुरुह द्वीप का राजा मैं तुम्हारा मामा हूँ।' इस पर अंजना फूट फूट कर रोने लगी। प्रतिसूर्य ने उसे अपने वक्षस्थल से जकड़ लिया।

प्रतिसूर्य बड़ी कठिनाई से उसे समझा कर अपने विमान पर बैठा कर ले चला। आकाश मार्ग से जाने के हेतु उद्यत विमान पर चढ़ते समय अंजना के हाथ से उसका बालक छूट कर गिर पड़ा मानो लक्ष्मी का गर्भ गिर पड़ा हो। हनुमान तुरन्त धरती पर गिरा मानो बिजलियों का पुंज शिला पर गिरा हो। विद्याधरों ने उसे वैसे ही उठा लिया जैसे देवगण उत्पन्न होने के समय उठा लेते हैं। किसी ने ले जाकर उसे अंजना की गोद में दे दिया है, वह बहुत प्रसन्न हुई। इसने गिर करके शैल की चट्टान को चूर कर दिया था। प्रतिसूर्य ने अपने नगर में पहुँच कर इसका जन्मोत्सव मनाया। हनुरुह द्वीप में वह पाला पोसा गया इस कारण उसका नाम हनुमान रख दिया गया।

उधर पवनंजय खर और दूषण को मुक्त कराके तथा वरुण और रावण की संधि कराकर जब अपने नगर में वापस आया तो उसे अंजना न मिली। इस पर उसने पूछताछ की तब एक स्त्री द्वारा उसे पता लगा कि केतुमति ने पर-पुरुष का गर्भ समझ कर अंजना को वन में छोड़वा दिया। यह सुन कर समीरणु अपने

वय के मित्रों के साथ उस स्थान पर गया जहाँ अंजना को छोड़ा गया था। जब उसे अंजना वहाँ नहीं मिली तो उसने अपने मित्र प्रहसित से अपनी माता को कहला दिया कि तुम्हारा पवन रूपी पेड़ विरह की आग में जल कर राख हो गया। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो गया।

वन में पवनंजय सबसे पूछता हुआ चला। अन्त में जब वह थक गया तो उसने अपने साथी कालमेघ से क्षमा माँगते हुए कहा कि "यदि मुझे अपनी स्त्री मिल गयी तो मैं निवृत्ति मार्ग को नहीं अपनाऊँगा। कदाचित् यह सम्भव न हुआ तो मैं संन्यासी हो जाऊँगा।" उसने मौन धारण कर लिया और ध्यानमग्न हो गया। कालमेघ उसकी रक्षा करता रहा।

प्रहसित से संदेश पाने पर पवनंजय की माँ रो रोकर जान देने लगी। राजा प्रह्लाद ने विद्याधरों के पास पुत्र की खोज कराने को दूत भेजे। एक दूत पाताल लंका के खरदूषण के पास, एक दूत रावण के पास, एक दूत सुग्रीव के पास, एक वानरों के प्रधान किष्कपुर के राजा नल और नील के पास, एक त्रिकलिंग के राजा महेन्द्र के पास, एक धवलित निर्मल कुल अंजना के मामा प्रतिसूर्य के पास। अंजना ने जब यह समाचार सुना तो वह मूर्छित हो गयी। उसके मामा ने उसे धीरज बँधाया।

प्रतिसूर्य, प्रह्लाद राजा के साथ तत्परता से पवनंजय की खोज करने लगा। मार्ग भूलकर वे भूतरवा नाम के अटवी में पहुँच गये, वहाँ उन्हें कालमेघ दिखाई दिया। वहीं खोजने पर उन्हें पवनंजय भी मिल गया। उसने पृथ्वी पर लिख रखा था कि अंजना के मरने पर मैं भी मरूँगा। जब उसके जीवित रहने की बात सुन लूँगा तभी बोलूँगा। इस पर प्रतिसूर्य ने पवनंजय को सभी वृत्तान्त कह सुनाया।

अंजना का समाचार पाकर पवनंजय उठ बैठा। राजा प्रतिसूर्य उसे अपने नगर में ले गया। वहाँ वह रह कर अंजना तथा अपने पुत्र के साथ सुख भोग करने लगा।

यहीं श्रेष्ठ हनुमान जब युवावस्था में पहुँचा उसी समय रावण ने पुनः वरुण पर चढ़ाई कर दी। रावण ने अपनी सहायता के हेतु विद्याधरों के पास दूत भेजे, हनुमान ने अनुनय विनय करके लड़ाई में जाने की आज्ञा ले ली। रावण ने जब हनुमान को आते देखा तो उसे ऐसा लगा कि जलता सूर्य ही आ रहा है। हनूमान ने दूर से ही रावण को नमस्कार किया। उसने भी हनुमान का आलिंगन किया और कहा कि पवनंजय धन्य है जिसने तुम सरीखे पुत्र को जन्म दिया जैसे ऋषभ ने भरत को। रावण ने उसे कंगन और करधनी से अलंकृत किया। वरुण पर चढ़ाई हुई। कहीं शम्बुक खरदूषण ठहरे हुए थे, कहीं हनुमान, कहीं नल और नील,

कहीं कुमुद, अंग और अंगद। दूत ने जाकर वरुण से कहा कि वह रावण की अधीनता स्वीकार कर ले जिसने धनद को कुचल दिया, त्रिजग भूषण हाथी को कुचल दिया, जिसने अष्टापद (कैलाश) पर्वत को उठाया, माहेश्वरपति सहस्रार को पछाड़ा, जिसने नल कूबर तथा चन्द्र और सूर्य, कुवेर और इन्द्र को भी निरस्त्र कर दिया उसके साथ युद्ध कैसा ।

वरुण ने हाथी पर पद्मासन में वैठ कर हाथ में दारुण नागपाश ले लिया तथा लड़ाई प्रारम्भ हुई।

रावण के अनुचरों ने वरुण को घेर लिया उधर रावण वरुण के पुत्रों से युद्ध कर रहा था और घिर गया था। हनुमान ने शत्रुओं को खदेड़ कर रावण को उसी प्रकार मुक्त कर दिया जैसे पवन मेघों से घिरे सूर्य को मुक्त करता हैं।

हनुमान अपनी मायामयी पूँछ के अस्त्र से समस्त सेना को घेर कर पकड़नेवाला ही था कि वरुण ने वहाँ पहुँच कर कहा कि 'अरे खल क्षुद्रपापात्मा दानर रुक ! कहाँ जाता हैं, पशु हैं कि मनुष्य। हनुमान भड़क उठा तब एक ने मायामयी पूँछ से और दूसरे ने पाश से लड़ाई प्रारम्भ की। तव तक रावण अपना रथ आगे वढ़ा कर सामने आ गया और वरुण से वोला कि 'अरे हताश मानव ठहर मैं वही तेरे साथ करूँगा जो मैंने दूसरों के साथ किया हैं।' यह सुन कर जलकान्त समुद्र के पिता वरुण ने कहा कि दूसरे वीरों ने तुझे अहंकार पर चढ़ा दिया हैं। मैं वरुण हूँ तुझे अभी फल चखाता हूँ इसी वीच में हनुमान ने वरुण के पुत्रों को अपनी लम्वी पूँछ में वाँध लिया। अपने पुत्रों को इस प्रकार वँधे हुए देख कर वरुण के हाथ में अस्त्र ही नहीं आ रहे थे। तव रावण ने आकाश में उछल कर वरुण को पकड़ लिया। कुम्भकर्ण इतने में वरुण की अन्तःपुर की अलंकृत स्त्रियों को पकड़ लाया। इन्हें देख कर रावण ने कुम्भकर्ण की निन्दा की। इस पर कुम्भकर्ण ने उन्हें मुक्त कर दिया। रावण ने वरुण को सान्त्वना दी। राजा वरुण ने अपनी लड़की सतावती का रावण के साथ विवाह कर दिया।

रावण ने हनुमान का सत्कार किया। सुग्रीव ने अपनी पंकजरागा लड़की उसको दी और खर ने व्रत पालनेवाली अनंगकुसमा तथा नल और नील ने भी हनुमान को माला नामक अपनी पुत्री प्रदान की। इस प्रकार हनुमान ने १८ हजार कुमारियों से विवाह करके अपने नगर में प्रवेश किया। शम्बुक कुमार सूर्यहास खंग सिद्ध करने के लिये वन में चल दिये। सुग्रीव और अंगद भी अपने नगर को चले गये। इत्यादि।

अंजना पवनंजय नाटक में भी जो हस्तिमल्ल प्रणीत हैं[1] हनुमान का चरित्र मिलता है। हस्तिमल्ल के लिखे हुए चार नाटकों का पता चला है--१. अंजना-पवनंजय, २. सुभद्रा, ३. मैथली कल्याण, ४. विक्रान्त कौरव। ये गोविन्द भट्ट के पुत्र थे। उनके छः पुत्रों में से ये पाँचवें पुत्र थे। हस्तिमल्ल नाम उनका इस कारण पड़ा था कि उनको एक हाथी से युद्ध करना पड़ा था। यह हाथी सरन्यपुर के पाण्ड्य राजा ने इन को मारने के हेतु छोड़वाया था। ये बच गये।[2] इनका काल ईसा की १०वीं शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक माना जाता है।

इस नाटक का कथानक अंजना के स्वयंवर से प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार अंजना ने पवनंजय को स्वयंवर के पूर्व एक बार देखा है। पवनंजय अंजना को देखने को उसके उद्यान में जाता है वहाँ अंजना की सखियों ने एक नाटक रचा रखा था। उसमें बसन्तमाला पवनंजय बनी, अंजना के गले में जयमाला पहिनाती है। पवनंजय प्रकट होकर अंजना का हाथ पकड़ लेता है। दूसरे अंक में अंजना का स्वयंवर हो जाता है और विवाह के पश्चात् अंजना प्रह्लाद की राजधानी आदित्यपुर में पहुँचती है। रावण के निमंत्रण पर पवनंजय के पिता प्रह्लाद युद्ध में जाने को उद्यत होते हैं। पवनंजय अपने पिता की अनुमति प्राप्त करके स्वयं जाता है। यहाँ वरुण का स्थान पश्चिम के समुद्र पातालपुर में स्थित बताया गया है। तीसरे अंक में कवि ने यह दिखाया है कि पवनंजय वरुण के साथ धीरे धीरे युद्ध करता है जिसमें वह मरे नहीं। कुमुदतीर्थ में वह चकई को विरहाग्नि में जलते हुए देख कर अपनी प्रिया को देखने को आदित्यपुर चला जाता है। रात्रि में अंजना के पास रह कर प्रातः वह युद्धक्षेत्र में आ जाता है। चतुर्थ अंक में कवि दिखाता है कि चार मास बीतने के पश्चात् अंजना में गर्भ के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। केतुमति इसकी यह दशा देखकर क्रूर विद्याधर भैरव को आज्ञा देती है कि अंजना को वह उसके पिता के घर ले जाय। पाँचवें अंक में यह दिखाया गया है कि पवनंजय वरुण को हरा कर लौटता है तो मार्ग में ही उसे यह पता लगता है कि अंजना गर्भवती होने पर अपने पिता के घर गई है। पवनंजय प्रथम महेन्द्रपुर जाने का निश्चय करके अपने विदूषक के साथ उस ओर चल पड़ता है। मार्ग में एक वनचर द्वारा उसे सूचना मिलती है कि अंजना अपने पिता के घर जाने

---

[1] हस्तिमल्ल--पवनंजयम् नाटकम्--सम्पादक--एम० वी० पटवर्धन, माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, मुम्बापुरी ४, विक्रम सम्वत् २००६।

[2] उपरोक्त पृष्ठ १४।

से इन्कार कर मातंग मालिनी वन में रहना निश्चय करके वहाँ चली गई है। पवनंजय अपने मित्र विदूषक को विद्याधरों को लाने को भेजता है जिसमें वे अंजना की खोज कर सकें। छठवें अंक में यक्ष तथा उसकी स्त्री रत्नाचूड़ की वार्ता उपस्थित की जाती है जिससे पवनंजय को यह पता चलता है कि अंजना एक भयंकर आपत्ति से बच गयी और उसने एक बालक को जन्म दिया है। इसके पश्चात् प्रतिसूर्य नामक विद्याधर को पवनंजय एक कुंज में पागलों की अवस्था में प्राप्त होता है। प्रतिसूर्य को यह भान होता है कि अंजना ही अब उसके पागलपन का निवारण कर सकती है। वह घर लौट जाता है और अंजना तथा वसन्तमाला को पवनंजय के पास भेजता है। अंजना दौड़कर पवनंजय को आलिंगन करती है और पवनंजय अपनी पुरानी स्थिति में आ जाता है। प्रतिसूर्य पुनः उस स्थान पर पहुँच कर पवनंजय को बताता है कि वह अंजना का मामा है। सातवें अंक में नाटककार पवनंजय के युवराज बनाये जाने का दृश्य उपस्थित करता है। हनुमान को प्रतिसूर्य ले आता है तथा हनुमान के जन्म की पूरी कथा नाटक के रूप में पवनंजय के सम्मुख उपस्थित की जाती है, किस प्रकार सिंह आया और किस प्रकार उसको यक्षराज ने मारा, किस प्रकार हनुमान का जन्म हुआ और किस प्रकार प्रतिसूर्य माता-पुत्र को हनुरूह द्वीप में ले गया।[1] इसके पश्चात् यक्षराज उपस्थित होकर पवनंजय तथा हनुमान को आशीर्वाद देते हैं।

इस नाटक का कथानक विमलसूरि के (ईसा की दूसरी शताब्दी) पउम चरियं के १५ से १८ अध्याय में वर्णित कथा तथा रविषेण के (ईसा की ८वीं शताब्दी) पद्मपुराण की कथा पर आधारित है। इन दोनों ग्रंथों में वर्णित कथा प्रायः समान ही है। इस नाटक के कथानक तथा इन ग्रंथों की कथा में इतना ही अंतर है कि (१) इन दोनों ग्रंथों में पवनंजय को पवनगति, पवनवेग, वायुगति, वायुवेग, वायुकुमार, समीरणु कहा है तथा अंजना को अंजना सुन्दरी भी कहा है। इस नाटक में पवनंजय को पवनंजय ही कहा है और अंजना को अंजना। (२) राजा महेन्द्र की स्त्री को जो अंजना की माता थी हृदयवेगा तथा हृदयसुन्दरी उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में कहा गया है। इस नाटक में उसे मनोवेगा कहा है। (३) उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में राजा महेन्द्र के १०० पुत्रों का वर्णन मिलता है परन्तु इस नाटक में केवल दो पुत्रों अरिंदम तथा प्रसन्नकीर्ति का। ४. उपरोक्त दोनों ग्रंथों में स्वयंवर का कोई विवरण नहीं है। अपने मंत्रियों से परामर्श करके राजा महेन्द्र अपनी कन्या प्रह्लाद के पुत्र को देना निश्चित करता है। विवाह के तीन दिन पूर्व पवनंजय को यह संदेह हो जाता है कि अंजना विद्युत्प्रभ से विवाह करना चाहती है और उसे वह मारने को उद्यत हो जाता है परन्तु प्रहसित के समझाने पर मान जाता है।

अंजना पवनंजय नाटक में भी जो हस्तिमल्ल प्रणीत हैं[1] हनुमान का चरित्र मिलता है। हस्तिमल्ल के लिखे हुए चार नाटकों का पता चला है—१. अंजना-पवनंजय, २. सुभद्रा, ३. मैथली कल्याण, ४. विक्रान्त कौरव। ये गोविन्द भट्ट के पुत्र थे। उनके छः पुत्रों में से ये पाँचवें पुत्र थे। हस्तिमल्ल नाम उनका इस कारण पड़ा था कि उनको एक हाथी से युद्ध करना पड़ा था। यह हाथी सरन्यपुर के पाण्ड्य राजा ने इन को मारने के हेतु छोड़वाया था। ये वच गये।[2] इनका काल ईसा की १०वीं शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक माना जाता है।

इस नाटक का कथानक अंजना के स्वयंवर से प्रारम्भ होता है। इसके अनुसार अंजना ने पवनंजय को स्वयंवर के पूर्व एक बार देखा है। पवनंजय अंजना को देखने को उसके उद्यान में जाता है वहाँ अंजना की सखियों ने एक नाटक रचा रखा था। उसमें वसन्तमाला पवनंजय बनी, अंजना के गले में जयमाला पहिनाती है। पवनंजय प्रकट होकर अंजना का हाथ पकड़ लेता है। दूसरे अंक में अंजना का स्वयंवर हो जाता है और विवाह के पश्चात् अंजना प्रह्लाद की राजधानी आदित्यपुर में पहुँचती है। रावण के निमंत्रण पर पवनंजय के पिता प्रह्लाद युद्ध में जाने को उद्यत होते हैं। पवनंजय अपने पिता की अनुमति प्राप्त करके स्वयं जाता है। यहाँ वरुण का स्थान पश्चिम के समुद्र पातालपुर में स्थित वताया गया है। तीसरे अंक में कवि ने यह दिखाया है कि पवनंजय वरुण के साथ धीरे धीरे युद्ध करता है जिसमें वह मरे नहीं। कुमुदतीर्थ में वह चकई को विरहाग्नि में जलते हुए देख कर अपनी प्रिया को देखने को आदित्यपुर चला जाता है। रात्रि में अंजना के पास रह कर प्रातः वह युद्धक्षेत्र में आ जाता है। चतुर्थ अंक में कवि दिखाता है कि चार मास वीतने के पश्चात् अंजना में गर्भ के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। केतुमति इसकी यह दशा देखकर क्रूर विद्याधर भैरव को आज्ञा देती है कि अंजना को वह उसके पिता के घर ले जाय। पाँचवें अंक में यह दिखाया गया है कि पवनंजय वरुण को हरा कर लौटता है तो मार्ग में ही उसे यह पता लगता है कि अंजना गर्भवती होने पर अपने पिता के घर गई है। पवनंजय प्रथम महेन्द्रपुर जाने का निश्चय करके अपने विदूषक के साथ उस ओर चल पड़ता है। मार्ग में एक वनचर द्वारा उसे सूचना मिलती है कि अंजना अपने पिता के घर जाने

---

[1] हस्तिमल्ल—पवनंजयम् नाटकम्—सम्पादक—एम० वी० पटवर्धन, माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, मुम्बापुरी ४, विक्रम सम्वत् २००६।

[2] उपरोक्त पृष्ठ १४।

से इन्कार कर मातंग मालिनी वन में रहना निश्चय करके वहाँ चली गई है। पवनंजय अपने मित्र विदूषक को विद्याधरों को लाने को भेजता है जिसमें वे अंजना की खोज कर सकें। छठवें अंक में यक्ष तथा उसकी स्त्री रत्नाचूड़ की वार्ता उपस्थित की जाती है जिससे पवनंजय को यह पता चलता है कि अंजना एक भयंकर आपत्ति से बच गयी और उसने एक बालक को जन्म दिया है। इसके पश्चात् प्रतिसूर्य नामक विद्याधर को पवनंजय एक कुंज में पागलों की अवस्था में प्राप्त होता है। प्रतिसूर्य को यह भान होता है कि अंजना ही अब उसके पागलपन का निवारण कर सकती है। वह घर लौट जाता है और अंजना तथा वसन्तमाला को पवनंजय के पास भेजता है। अंजना दौड़कर पवनंजय को आलिंगन करती है और पवनंजय अपनी पुरानी स्थिति में आ जाता है। प्रतिसूर्य पुनः उस स्थान पर पहुँच कर पवनंजय को बताता है कि वह अंजना का मामा है। सातवें अंक में नाटककार पवनंजय के युवराज बनाये जाने का दृश्य उपस्थित करता है। हनुमान को प्रतिसूर्य ले आता है तथा हनुमान के जन्म की पूरी कथा नाटक के रूप में पवनंजय के सम्मुख उपस्थित की जाती है, किस प्रकार सिंह आया और किस प्रकार उसको यक्षराज ने मारा, किस प्रकार हनुमान का जन्म हुआ और किस प्रकार प्रतिसूर्य माता-पुत्र को हनुरुह द्वीप में ले गया।[1] इसके पश्चात् यक्षराज उपस्थित होकर पवनंजय तथा हनुमान को आशीर्वाद देते हैं।

इस नाटक का कथानक विमलसूरि के (ईसा की दूसरी शताब्दी) पउम चरियं के १५ से १८ अध्याय में वर्णित कथा तथा रविषेण के (ईसा की ८वीं शताब्दी) पद्मपुराण की कथा पर आधारित है। इन दोनों ग्रंथों में वर्णित कथा प्रायः समान ही है। इस नाटक के कथानक तथा इन ग्रंथों की कथा में इतना ही अंतर है कि (१) इन दोनों ग्रंथों में पवनंजय को पवनगति, पवनवेग, वायुगति, वायुवेग, वायुकुमार, समीरणु कहा है तथा अंजना को अंजना सुन्दरी भी कहा है। इस नाटक में पवनंजय को पवनंजय ही कहा है और अंजना को अंजना। (२) राजा महेन्द्र की स्त्री को जो अंजना की माता थी हृदयवेगा तथा हृदयसुन्दरी उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में कहा गया है। इस नाटक में उसे मनोवेगा कहा है। (३) उपर्युक्त दोनों ग्रंथों में राजा महेन्द्र के १०० पुत्रों का वर्णन मिलता है परन्तु इस नाटक में केवल दो पुत्रों अरिंदम तथा प्रसन्नकीर्ति का। ४. उपरोक्त दोनों ग्रंथों में स्वयंवर का कोई विवरण नहीं है। अपने मंत्रियों से परामर्श करके राजा महेन्द्र अपनी कन्या प्रह्लाद के पुत्र को देना निश्चित करता है। विवाह के तीन दिन पूर्व पवनंजय को यह संदेह हो जाता है कि अंजना विद्युत्प्रभ से विवाह करना चाहती है और उसे वह मारने को उद्यत हो जाता है परन्तु प्रहसित के समझाने पर मान जाता है।

अपने पिता के निर्देश पर विवाह तो कर लेता है परन्तु उसे त्याग देता है। उसका यह व्यवहार मानसरोवर पर चकई के विरह को देख कर बदल जाता है तथा वह पद्मपुराण के अनुसार अपनी प्रिया के साथ कई दिन व्यतीत करता है परन्तु इस नाटक में पउम चरिय की भाँति केवल एक रात बिताता है। (५) पद्मपुराण के अनुसार वह अंजना को एक कंगन देता है, पउम चरिय के अनुसार नामांकित कंगन; इस नाटक में इसका कोई विवरण ही नहीं है। (६) केतुमति को जब अंजना के गर्भ का पता लगता है तो पद्मपुराण के अनुसार वह क्रोध से विह्वल हो उठती है क्योंकि उसे यह ज्ञात था कि पवनंजय अपनी पत्नी से घृणा करता है। उसे अंजना और उसकी सखी के कहने पर विश्वास नहीं होता कि गर्भ पवनंजय का है और अंजना को राजा महेन्द्र के पास भेज देती है। पउमचरिय के अनुसार उन दोनों को केतुमति कोड़े से पीटती है और आज्ञा देती है कि महेन्द्र के नगर से थोड़ी दूर पर छोड़ आया जाय। इस नाटक में उनके पीटे जाने इत्यादि की कथा नहीं आती। (७) पद्मपुराण में यह विवरण है कि राजा महेन्द्र उसको अपने महल में इस कारण रखने को तैयार नहीं होता कि अंजना के पातिव्रत में उसे सन्देह है। इसका पता नहीं लगता कि पवनंजय के उस कंगन का क्या हुआ? इस नाटक में अंजना अपने पिता के नगर में जाने को उद्यत ही नहीं होती। (८) पउमचरिय के अनुसार अंजना को उसके पूर्व जन्म की कथा वन की गुफा में एक मुनि के द्वारा ज्ञात होती है। यहाँ उस प्रकार का कोई विवरण नहीं है। (९) हनुमान का नाम श्रीशैल पद्मपुराण के अनुसार इस कारण पड़ा कि उसने अपनी माता की गोद से गिर कर शिला को चूर्ण कर दिया था और हनुमान इस कारण कि उसका लालन-पालन हनुरूह द्वीप में हुआ था। यहाँ हनुरूह द्वीप के स्थान पर अनुरुह द्वीप मिलता है। (१०) इस नाटक में युद्ध के अन्त में पवनंजय सीधे महेन्द्र नगर की ओर प्रस्थान करता है और मार्ग में उसे एक वनचर द्वारा अंजना के वन प्रवेश का विवरण मिलता है, इसके विपरीत पद्मपुराण के अनुसार पवनंजय को अपने नगर पहुँचने पर अंजना के विषय की सूचना प्राप्त होती है। (११) पद्मपुराण के अनुसार केतुमति अपने कर्म पर पश्चात्ताप करती है और पवनंजय को खोजने को विद्याधरों को भेजती है। इस नाटक के अनुसार पवनंजय स्वयं विद्याधरों को बुलवाता है। (१२) इस नाटक में पवनंजय विक्षिप्त अवस्था में प्रतिसूर्य को प्राप्त होता है और वह अंजना को उसके पास भेजता है। पद्मपुराण के अनुसार उसने मौन व्रत धारण कर लिया है और संकेत से अपना निश्चय बताता है। पउमचरिय के अनुसार उसने लिख कर अपना निश्चय रख दिया है जिसे प्रतिसूर्य पढ़ कर उसे सब विवरण बताता है और उसे हनुरुह द्वीप ले जाता है, इत्यादि। इन भेदों को छोड़ कर इस

नाटक का कथानक प्रायः उपरोक्त पउमचरियं तथा पद्मपुराण से मिलता-जुलता है।[1]

गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के ६८वें पर्व में, जो प्रायः ८९७ ई० का ग्रन्थ है, राम-कथा प्राप्त होती है। इसी कथा में हनुमान का चरित्र भी मिलता है।[2] इसमें यह वर्णन है कि जब राम, सीता के हरण से शोकाकुल हैं तो उसी समय द्वारपाल आकर निवेदन करते हैं कि 'दो विद्याधर आये हैं।' ये जब राम के समक्ष आते हैं तो उन्हीं में से एक जो सुग्रीव है निवेदन करता है कि कैसे उसके बड़े भाई बाली ने उसको देश से निकाल दिया है। अपने साथी का परिचय इस प्रकार वह देता है।[3] जिससे यहाँ इनके जन्म तथा बालकाल का विवरण प्राप्त होता है।

लंका में सीता को न पाकर ये भ्रमर का रूप धारण करके लंका नगर में प्रवेश करते हैं[4]—

दूतो रामस्य गत्वान्तःपुरंपश्चिमगोपुरम्।
आरुह्य लोकमानोऽयं भ्रमरारावराजितम्।
वनं सर्वर्तुकं नाम नन्दनं नन्दनोपमम्।
फलप्रसवभारावनम्रयुक् भ्रमहीरुहैः।

इस प्रकार उस वन में पापी रावण द्वारा संतप्त सीता को देख कर अणुमान (हनुमान्)[5] शोक से संतप्त हो जाते हैं परन्तु अपने विवेक से क्रोध दूर करके क्षमा का भाव धारण कर लेते हैं और अपने संदेश को देने का अवसर देखने लगते हैं। इसी समय रावण वहाँ आता है तथा विविध भाँति से सीता को समझाने तथा डर दिखाने लगता है। जब वह क्रोध में भर कर सीता को मारने को उद्यत होता है तो मंदोदरी उसे समझाती है[6]। रावण तथा मंदोदरी के वहाँ से जाने के पश्चात् अणुमान (हनुमान) प्लवंग नामक विद्या के द्वारा अपना रूप बन्दरों के ऐसा बना लेते हैं तथा वन की रक्षा करनेवालों को निद्रा के वशीभूत करा कर स्वयं सीता को सन्देश देने लगते हैं।[7]

---

[1] उपर्युक्त पृ० ३२। [2] गुणभद्रकृत उत्तरपुराण—प्रास्ताविक पृ० २।

[3] उपर्युक्त पृ० २९७। [4] उपर्युक्त २७५ श्लोक से २९६ तक।

[5] इस शब्द की व्याख्या पहले की गयी है।

[6] उपर्युक्त पृष्ठ ३००-३०२। इस पुराण के अनुसार सीता रावण की पुत्री थी जिसे ज्योतिषियों के कहने पर मंदोदरी ने एक मंजूषा में रख कर मारीच द्वारा जनक के राज्य में रखवा दिया था—पृ० २७९।

[7] उपर्युक्त पृ० ३०३।

राम की स्वनामांकित मुद्रिका और संदेश पाने से प्रसन्न सीता कहती हैं कि

जीविताहं त्वया स्थानमधितिष्ठतु मे पितुः।
इत्युक्ता सीतया कर्णौ पिवाय पवनात्मजः।

इसके पश्चात् वह कहते हैं कि 'मैं अभी आपको ले जाने में समर्थ हूँ परन्तु भट्टारक राम की आज्ञा नहीं मिली है, वे रावण को मार कर आपको रावण की 'श्री' के साथ ले जायँगे।' यहाँ हनुमानजी राम का एक पत्र मंजूषा सहित सीता को देते हैं। यह भी कहते हैं कि 'हे भगवति आप आहार ग्रहण करें।' इस पर सीता आहार ग्रहण करना स्वीकार कर लेती हैं तथा राम के हेतु सन्देश देकर हनुमान को विदा करती हैं। वे तुरन्त राम के पास पहुँचते हैं।[1] यहाँ वन के नष्ट करने का, लंका में रावण से मिलने का, तथा लंका दहन का कोई प्रसंग नहीं आता।

जब हनुमान राम के पास पहुँचते हैं तो उनकी मुखमुद्रा से ही राम समझ जाते हैं कि ये हमारा कार्य कर आये। वहाँ पहुँच कर हनुमान राम को प्रणाम करते हैं तथा लंका का सब समाचार देते हैं और यह निवेदन करते हैं कि वे मंत्रियों से सलाह करके जो उचित मार्ग ही अपनायें। यह सब समाचार सुन लेने के पश्चात् राम को हनुमान ने सेनापति बनाकर तथा सुग्रीव को राजा और अंगद को युवराज बना कर सेना सहित प्रस्थान करते हैं।

इस समय मंत्रणा में अंगद की उपस्थिति का औचित्य नहीं समझ में आता क्योंकि वालिवध का प्रसंग ही यहाँ नहीं आया है। यहाँ अंगद सेनापति हनुमान को रावण को समझाने हेतु भेजने की मंत्रणा देते हैं।

'तत्रैव मंगदोऽवोचद्देव त्रेधामहीभुजः।
किन्तु नाकाशगामित्वसामर्थ्यं तेषु विद्यते।
तस्मात्सेनापतिः प्रेष्यस्त्वयायं नूतनः कृतः।
दृष्टमार्गः पराघृष्यः सिद्धकार्यः श्रुतागमः।
जात्यादिविद्यासम्पन्नः स्यादस्मात्कार्यनिर्णयः।'

अंगद की इस मंत्रणा से प्रभावित होकर रामचन्द्र मनोवेग, विजय, कुमुद तथा रविगति को हनुमान का सहायक देकर उनका आदर सत्कार करके कहते हैं कि 'तुम सर्वप्रथम विभीषण से कहना कि वह रावण से कहे कि वह जो सीता को हर कर ले आया है यह उसका कार्य अन्यायपूर्ण है इस प्रकार कह कर वे सीता को छुड़ा दें। इसके पश्चात् जो समयोचित बात हो वह कहना तथा रावण को समझाना।' हनुमान राम को प्रणाम करके पुनः लंका को जाते हैं।

---

[1] उपर्युक्त पृ० ३७४-३७७।

वहाँ पहुँच कर हनुमान सर्वप्रथम विभीषण से मिलते हैं और उनसे राम का संदेश निवेदन करते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें रावण के पास भेज दें। "विभीषण स्वयं अणुमान (हनुमान) को रावण के पास ले जाते हैं।[1] इस वर्णन से यह पता चलता है कि रावण से हनुमान का पूर्व परिचय नहीं था। हनुमान विनयपूर्वक रावण से भेंट करके उसे उपहार समर्पित करते हैं फिर कहते हैं कि रामचन्द्र ने कहा है कि 'आप सीता को किसी दूसरे की समझ कर ले आये हैं, आप बुद्धिमान हैं उसे शीघ्र भेज दीजिये।' रावण ने उत्तर दिया कि 'मैं जान कर ले आया हूँ मैं राजा हूँ इस कारण सब रत्न मेरे हैं, विशेष रूप से स्त्री-रत्न, यदि राम में शक्ति है तो वह यहाँ आवे और युद्ध करके सीता को ले जाय।' अणुमान पुनः समझाते हैं कि 'इस कार्य से जब तक चन्द्रमा रहेगा तब तक उसकी अकीर्ति बनी रहेगी।' रावण इस पर उत्तर देता है कि 'जनक ने अहंकार वश मुझे सूचित किये बिना सीता को रामचन्द्र को दे डाला इस कारण उसे मैं ले आया इससे यदि अकीर्ति होती है तो हो।' इस पर हनुमान पुनः कहते हैं कि 'आप ऐसा क्या कहते हैं कि आपने सीता को हरा है, आप तो सीता को चुरा कर लाये हैं।' इस पर रावण क्रुद्ध हो जाता है और वह हनुमान को ललकार कर कहता है कि 'तू यहाँ से चला जा' इसके पश्चात् रावण के पुत्र तथा सेनापति, उसे ललकारते हैं। इस पर विभीषण उन लोगों को रोकते हैं तथा कहते हैं कि "इस प्रकार दूत को परुष वचन कहना ठीक नहीं है" तथा हनुमान से कहते हैं कि "यह रावण सीता को नहीं देगा इससे तुम जाओ।" इसके पश्चात् हनुमान सीता के पास जाते हैं और उनका दर्शन करके फिर राम के पास आकर वहाँ का सारा वृत्तान्त निवेदन करते हैं।[2]

अणुमान की बात सुन कर रामचन्द्र अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ चित्रकूट वन में जा पहुँचते हैं। यहाँ हनुमान के स्थान पर इनका नाम अणुमान मिलता है। अणु शब्द जैसा पहिले लिखा जा चुका है तमिल में नर का द्योतक है अण मण्डी का अर्थ नर वानर किया जाता है। इसी से अणमान बना प्रतीत होता है। वहीं चित्रकूट में रामचन्द्र वर्षा ऋतु बिताते हैं। वहीं उनके पास बाली का दूत आता है और निवेदन करता है कि 'बालि ने यह प्रार्थना की है कि आप अणुमान और सुग्रीव को अपना दूत न बनावें क्योंकि वे अल्प कार्य करने वाले हैं यदि आप मेरा बल देखना चाहते हैं तो मैं स्वयं जाकर अभी रावण का मान भंग कर सीता को ले आता हूँ।' यह सुन कर वे मंत्रियों से उनके विचार पूछते हैं।' अंगद सलाह देते हैं कि

---

[1] उपर्युक्त पृ० २०६-२०७। [2] उपर्युक्त पृ० २१०।

'सर्वप्रथम वालि को नष्ट करना चाहिए जिसमें वह शत्रु से जाकर न मिल जाय।'[1] इस पर राम वालि के दूत को कहला भेजते हैं कि 'वह पहिले महामेघ नामक अपने श्रेष्ठ हाथी को समर्पित करे तथा उनके सेना के साथ रावण पर चढ़ाई करे तब उसकी इच्छा की पूर्ति के विषय में सोचा जायगा।' उसी के साथ राम अपना दूत भी भेजते हैं। इस पर वाली क्रुद्ध हो जाता है। लड़ाई में लक्ष्मण वाली को मार डालते हैं। उसी समय सुग्रीव तथा अणुमान को अपने स्थान मिल जाते हैं। इसके पश्चात् सेना एकत्रित करके राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान प्रयाण करते हैं। जब समुद्र के समीप सारी सेना पहुँच जाती है तो अणुमान श्रीराम से कहते हैं कि 'यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी शूरवीरता प्रकट करने के हेतु लंका जाऊँ और वहाँ के वन का नाश करके रावण का मानभंग करूँ साथ ही लंका को जला कर शत्रु के हृदय में दाह उत्पन्न करूँ।' राम की आज्ञा मिलने पर वह शूरवीर विद्याधरों के साथ लंका चले जाते हैं। उन्होंने वानरी विद्या से अनेक भयंकर वानरों की सेना बनाते और उनके साथ समुद्र पुनः लांघते हैं। यहाँ तीसरी बार हनुमान पुनः लंका जाते हैं।

सागर के पार लंका में पहुँच कर अणुमान वनपालकों को पकड़ कर उनको मारना प्रारम्भ कर देते हैं जिससे वे चिल्लाते हुए भागते हैं और नगररक्षकों से अपनी रक्षा के हेतु गिड़गिड़ाने लगते हैं। नगररक्षक अपनी राक्षसी विद्या को प्रज्वलित करके अणुमान (हनुमान) से लड़ने आते हैं। इस पर हनुमान अपनी वानर सेना को उनसे युद्ध करने की आज्ञा देते हैं। वानर सब पेड़ उखाड़-उखाड़ कर उनको मारते हैं। इतने में हनुमान महाज्वाला नामक विद्या से अग्नि प्रज्वलित कर देते हैं जिससे ये राक्षस जलने लगते हैं तथा सारे नगर में आग लग जाती है। इस प्रकार रावण के प्रताप में अग्नि लगा कर हनुमान तथा उनकी वानरी सेना समुद्र के इस पार खड़ी राम की सेना में आ मिलती है। राम जब विभीषण से पूछते हैं कि 'रावण अब क्यों हमारी सेना के सामने नहीं आता' तो विभीषण बताते हैं कि 'इस समय वह तपस्या में निरत है और उसने इन्द्रजीत को नगर की रक्षा का भार दे दिया है। यदि उसकी यह विद्या तपस्या से सिद्ध हो गयी तो वह बहुत शक्ति-सम्पन्न हो जायगा। इसकी इस तपस्या में विघ्न उत्पन्न करना चाहिये।' इसके पश्चात् सुग्रीव तथा हनुमान अपनी सिद्ध की हुई गरुड़वाहिनी, सिंहवाहिनी, बन्धमोचिनी और हननावरणी विद्यायें अलग-अलग राम और लक्ष्मण को देते हैं। इसके पश्चात् दोनों भाई प्रज्ञप्ति नाम की विद्या से अनेक विमान बनाते हैं जिस पर

---

[1] इस मंत्रणा से तो ऐसा भास होता है कि अंगद वाली का पुत्र नहीं है।

चढ़ कर सारी सेना समुद्र पार करके लंका के सामने खड़ी हो जाती है।[१] तथा जहाँ रावण तपस्या कर रहा है उस पर्वत पर उपद्रव करने लगती है। इस पर इन्द्रजीत उनसे लड़ने को विद्याधर राजाओं तथा देवताओं को आज्ञा देता है। देवताओं की आज्ञा न मानने पर रावण इन्द्रजीत के साथ इन लोगों से स्वयं लड़ने को उद्यत होता है।

इस पुराण के अनुसार लक्ष्मण ने रावण को मारा। पीछे चल कर रामचन्द्र ने सुग्रीव, हनुमान इत्यादि के साथ संयम धारण कर लिया।

इस प्रकार जो हनुमान का चरित्र जैन साहित्य में प्राप्त होता है वह रामायण तथा और संस्कृत साहित्य से भिन्न है। उनके आरम्भिक जीवन की कथा जो यहाँ प्राप्त होती है वह कहीं नहीं है। यहाँ उन्हें विद्याधरों की श्रेणी में रखा गया है तथा वानर वंश की भी कल्पना की गयी है। उनके मुकुट में वानर चिह्न का वर्णन है तथा उनके रथ की ध्वजा पर भी एक वानर बैठाया गया है। उनके लांगूल को उनका पाश कहा गया है। इनको कामदेव का अवतार भी मानते हैं। उनके नाम के विषय में यह तर्क किया गया है कि उनका लालन पालन हनुरुह द्वीप में हुआ इस कारण उनका नाम हनुमान पड़ा। उत्तर पुराण में हनुमान के स्थान पर अणुमान नाम मिलता है जो कदाचित् अणमण्डी का ही अपभ्रंश रूप है, कदाचित् इन्हीं कथाओं के किसी प्राचीन रूप के आधार पर उड़ीसा के उदयगिरि की रानी गुफा में एक चित्र उत्कीर्ण किया गया है जिसका विवरण आगे दिया जायगा। इन कथाओं से यह संकेत तो अवश्य प्राप्त होता है कि अणुमान या हनुमान की कथा स्वतन्त्र रूप में प्रचलित थी तथा इन्हें मनुष्य योनि का नहीं माना जाता था। उपरोक्त साहित्य के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों के विविध प्रतीक उनकी मूर्तियों के साथ प्राप्त होते हैं जैसे ऋषभनाथ का वृष , अजितनाथ का हाथी, सम्भवनाथ का घोड़ा इत्यादि। इन्हीं तीर्थंकरों में चतुर्थ तीर्थंकर अभिनन्दन का प्रतीक कपि है कदाचित् इससे हनुमान का कुछ सम्बन्ध हो।

---

[१] यहाँ लंका पर पुल नहीं बाँधा जाता।

पुराणों में हनुमान का चरित्र

पुराणों में भी हनुमान का चरित्र प्राप्त होता है। इस कारण इनका भी अध्ययन आवश्यक है। पुराणों में हनुमान का चरित्र प्रायः राम चरित्र से सम्बन्धित ही मिलता है परन्तु इनके विवरण तथा रामायण के वर्णन में थोड़ा-थोड़ा अंतर है। अग्निपुराण[1] के अष्टम अध्याय में जब राम पम्पासर नामक स्थान पर पहुंचते हैं तब उनसे हनुमान की भेंट होती है।[2]

दसवें अध्याय में हनुमान जी जब लंका को प्रस्थान करते हैं उस समय का यहाँ विवरण प्राप्त होता है।[3]

हनुमान जी ने श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिए तथा वानरों के जीवन की रक्षा के लिए विशाल समुद्र का लंघन किया और बीच में मैनाक एवं सिंहिका नामक राक्षसी का मानमर्दन किया। लंका में पहुँच कर उन्होंने रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद एवं और दूसरे राक्षसों के घरों को देखा। सीता जी को ढूँढ़ते हुए हनुमान जी ने अशोकवाटिका में शिशपावृक्ष के नीचे सीताजी को देखा। वहाँ राक्षसियाँ सीताजी को समझा रही थीं और रावण उन्हें डरा रहा था। रावण के वहाँ से चले जाने पर हनुमान जी ने राम, लक्ष्मण एवं सुग्रीव की मित्रता की कथा सुनायी और श्रीराम की दी हुई अंगूठी सीता जी को दी। सीता जी ने कहा कि यदि श्रीराम जीवित हैं तो मुझे क्यों नहीं ले जाते। इस पर हनुमान जी ने कहा कि श्रीराम जी यह नहीं जानते कि आप लंका में हैं। आपकी सूचना पाते ही राक्षसों एवं रावण को मारकर आपको ले चलेंगे, आप चिन्ता न करें और आप अपना कोई अभिज्ञान मुझे दीजिये। सीता जी ने काकरूपधारी जयन्त की कथा[4] सुनायी और अपने शिरोमणि को दिया। श्रीराम के पास चलने की सीता जी की आतुरता देखकर हनुमान ने कहा कि आप मेरी पीठ पर बैठ जायँ, मैं अभी सुग्रीव

---

[1] अग्निपुराण—आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली—४१ हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम।

[2] उपर्युक्त पृष्ठ ९।

[3] उपर्युक्त पृष्ठ १०।

[4] यहाँ जानकी जयंत के कौवे के रूप में आने की कथा की ओर संकेत करती हैं।

के साथ श्रीराम जी का आप को दर्शन करा दूँ। सीता जी ने कहा कि श्रीराम जी ही मुझे ले चलेंगे। इसके बाद हनुमान जी ने रावण के उद्यान में प्रवेश किया। वहाँ हनुमान जी ने वृक्षों को तोड़ा, वनपालों को मारा, मन्त्रियों के सात पुत्रों का वध किया तथा अक्षयकुमार को मारा। इसके बाद मेघनाद ने नागपाश में हनुमान को बाँधा और रावण के सामने उपस्थापित किया।

रावण ने हनुमान जी से पूछा कि तुम कौन हो ? हनुमान ने कहा कि मैं रावण का दूत हूँ। तुम सीताजी को श्रीराम के लिए दे दो अन्यथा सारे राक्षसों के साथ मारे जाओगे। यह सुनकर रावण हनुमान जी को मारने के लिए उद्यत हुआ। ऐसा करने से विभीषण ने रोका। तब रावण ने हनुमान जी की पूँछ में आग लगा दी। हनुमान उसी आग से लंका को जलाकर और सीता जी को प्रणाम कर समुद्र के पार चले आये। इस पार आकर अंगद आदि के साथ मधुवन में मधुपान किया और श्रीराम के समक्ष जाकर लंका की सारी कथा सुनायी ? हनुमान ने सीता जी को देखा है यह जानकर श्रीराम प्रसन्न हुए।

श्रीराम ने हनुमान जी से पूछा कि सीता जी ने क्या कहा है ? हनुमान जी ने सीता जी से कही बातों को सुनाया और सीता जी द्वारा प्रदत्त मणि को दिया। उस मणि को देखकर रामजी रोने लगे।[1]

इसी प्रकार युद्धकाण्ड में भी हनुमान की कथा आती है।

इन्द्रजीत ने माया से श्रीराम आदि को बांध लिया। हनुमान जी ने श्रीराम एवं लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त किया एवं औषध के द्वारा व्रणरहित किया इसके बाद निकुम्भिला देवी के सामने होम करते हुए मेघनाद को लक्ष्मण जी ने पृथ्वी पर गिरा दिया और राक्षसों की पत्नियाँ रोने लगी। (श्लोक २–२७ तक)

अग्निपुराण में[2] हनुमान की मूर्ति के बनाने के प्रसंग में अधोलिखित विवरण प्राप्त होता हैं।

द्विबाहवो लोकपाला विश्वकर्माऽक्षसूत्रभृत्।
हनूमान्वज्रहस्तः स्यात्पद्भ्यां संपीडिताः सुरः॥१६॥

---

१. उपर्युक्त—अध्याय ५१-१६ पृष्ठ ६४।

२. ब्रह्मपुराण—द्वितीय भाग—मनसुखराय मोर, ५ क्लाइवरोड, कलकत्ता, सन् १९५४ ई०, पृ० ५४४, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली २८-१८९४ ई०, पृ० २१६-२१७ अध्याय ८४-२-२०। यह तीर्थ गौतमी नदी के दक्षिण तीर पर बताया गया है। गौतमी नदी गोदावरी नदी का दूसरा नाम प्रतीत होता है।

दोनों पैरों से असुर को दबाये हुए और हनुमान की मूर्ति बनानी चाहिये। इसके दो हाथ हों और इनके हाथ में वज्र हो।

ब्रह्मपुराण में हनुमान के जन्म की कथा पैशाचीतीर्थ में मिलती है जो इस प्रकार है—

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे ॥१॥

तिरपन (५३) योजन विस्तृत मार्जार नाम का पर्वत है। इस पर्वत से आगे हनुमान तथा वृषाकपि नामक दो स्थान हैं। यहाँ पर फेना गंगा तथा गोदावरी (गौतमी) का संगम है जो सब कामनाओं को देने वाला है।

ब्रह्मगिरि के पार्श्व में अंजन नाम का एक पर्वत था। हे मुनीश्वर उस पर्वत पर एक शापभ्रष्टा अप्सरा रहती थी उसका नाम अंजना था। उसके शरीर का ऊपर का अंग वानरी के सदृश था। केसरी नाम का उसका पति था। दूसरी अद्रिका थी। यह भी केसरी की भार्या थी और वह भी अंजना की भाँति शापभ्रष्टा थी। वह भी उत्तम अंगोंवाली थी उसके ऊपर का अंग मार्जारी का था। यह तो लोकविदित ही है कि केसरी दक्षिण के समुद्र से आया था। कुछ दिन पश्चात् अगस्त मुनि उस पर्वत पर पधारे। अंजना तथा अद्रिका ने ऋषि अगस्त का उत्तम विधि से नियमानुसार पूजन किया। इस पर भगवान् प्रसन्न हुए। इन दोनों ने पुत्रप्राप्ति के हेतु प्रार्थना की। उन्होंने ऐसा पुत्र मांगा जो सब से बली हो, सबसे श्रेष्ठ हो और सर्वलोक का उपकार करनेवाला हो। उनको वर देकर मुनि अगस्त दक्षिण की ओर चले गये। कुछ काल के पश्चात् एक दिन जब अंजना तथा अद्रिका पर्वत के शिखर पर नाच, गा और हँस रही थीं वायु तथा निर्ऋति देवताओं ने इन्हें देखा, कामासक्त होकर इनके साथ वहीं गिरि के मस्तक पर देवताओं ने रमण किया। अंजना को वायु से हनुमान उत्पन्न हुए तथा अद्रिका को निर्ऋति से पिशाचराट्। परन्तु इनके अवयव विकृत थे। इन स्त्रियों ने सोचा कि शचीपति के शाप से ऐसा हुआ है। वायु तथा निर्ऋति ने कहा कि गौतमी में स्नान करने तथा दान देने से श्राप का मोचन होगा। इतना कहकर दोनों देवता अन्तर्ध्यान हो गये। अंजना को पिशाचराट् ने अपने भाई हनुमान के प्रीत्यर्थ स्नान कराया और हनुमान ने मार्जारीरूपिणी अद्रिका को स्नान कराया। इससे वे शापमुक्त हुई। एक तीर्थ का नाम पैशाच तीर्थ पड़ा और दूसरे तीर्थ का नाम हनुमान या वृषाकपि।[1]

---

[1] यह तीर्थ गौतमी तथा फेना के संगम पर है।

थोड़ी-सी कथा हनुमान की किष्किन्धा तीर्थ के आख्यान में भी यहाँ मिलती है[1]—

समुद्र तट पर वे सब वानर पाँच रात्रि तक रहे उन्होंने शिवलिंगों की स्थापना एवं पूजा की। वायुसुत हनुमान ने राजा (राम) की शुश्रूषा की। जाते समय महाराज (राम) ने हनुमान से कहा कि मेरे द्वारा, विद्वानों के द्वारा तथा शिवजी के सेवकों के द्वारा स्थापित शिवलिंगों का विसर्जन करो। श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से पवनसुत हनुमान् दोनों हाथों से जब शिवलिंग को उपाट न सके तब अपनी पूँछ से लपेट कर शिवलिंग को उपाटना आरंभ किया। कौन मनस्वी शिवलिंग को उपाट सकता है। शिवलिंग की निश्चलता देख कर श्रीराम जी स्वयं वहाँ आये। उन्होंने ब्राह्मणों की सम्मति से शिवलिंग की पूजा एवं प्रदक्षिणा की और बड़े शुद्ध हृदय से उन सब शिवलिंगों को प्रणाम किया। किष्किंधा निवासी श्रेष्ठजनों ने उस स्थान का सेवन किया इसलिए यह स्थान तीर्थ हो गया।

यही प्रसंग स्कन्दपुराण में रामेश्वरम् के प्रसंग में मिलता है।

रावण की तपस्या इत्यादि का वर्णन अध्याय ९७ में प्राप्त होता है। रावण का कैलाश के उठाने की कथा १४३वें अध्याय में मिलती है।

रावण के मारने के पश्चात् राम का अयोध्या आगमन, लोक अपवाद के कारण सीता का वाल्मीकि आश्रम के पास त्याग, राम के अश्वमेघ यज्ञ में लव-कुश का आगमन, अंगद, हनुमान इत्यादि द्वारपालों से सीता के त्याग का कारण आदि पूछना, यह वर्णन सहस्रकुण्ड तीर्थ के आख्यान में वर्णित है। परन्तु यहाँ भी कोई विशेष चरित्र हनुमान का नहीं प्राप्त होता। अध्याय १७६वें में भी हनुमान का कोई विशेष विवरण नहीं मिलता है।

ब्रह्मपुराण के १२९वें अध्याय में फेना तथा गौतमी के संगम की महिमा दी है।[2] इसमें इस संगम को हनुमान तथा वृषाकपि के नाम से विख्यात बताया गया है।

प्रसिद्ध इन्द्रतीर्थ के पास ही वृषाकपि नामक तीर्थ है। जहाँ गौतमी या गोदावरी से फेना नामक नदी का संगम होता है। उसे हनुमान् तीर्थ और अब्जक तीर्थ भी कहते हैं, जहाँ भगवान् त्रिविक्रम निवास करते हैं। यहाँ स्नान एवं दान करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

इस नदी का नाम फेना इसलिए पड़ा कि यहीं पर इन्द्र और नमुचि से युद्ध

---

[1] उपरोक्त—अध्याय १५७—पृष्ठ ३६९-३७०।

[2] गौतमी नाम गोदावरी का है।

हुआ था। इन्द्र ने नदी के फेन को वज्र का रूप देकर फेनरूपी वज्र से नमुचि को मारा था। नमुचि को मारकर उक्त वज्र पृथिवी में प्रविष्ट हो गया। वहाँ से जो पातालगंगा का जल निकला उसे फेना नदी कहते हैं। यहीं पर हनुमान की उपमाता जिसने शाप के कारण मार्जार शरीर पायी थी, यात्रा के प्रसंग में आयीं और यहाँ के वायु के संसर्गमात्र से वह मार्जार शरीर से मुक्त हो गयी। इसलिए मार्जार तीर्थ नाम पड़ा। हनुमान की माता को उनके भाई राक्षसराज पिशाचराज ने यहाँ स्नान कराया जिससे उसको भी अपना पुराना स्वरूप प्राप्त हो गया।

इसी संगम पर अब्जक तथा वृषाकपि तीर्थ हैं। एक ही तीर्थ के ये दो नाम हैं। इसकी कथा इस प्रकार लिखी है। प्रसिद्ध दैत्य हिरण्य के पुत्र का नाम महाशनि था। यह महाबलवान् था। इसने एक बार इन्द्र के साथ युद्ध किया और इन्द्र को बन्दी बनाकर अपने पिता हिरण्य दैत्य को दे दिया। हिरण्य ने इन्द्र का वध नहीं किया किन्तु क्रूरता छोड़कर इन्द्र की रक्षा की और अपने पास बन्दी बनाकर रख लिया।

इसके बाद महाशनि ने वरुण के साथ युद्ध किया और उन्हें पराजित किया। पराजित वरुण ने अपनी पुत्री महाशनि को विवाह दी। जब देवलोक इन्द्र से रिक्त हो गया सब देवता मिलकर विष्णु के पास गये और इन्द्र की सारी कथा कही। तब विष्णु वरुण को साथ लेकर महाशनि के पास गये। महाशनि ने अपने श्वसुर वरुण का बड़ा सम्मान किया। वरुण के कहने पर महाशनि ने इन्द्र को लौटा दिया। लौटाते हुए महाशनि ने इन्द्र से कहा—आज से तुम मेरे श्वसुर वरुण को अपना स्वामी समझना जिसने तुम्हें छुड़ाया और भृत्यभाव से इनकी सेवा करना। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हें पुनः बाँध कर रसातल में पहुँचा दूँगा।

इसके पश्चात् महाशनि ने इन्द्र को बहुत बुरा-भला कहा—'किसने तुम्हें इन्द्र बनाया? किस वीर्य से तुम बहुत बोलते थे? मैंने तुम्हें तुम्हारे वाहन के साथ युद्ध में बाँध लिया। तुम्हारे वज्र में क्या शक्ति है? तुमको वरुण के कहने पर मैंने छोड़ दिया। तुम्हें लज्जा नहीं आती!' ३१–३७

इसके बाद स्वर्ग में पहुँच कर इन्द्र ने इन्द्राणी से सारी बातों को कहा और शत्रु से बदला लेने का परामर्श किया। इन्द्राणी ने सम्मति दी कि पृथिवी पर सारभूत स्थान दण्डकवन है, जहाँ जगद्धात्री गंगा जी विराजमान हैं। वहाँ भगवान् विष्णु या भगवान् शंकर की आराधना कीजिए। तब इन्द्र, इन्द्राणी के साथ दण्डकवन में गये। वहाँ गोदावरी और फेना के संगम पर जिसे गंगा गौतमी संगम भी कहते हैं, स्नान करके इन्द्र ने भगवान् शंकर की आराधना की। प्रसन्न होकर

शिवजी प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि केवल मेरे बल से उस बलवान् दैत्य का वध न होगा, तुम भगवान् विष्णु की भी आराधना करो। गंगा के दक्षिण तट पर आपस्तम्ब नामक मुनि रहते हैं। उनको भी मैंने सन्तोष दिया है। तब इन्द्र ने मुनि आपस्तम्ब एवं अपनी भार्या के साथ विष्णु की आराधना की। आराधना के प्रभाव से विष्णु ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा। इन्द्र ने उक्त दैत्य के वध की प्रार्थना की। तब वहीं पर संगम के जल से एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसका नाम वृषाकपि था। जल से उत्पन्न होने के कारण इस पुरुष का अब्जक नाम भी पड़ा। इसने महाशनि का वध कर इन्द्र को सान्त्वना दी। इन्द्र वृषाकपि के अनन्य भक्त बन गये, इन्द्राणी तक को भूलने लगे। इस पर इन्द्राणी नाराज हो गयी और इन्द्र ने अनेक प्रकार से उसे आश्वासन दिया।

इस अध्याय में वृषाकपि के जन्म की कथा मिलती है। इसी फेन तथा गौतमी (गोदावरी) के संगम पर हनुमान ने अपनी विमाता मार्जारी को स्नान कराकर शाप से मुक्त किया था। इन दोनों अध्यायों अर्थात् ८४ तथा १२९ को देखने से यह पता लगता है कि ऋग्वेद के ८४वें सूक्त के वृषाकपि तथा रामायण के हनुमान कदाचित् एक ही हैं। पुराणों की कथापद्धति के अनुसार यह कहा जायगा कि वृषाकपि ने ही हनुमान के रूप में पुनः जन्म लिया।

शिव महापुराण में हनुमान चरित्र प्राप्त होता है,[1] इसमें उनके जन्म तथा बाल्यकाल की लीलाओं का समावेश है। इसमें हनुमान को शिव का पुत्र कहा है।

एक बार विष्णु का मोहिनी रूप देखकर शिव जी कामासक्त हो गये और उनका वीर्यस्खलन हुआ। ऋषियों ने उस वीर्य को पत्ते में रख लिया तथा गौतमी-सुता अंजना के कर्ण में उस वीर्य का आधान किया। समय पर अंजनी के गर्भ से शंकर जी के वीर्य से एक बालक उत्पन्न हुआ। जिसका नाम हनुमान रखा गया। यह बालक अद्भुत पराक्रमी था। यह बाल्यावस्था में ही फल समझकर सूर्य-बिम्ब को खाने के लिए दौड़ा और निगल लिया। देवों ने प्रार्थना करके सूर्य को छुड़ा लिया। हनुमान अपनी माता के पास आये और माता की आज्ञा से सूर्य से अध्ययन करने लगे। बाद में सूर्य की आज्ञा से सूर्य के अंश से उत्पन्न सुग्रीव के पास गये। सुग्रीव अपने बड़े भाई बालि से त्रस्त थे, बालि ने उनकी पत्नी को ले लिया था। इसलिए सुग्रीव बालि से दूर ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे। हनुमान भी सुग्रीव के साथ वहीं रहने लगे। संयोग से सीता के वियोग से दुःखी श्रीराम वहीं

---

[1] शिवमहापुराण—भाषाटीका सहित पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई। २०वाँ अध्याय, शतरुद्र संहिता ३, पृ० ५१,

आ गये और हनुमान से सुग्रीव के साथ श्रीराम की मित्रता करायी। राम ने अनुजवधू के संसर्ग से दूषित वालि का वध किया और सुग्रीव ने सभी वानरों को सीता को ढूँढ़ने के लिए भेजा। श्रीराम से अभिज्ञानस्वरूप अंगूठी लेकर हनुमान ने समुद्र पार किया और लंका में प्रवेश किया। हनुमान ने वहाँ सीता को देखा, अंगूठी दी और राम की सारी कथा सीता को सुनायी। उसी समय राक्षस आ गये औ राक्षसों से युद्ध हुआ। हनुमान ने रावण के पुत्र अक्षयकुमार को मार डाला। इसके बाद राक्षसों ने हनुमान की पूँछ में वस्त्र तथा तेल लगाकर आग लगा दी। महादेव के अंश से उत्पन्न हनुमान ने उस आग से सारी लंका को भस्म कर दिया और श्रीराम के पास लौट आये। हनुमान ने श्रीराम से लंका की सारी कथा सुनायी और सीता जी द्वारा प्रदत्त शिरोमणि श्रीराम को दिया। इसके बाद श्रीराम वानरों की सेना लेकर लंका में गये और वहाँ राक्षसों से युद्ध आरंभ किया। युद्ध में हनुमान ने मेघनाद के शक्ति-अस्त्र से मूर्च्छित लक्ष्मण को संजीवनी औषधि लाकर जीवित किया और महिरावण को मारकर राम तथा लक्ष्मण को पाताल से अपने स्थान पर ले आये इस प्रकार हनुमान ने श्रीराम को सब प्रकार से सुखी किया और जगत् में रामभक्ति का प्रचार किया। ये रुद्रावतार हनुमान लक्ष्मण के प्राणदाता, सभी देवताओं के मद को दूर करने वाले, राक्षसों के शत्रु, तथा भक्तों के उद्धार करने वाले हैं।

हनुमान द्वारा यहां महिरावण के वध का भी संकेत है, यह रामायण में नहीं प्राप्त होता।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में[1] श्रीकृष्ण जन्म खण्ड में संक्षेप में रामचरित्र मिलता है। इसमें हनुमान चरित्र बहुत थोड़ा-सा मिलता है।[2]

सुग्रीव के द्वारा श्रीराम ने अपनी अंगूठी तथा संदेश देकर हनुमान को सीता को ढूँढ़ने के लिए दक्षिण दिशा में भेजा। रुद्र के अंश से उत्पन्न हनुमान ने लंका में जाकर अशोक वन में सीता को देखा। हनुमान ने सीता को सुग्रीव से राम की मित्रता, वालिवध और श्रीराम के निश्चय को विस्तार के साथ सुनाया। लंका से लौट कर हनुमान ने श्रीराम से लंका तथा सीता का संदेश सुनाया।

---

[1] १. ब्रह्मवैवर्त पुराण—मोर संस्करण—५ क्लाइव रोड, कलकत्ता १९५५ पृ० ८८७ तथा आगे।

[2] २, उपर्युक्त—पृष्ठ ८९०-८९२-६२, ५९-९९। यहाँ राम तथा लक्ष्मण को सुग्रीव के भवन में स्थित बताया गया है।

विष्णुपुराण में राम कथा वहुत संक्षेप में मिलती है जिसके अनुसार अज से दशरथ उत्पन्न हुए तथा दशरथ से राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। हनुमान का चरित्र यहाँ नहीं प्राप्त होता केवल अभिषेक के समय उनको विभीषण, सुग्रीव, अंगद, जाम्ववान् आदि के साथ छत्र, चँवरादि लिये हुए वर्णित किया गया है।[1]

मत्स्यपुराण में भी हनुमान का चरित्र नहीं मिलता। राम की कथा इतनी ही मिलती है[2] कि दशरथ के चार लड़के हुए, राम उनसे सबसे ज्येष्ठ थे, राम ने रावण का वध किया और वाल्मीकि ने इस राम के चरित को गाया है।

वायु पुराण में भी राम कथा बड़े संक्षेप में मिलती है इसमें भी हनुमान की कथा नहीं प्राप्त होती।[3]

वायु पुराण में वानरों की लम्बाई चौड़ाई अवश्य दी हुई है। वह इस प्रकार है।[4]

अंगुलानां सहस्रंतु चत्वारिंशांगुलं विना।
पंचाशत हयानां च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः।

स्कन्द पुराण में ब्रह्माखण्ड के सेतु माहात्म्य नाम के प्रकरण में राम की कथा प्राप्त होती है।[5] इसमें पम्पातीर पर पहुँचने पर राम की हनुमान से भेंट होती है—

श्रीराम ने पूछा आप कौन हैं? हनुमान ने कहा कि मैं सुग्रीव का सचिव हूँ, हनुमान नामक वानर हूँ। सुग्रीव ने आप दोनों के पास भेजा है और वे आप दोनों से मित्रता चाहते हैं। श्रीराम ने तथास्तु कहकर अग्नि के समक्ष सुग्रीव से मैत्री की।

---

[1] विष्णु पुराणम्—श्रीधरस्वामिकृत स्वप्रकाशाख्या टीका सहितम्—श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्येण संस्कृतम् प्रकाशितं च कालिकतानगर्य्याम् ई० १८८२ पृ० ५०३-४१, ४, ४०; ५०५-४, ४, ४७, इत्यादि। गीता प्रेस-४, ४, ८७-९२ पृ० ३०६ पर हनुमान नाम।

[2] मत्स्य पुराण—गुरुमण्डल सीरीज नं० १३, १९५४ ई०, नन्दलाल मोर पृष्ठ २९ द्वादश अध्याय—४९-५१।

[3] वायु पुराण—८८, १८३-१९८ पृ० ३२३ आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथ-माला ४९ पूना १९०५।

[4] उपर्युक्त ५९-१२।

[5] स्कन्द पुराण—सेतु माहात्म्य-२-१-१०६। मोर संस्करण तृतीय भाग पृ० ७।

बालि को मारने पर राम सुग्रीव को राज्य देते हैं। सुग्रीव वानरों की सेना सीता की खोज के हेतु भेजते हैं।

इन वानरों में हनुमान ने लंका में जाकर सीता को देखा और वहां का समाचार एवं उनकी चूड़ामणि उनसे प्राप्त कर के श्रीराम को दिया। इसके वाद हनुमान, सुग्रीव एवं अन्य वानरों के साथ श्रीराम लंका को गये।

इसके पश्चात राम जी की सेना लंका जाती है तथा वहां रावण से युद्ध होता है।[1] प्रहस्त के मरने पर धूम्राक्ष लड़ने आता है—इसका विवरण यहाँ इस प्रकार मिलता है जहाँ हनुमान को हम वाण चलाते पाते हैं।[2]

युद्ध में प्रहस्त के मर जाने पर धूम्राक्ष ने बड़े वेग से वानरों पर आक्रमण किया। वानर सेना भागने लगी। तब हनुमान ने एक वाण से धूम्राक्ष को मार डाला। इसके वाद रावण के समान वली खरदूषण के दो भाई युद्ध में आये जिन्हें सुग्रीव ने मारा तथा हनुमान ने कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों को मारा।

यहाँ विशल्या के लाने के लिए हनुमान जी के भेजने का विवरण नहीं प्राप्त होता। लंका से लौटते समय रामचन्द्र जी जब सेतु पर लिंग की स्थापना का विचार करते हैं तो कैलाश पर्वत पर से हनुमान जी को शिवलिंग लाने को भेजते हैं।[3]

पुण्यकाल का विचार कर श्रीराम ने हनुमान जी को शिवलिंग ले आने के लिए कैलाश पर भेजा। श्रीराम की आज्ञा पाकर हनुमान जी ने अपनी भुजाओं का आस्फोटन किया और वे वड़े वेग से छलाँग मार कर गंधमादन पर्वत को पारकर कैलाश पर पहुँच गये। वहाँ उन्होंने लिंगरूपधारी शंकर जी को नहीं देखा और वे तप करने लगे। तपस्या से शिवजी को प्रसन्न करके हनुमान जी ने शिवलिंग को प्राप्त किया। हनुमान जी के आने में विलम्ब हुआ तो राम जी ने वालू का लिंग जो जानकी जी ने बनाया था उसकी ही प्रतिष्ठा कर दी।[4] जब रामजी लिंग स्थापित कर चुके तब सहसा हनुमान जी लिंग सहित आ गये।

हनुमान को यह देखकर कि वालू के लिंग की राम जी ने स्थापना कर दी है बड़ा दुःख और क्रोध हुआ तथा उन्होंने कहा कि मेरा सब परिश्रम व्यर्थ हुआ केवल मुझे

---

[1] उपर्युक्त अध्याय ४४, ६।

[2] उपर्युक्त ४४, २८-७७।

[3] यह प्रसंग रामेश्वरम् के माहात्म्य दिखाने को पीछे से जोड़ा हुआ प्रतीत होता है।

[4] स्कन्द पुराण—४४, १०४-११०।

परिश्रम ही हाथ लगता है अब मेरी सद्गति न होगी इस कारण मैं शरीर त्याग करूँगा।[1]

इसके पश्चात राम जी ने हनुमान जी को तत्वज्ञान का उपदेश दिया तथा कहा कि मुझे देर हो रही थी तथा मुहूर्त निकला जाता था इस कारण मैंने इस लिंग की स्थापना कर दी अब इस लिंग को हटा कर हनुमान अपना लिंग रख दें उसकी पूजा करूँगा।[2]

हनुमान जी ने बहुत प्रयत्न किया तब भी वह बालू का लिंग न खसका तब उन्होंने अपनी पूँछ में बाँधकर उसे उठाने का प्रयत्न किया तो सारी पृथ्वी उठ गयी परन्तु वह न हटा तथा हनुमान जी रुधिर वमन करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े।[3]

"पृथ्वी पर हनुमान जी को गिरा हुआ देखकर वानर हाहाकार करने लगे। राम जी ने गिरे हुए हनुमान जी को उठाकर गोदी में रख लिया और वे हनुमान जी के अंगों को सहलाने लगे। तब धीरे धीरे हनुमान जी ने आँखें खोलीं। उस समय राम जी ने हनुमान से कहा पम्पासर पर जब हम विपत्ति में थे तब तुमने हमको आश्वासन दिया था और सुग्रीव से मित्रता करायी थी। तुमको पाकर हम पिता, भाई एवं माता कौसल्या को भी भूल गये थे। मेरे कार्य से तुमने सागर को पार किया और बड़े बड़े राक्षसों का संहार किया था।"[4]

यहाँ हमें पुनः हनुमान जी का रामायण में वर्णित पूरा चरित्र प्राप्त होता है।[5]

इसके पश्चात् रामजी ने हनुमान के सारे शरीर को स्पर्श किया तथा वे धीरे धीरे चैतन्य हुए।[5]

हनुमान जी इसके पश्चात् रामचन्द्र तथा सीता जी की स्तुति करते हैं।[6] और इसके अनन्तर अपने लाये हुए लिंग की स्वयं स्थापना करते हैं।

अंजना के तप की कथा भी यहाँ मिलती है जिससे हनुमान का जन्म हुआ।[7]

---

१. स्कन्द पुराण—४५-२-१५।
२. उपर्युक्त—४५, १८-५६।
३. उपर्युक्त—४५-५०-७४।
४. उपर्युक्त—अध्याय ४५-७६-८४।
५. उपर्युक्त—अध्याय ४६, १-३०।
६. उपर्युक्त—४६, ३१-७९।
७. उपर्युक्त—भाग २, अध्याय ३९, पृ० १४६।

स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड में अंजना का पुत्र के हेतु तप का विवरण प्राप्त होता है।[1]

पुत्रहीनाञ्जना दूर्वं दुःखिता तपसि स्थिता।
तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलो मतङ्गो विष्णुतत्परः।।१।।
मतंग उवाच।
समुत्तिष्ठाञ्जने देवि किमर्थं तपसि स्थिता।
वद देवि महाभागे कार्यं तव वरानने।।३।।
अञ्जनोवाच।
मतंग मुनि शार्दूल वचनं मे शृणुष्व ह।
पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः।।४।।
शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम्।
पार्वती सहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः।।५।।
प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम्।
शंभुरुवाच।
श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विधिना निर्मितं तव।
अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वं तथाप्यन्यद्ददामि ते।'
विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति।
तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तवप्रीतं करिष्यति।८।।

... ...

ततः कालांतरे विप्रः केसर्याख्यो महाकपिः।
ययाचे मां ददस्वेति पितरं मे ततः पिता।१०।।

स्कन्द पुराण की अंजना की तपस्या की कथा और कथाओं से नितान्त भिन्न है।[2] यहाँ पवनदेव कहते हैं कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा तथा अंजना के साथ उसका पति भी हैं। और कथाओं में तो पवन अंजना के साथ काममोहित होकर समागम करते हैं यहाँ वे अंजना को वरदान देते हैं।

कूर्म पुराण[3] में रामचरित्र संक्षेप में दिया है।[4] इसमें हनुमान के विषय में

---

१. स्कन्द पुराण—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ—वैष्णव खण्डान्तर्गत भूमि वाराह खण्ड—अध्याय ३९-१-४६, ४०-१-५।

२. स्कन्द पुराण—अध्याय ४०-१-२।

३. कूर्मपुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९८३।

४. उपर्युक्त—अध्याय २१, १६-५६।

अधोलिखित विवरण प्राप्त होता है। राम जी जब सीताहरण के पश्चात् पम्पापुर की ओर जाते हैं तो वहाँ उन्हें सुग्रीव मिलते हैं। वानरों से राम जी की मैत्री होती है। उन वानरों में सुग्रीव के अनुगामी वायुपुत्र हनुमान जी राम जी के बड़े प्रिय दिखाया गया है। हनुमान जी ने राम जी को को धैर्य बँधाया और राम जी के कार्य को पूरा करने का निश्चय किया। इसके बाद समुद्र पारकर हनुमान जी लंका में गये। वहाँ उन्होंने राक्षसियों से घिरी हुई सीता जी को देखा, एकान्त में सीताजी से बातें कीं और रामजी की अंगूठी सीताजी को दी। लंका से लौटकर हनुमान जी ने श्रीराम जी से सीतादर्शन की कथा सुनायी। श्रीराम जी वानर सेना के साथ लंका गये और बन्धु-बान्धव सहित रावण को मारकर हनुमान जी की सहायता से सीताजी को ले आये।

वामन पुराण में राम कथा नहीं मिलती न हनुमान जी का कुछ विवरण प्राप्त होता है।[1]

गरुड़ महापुराण में भी संक्षेप में रामचरित्र मिलता है।[2] इसमें हनुमान विषयक विवरण बहुत थोड़ा है—

सब वानर दक्षिण दिशा में सीता जी को ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ने पर जब सीता जी नहीं मिलीं तब सब वानर मरने को उद्यत हो गये। इस समय सम्पाति के वचन से कपियों में श्रेष्ठ हनुमान जी ने समुद्र पार कर लंका में जाकर सीता जी को देखा, अंगूठी दी और वे चिह्नस्वरूप सीता जी का वेणीरत्न लेकर राम जी के पास आने लगे। बीच में उन्होंने रावण के वन को नष्ट किया, राक्षसों को मारा और राक्षसों द्वारा पूँछ में लगायी गयी आग से लंका को भस्म कर दिया। इसके बाद उन्होंने राम जी के पास आकर वेणीरत्न को दिया और सीता जी की भेंट की बात सुनायी।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में हमें रावण के जन्म की कथा २१९वें अध्याय में मिलती है।[3] इसमें वैश्रवण के जन्म की कथा भी है।[4] यहाँ कुशध्वज की कन्या वेदवती का रावण को शाप देना वर्णित है[5] जो पीछे चल कर सीता के रूप में जन्म लेती है। नन्दी के रावण को शाप देने की कथा भी यहाँ मिलती है। जब रावण

---

[1] वामन पुराण—श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, मार्गशीर्ष सं० १९६०।

[2] गरुड़पुराण—श्रीवेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय : पूर्व खण्ड प्रथम सारथे आचार काण्डे रामायण वर्णनं नाम १४३ अध्याय पृ० ८९-१-५१।

[3] विष्णुधर्मोत्तर पुराण—१, २१९, १३-२३।

[4] उपर्युक्त—१-२१९, ५-१३।

[5] उपर्युक्त—१-२२० १९।

ने नन्दी की वानर आकृति को देख कर उपहास किया तब नन्दी ने उसे शाप दिया था कि वानर ही तुम्हारा गर्व चूर्ण करेंगे' यहाँ हनुमान का भी चरित्र हमें थोड़ा-सा मिलता है।[1]

महर्षि मतंग का आश्रम बालि के लिए अगम्य है यह जानकर सुग्रीव नल, नील, तारा तथा हनुमान जी के साथ वहीं रहने लगे। इन वानरों में हनुमान जी बड़े बलवान् थे। वे जन्म लेते ही खाने की इच्छा से सूर्य भगवान की ओर दौड़ पड़े, वहाँ उन्होंने सूर्य को भक्षण करने की इच्छा से उपस्थित राहु को देखा, तब वे खाने की इच्छा से राहु की ओर दौड़े। डर कर राहु इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र ऐरावत हाथी पर थे। विशालकाय ऐरावत को देखकर हनुमान जी ने उस हाथी को ही पकड़ना चाहा। इस पर इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया जिससे पवन-पुत्र का बाया हनु (जबड़ा) क्षतिग्रस्त हो गया। इसी कारण वायुपुत्र का नाम हनुमान पड़ा। इन्द्र के कृत्य से वायुदेव कुपित हो गये। वायुदेव को प्रसन्न करने के लिए सब देवता तथा साक्षात् भगवान् सूर्य ने लोक के हित के लिए हनुमान जी को अजर-अमर, अजेय एवं अप्रतिम बलवान् होने का आशीर्वाद दिया।[2]

वानर उत्पत्ति के विषय से यहाँ अधोलिखित विवरण प्राप्त होता है—

पुलह की भार्या काश्यपेयी (वानरी) थी। इससे श्वेत की उत्पत्ति हुई। श्वेत से उर्ध्वदृष्टि नामक वानर उत्पन्न हुआ। उर्ध्वदृष्टि से व्याघ्र, व्याघ्र से शरभ, शरभ से ऋक्ष और ऋक्षी कन्या, ऋक्ष से सिंह नामक वानर और ऋक्षी से प्रजापति के द्वारा धूम्र और जाम्बवान्, जाम्बवान् से मार्जार, मार्जार से मार्जा नामक महाबली अनेक वानर उत्पन्न हुए। ऋक्ष की कन्या मानसी बड़ी रूपवती थी, जिसे प्रजापति ने इन्द्र को दिया। इस मानसी में इन्द्र के द्वारा वालि उत्पन्न हुआ, भास्कर ने उसे चाहा और उससे सुग्रीव की उत्पत्ति हुई। ये सभी वानर देवयोनि के थे। वालि का पुत्र अंगद, वायु के पुत्र हनुमान जी, अग्नि का पुत्र नील, विश्वकर्मा के पुत्र नल और वरुण के पुत्र हेमकूट हुए। इसी प्रकार और भी देव-पुत्र अनेकों सैकड़ो हजारों वानर हुए जो माल्यवान्, विन्ध्य ऋषभ तथा गन्धमादन आदि पर्वतों एवं अनेक द्वीपों में निवास करते थे। ये बड़े वीर, पराक्रमी धर्मशास्त्र जानने वाले और नीतिशास्त्र के विद्वान् थे।[3]

श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध के दसवें तथा ग्यारहवें अध्यायों में रामचन्द्र का चरित्र प्राप्त होता है। इसमें भी हनुमान के विषय की सामग्री बहुत थोड़ी मिलती

---

[1] उपर्युक्त—१-२२२, ५-८।

[2] उपर्युक्त—१-२२३, २६-३५।

[3] उपर्युक्त—१-२५२, १-२४।

है। एक स्थान पर हमें हनुमान द्वारा राम के चरणों को वन में दवाने का संकेत प्राप्त होता है।[1]

लंका के जलाने की कथा का संकेत मात्र अधोलिखित पद्य में मिलता है।[2]

वद्धोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहांगे।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लंकां विभीषणहशाविशादग्रदग्धाम् ।१६।।

इसके पश्चात् हनुमान जी का नाम उन व्यक्तियों की सूची में मिलता है जिन्हें रामचन्द्र जी अपने साथ वैठाकर लंका से अयोध्या ले आये थे।[3]

वंगीय महाभागवत पुराण में जब भगवान् पृथ्वी का भार उतारने को अवतार ग्रहण करने का निश्चय करते हैं तो शिव कहते हैं 'अहं वानररूपेण सम्भूय पवनात्मजः। साहाय्यं ते करिष्यामिः।'[4] इस पुराण में हनुमान शिव के अवतार माने गये हैं। ये जव लंका पहुँचते हैं तो देखते हैं कि देवी लंका में निवास कर रही हैं। वहां ये देवी के मंदिर में पहुँच कर उनसे लंका त्याग देने की प्रार्थना करते हैं। सीता के अपमान के कारण देवी रावण से रुष्ट होकर लंका त्याग देती हैं।[5]

वाराह पुराण में हनुमान की कोई कथा नहीं मिलती।[6] राम कथा एक स्थान पर श्री राम द्वादशी व्रत के प्रसंग में आयी है। इसमें कहीं हनुमान का चरित्र नहीं मिलता है।

पद्म पुराण के पाताल खण्ड में[7] राम का चरित्र राम के अयोध्या लौटने से प्रारम्भ होता है। यहां दूसरे अध्याय[8] में राम जी हनुमान को अयोध्या में भरत का समाचार लेने को भेजते हैं।

---

१. श्रीमद्भागवत—गीता प्रेस, गोरखपुर—९, १०, ४।

२. उपर्युक्त—९, १०, १६।

३. उपर्युक्त—९, १०, ३२।

४. महाभागवत पुराण—अध्याय ३७, बुल्के-वही पृ० ६६२।

५. उपर्युक्त—अध्याय ३९-१९-२९ बंगवासी प्रेस, कलकत्ता १३२१ बंगीय संवत आगे इस कथा का एक चित्र दिया जा रहा है।

६. वाराह पुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई १९८० पृ० ४३, अध्याय ४६-१११।

७. पद्म पुराण—पाताल खण्ड—द्वितीय भाग (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला १३१) १८९६ ई०, पृ० ४२५। यह हिन्दू पुराण है तथा जैन पद्म पुराण से भिन्न है।

८. उपर्युक्त—पृष्ठ ४२७-२, २-९।

मद्वियोगज दुःखाग्निज्वालादग्धकलेवरम् ।
मदागमनसंदेशपयोवृष्ट्या सुषिचितम् ।।७।।

इस आज्ञा को पाकर हनुमान जी नन्दीग्राम जाते हैं। वहाँ वे भरत को विरहाग्नि से जलते हुए मंत्रियों के साथ देखते हैं तथा उनसे हनुमान जी राम के आगमन का संदेश सुनाते हैं। इसके पश्चात् रामचन्द्र जी जब अश्वमेध का घोड़ा छोड़ते हैं और उसके रक्षार्थ शत्रुघ्न को भेजते हैं तो उनके साथ हनुमान को भी भेजते हैं।[1]

श्रीरामजी ने कहा—"हे हनुमान् तुम्हारी कृपा से मैंने अपना राज्य पाया, सीता को पाया और महान् समुद्र को पार किया। अश्वमेध यज्ञ के लिए घोड़े के साथ जाती हुई मेरी सेना की रक्षा तुम करो। मेरे सहोदर भाई शत्रुघ्न को जब कभी मतिभ्रम हो तब उन्हें तुम समझाना।"

सभी वानर सुवर्ण के आभूषण पहन कर कवच तथा शिरस्त्राण धारण कर रथ एवं घोड़ों पर चढ़ कर चलते हैं।

इससे ऐसा ज्ञात होता है कि ये वानर लोग रथ पर चलते थे, आभूषण पहिनते थे तथा आयुधों का व्यवहार करते थे। शिरस्त्राण भी धारण करते थे।[2]

अश्वमेध का घोड़ा घूमता-घूमता वीरमणि के नगर में पहुँचता है। रुक्मांगद पुष्कल के युद्ध में पुष्कल की विजय होती है। इसके पश्चात् शिव जी के पार्षद वीरभद्र से शत्रुघ्न का युद्ध होता है।[3] प्रथम हनुमान दौड़ पड़ते हैं—

पूँछ उठाकर सेना के बीच सभी वीरों को लाँघते हुए और मेघ के समान गरजते हुए हनुमान जी महावीर उस नरेन्द्र पुष्कल के पास पहुँचते हैं।

इस पर पुष्कल उनको समझाकर स्वयं लड़ने को उद्यत होते हैं।

हनुमान का इसके पश्चात् रुद्र से युद्ध होता है।[4] रुद्र तुष्ट होते हैं।

आगत्य सविधे रुद्रं समरांगणमूर्धनि ।
जगाद हनुमान वीरः संजिहीर्षुः सुराधिपम् ।
जगाद प्लवगाधीशं धन्योऽसि रघुपानुग ।
महत्कर्म कर्तुं तेऽद्य यत्रेऽहं सुप्रतीषितः ।३१।।

---

१. उपर्युक्त—पृ० ४४४-११, १०-१३।
२. उपर्युक्त—पृ० ४४४—११, १८।
३. उपर्युक्त—पृ० ५१४-५२०।
४. उपर्युक्त—पृ० ५२१-५२२।

न दानेन न यज्ञेन नाल्पेन तपसाह्यहम्।
सुलभोऽस्मि महावेग तस्मात्प्रार्थय मे वरम्॥

हनुमानुवाच—

रघुनाथ प्रसादेन सर्वं मेऽस्ति महेश्वर।
तथापि याचे हि वरं त्वत्तः समरतोषितात्॥३४॥

युद्ध में हनुमान जी की वीरता से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा "हे रामसेवक तुम धन्य हो। मैं दान, यज्ञ, तथा महती तपस्या से भी सुलभ नहीं हूँ। इसलिए जो वर माँगना हो माँग लो। हनुमान जी ने कहा रामजी की कृपा से मुझे सब कुछ प्राप्त है। फिर भी यदि आप वर देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि अभी युद्ध में गिरे हुए पुष्कल एवं मूर्च्छित शत्रुघ्न के शरीर की क्षति न हो। मैं इन्द्र को जीत कर द्रोणाचल लेकर आ रहा हूँ।"

एष पुष्कल संज्ञो नः समरे पतितो हतः।
ततश्च रामावरजः शत्रुघ्नो मूर्छितो रणे।
... ...

एतेषां वपुषो भेदो न भवेत्त्वं तथाऽचर।
यावदिन्द्रं रणेजित्वाऽऽनयामि द्रोणपर्वतम्॥३८॥

इसके पश्चात् हनुमान जी द्रोण पर्वत से औषधि लेने जाते हैं। उस पर्वत को ही वह अपने लांगूल में लपेट कर उठाने का प्रयत्न करते हैं और इस पर उसके रक्षकों से हनुमान का युद्ध होता है। अन्त में उनको देवता लोग औषधि दे देते हैं और उसे लाकर वे सब सेना को जिला देते हैं।[1] इन अध्यायों में हनुमान का पूर्व चरित्र भी बृहस्पति द्वारा वर्णित है।

इसके पश्चात् अश्वमेध का हय सुरथ के राज्य में जाता है। वहाँ हनुमान जी का सुरथ के पुत्र चंपक से और उसके पश्चात् सुरथ से युद्ध होता है।[2] तथा हनुमान जी को सुरथ रामपाश में बाँध लेते हैं। पीछे हनुमान जी स्वयम् उस पाश से छूट जाते हैं। पद्म पुराण के पाताल खण्ड में इस कथा के पश्चात् हमको वाल्मीकि के आश्रम में इस घोड़े के जाने की कथा मिलती है। वहाँ लव के युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है।[3]

शत्रुघ्न ने हनुमान जी को लव से युद्ध करने की आज्ञा दी। हनुमान जी ने

---

[1] उपर्युक्त—४४, ४४-८०; ४५, १-३३।
[2] उपर्युक्त—४४, ७५-८०।
[3] उपर्युक्त—५१, ५५-७१; ५२, १-३६; ५३, १४-२६।

लव को पूँछ में बाँधा। लव ने मुष्टि से मारना प्रारंभ किया। मुष्टि के प्रहार से दुःखी होकर हनुमान जी ने लव को छोड़ दिया।

तब लव ने वायुसुत हनुमान जी की पूँछ पकड़ कर भाई कुश से कहा कि इसे मैं अभी यमपुरी में भेज रहा हूँ। इसके बाद दोनों भाई लव एवं कुश हनुमान जी एवं सुग्रीव की पूँछें पकड़ कर उनको घसीटते हुए ले चले।

सीता जी हनुमान जी को और सुग्रीव को इस प्रकार लव द्वारा घसीटा जाता देख कर कहती हैं कि—

पुत्रौ कपी मुंचतौ तौ महावीरौ महाबलौ।
द्रक्ष्यतो मां यदि स्फीतौ प्राणत्यागं करिष्यत:।।

"बच्चों, इन वानरों को छोड़ दो, ये हनुमान जी हैं, जिन्होंने लंका का दहन किया था और ये वानरराज हैं। इन्होंने क्या अनादर किया है कि इनकी पूँछ पकड़े हो।"

पद्मपुराण के पाताल खंड के ३६ वें अध्याय में पूरा-पूरा रामचरित्र दिया हुआ है। इसमें हनुमान का चरित्र संक्षेप इस प्रकार मिलता है। इसमें तिथियाँ भी मिलती हैं।

एकादशी तिथि को हनुमान जी ने समुद्र पार किया, द्वादशी को शिंशपा वृक्ष के नीचे सीता जी को देखा, और त्रयोदशी को अक्षयकुमार का वध किया, चतुर्दशी को मेघनाद के द्वारा ब्रह्मास्त्र से हनुमान जी बाँधे गये तथा लंकादहन हुआ। पूर्णिमा को हनुमान जी महेन्द्र पर्वत पर लौट आये। यहाँ से पाँच दिन मार्ग में लगे छठे दिन मधुवन में हनुमान जी पहुँच गये। अष्टमी तिथि, उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र तथा विजय नामक मुहूर्त में लंका के लिए प्रस्थान किया गया। माघ शुक्ल नवमी की रात्रि में मेघनाद ने नागपाश में रामजी तथा लक्ष्मण जी को बाँधा। दशमी को गरुड़ जी का आगमन एवं एकादशी तथा द्वादशी को धूम्राक्ष का वध किया गया। तृतीया से सप्तमी तक पाँच दिनों में द्रोणाचल से औषधि आदि लाने की कथा हुई। अठारह दिनों तक श्रीराम एवं रावण का युद्ध हुआ।

पद्मपुराण के तत्रान्तिमं षष्ठमुत्तर खण्ड में पुनः राम चरित्र दिया हुआ है।[१] इसके अनुसार देवताओं ने वानर शरीर धारण किया था।

देवों के देव भगवान् विष्णु ने देवताओं से ऐसा कहा और देवताओं ने पृथिवी पर वानर का रूप धारण किया।

इस स्थान पर बहुत सूक्ष्म में राम चरित्र दिया गया है। हनुमान के विषय की थोड़ी सामग्री मिलती है।

---

१. उपर्युक्त—६, २६९-२७०, पृ० १८५०।

सुग्रीव ने हनुमान आदि वानरों को आज्ञा दी। पवनपुत्र हनुमान जी ने समुद्र लाँघ कर लंका में प्रवेश किया। वहाँ हनुमान जी ने अपने व्रत में दृढ़, उपवास करने के कारण कृश, शोक में डूबी हुई और मलिन वस्त्र पहने हुई सीता जी को देखा। श्रीराम जी की अंगूठी सीता जी को देकर हनुमान जी ने राम एवं लक्ष्मण के वृत्तान्त को सुनाया। इसके वाद हनुमान जी ने रावण के उपवन को ध्वंस किया, वनपालों को मारा, पाँच सेनानायकों को मारा, सात मन्त्रिपुत्रों को मारा, रावण के पुत्र को मारा और तोरण को उपाट दिया। तव मेघनाद ने हनुमान जी को बाँधा और हनुमान जी ने लंका को जलाकर, रामजी के पास आकर लंका की सव कथा सुनायी। ····· फिर राम और रावण के युद्ध का वर्णन है। युद्ध के वीच लक्ष्मण जी का मूर्च्छित होना और हनुमान जी द्वारा औषधि लाकर लक्ष्मण जी को जीवित करना इसका भी वर्णन है।

मार्कण्डेय पुराण में हनुमान का चरित्र नहीं मिलता।[1] इसी प्रकार व्रह्माण्ड पुराण में भी हनुमान का चरित्र नहीं प्राप्त होता। यहां राम कथा का कहीं पता नहीं है।[2]

कल्कि पुराण में राम चरित्र तृतीय अंश के तृतीय अध्याय में मिलता है।[3] इसमें रामायण की भाँति हनुमान जी से राम की भेंट ऋष्यमूक पर्वत के पास होती है।[4]

ऋष्यमूक पर्वत पर श्रीरामजी ने सुग्रीव द्वारा प्रेषित हनुमान जी को देखा। हनुमान जी से सुग्रीव की कथा सुनकर राम जी ने सुग्रीव से मित्रता की और बालि का वध किया। हनुमान जी जानकी को ढूंढ़ने के लिए लंका में गये और वहाँ सीता जी को देखकर और लंका को जलाकर श्रीराम जी के पास लौट आये। रावण के साथ राम जी ने युद्ध किया और रावण को मारा। हनुमान जी सुरक्षित सीता जी को श्रीराम जी को समर्पित कर अपनी नगरी में लौट आये।[5]

---

१. मार्कण्डेय पुराण—डा० कु० रामस्वरूप शर्मा द्वारा अनुवादित सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद सं० १९९२ वि०।

२. रेवरेण्ड फादर बुल्के—रामकथा—पृ० १६०; व्रह्माण्ड पुराण ३, अध्याय ७३; मत्स्यपुराण अध्याय ४७।

३. कल्कि पुराणम्—मुरादाबाद नगर निवासी पण्डितवर बलदेव प्रसाद मिश्र कृत भाषाटीका संहितम्, गंगा विष्णु श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, कल्याण, वम्बई, १९३७ सं०, पृ० १९१-२०७।

४. उपर्युक्त—पृष्ठ १९७—३, ३, ३८।

५. बृहद्धर्म पुराण—पूर्व खण्ड, अध्याय १८—३७-४२ (एशियाटिक सोसाइटी आफ वंगाल कलकत्ता १८९५।

इसमें लक्ष्मण की शक्ति तथा हनुमान का संजीवनी बूटी लाने का प्रसंग नहीं है। यहाँ हनुमान सीता को शुद्ध करके राम को सौंप कर निजपुरी चले जाते हैं। यहाँ इनकी पूंछ का भी वर्णन नहीं है। इन्होंने लंका जलाया परन्तु किस प्रकार जलाया यह कहीं नहीं वर्णित है।

बृहद्धर्म पुराण में दी हुई राम कथा महाभागवत पुराण की कथा से बहुत भिन्न नहीं है। यहाँ भी शिव जी पवनतनय के रूप में प्रकट होने का विचार व्यक्त करते हैं। हनुमान विडाल के रूप में लंका में प्रवेश करते हैं (ओत भूत्वा)[1] लंका पहुँचने पर ये देवी के मंदिर में पहुँच कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे लंका को छोड़ दें और वे सीता के अपमान के कारण रावण से रुष्ट होकर लंका छोड़ देती हैं।[2]

हनुमान जी कहते हैं—हे देवो आप लोग मेरी सहायता के लिए अपने अपने स्थान पर चले जायँ और ऋक्ष तथा वानरों के अंगों में सन्निविष्ट हो जायँ।

जब भगवान विष्णु, ब्रह्मा तथा और देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके मनुष्य का रूप धारण करने को उद्यत हो जाते हैं तो ब्रह्मा देवी से जाकर कहते हैं कि आपकी तथा शिव की सेवा करके रावण ने अमोघ वर प्राप्त कर लिये हैं। उसको मारना कठिन है और फिर आप लंकेश्वरी के रूप में वहाँ स्थित हैं। इस पर देवी कहती हैं—वस्तुतः रावण ने भक्ति से मेरी तथा शंभु की आराधना की है। रावण ने बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त कर ली है और अब उसके लिए कुछ दुर्लभ नहीं है। किन्तु अपने विनाश के लिए अब वह संसार को उद्विग्न कर रहा है।

अब मैं लंका छोड़ती हूँ। अब आपके द्वारा इसका विनाश होगा। आपने मनुष्य का रूप धारण कर लिया है और आपकी पत्नी ने मानुषी का रूप धारण कर लिया है।

शिव जी ने प्रसन्न होकर कहा कि मैं वानरों के द्वारा पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करूँगा और त्रिलोक के दुष्कर कार्य को करूँगा। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। मेरा पराक्रम लोकातीत होगा। मेरे नन्दी ने रावण को शाप दिया है। मेरे समान शरीर वाले और अवतीर्ण होंगे। मैं वानर का रूप धारण कर आपको प्रसन्न करूँगा। लंका में मेरे जाने पर देवी उस पुरी को छोड़ देगी।[3]

इसके पश्चात् वही हनुमान चरित्र मिलता है जो रामायण में है।[4]

---

१. उपर्युक्त--पूर्व खण्ड--अध्याय २०, २।

२. उपर्युक्त-पूर्वखंड, अध्याय २०।

३. उपर्युक्त--पूर्वखण्ड, अध्याय २०, २६-३८।

४. बृहद्धर्म पुराण--अध्याय १९, ५८-७४, अध्याय २०, १-१०।

यहीं हनुमान जी देवी के मंदिर का दर्शन करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे लंका छोड़ दें।[1] इसका विस्तृत विवरण यों मिलता है।

लंका में विचरण करते हुए हनुमान जी ने ऐशान्य कोण में तिन्तिडी के वन में स्वर्णपीठ पर स्थित तथा पुष्पित अशोक वृक्ष को देखा वहाँ मणि मुक्ता आदि से युक्त सुन्दर विशाल मन्दिर था। उस मन्दिर के द्वार खुले थे। मन्दिर में सुन्दर मुखवाली एक देवी विराजमान थी। जिनके हाथ में धनुष एवं वाण थे। उनके नेत्र तीन थे। फूलों की मनोहर माला पहने थीं और वे अट्टहास कर रही थीं। हनुमान जी ने गर्व से हुंकार किया और पूछा तुम कौन हो। अपना परिचय देते हुए हनुमान जी ने कहा मैं वायु का पुत्र हूँ और श्रीराम जी का दास हूँ। मैं राम जी के कार्य से आया हूँ। तब चण्डिका ने कहा—मैं हिमालय की कन्या हूँ और मेरा नाम चण्डिका, काली तथा पार्वती आदि हैं। इसके बाद हनुमान जी ने अपना विशाल रूप प्रकट किया। हनुमान ज़ी के शरीर में राक्षसों के रूप एवं ललाट आदि अंगों में श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीता आदि के रूप दीखने लगे। इस प्रकार हनुमान जी के शरीर में इन रूपों को देखकर चण्डिका ने कहा मैं तुम्हें जानती हूँ तुम साक्षात् महेश्वर हो और रावण के वध के लिए मुझे क्या करना है कहो। हनुमान जी ने कहा आप शक्तिरूपिणी हैं, आप लंका की रक्षा करती हैं। आपके रहते राम जी रावण को नहीं मारेंगे। अतः लंका को आप छोड़ दें। चण्डिका ने कहा कि रावण ने सीता जी का अपमान कर मेरा भी अपमान कर दिया है। अतः मैं लंका छोड़ती हूँ। हनुमान जी ने कहा कि ऐसा वर दो जिससे रामजी विजयी बनें। इस प्रकार सम्भाषण करते हुए रात्रि समाप्त हो गयी और प्रातः चण्डिका ने पीठ का त्याग किया। हनुमान जी ने लंका के दुर्ग में प्रवेश कर विध्वंस करना प्रारंभ किया। रावण ने राक्षसों को युद्ध के लिए भेजा।

हनुमान जी ने उन राक्षसों को मारा, रावण के पुत्र अक्षयकुमार को भी मारा और मेघनाद आदि से युद्ध किया। इस प्रकार छः दिन में ये सब करके हनुमान जी श्रीरामजी के पास पहुँच गये। इस कथा के आधार पर बना एक चित्र है जिसकी छाया यहाँ संलग्न है।

इसके पश्चात् रामायण में दी हुई हनुमान की कथा का सार मात्र है।

---

[1] उपर्युक्त—अध्याय २०, १२-६२; यह प्रसंग देवी का माहात्म्य स्थापित करने के हेतु नया प्राप्त होता है। आश्विन के नवरात्र में जो दुर्गापूजा होती है उसका संकेत भी यहाँ दिया गया है।

देवी भागवत के तृतीय स्कन्ध में राम कथा दी हुई है[1] परन्तु इसमें हनुमा की कोई कथा नहीं मिलती, न इनका समुद्रलंघन, न इनका लंकादहन इत्यादि यहाँ राम के जन्म से लंका के विजय तक की कथा दी हुई है। मंदोदरी क कथानक यहाँ पंचम स्कन्ध में मिलता है।[2]

लिंग पुराण में हनुमान का चरित्र नहीं मिलता है। हाँ, रामावतार के हो के कारणों पर अवश्य प्रकाश डाला गया है।[3] अम्बरीष अयोध्यापति की कन्या जब विवाह योग्य हुई तो उन्होंने स्वयम्बर रचाया। इसमें नारद जी भी पधारे। कन्या को देख कर मोहवश उन्होंने उससे विवाह करना चाहा परन्तु भगवान ने इन्हें वन्दर का मुख प्रदान किया और उस कन्या को स्वयं स्वयम्बर में पधारकर वरण किया। इस पर नारद ने भगवान को शाप दिया। यह कथा 'रामचरि मानस में दी हुई है।

यहाँ महेश्वर की अष्टमूर्ति के वर्णन में पवनात्मज की मूर्ति का स्वरूप प्राप होता है। अध्याय ६

अष्टमूर्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥१॥
पवनात्मज बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते।
ईशानस्य जगत्कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः ॥९॥
शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः।
चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्वकामदः ॥१०॥

नरसिंह पुराण में हनुमान की कथा और पुराणों की भाँति राम कथा के साथ मिलती है।[3] इसमें देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नरों के साथ विद्याधरों का नाम भी आया है।[4] यहाँ विष्णु कहते हैं कि 'तुम देवगण अपने अंशों से वानर रूप होकर पृथ्वी पर अवतार लो तब रावण का नाश होगा।' वे अपने-अपने अंशों से वानर रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं।[5] जब राम सीता को खोजते हुए किष्किन्धा के ऋष्यमूक पर्वत के नीचे पहुँचते हैं तो सुग्रीव पवनतनय हनुमान जी को राम

---

१. श्रीमद्देवीभागवत सभाषाटीका महात्म्यम्—श्रीकृष्णदास क्षेमराज, वेंकटेश्वरस्टीम प्रेस, सं० १९८८ तृतीय स्कन्ध—२८, २९, ३०, पृ० ८६-९५।

२. उपर्युक्त—५, १७, पृ० ५८-६१।

३. लिंगमहापुराण—श्रीकृष्णदास क्षेमराज, श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय मुंबई—१९८१, उत्तर भाग—अध्याय, ५ पृ० २५१-२५४।

४. नरसिंह पुराण—अध्याय ४७-५२। ३. उपर्युक्त—अध्याय ४७-११।

५. उपर्युक्त—अध्याय ४७—३३, ३५।

लक्ष्मण का भेद जानने को भेजते हैं।[1] हनुमान जी भिक्षु का रूप धारण करके राम, लक्ष्मण के पास पहुँचते हैं और उनका सब वृत्तान्त जानकर उनको अपने संग लाकर सुग्रीव से मैत्री कराते हैं। बाली के मरने पर सुग्रीव राज्य पाते हैं। अन्त में सुग्रीव सीता की खोज के हेतु बहुत से पर्वताकार वानरों को एकत्रित करके राम के पास आते हैं।[2] उस समय पवन के पुत्र हनुमान जी वानरों के राजा सुग्रीव से कहते हैं कि 'हे राजन् ये महाराज अत्यन्त दुःखित हैं और सीता जी के वियोग में ये फलादिक भी भोजन नहीं करते। इनके दुःख से लक्ष्मण भी दुःखी हैं। इन दोनों की अवस्था सुनकर इनके भाई भरत भी दुःखी होंगे। इससे अयोध्यावासी सभी दुःखित होंगे। इससे अब सीता जी की खोज कराइये।'[3] इस पर तीनों दिशाओं में वानरों को भेज कर अंगद, जाम्बवन्त, हनुमान, मैन्द, द्विविद, नील आदि को दक्षिण की ओर भेजते हैं।[4] जाम्बवान कहते हैं कि 'रावण सीता को ले गया है इस कारण उसने लंका में ही उन्हें रखा होगा। समुद्र को लाँघने की शक्ति केवल हनुमान में है'[5] तब सुग्रीव हनुमान से लंका जाने को कहते हैं।[6] राम उनसे कहते हैं कि 'तुम हमें अच्छी प्रकार देख लो क्योंकि सीता जी तुमसे पूछेंगी कि हम कैसे हैं और बिना बताये तुम पर विश्वास नहीं करेंगी।' राम इनको अपनी नामांकित अंगूठी भी देते हैं। इस पर हनुमान जी वहाँ से उछल कर चल देते हैं। इनके साथ अंगद इत्यादि भी चलते हैं। खोजते-खोजते ये एक गुहा में ऋषि की पत्नी से मिलते हैं। वह इनको खाने को फल इत्यादि देती हैं और कहती हैं कि सीता का स्थान सम्पाति नाम का गृद्ध जानता है, वह पक्षी महेन्द्राचल के वन में रहता है। इस पर ये लोग वहाँ जाते हैं और सम्पाति लंका में अशोक वन में बैठी सीता को देख कर उनका पता हनुमान को बता देते हैं। जाम्बवान के कहने पर हनुमान जी समुद्र पार करने को उद्यत हुए हैं। ये पूर्व मुख होकर गणों सहित ब्रह्मा जी को प्रणाम करते हैं तथा आकाश मार्ग से प्रस्थान करते हैं।[7] समुद्र की प्रेरणा से मैनाक पर्वत उसे विश्राम करने को कहता है जिससे आदर पूर्वक सम्भाषण

---

[1] उपर्युक्त--अध्याय ५०--५, ६।

[2] उपर्युक्त--अध्याय ५०--७-१६।

[3] उपर्युक्त--अध्याय ५०, ७४-७६।

[4] उपर्युक्त--अध्याय ५०, ८५-८९।

[5] उपर्युक्त--अध्याय ५०, ९०-१०१।

[6] उपर्युक्त--अध्याय ५०, ११७।१२२।

[7] उपर्युक्त--अध्याय ५०, १२३।

करके वे आगे बढ़ते हैं। आगे सिंहिका नाम की राक्षसी मिलती है। उसके मुख पैठ कर हनुमान बाहर आते हैं और सागर लाँघ कर त्रिकूट पर्वत के एक शिख पर कूद जाते हैं।[1] रात्रि के समय लंका नाम की लंका की अधिष्ठात्री देवी क जीत कर लंका में प्रवेश करते हैं। रावण के महल में सीता जी को खोजने के पश्चा वे अशोक वन में पहुँचते हैं। वहाँ शिशुपा वृक्ष के नीचे बैठी जानकी जी को देखते हैं। उसी समय रावण आकर सीता को बहुत प्रकार के प्रलोभन देता है और उन निराशाजनक उत्तर पाकर राक्षसियों से उनको डराने को कह कर चल देता है अब हनुमान को निश्चय हो जाता है कि यही सीता हैं।[3] राक्षसियाँ जब सीता को तंग करना प्रारम्भ कर देती तो त्रिजटा अपना स्वप्न उनको सुनाती है।[4] जब राक्षसियाँ तितर वितर हो जाती हैं तब हनुमान राम का सब वृत्तान्त सीता को सुनाते हैं। फिर उनको विश्वास दिलाने को राम और लक्ष्मण के अंगों के स चिह्नों का वर्णन करते हैं तथा अंगूठी देते हैं।[5] उसके पश्चात् वे सीता जी से चूड़ामणि लेकर चलते हैं फिर अशोक वन को उजाड़ देते हैं।[6] अनेक राक्षसों को मारक तथा रावण को राम, लक्ष्मण का पौरुष सुना कर समुद्र लाँघ कर वापस चले आते हैं।[7] यहाँ लंका दहन का प्रसंग नहीं है। लंका से लौट कर रामचन्द्र जी को हनुमान जी सीता का संवाद देते हैं तथा चूड़ामणि देते हैं।[8] युद्ध में निकुञ्ज नामक राक्षस को हनुमान मार डालते हैं[9] तथा और राक्षसों को मार डालते हैं। फिर जब इन्द्रजीत मंत्र से निर्मित रथ पर चढ़ कर आता है और सारी वानर सेना तथा राम को भी निश्चेष्ट कर देता है तब जाम्बवान के कहने पर हनुमान जी औषधि लाने को जाते हैं। हनुमान जी औषधि लाते हैं और उससे सब वानर तथा रामचन्द्र पुनः उठ बैठते हैं। हनुमान वानरों को लेकर उसी रात्रि में उल्का जलवाकर हाथी-घोड़े सहित सब लंका को जला देते हैं।[10] रावण से युद्ध करते हुए लक्ष्मण को जब

---

[1] उपर्युक्त—अध्याय ५०, १४२-१५८।
[2] उपर्युक्त—अध्याय ५१, १-१२।
[3] उपर्युक्त—अध्याय ५१, १-१२।
[4] उपर्युक्त—अध्याय ५१, १३-२०।
[5] उपर्युक्त—अध्याय ५१, ३०-३५।
[6] उपर्युक्त—अध्याय ५१, ३५-४३।
[7] उपर्युक्त—अध्याय ५१, ४४-४६।
[8] उपर्युक्त—अध्याय ५१, ४६-५४।
[9] उपर्यक्त—अध्याय ५२, ६८। [10] उपर्युक्त—अध्याय ५२, ७२-७५।

शक्ति लगती है तब पुनः हनुमान को विशल्यकरणी औषधि लाने का राम आदेश देते हैं। महावीर जी द्रोण पर्वत को ही ले आते हैं और शीघ्र ही लक्ष्मण जी को पीड़ारहित कर देते हैं।[1] युद्ध के अन्त में देवता राम, लक्ष्मण की पूजा करते हैं और कहते हैं कि 'देखो यह सूर्य के पुत्र सुग्रीव हैं, ये वायु के पुत्र हनुमान हैं।[2]

नीलमत पुराण में हनुमान का चरित्र नहीं प्राप्त होता। यह पुराण कदाचित् सातवीं शताब्दी में लिखा गया था।[3]

नारदीय महापुराण में हनुमान का मंत्र, यन्त्र, उनकी मूर्ति के विषय में सामग्री मिलती है जो तान्त्रिक है[4] इसके अतिरिक्त हनुमान चरित्र भी मिलता है।[5] यह चरित्र रामायण के विवरण से मिलता हुआ है। यहाँ उन्हें विष्णु तथा शिव दोनों का अवतार माना गया है जैसा ब्रह्म पुराण की महाशनी की कथा में वृषाकपि को माना है।

भविष्य पुराण[6] में रावण के जन्म की कथा के पश्चात् हनुमान के जन्म की कथा है।

> गिरो यत्र स्थिता देवी गौतमस्य तनूद्भव।
> अंजना नाम विख्याता कीश केसरिभोगिनी॥३२॥
> रौद्रं तेजस्तदा घोरं मुखे केसरिणो ययौ।
> स्मरातुरः कपीन्द्रस्तु बुभुजे तां शमाननाम्॥३३॥

भविष्य पुराण अध्याय १३१ तथा १३२ ब्राह्म पर्व में सर्वदेवताओं के प्रतिमा बनाने के विषय में कुछ सामग्री प्राप्त होती है। इसी प्रकार की प्रतिमा

---

[1] उपर्युक्त—अध्याय ५२, ८७-९३।

[2] उपर्युक्त—अध्याय ५२, ११२।

[3] नीलमत पुराण—सं० रामलाल कांजीलाल एवं जगद्धरजादू—मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर—१९२४, पृ० ७ भूमिका।

[4] नारदीय महापुराणम्—खेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९८०, पूर्वार्द्ध, अध्याय ७४, १-२०२, यह तन्त्र के अध्याय में दिया गया है।

[5] उपर्युक्त—पूर्वार्द्ध, अध्याय—२९, १-३० तथा ९२ से १०७ इत्यादि। तान्त्रिक सामग्री तन्त्र के अध्ययन में दी गयी है।

[6] भविष्य पुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस, संवत् १८६७।

हनुमान की भी बनी होगी, क्योंकि यह किसी प्राचीन शास्त्रीय नियमों पर आ
रित प्रतीत होती है।[1]

कालिका पुराण में भी हनुमान का चरित्र नहीं प्राप्त होता।[2] यों राम क
यहाँ भी मिलती है जो संक्षेप में है।[3] यहाँ तारावली से उत्पन्न संकर आत्म
की वानर आकृतियों की चर्चा मिलती है। यहाँ इन्हें वैताल भैरव क
गया है।[4]

इस अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि पुराणों में हनुमान का चरित्र प्रा
बाल्मीकि की रामायण में दी हुई हनुमान कथा का विकास है। बहुत सी कथा
उन स्थलों को पूर्ण करने के हेतु भी लिखी गयी हैं जहाँ बाल्मीकि मौन रह गये है
यों शिव महापुराण में इनके शिव के वीर्य से उत्पन्न होने की बात कही गयी
और इनकी माता को गौतम की पुत्री कहा गया है। वृहद्धर्म पुराण में ये अ
विश्वरूप प्रकट करते हैं। नारद पुराण में ये ब्रह्मरूप कहे गये हैं तथा शिव औ
विष्णु के संयुक्त शक्ति के प्रतीक माने गये हैं। इसमें ये गान विद्या के पंडित
बताये गये हैं। इनका मंत्र, यंत्र, कवच इत्यादि भी यहाँ मिलता है। ब्र
पुराण में इन्हें वृषाकपि कहा गया है। इनकी माता को अगस्त के आशीर्वाद
हनुमान का जन्म वायु द्वारा होता है। स्कन्द पुराण में रामेश्वरम् में इनके द्वा
लाये हुए लिंग के स्थापना का विवरण मिलता है। बंगीय महाभागवत पुरा
तथा वृहद्धर्म पुराण में ये जब लंका पहुँचते हैं तो वहाँ देवी को उपस्थित पाते
उनसे यह प्रार्थना करते हैं कि वे लंका छोड़ दें क्योंकि रावण ने सीता का अप
किया है देवी इस पर लंका छोड़ देती हैं। कई और पुराणों में जैसे वामन पुरा
लिंग पुराण, नीलमत पुराण इत्यादि में हनुमान का चरित्र नहीं प्राप्त होता

इनकी मूर्ति के विषय में स्पष्ट संकेत केवल अग्नि पुराण में प्राप्त होता
इसमें इन्हें हाथ में वज्र लिये हुए राक्षस को पीड़ित करते हुए पद्म आसन पर लि
बनाने का निर्देश है।[5]

---

१. भविष्य पुराण—१, १३१, १-३६; १, १३२, १-३२, परिशिष्ट

२. श्री कालिका पुराण—श्रीकृष्णदास खेमराज वेंकटेश्वर प्रेस, मु
सं० १९६४।

३. उपर्युक्त—अध्याय ५३, पृ० ४६-५३।

४. उपरोक्त—अध्याय ३८ पृ० ८१-८३।

५. अग्निपुराण—अध्याय ५१-१६।

तन्त्रों में हनुमान्

नारद पुराण में हनुमान् के मंत्र और उनकी पूजा की विधि जो आगे दी हुई है, उसके अतिरिक्त अगस्त्य संहिता की एक हस्तलिखित प्रति में एक स्थान पर हनुमान् की आकृति शंख, चक्र धारण किये हुए राम के मंदिर के द्वार पर बनाने का संकेत मिलता हैं[1]। यह प्रसंग रामनवमी के पूजन में मिलता हैं—

मनोरमं महोत्साहं पुष्पोघैः समलंकृतम् ॥३४॥
शंखचक्र हनुमद्भ (?) प्राग्द्वारे समलंकृतम् ।
गरुत्मत्शार्ङ्गवाणैश्च दक्षिणे समलंकृतम् ।

आगे रामचन्द्र के देवालय में हनुमान् की मूर्ति बनाने का निर्देश हैं[2]—यह ध्यान इस प्रकार हैं—

कुर्याद्देवालयं रम्यं सर्वनेत्रोत्सवं यथा ।
प्र(ा) कारं कारयेतत्र चतुर्गोपुरसंयुतम् ॥३५॥
पीतं रम्यं प्रकुर्वीत शिलायां चोन्नतोन्नते ।
हस्तद्वयाय तं कुर्याच्चतुरस्रं सुशोभनम् ॥३६॥
अग्रभागे हनूमंतं पीठस्य विनिवेशयेत् ।
पीठशुद्धिं प्रकुर्वीत वक्ष्यमाणविधानतः ।

आगे चल कर हनुमान् को राम की सेवा करते हुए दिखाने का निर्देश है जिसमें रामचन्द्र को सीता तथा लक्ष्मण के साथ हनुमान् को दिखाने का वर्णन मिलता हैं[3]— ऐसे चित्र इस युग में अनेक बने हैं।

उपविष्टं पद्ममध्ये वीरासनमनोहरम् ।
हनुमत्सेवितं चाग्रे कुर्याद्देवं मनोरमम् ॥५॥

यहीं हमें इनका वृषाकपि नाम भी प्राप्त होता हैं[4]।

---

[1] १. अगस्त्य संहिता—सरस्वती भवन—पत्रसंख्या १-७३—आकार १०-८, ४-५ हस्तलिखित—लिपि देवनागरी नं० १४७०२।२५११४ पृ० ५८, २६-३५।

[2] २. उपर्युक्त—पृ० ६४-२९, ३५-३७।

[3] ३. उपर्युक्त—पृ० ६५-३०, ५-३०-१५।

[4] ४. उपर्युक्त—पृ० ६५-३०, ११।

क्रीडंतं सीतया सार्द्धं नीलजीमूतसंनिभम् ।
वृषाकपीच्छांगुष्ठेन वशिष्ठेन स्मृतं विभुम् ॥११॥

हनुमान् को सर्वसिद्धि प्रदान कर्ता भी कहा हैं[1]—

वह्निजायांतरावस्यान्मंत्रो हनुमतः परम्
सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः सर्वेषामपि सर्वदा ।
मालाख्यः परमो मंत्रो मारुतेः सर्वसिद्धिदः ।
.............................।३१॥

इसी ग्रंथ के ३२वें अध्याय में हनुमान् मंत्र भी प्राप्त होता हैं । यहाँ कहा कि श्रद्धा से हनुमान् का स्मरण करने से मुक्ति प्राप्त होती हैं भूत, प्रेत, पिशाच, डाकनी, यक्ष, राक्षस मंत्र के अनुष्ठान में तत्पर मनुष्य को देख कर भा जाते हैं[2]—

मंत्र—कीलकं हा त्रयं प्रोक्तं वेधकं तु हसौं पुनः ॥८॥
हनुमत्प्रीणनं चैवफलमाद्यमुदीरितम् ।
सर्वेप्सितानां दातृत्वमस्य नास्ति न चात्परः ॥९॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्यं नमो भगवते परम् ।
ङं तं प्रकटसंयुक्तं पराक्रमपदं ततः ॥१०॥

श्रीतत्वनिधि में सुदर्शन संहिता का पंचमुखी हनुमान् का ध्यान अंकि हैं । वह इस प्रकार हैं[3]—

अथ पंचमुखांजनेयध्यानम् (सुदर्शनसंहितायाम्)—

पंचवक्त्रं महाभीमं त्रिपंचनयनैर्युतम् ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं कपिवक्त्रं सुतेजसम् ।
दंष्ट्राकरालवदनं भृकुटीकुटिलेक्षणम् ।
अस्यैकं दक्षिणं वक्त्रं नारसिंहं महाद्भुतम् ।
अत्युग्रतेजोवपुषं भीषणं भयनाशनम् ।
पश्चिमे गारुडं वक्त्रं वक्रतुण्डं महाद्युतिः ।
पातालसिद्धिदं घोरं विषभूतादिकृंतनम् ।
उत्तरं सौकरं वक्त्रं कृष्णं दीप्तं शिखोज्ज्वलम् ।

---

१. उपर्युक्त पृ० ६५-३०, ३१ ।

२. उपर्युक्त पृ० ६९-३२, ४-७९ ।

३. श्रीतत्वनिधि—श्रीवेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई सं० १९५८ शाके १८२३ पृ० ५९ ।

सर्वभूतप्रशमनं तापज्वरनिवारणम् ।
उर्द्ध्वं हयाननं घोरं दानवान्तकरं परम् ।
खड्गत्रिशूलखट्वांगं पाशमंकुशपर्वतौ ।
द्रुमगोमुद्रिकामुण्डं दधानं सुरवन्दितम् ।
स्वर्णवर्णः . . . . ।

इस स्वरूप की कई मूर्तियां प्राप्त हैं उनमें से कुछ यहाँ दिखाई गयी हैं।

तंत्र में हनुमान् का ध्यान जो दिया है उसके अनुसार यहाँ उनका वह स्वरूप भी मिलता है—

स्फटिकाभं स्वर्णकांतिं द्विभुजं च कृतांजलिम् ।
कुण्डलद्वयसंशोभि मुखांबुजमहं भजे ।। स्वर्णवर्णः ।

इस ग्रंथ में इनका राम की मूर्ति के साथ भी ध्यान मिलता है। यह श्रीराम कल्प से है—

८ अथ तारक रामध्यानम्—(श्रीरामकल्पे)

वैदेही सहितं सुरद्रुमतलेहैमेमहामण्डपे मध्ये पुष्पकमासने मणिमयेवीरासनैसंस्थितम् । अग्रैवाचयति प्रभंजनसुते तत्वंमुनिभ्यः परं व्याख्यां तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ।।१।। श्यामवर्णो[1] ।।१।।

चिरंजीवि लोगों के ध्यान में इनका अधोलिखित ध्यान मिलता है—

१६६ अथ हनुमद्ध्यानम्—

हनुमान्रामपादाब्जसंगीवर्णिवरः शुचिः ।
संजीवनापहर्ता मे दीर्घमायुर्ददात्विह ।
स्फटिक वर्णः ।।१।।[2]

यहाँ प्लवंग के विषय में कहा है—

प्लवंगे— भवेत्सदा चंचलचित्तवृत्तिः ।
तस्यात्मप्रकृतिः खलु साधु कार्ये ।
धूर्तस्सदाचारविचारहीनः
प्लवंगजो वै मनुजः कृशांगः ।।[3]

१३३. प्लवंगे—अथ पराभवप्लवंगसंवत्सरस्वरूपम्—

पराभवः प्लवंगश्च स्वेतौ पुष्पेशसन्निधौ । तिष्ठत्येकः प्लवत्येकः युवोनावति दर्पितौ ।। श्वेतवर्णौ ।

---

[1] उपर्युक्त—पृष्ठ ४७। [2] उपर्युक्त—पृष्ठ ११८।
[3] उपर्युक्त—पृष्ठ १३९।

यहीं हमें हनुमान् का एक ध्यान और मिलता है—

१४९ अथरुधिरोद्भार्याभिमानि हनूमद्देवताध्यानम्। हनूमंतं वायुसुतं रुधि रोद्गारिसंज्ञकम्। समुद्रलंघनोद्युक्तं दीर्घलांगूलमाश्रये। कनकवर्णः ।।[1]

सरस्वती भवन के एक दूसरे हस्तलिखित सुदर्शन संहिता नाम के तन्त्र ग्रं में[2] हनुमान् के विषय में कोई सामग्री नहीं मिलती। यहीं के एक दूसरी अगस्त्य संहिता की प्रति का भी यही हाल है[3] परन्तु सुदर्शन चक्रराज संहिता में हनुमान को तुष्ट करने की विधि तथा चतुरश्र के भीतर षट्कोण यन्त्र और उसके पूज इत्यादि से विविध सिद्धियों की प्राप्ति का विवरण प्राप्त होता है।[4] विघ्नों रक्षा के हेतु, रिपुओं के नाश के हेतु, व्याधियों को दूर करने के लिये जैसे ज्वर ग्रहजनित व्याधि इत्यादि, सर्प, व्याघ्र, चोर के भय से त्राण पाने के हेतु, ब्रह्म, ग्र राजा के कोप से बचने के हेतु, दुर्भिक्ष इत्यादि के निवारण के हेतु तथा संग्राम शक्ति प्राप्त करने के हेतु इस प्रयोग को करने की व्यवस्था है। दूसरा हस्तलिखि ग्रन्थ हनुमानमाला मंत्र के नाम से सरस्वती भवन में है। यह शौनिक संहिता क अंश कहा जाता है।[5] इसमें व्याधियों को दूर करने के हेतु अग्नि में मंत्रों को प कर आहुति देने का विधान मिलता है। इसी में हनुमान् के ध्यान का भी कु थोड़ा-सा वर्णन मिलता है, यथा—'ईशान मण्डले वृषभारूढ़ हनुमते शूलशक्ति सहिताय।.........भूमण्डले वृश्चिकारूढ़ हनुमते वज्रपाश सहिताय।... अंतरिक्षमण्डले वर्तुलवायुवृषभारूढ़मुद्गर-तोमर-हस्तसहिताय। ब्रह्ममण्ड हंसारूढ़ हनुमते पद्मशक्ति सहिताय......ओम् वीर प्रतापरौद्र भीषणाय ह मते वज्र शरीराय कुंडलकौपीनतुलसीवनमालाधराय सर्वग्रहानुच्चाटय शाकिनी मुच्चाटयोच्चाटय डाकिनीः उच्चाटय चौरसमूहानुच्चाटय शत्रुसमूहानुच्चाटय च्चाटय अंडजसमूहानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्ष रक्ष ओम् नमो भगवते हनु हुं फट् स्वाहा......ओम् नमो भगवते वीर प्रताप हनुमते पीतांवरधराय कन कुण्डल भूषणालंकृताय किरीटतुलसीवनमालाविभूषिताय कनकयज्ञोपवी

---

[1] उपर्युक्त पृ० १४९।

[2] सुदर्शन संहिता—सरस्वती भवन ४१८०३।७।२४।

[3] अगस्त्य संहिता—सरस्वती भवन—४९६५३।३।९८।

[4] हनुमन्मन्त्र विवरणम्—सुदर्शन चक्रराज संहितायाम्—सरस्वती भ ४३८१०।७।४८, ३८०९।२५५१ पृ० ८ परिशिष्ट (क)।

[5] हनुमन्मालामन्त्रः शौनिक संहितास्था :—सरस्वती भवन ७३६८।२५०८ परिशिष्ट (घ)।

कौपीनकटिसूत्रविराजताय श्रीरामचन्द्र मनोभिलषिताय लंकापुरीदहनकारणाय दानवकुलगिरि वज्रदंडाय अक्षयकुमार संहार कारणाय .....

इत्यादि संहिता में जो पांचरात्र आगम हैं, हनूमान् का नाम नहीं मिलता[1]।

शब्दकल्पद्रुम से हनुमत्कल्प उद्धृत हैं उसमें हनुमान् को सिद्ध करने की विधि दी हैं।[2]

शंकर उवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।
हनूमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्॥
एतद्गुह्यतमं लोके शीघ्रसिद्धिकरं परम्।
जयो यस्य प्रसादेन लोकत्रयजितो भवेत्।
तत् साधनविधिम् वक्ष्ये नृणां सिद्धिकरं द्रुतम्।

— — —

नदीकूले विष्णुगेहे निर्जने पर्वते वने।
एकाग्रचित्तमाधाय साधयेत् साधनं महत्।

ध्यानमाह—

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति।
तिष्ठ तिष्ठ रणं दुष्ट घोररावं समुत्सृजन्॥
लाक्षारक्तारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निसमं नेत्रं सूर्य्यकोटिसमप्रभम्।
अंगदाद्यैर्महावीरैर्व्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
एवं रूपम् हनूमन्तं ध्यात्वैव प्रजपेन्मनुम्॥

— — —

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कपिकोटिसमन्वितम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्।
लक्ष्मणं च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुं च क्रोधमुत्पाट्य गृहीत्वा गुरु पर्व्वतम्।
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तम् जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समाव्याप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्।
इति ध्यात्वा षट् सहस्रं जपेत्।

---

[1] अहिर्बुध्न्य संहिता—सं० रामानुजाचार्य ख० १, २, अडेयर लाइब्रेरी, अडेयर, मद्रास १९१६ ई०।

[2] राजा सर राधाकान्त बहादुर—शब्दकल्पद्रुम—भाग ५, पृ० ५०३।

स्वं बीजं पूर्व्वमुच्चार्य्यं पवनं च ततो वदेत् ।
नन्दनंच ततो देयं ङेंऽवसनेऽनलप्रिया ।।
दशार्णोऽयं मनुः प्रोक्तो नराणां सूरपादपः ।
—तन्त्रसारः ।।

हनुमत्संहिता नाम का एक हस्तलिखित ग्रंथ सरस्वती भवन में है[1] इसमें अधोलिखित सामग्री प्राप्त होती है—

ॐ जपत्यनंता ज्वल शंकरप्रियो महावलीवीरवली मुखाग्रणी ।.....
पारासरस्सुरास्सर्वे देवेन्द्रऋषयस्तथा ....६।
रासोत्सव पंच अध्याय ।

इसमें हनूमान विषयक और सामग्री नहीं प्राप्त होती हैं ।

कपीन्द्र प्रयोग नाम का एक हस्तलिखित ग्रंथ सरस्वती भवन में सुरक्षित है।[2] यह ग्रंथ तुलसीदास के नाम पर रचित हैं परन्तु भाषा की दृष्टि से यह उनका लिखा हुआ ज्ञात नहीं होता। हनुमान बाहुक ही के विषय में संदेह है कि तुलसीदास का लिखा हुआ हैं कि नहीं। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

कोई चतुर होई तुरंग नचावै काहु के रूप अनूप घनो गर्व घनो
अति भूषन के ढिग बैठक पावे। मोरे तो एक तुही हनुमान
हनो किन वोहि जो मोहि सतावे ।।६।।
स्वर्ण शैल संकास कोटि रवि तरुण तेज घन, उर विशाल भुजदण्ड चण्ड
नख वज्र वज्रतनु। पिंगनयन भृकुटी कराल रशना रद आनन, कपिश
केश करकश लंगूर खलदल वल भानन । कह तुलसीदास वस जासु उर
मारुत सुत मूरति विकट, संताप ताप तेहि पुरुष कहँ नहिं आवत निकट ७।

इसमें शीश की पीड़ा को दूर करने के हेतु प्रार्थना, नयन की पीड़ा हरने के हेतु प्रार्थना, दांत के दर्द को दूर करने के हेतु प्रार्थना, तालू के पीर को नष्ट करने के हेतु प्रार्थना इत्यादि मिलती हैं।

---

[1] १. हस्तलिखित ग्रंथ ४४६३९।१४९६६ सं० १८७२ देवनागरी लिपि ग्रंथकार अज्ञात।

[2] २. कपीन्द्र प्रयोग : बगलामुखी मन्त्रः, अन्नपूर्णाष्टोत्तरशतनाम हनूमान बाहुक योगादि सहितः ग्रंथकार तुलसीदास सं० २४५२०।४६०१ लिपिकाल सं० १९४८ लिपि हिन्दी।

रुद्रयामल तन्त्र का हनुमन्तैल प्रयोग भी यहाँ मिलता है जिसमें यह वर्णन है कि हनूमान् जी की मूर्ति बना कर तेल में रखे और जब तक दर्द न चला जाय तब तक उसे तेल में रखे रहे इत्यादि।

तन्त्रसार में हनुमान् को संगीत का भी अधिष्ठाता माना गया है। यहाँ शिव पार्वती से कहते हैं कि हनुमान् की पूजा से संगीत में दक्षता प्राप्त होती है[1] यों भरत नाट्य शास्त्र में शिव को ही संगीत का अधिष्ठाता माना गया है।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।
हनुमत्साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्।
एतद् गुह्यतमम् लोके शीघ्रं सिद्धिकरं परम्।
जपी यस्य प्रसादेन लोकत्रयजितो भवेत्।
तत् साधनविधिं वक्ष्ये नृणां सिद्धिकरं द्रुतं।

नारदीय महापुराण में अधोलिखित तान्त्रिक सामग्री हनुमान् के विषय में मिलती है। इसमें हनुमान् का मंत्र, यन्त्र, कवच, पूजाविधि इत्यादि सभी कुछ मिलता है।

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में लिखा जा चुका है आगम अथवा तन्त्र-शास्त्र की कुछ पुस्तकों में हनुमान् की पूजा का विधान नहीं के बराबर है किन्तु इनकी तान्त्रिक उपासना एवं पूजा-पद्धति का विस्तृत प्रकार नारदीय महापुराण में उपलब्ध होता है। वहाँ इनके तान्त्रिक ढंग के मन्त्र का निर्देश करने के अनन्तर बीजों द्वारा न्यास विधि बताई गई है। उसके अनन्तर इनके स्वरूप का ध्यान प्रस्तुत करते हुए इन्हें अञ्जनी के गर्भ से उत्पन्न, कपियों का अधीश्वर, करोड़ों उदीयमान सूर्य के सदृश, संसार में उथल-पुथल मचा देने वाला, राम के चरण कमलों के ध्यान में मग्न, सुग्रीव आदि से सेवित तथा नाद अथवा हुंकार से राक्षसों को त्रस्त करते हुए कहा गया है। मन्त्र जप के अनन्तर घृत और दधि से मिश्रित यवों द्वारा हवन का भी विधान कहा गया है। इसी प्रसंग में मन्त्रों की जप की संख्या के अनुसार उसका विविध प्रकार का फल शत्रुनाश, रोगनाश तथा ग्रह बाधा की शान्ति एवं मन्त्र से अभिमन्त्रित जल के प्रयोग से भूत बाधा, मृगी रोग, ज्वर एवम् अन्यान्य रोगों से मुक्त होकर तत्काल सुखी होना बताया गया है।

---

[1] दिनेशचन्द्र सेन—बेंगाली रामायण युनिवर्सिटी ऑफ कालकटा १९२०-पृ० ५१।

अँगूठे के बराबर हनुमत्प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा कर सिन्दूर से लेप के अनन्त
घर के दरवाजे के सामने गाड़ने अथवा रखने से उस घर में राज सम्वन्धी, रो
सम्वन्धी तथा चोर आदि का भय नहीं होता।

शत्रुनाश का विशेष उपाय---किसी जंगल में रात्रि के समय जाकर भ
अथवा मिट्टी से शत्रु की आकृति बनाकर उसके हृदय-स्थल पर उसका नाम लि
अनन्तर प्राण प्रतिष्ठा कर मन्त्र का जप करते हुए उसे शस्त्र से काटे। मन्त्र
पूरा होने पर शत्रु का नाम ले और छिंधि भिंधि, मारय मारय कहकर दाँतों
होठों को चवावे और जोरों से हथेली मसल कर उसे वहीं छोड़ घर चला आ
इस प्रकार सात दिन करने से शत्रुनाश हो जाता है।

प्रचण्ड शत्रु के नाश के लिए बाल खोलकर दक्षिण दिशा की ओर मुख क
कौए तथा गीध के नख, रोम और पंख आदि से हवन का विधान है।[1]

अनन्तर तेल में भीने उड़दों द्वारा बनाई गई प्रतिमा के बाईं ओर तेल
तथा दाहिनी ओर घी का दीपक जलाकर सविधि पूजन तथा मन्त्र जप का अने
प्रकार का मनोरथ सिद्ध करने का निर्देश प्राप्त होता है।

पुनः यन्त्र धारण का प्रयोग है।

एक दूसरे मन्त्र का पूजन पूर्ववत् ही वताकर सब प्रकार के फलों की प्रा
वताई गई है। किन्तु इनमें ध्यान के रूप और रंग में थोड़ा अन्तर है।

पुनः हनुमान् के ध्यान मात्र से सिद्धि का उपक्रम करते हुए उनके दर्शन
प्रकार वताया गया है। जिसके लिए नदी तट, जंगल, पर्वत अथवा अन्यत्र एका
में जाकर अत्यन्त एकाग्रचित्त से एक लाख मन्त्र जप और विधिवत् पूजन से सि
अर्थात् हनुमान का दर्शन प्राप्त होने की वात कहीं गयीं है।

पुनः सर्वकामदाता प्रयोग, प्लीहानाशक प्रयोग, जेल से छूट आने का प्रयो
तथा अभिचार ध्वज का प्रयोग वताया गया है साथ ही इसके लिए दीपदान
विधि का भी यहाँ विस्तृत वर्णन दिया गया है। और अन्त में एक वहुत ही भावपू
कवच है जिसे श्रीराम ने स्वयं ही कहा है।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन तंत्रों में तथा विशेष रूप से नारद पुराण
हनुमान् का मंत्र, उनका यंत्र, उसका कवच, उनकी तान्त्रिक विधि से पूजा, उन
तन्त्र के आधार पर ध्यान इत्यादि सब मिलता है। यह पद्धति प्राचीन यक्ष पूजा

---

[1] बृहन्नारदीय पुराण-(पूर्व भाग) अध्याय ७४,१-२०२. क्षेमराज श्रीकृ
दास वेंकटेश्वर प्रेस-मुम्बई-सं. १९८०।

[2] बृहन्नारदीय पुराण (पूर्वभाग) तृतीयपाद अध्याय ७५ तथा ७८।

बहुत कुछ मिलती हुई है यों इन्हें शिव का पुत्र शिव का अवतार इत्यादि सब कहा गया है। यक्षों की भी सर्वप्रदाता, सर्वसंकट हरन के रूप में पूजा होती थी तथा होती है जैसी हनुमान् की पूजा यहाँ दिखाई देती है। यों यहाँ इनकी मूर्ति के विवरण में इनका स्वरूप कुछ स्पष्ट नहीं होता।[1]

---

[1] नारदीय महापुराण—अध्याय ७४-११०।

संस्कृत साहित्य में हनुमान्

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की रामायण में वानरों के जन्म का कारण प्र होता है। इसके अनुसार इनका जन्म देवताओं के वीर्य से राम की सहायता हेतु हुआ था। ब्रह्मा ने विष्णु के संसार में अवतरित होने पर देवताओं को आ दी कि वे वानर पुत्रों को उत्पन्न करें—[1]इस प्रकार हनुमान् का जन्म पवन हुआ।[2]

ये वानर अप्सराओं, नागकन्याओं तथा गन्धर्व कन्याओं से उत्पन्न हुए त सभी महाकाय थे, इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे, वलवान् थे तथा विद्‍ वान् थे। सिंह के समान बलवान थे और पत्थरों से युद्ध करते थे।[3]

इन वानरों के नख तथा दंत आयुध थे और उसी के साथ ये सर्वशास्त्र विशा भी थे। पहाड़ों को विचलित करने में समर्थ थे तथा पेड़ों को उखाड़ सकते अपने वेग से समुद्र को क्षुब्ध कर सकते थे, अपने पद प्रहार से पृथ्वी में दरार उ कर सकते थे तथा वड़े-वड़े वनों को नष्ट कर सकते थे।[4] ये वीर नख और द के आयुध से युक्त देखने में भयंकर थे, सबके सिंह के समान दाँत थे तथा इन आभा गिरि, मेघ या कुंजर के समान थी।[5]

वानर वड़े रूपवान भी थे, सादन सन्नाद का विवरण यों मिलता है[6]—

यस्मान्न परमं रूपं चतुष्पादेषु विद्यते।
श्रुतस्सन्नादनो नाम वानराणां पितामहः॥

इन वानरों को तामे के रंग का, सुवर्ण आभायुक्त वताया गया है—[7]

एते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः।
लंकामेवाभ्यवर्तन्त सालतालशिलायुधाः॥

---

१. वाल्मीकि रामायण—१-१७, १-६।
२. उपर्युक्त—१-१७, १६।
३. उपर्युक्त १, १७, २३-२५।
४. उपर्युक्त—१, १७, २६-२७।
५. उपर्युक्त—४, ३१, २४।
६. उपर्युक्त—६-२७, १८।
७. उपर्युक्त—६-४२ १४।

इनका साहस अकथनीय था तथा देवताओं के समान पराक्रम था।[1]

एते दुष्प्रसहा राजन् वलिनः कामरूपिणः।
दैत्यदानवसंकाशा युद्धे देवपराक्रमाः॥

ये सव अपने राजा की, सदैव हितकामना करते थे।[2]

निदेशवर्तिनस्सर्वे सर्वे गुरुहिते रताः।
अभिप्रेतमनुज्ञातुं तव शक्ष्यन्त्यरिन्दम॥

वायुपुराण में इन वानरों की लम्बाई यों दी गयी है[3]—

अंगुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशांगुलं विना।
पंचाशतंह्यङ्गुलानां च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः।

इनका अवगुण केवल यह था कि ये चपल थे[4]—

चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः।

वानरों का अपना इतिहास था जैसा हनुमान् के निम्नांकित कथन से ज्ञात है[5], तथा ये देवताओं के यहाँ निमन्त्रित होते थे।

वानराणां प्रभावो हि न केन विदितः पुरा।
देवतानां संकाशं च ये गच्छन्ति निमन्त्रिताः॥

इनका भोजन फल था कन्द था[6] ये मधु भी पीते थे[7] तथा अधोवस्त्र पहिनते थे[8]—

हनुमान् के चरित्र के विषय में वाल्मीकि रामायण के आधार पर यह ज्ञात होता है कि ये केसरी के ज्येष्ठ पुत्र थे[9] तथा मरुत से उत्पन्न हुए थे।

एवं पश्य पुरादृष्टं वानरं पुनरागतम्।
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति श्रुतः॥११॥

---

[1] उपर्युक्त—६-२८, ३।

[2] उपर्युक्त—४-४०, ६।

[3] वायु पुराण—५९-१२ आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज न० ४९ पूना १९०५ ई० पृ० २००।

[4] वाल्मीकि रामायण—६, ५७, ९।

[5] उपर्युक्त—५-५८, १४२ सुन्दरकाण्ड।

[6] उपर्युक्त—४-१७, २५।

[7] उपर्युक्त—४, ३३, ७।

[8] उपर्युक्त—४, १०, २६; ४, १६, १६।

[9] उपर्युक्त—६-२८, ११-१२।

हनूमानिति विख्यातो लंघितो येन सागरः।
कामरूपो हरिश्रेष्ठो वलरूपसमन्वितः॥

वाल्मीकि रामायण के आधार पर ये ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव के
बैठे थे क्योंकि ये उनके मंत्री थे जब राम लक्ष्मण वहाँ पहुँचे थे।[1]

राम लक्ष्मण को देखकर सुग्रीव को भय हुआ। उस पर हनुमान् जी ने कह
राजा के वहुत से मित्र हो सकते हैं इनका विश्वास नहीं करना चाहिये।
विषय में जान लेना चाहिये। इस पर ये स्वयं उनका भेद लेने गये।[2]
जाकर उन्होंने कपि रूप छोड़ कर भिक्षु रूप धारण किया[3] तथा बड़े मधुर शब्द
इन्होंने राम से उनके विषय में प्रश्न किये। इनके भाषण की राम ने प्रशंसा की

तमभ्यभाषत सौमित्रे सुग्रीवसचिवं कपिम्॥
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम्।
नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषश्शक्यमेवं प्रभाषितुम्।
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन वहुधा श्रुतम्।
वहु व्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥ इत्यादि

इन्होंने राम तथा सुग्रीव की मैत्री कराई[5]—

— — —

चक्राग्निसाक्षिकं सख्यं राघवस्सह लक्ष्मणः॥

वालि के मरने के पश्चात् हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी से कहा कि 'आ
कृपा से सुग्रीव ने अपने पिता पितामह का यह राज्य प्राप्त किया है। अब
नगर में प्रविष्ट होकर विविध गन्ध तथा औषधियों से स्नान कीजिये तथा
और माला धारण कीजिये।'[6] इस पर रामचन्द्र जी ने कहा कि 'हमें तो ह
पिता ने दूसरी आज्ञा दी है। यह अंगद वीर है इनको युवराज पद पर अभि
करों'।[7]

---

[1] उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—२, १३।
[2] उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—२, २१-२८।
[3] उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड ३, २।
[4] उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड, ३, २६-२९।
[5] उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—५८, १३८।
[6] उपर्युक्त—४, २६, ४-७।
[7] उपर्युक्त—४, २६, १२।

इममप्यंगदं वीर यौवराज्येऽभिषेचय।
ज्येष्ठस्य स सुतो ज्येष्ठस्सदृशो विक्रमेण ते॥

यहाँ हनुमान् जी को ही सीता की खोज के हेतु वानरों को एकत्रित करने की आज्ञा दी गई।[1] सीता की खोज के लिये जो वानर भेजे गये उनमें हनुमान्, नील, अंगद, जाम्ववान् इत्यादि को दक्षिण की ओर सुग्रीव ने प्रेषित किया[2] हनुमान् को विशेष रूप से कहा कि

'हे महाकपि तुम में गति, वेग, तेज एवं शीघ्र कार्य करने की शक्ति है। हे वीर तुम अपने पिता वायु के समान महावली हो। तुम्हारे समान तेजस्वी पृथिवी पर कोई प्राणी नहीं है। हे हनुमान् बल बुद्धि एवं पराक्रम वस्तुतः तुम्हारे में ही है। अतः सीता जी जिस प्रकार प्राप्त होंगी उस उपाय को ठीक ठीक तुम ही कर सकते हो।'[3]

जांववान् ने इनके जन्म तथा बालकपन का वर्णन किष्किन्धाकाण्ड में इस प्रकार किया है[4]—

पुंजकस्थली नाम की एक श्रेष्ठ अप्सरा थी। वह अंजना नाम से उत्पन्न हुई तथा केसरि नाम के कपि की पत्नी हुई। वह तीनों लोक में रूप की प्रतिमा समझी जाती थी। शाप के कारण उसका वानरी रूप था परन्तु समय-समय पर वह इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी। यह वानर राजा कुंजर की लड़की थी। कपि का रूप पाने पर भी उसके सब अंग मनोहर थे। एक वार स्त्री रूप धारण करने पर रूप तथा यौवन की प्रतिमा बन गई। विचित्र माला, आभूषण धारण करके तथा सुवर्ण के तारों से सुशोभित वस्त्र पहिन कर वह प्राविड समुद्र के किनारे के पर्वत के शिखर पर घूम रही थीं। वह विशाल नेत्रवाली पीत तथा लाल रंग के वस्त्र से सुशोभित हो रही थी। इसके रूप को पवन ने देखा—इसके स्तन पीन थे, इसके नयन तथा मुख सुन्दर थे। इसके सुन्दर अंग पर पवन काम-मोहित हो गये। उन्होंने अपनी वड़ी-वड़ी भुजाओं से इसे लपेट लिया। मन्मथ से विद्ध पवन ने उसके साथ रमण किया। इस पर अंजना ने कहा कि 'मेरे पातिव्रत को कौन नाश कर रहा है।' इस पर मारुत ने उत्तर दिया—'मैं तुझे कष्ट नहीं दे रहा हूँ, हे सुभगे भय को त्याग दो। मेरे साथ रमण करने से तुझे कोई हानि नहीं हुई है। हे यशस्वीनि ! वीर्य तथा बुद्धि से सम्पन्न तुझे जो पुत्र प्राप्त होगा वह महा-

---

[1] उपर्युक्त—४, ३७, २-३४।
[2] उपर्युक्त—४, ४१, २७।
[3] उपर्युक्त—४, ४४, ५-७।
[4] उपर्युक्त—४, ६६, ८-३३।

तेज सम्पन्न, महाबली और पराक्रमी होगा, लाँघने में तथा गति में मेरे समा
होगा।' इस प्रकार कह कर अंजना को तुष्ट करके पवन चले गये। गुफा में
अंजना ने श्रेष्ठ कपि को जन्म दिया। एक बार बालक उदित होते हुए सू
फल समझ कर उनकी ओर दौड़ पड़ा। उसको सूर्य के तेज के कारण कोई
नहीं हुआ। इन्द्र ने उसे वज्र मारा जिससे उसकी बाईं ठुड्डी भंग हो गयी।
कारण उस बालक का नाम हनुमान् पड़ गया। वज्र के लगने पर वह गिर
उस बालक को आहत देख कर वायु को बड़ा क्रोध हुआ। वायु ने बहना बन्द
दिया जिससे त्रैलोक्य में हाहाकार मच गया। इस पर ब्रह्मा जी ने पवन
शांत किया और हनुमान् को वर दिया कि 'शस्त्र से तुम्हारा वध कोई नहीं
सकेगा, समर में तुम अति विक्रमी होगे। वज्र की चोट जो तुम्हें लगी है
तुम स्वस्थ हो जाओगे।' इन्द्र ने भी प्रेम से यह उत्तम वर दिया कि 'तुम्
इच्छा मृत्यु होगी। तुम्हारे आशीर्वाद मात्र से ही पुरुषों को आयु, ऐश्वर्य, श्री तु
प्राप्त हो जायगी।' तुम केसरी के पुत्र हो। मारुत के समान ही तुम्हारे में
है। वायु के सुत होने के कारण तुम भी उन्हीं के समान वेगवान हो
पक्षिराज के समान दक्ष तथा विक्रम सम्पन्न हो। हनुमान् ने अपने मुख से वै
को अपना परिचय इस प्रकार दिया है।[1]

माल्यवान्नाम वैदेही गिरीणामुत्तमो गिरिः।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः॥
स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरत्॥
तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि।
हनुमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥

हे वैदेहि! माल्यवान् नामक गिरि से आगे गोकर्ण नाम का पर्वत है।
पर देव एवं ऋषियों से समादृत महाकपि मेरे पिताजी रहते हैं। जिनका ना
केसरी है। उनके घर में पवनदेव के द्वारा मेरी उत्पत्ति हुई है। मेरा नाम हनुमान्

युद्धकाण्ड में केसरी को कांचन पर्वत का रहनेवाला कहा है[2]—इससे
मिलती-जुलती कथा इनके जन्म की उत्तरकाण्ड में भी मिलती है। वहाँ वायु
इन्हें यह भी वर दिया था[3]—

---

[1] उपर्युक्त—६, ३६, ८०-८२।
[2] उपर्युक्त—६, २७, ३८।
[3] उपर्युक्त—उत्तर, ३६-१४। गीताप्रेस उत्तरकाण्ड।

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति ॥४॥

जव सुग्रीव को वाली ने देश-निकाला दे दिया था उस समय हनुमान् ने सारे संसार की परिक्रमा की थी तथा सूत्र, वृत्ति और परिशिष्ट सहित टीका का अध्ययन किया था।[1] इनके सदृश किसी का अध्ययन नहीं था—

नह्यस्य कश्चित्सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव।
सर्वासु विद्यासु तयोर्विधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ॥

उत्तरकाण्ड में यह भी कथा मिलती है कि हनुमान् जी जव इन्द्र के ऐरावत के पास पहुँचने लगे तव इन्द्र ने इन पर अपना वज्र छोड़ा।[2] व्रह्मा जी के आग्रह पर इन्द्र ने इन्हें कमल के पुष्पों की माला दी तथा अपने वज्र से सदैव के लिये अभय दान दिया।[3] यहाँ अगस्त मुनि से हनुमान् के विषय में यह भी प्रश्न किया गया कि हनुमान् जी ने इतने वड़े-वड़े कार्य किये,—जैसे समुद्र का लाँघना, सीता को खोजना, रावण के मन्त्रिसुत तथा उसकी सेना को पराजित करना, रावण के पुत्र अक्ष को मारना, लंकापुरी को जलाना और रावण से युद्ध में अद्‌भुत पराक्रम दिखाना इत्यादि, जो इस वात का परिचय देता है कि इनकी शूरता, दक्षता, वल, धैर्य, वुद्धिमत्ता, नीति, पराक्रम तथा प्रभाव का कोई दूसरा नहीं था तो इन्होंने जिस समय वाली और सुग्रीव का विरोध हुआ तो उस समय सुग्रीव के हित करने के लिये उसे क्यों नहीं भस्म कर दिया—इस पर अगस्त मुनि ने उनके वालकपन की लीलाओं का वर्णन किया—

महर्षि अगस्त जी ने कहा कि हे राम आप हनुमान जी के विषय में सत्य कह रहे हैं। वल, वेग, गति तथा वुद्धि में हनुमान् जी की समता कोई नहीं कर सकता। इनके वल का सही-सही माप करना वड़ा कठिन है। मुनियों ने इनको शाप दिया है कि तुमको अपने वल का पूरा-पूरा ज्ञान तव होगा जव दूसरा कोई तुम्हें वोध कराएगा। वाल्यकाल में भी इन्होंने जो पराक्रम किये हैं, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।[4]

---

[1] उपर्युक्त—उत्तर ३६ ४४ ४५। गीता प्रेस।

[2] उपर्युक्त—७, ३५-४६। उत्तरकाण्ड को कतिपय विद्वान् प्रक्षिप्त अंश मानते हैं।

[3] उपर्युक्त—७, ३६, १०-१२।

[4] उपर्युक्त—७-३५, १४-६५ गीता प्रेस गोरखपुर सं० २०१७ द्वितीय भाग।

सत्यमेतद् रघुश्रेष्ठ यद् ब्रवीषि हनूमति।
न बले विद्यते तुल्यो न गतौ न मतौ परः॥
अमोघशापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बली सन्नरिमर्दन।
बाल्येऽप्येतेन यत् कर्म कृतं राम महाबल।
तन्न वर्णयितुं शक्यमिति बाल्यतयास्यते॥
यदि वास्ति त्वभिप्रायः संश्रोतुं तव राघव।

यहाँ हनुमान् के वरप्राप्ति की कथा का और विस्तार मिलता इनकी जन्म की कथा में वाल्मीकि ने उत्तरकाण्ड में आकर कुछ भेद कर दिया

ब्रह्माजी ने अपनी लम्बी आभरणयुक्त सुन्दर भुजा से बालक हनुमान् सहलाया। उनके स्पर्श मात्र से हनुमान् जी पुनः जीवित हो गये जैसे ज सिंचन से सस्य जीवित हो जाता है। हनुमान् जी में प्राण का संचार देखकर प देव बड़े प्रसन्न हुए और सभी चराचर में पुनः पहले की तरह बहना आ कर दिया।[1]

बालकपन में ये ऋषियों को कष्ट देते थे इस पर ऋषियों ने इन्हें शाप दि था कि इनको अपने बल का तब तक बोध न होगा जब तक कोई न कहेगा–

वेग से सम्पन्न ये वानरश्रेष्ठ ऋषियों के आश्रम में मनमाना उपद्रव क थे। ऋषियों के पात्रों को तोड़ देना उनके वल्कल वस्त्रों को फाड़ देना, उनके आश्रम के वृक्षों का विध्वंस करना इनका सामान्य कार्य था। ये वा अञ्जनीकुमार ऋषियों के द्वारा मना करने पर भी नहीं मानते तब भृगु, अत्रि अंगिरा के वंशज ऋषियों ने इसे शाप दिया कि जिस बल के कारण तुम हम लो को कष्ट दे रहे हो उस बल का ज्ञान तुम्हें तब तक न होगा जब तक कोई तु उसका स्मरण न दिलाये। जब तुम्हारी कीर्ति कोई तुम्हें सुनावेगा तब तुम्हारा बढ़ने लगेगा। ऋषियों के इस शाप से हनुमान् जी शान्त भाव से रहने लगे। बा एवं सुग्रीव के पिता के साथ इनकी बड़ी मैत्री थी। भगवान् रामजी के पर बालि एवं सुग्रीव के वैर के समय भी ये अपने बल को नहीं जान पाये

उत्तरकाण्ड के इस अध्याय में पुनः इनका चरित्र मिलता है जो पूर्व क की पुनरावृत्ति है। हनुमान् के चरित्र की विशेषता वाल्मीकि ने इस प्र दिखाई है—

---

[1] उत्तरकाण्ड में हनुमान् के पुनर्जीवन की बात कही गयी है पर किष्किधाकाण्ड में इन्हें केवल चोट लगने की बात मिलती है।

रामचन्द्र ने भी सव वानरों में हनुमान् को ही स्वनामांकित अपनी अंगूठी पहिचान के लिये दी[1]। हनुमान् ने जव अंगूठी ली तव राम को प्रणाम किया और उनके चरण स्पर्श किये जो उनके विनयी स्वभाव का द्योतक था।

हनुमान् जी ने मार्ग में जाते हुए वानरों के क्षुधित, तृषित होने पर विवर दिखाया।[2] इन्हीं को वानर सेनापतियों ने लंका भेजा[3]। हनुमान् ने इस पर सवकी वंदना की तथा महेन्द्रगिरि पर समुद्र को लाँघने के लिये चढ़े[4]—स्थान स्थान पर इनकी वुद्धि तथा विनय का महर्षि वाल्मीकि ने परिचय दिया है।

आरुरोह नगश्रेष्ठं महेन्द्रमरिमर्दनः।
— — — — — — — — — — — — — —
स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयम्भुवे।
भूतेभ्यश्चांजलिं कृत्वा चकार गमने मतिम्[5] ॥८॥
अंजलिं प्राङ्मुखः कृत्वा पवनायात्मयोनये।
ततो हि ववृधे गन्तुं दक्षिणो दक्षिणं दिशम् ॥९॥

समुद्र पार जाते हुए हनुमान् चन्द्रमा के समान तेजवान दिखाई देते थे[6]—

प्रच्छन्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव लक्ष्यते।

इनके ऊपर देव गन्धर्व पुष्प वर्षा कर रहे थे[7]—

ववर्षुः पुष्पवर्षाणि देवगन्धर्वदानवः।

समुद्र ने मैनाक पर्वत को इनके विश्राम के हेतु खड़ा किया।[8] इन्होंने उसके सम्मानार्थ उसका स्पर्श किया और आगे वढ़े। नागमाता सुरसा को जव देवताओं ने इनकी परीक्षा के हेतु भेजा तो जैसे जैसे सुरसा ने अपना मुख वढ़ाया वैसे ही हनुमान् ने भी अपना शरीर वड़ा किया। जव सुरसा ने शतयोजन का अपना मुख किया तो हनूमान् ने अंगुष्ठ मात्र का अपना शरीर वना कर उसकी जिह्वा पर होकर

---

१. उपर्युक्त—४, ४४-१२-१३।
२. उपर्युक्त—४, ५०-३८-४१।
३. उपर्युक्त—४, ६६-१-३९।
४. उपर्युक्त—४, ६७, ४३।
५. उपर्युक्त—५, १, ८-९।
६. उपर्युक्त—५, १, ८३।
७. उपर्युक्त—५, १, ८४।
८. उपर्युक्त—५, १, १०१-१०२।

वाहर आ गये।[१] फिर सिंहिका नाम राक्षसी का सामना हुआ। उसको मार कर हनूमान् आगे बढ़े।[२] इसके पश्चात् स्त्रीरूप धारिणी लंका से इनकी भेंट हुई।[३] जब हनुमान् जी ने सीता को खोजते हुए रावण के घर में प्रवेश किया और वहाँ उसकी स्त्रियों को सोये हुए देखा तो उनका मन क्लान्त हो उठा और सोचने लगे कि ये तो मेरा धर्म ही लोप तो नहीं कर देंगी।[४] इससे ऐसा भान होता है कि जैसे ये ब्रह्मचारी हों यों कहीं वाल्मीकि ने इन्हें इस विशेषण से सम्बोधित नहीं किया है न इन्हें ब्रह्मचारी बताया है।

अशोक वन में प्रविष्ट होने के पूर्व हनुमान्‌जी वसुओं को, रुद्र को, इन्द्र को, यम को, वायु को, चन्द्र को, अग्नि को, गरुड़ को, राम और सीता को नमस्कार किया।[५] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये आर्य थे।

वसून्रुद्रांस्तथाऽदित्यानश्विनौ मारुतोऽपिच ॥
नमस्कृत्वा गमिष्यामि राक्षसां शोकवार्धनः।

इसके पश्चात् हनुमान् ने सीता जी का अशोक वनमें दर्शन किया[६]—यहां वाल्मीकि ने सीता की अवस्था का बड़ा उत्कृष्ट चित्र उपस्थित किया है।

उपवासकृशां दीनां निश्वसन्तीं पुनः पुनः।
ददर्श शुक्ल पक्षादौ चन्द्ररेखामिवापराम्।

— — — — — — — — — — —

अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च।
शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ॥२३॥ इत्यादि।

हनूमान् जी ने इनसे वात करने के पूर्व बहुत विचार किया कि इनसे बातें करें कि नहीं[७]—

अनेन रात्रिशेषेण यदिनाश्वास्यते मया।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥

सीता की आज्ञा पाने पर ही हनुमान्‌जी उनके सम्मुख प्रकट हुए तथा उनको नमस्कार किया।[८]

---

१. उपर्युक्त—५, १, १५७-१६०।
२. उपर्युक्त—५, १, १७४-१८८।
३. उपर्युक्त—५, ३, ३०।
४. उपर्युक्त—५-११-३७-४१।
५. उपर्युक्त—५, १३-५६-५८। ६. उपर्युक्त—५, १५, १९-२१, २३।
७. उपर्युक्त—५-३०, १२-१३; ५, ३१, १। ८. उपर्युक्त—५-३३, १-२

सीता जी इनके वचनों को सुन कर हनुमान् के विषय में सोचने लगीं कि इसने कानों को मधुर लगनेवाले वचन कहे हैं, यह सूर्य के समान तेजस्वी है, शशि के समान सुखप्रद है, कुवेर के समान सर्वलोक का राजा है, विष्णु के समान विक्रमी है तथा कामदेव के समान सुंदर है।[१]

जब सीता को हनुमान् पर विश्वास हो गया तब इन्होंने राम की दी हुई रामनामांकित मुद्रिका सीता को दी तथा अपना परिचय दिया।[२]

वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामांकितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥२॥

इनकी जानकी ने प्रशंसा इस प्रकार की 'तुम विक्रांत हो, समर्थ हो, ज्ञानवान हो, सौ योजन समुद्र को तुमने गोपद के समान कर दिया तुम वानर नहीं हो! इत्यादि।[३]

सीता के कहने पर कि तुम कैसे राक्षसों से लड़ोगे तो हनुमान् ने अपना वास्तविक शरीर प्रकट किया।[४]

तत्पश्चात् रामचन्द्र के हेतु संदेश देकर हनुमान् को सीता ने अपनी चूड़ामणि दिया।[५]

फिर अपने वल का दशानन को प्रमाण देने के हेतु इन्होंने प्रमदवन को नष्ट कर दिया[६]—इस कृत्य को सुनकर दशानन ने हनुमान् को पकड़ने को वीर सेनापति भेजे।

हनुमान् जी ने दशानन के भेजे हुए सभी वीरों को नष्ट कर दिया।[७] तथा चैत्य प्रासाद को भी उखाड़ दिया। इसके पश्चात् हनुमान् को ब्रह्मास्त्र से पराजित करके नागपाश में बांध कर इन्द्रजीत रावण की सभा में ले गया।[८] यों हनुमान् ने सोचा कि मुझे तो ब्रह्मा का वर प्राप्त है कि किसी अस्त्र से बन्धन न होगा परन्तु

---

१. उपर्युक्त—५, ३४-२८-३०।
२. उपर्युक्त—५, ३६-२-३।
३. उपर्युक्त—५, ३६-७-११।
४. उपर्युक्त—५, ३७-३२-३८
५. उपर्युक्त—५, ३९-६९-७०।
६. उपर्युक्त—५, ४१-१९।
७. उपर्युक्त—५, ४२-४२।
८. उपर्युक्त—५, ३४,३-७।

यह उनका अस्त्र है इस कारण इसका अपमान ठीक नहीं है।[1] दशानन के पूछ पर हनुमान् जी ने कहा 'राक्षसराज के दर्शन के हेतु मैंने वन का विनाश किया मैं रघुनन्दन का दूत हूँ'[2] जव रावण हनुमान् के वध को उद्यत हुआ[3] तो विभीष ने समझाया कि "दूत का वध उचित नहीं है"।[4] रावण ने कहा कि "कपि ममता पूँछ पर रहती है इस कारण उसे ही जला दो[5]—

कपिनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु॥

लांगूल को जलते देखकर हनूमान् ने वन्धन तोड़ कर लंका के घरों को ज डाला[6] फिर यह सोच कर कि कहीं सीता तो नहीं जल गईं वे उनके दर्शन को गये।[7] इसके पश्चात् समुद्र लांघने को पर्वत पर चढ़े और वहाँ गर्जन किया। उस पार पहुँचने पर उनके साथियों ने उनका अभिवादन किया—तथा मूल फ खाने को दिया।[8]

इसके पश्चात् हनुमान् सहित मधुवन में वानर प्रविष्ट होकर मधुफल खा लगे (५, ६२, ६) वहाँ से ये सव सुग्रीव सहित राम के पास आये (५, ६५, १) हनुमान् ने चूड़ामणि राम को दी तथा वहाँ का सव हाल सुनाया[10]।

. . . .

प्रणम्य शिरसा देव्यै सीतायै तां दिशं प्रति॥ (इत्यादि)।

राम ने हनुमान् का विवरण सुन कर पूछा कि "किस प्रकार उस दुर्गम लं के कोट में तुमने प्रवेश पाया?"[11]

---

१. उपर्युक्त—५-४८, ४०-५४।
२. उपर्युक्त—५-५०, १४-१९।
३. उपर्युक्त—५-५२-११।
४. उपर्युक्त—५-५२-१३-२२-३।
५. उपर्युक्त—५-५३-३।
६. उपर्युक्त—५-५३-९-२३-५-५४, १-५२।
७. उपर्युक्त—५-५५-१२-५६-१-६।
८. उपर्युक्त—५-५६-९-२९।
९. उपर्युक्त—५-५७-२९, ३३।
१०. उपर्युक्त—५-६५-७-२२; ६१, १-३४।
११. उपर्युक्त—६-१; २-१४।

इस पर हनुमान् ने लंका के दुर्ग, परकोटे, उसके द्वार, परिखा, उन पर के यन्त्रों इत्यादि का विवरण रामचन्द्र जी को दिया।[1] इससे यह पता लगता है कि हनुमान् युद्धविशारद थे। रामचन्द्र जी ने उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र तथा हस्त नक्षत्र के बीच के समय को प्रयाण का समय निश्चित किया[2]—जो ज्योतिष की दृष्टि से विजय को देनेवाला कहा गया है।

विभीषण जब राज के पास आये तो हनुमान् जी ने गूढ़ राजनीति से भरे वचन कहे[3]—जो उनके नीतिज्ञ होने का परिचय देते हैं।

दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि।
युक्तमागमनं तस्य सदृशं तस्य बुद्धितः॥५६॥ इत्यादि

उन्होंने कहा कि यह रावण को दुरात्मा समझ कर तथा आपको विक्रमी समझ कर आया है। इसका मुख प्रसन्न है इस कारण यह दुष्ट भाव से नहीं आया है। देश काल के अनुसार क्या करना चाहिये यह जानता है।

लक्ष्मण को शरों से युक्त देख कर राम विषाद से पूर्ण हो गये उस पर सुषेण ने कहा कि देवासुर संग्राम में आहतों को मंत्रों से युक्त औषधि से वृहस्पति जी ने चिकित्सा की थी[4]।

यहाँ सुषेण राम चरित मानस की भाँति लंका के वैद्य नहीं थे ये वानर सेनापति हैं। इनके कहने पर हनुमान जी उस औषधि को लेने जाते हैं[5]।

ततःस्सुपर्णः काकुत्स्थो दृष्ट्वा प्रत्यभिनन्दितः।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्र समप्रभे॥३८॥
वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोस्संरुरुहुर्व्रणाः।

जब रावण ने धूम्राक्ष को वानरों को मारने को भेजा तब हनूमान् ने जाते हुए देखा कि यह सेना को व्यथित कर रहा है। इन्होंने एक विपुल शिला को लेकर उस पर आकाश से फेंका जिससे वह मर गया[6]। हनुमान् तथा रावण के प्रथम युद्ध के समय तो हनूमान् जी ने रावण को ललकार कर कहा कि 'स्मरण

---

१. उपर्युक्त—६, ३, ७-३०।
२. उपर्युक्त—६, ४, ६।
३. उपर्युक्त—६, १७, ५६-६४।
४. उपर्युक्त—६, ५०, २६-३२।
५. उपर्युक्त—६, ५०, ३८-३९।
६. उपर्युक्त—६, ५२, २७-३९।

कर लो मैं तुम्हारे पुत्र, अक्षयकुमार का हन्ता हूँ।' यह कह कर वे आक्रमण क
हैं। रावण ने इनके वल की प्रशंसा किया है।[१]

हनुमान् की पीठ पर चढ़ कर राम ने युद्ध किया। यहाँ हनुमान् को र
के वाहन के रूप में दिखाया गया है।[२]

इस युद्ध के पश्चात् रावणसुत त्रिशरा से हनुमान का घोर युद्ध हुआ औ
वह उनके हाथ मारा गया[३]। इन्द्रजीत ने रामलक्ष्मण इत्यादि सवको जव घाय
करके निर्जीव कर दिया तव विशल्या लेने को हनूमान् ने जाम्ववन्त के कहने प
पुन: गये। ये औषधि ले आये।[४] दशग्रीव के मरने के पश्चात् राम ने हनुमा
से जानकी को सव समाचार देने को कहा[५]—

इस शुभ संवाद को सुन कर जानकी जी ने हनुमान् को वर दिया क
'तुम में बल, शौर्य, विक्रम, तेज़, क्षमा, धैर्य्य, विनय इत्यादि सव गु
हों।[६]

इस पर हनुमान् जी ने जानकी जी से पूछा कि "यदि आपकी आज्ञा हो त
इन राक्षसी राक्षसों को जिन्होंने आपको यहाँ कष्ट पहुँचाया है मुष्टि के प्रहार
सवको मार डालूँ या इनके नाक कान काट लूँ या उनके केशों को नाश क
दूँ"।[७] जानकी जी ने उत्तर दिया कि "इन्होंने राजाज्ञा के वश यह काम किया इस
इनका क्या दोष है?"[८] इसके पश्चात् रामजी के पास पहुँच कर हनूमान्
ने निवेदन किया कि[९]—

"जिस जानकी जी के निमित्त आपने यह आरंभ किया, शोक से संतप्त उ
जानकी को देखना चाहिये। लंका में मेरे विजय से शोकसंतप्त जानकी

---

१. उपर्युक्त—६, ५९, ५३-६ ९; ११४-१३४।
२. उपरोक्त—६-६१, १२५-१२६।
३. उपर्युक्त—६-७०, ३३-४९।
४. उपर्युक्त—६, ७४, ३०-७३।
५. उपर्युक्त—६, ११५, २४-२६; ११६।
६. उपरोक्त—६-११६, १-१४।
७. उपरोक्त—६-११६-२७-२९।
८. उपरोक्त—६-११६-३१-३५।
९. उपरोक्त—६।११६-३८-४६।

बड़ा हर्ष हुआ। मुझ पर विश्वास हो जाने के बाद सीता जी ने मुझसे कहा कि लक्ष्मणजी के साथ विजयी श्रीरामजी को देखना चाहती हूँ।"

अयोध्या के पास पहुँचने पर राम जी ने भरत को संवाद देने को तथा यह जानने को कि भरत का मन राज्य पाकर फिर तो नहीं गया हनुमान् को भेजा।[1] मनुष्य का रूप धारण करके हनूमान् जी शीघ्र ही अयोध्या पहुँचे।[2] शृंगवेरपुर पहुँच कर उन्होंने गुह्व को रामचन्द्र जी का सन्देश दिया[3] उसके पश्चात् अयोध्या पहुँच कर हनूमान् जी ने भरत जी के दर्शन किये—

अयोध्या से एक कोस पहले ही हनुमान् जी ने काला मृगचर्म पहने हुए, दीन, दुर्बल, आश्रमनिवासी, बढ़े हुए केशोंवाले, भाई के दुःख से दुःखी, केवल फल खानेवाले, तपस्वी, धर्मनिरत, शरीर पर वल्कल धारण किये हुए तथा ब्रह्मर्षियों के समान तेजस्वी भरत जी को देखा। भरतजी भगवान् श्री रामजी की चरणपादुका रखकर राज्य का शासन कर रहे थे।··· हनुमान् जी ने भरतजी से कहा कि आप जिन दण्डकारण्यवासी रामजी की चिन्ता कर रहे हैं, उन्होंने आपका कुशल समाचार पूँछा है आप चिन्ता छोड़ दें वे रामजी रावण को मार कर श्री सीताजी को तथा लक्ष्मण जी को साथ लेकर, और महाबली मित्रों के साथ कृतार्थ हो कर यहाँ आ रहे हैं।...हनुमान् जी के इन वचनों को सुनकर भरतजी ने आलिंगन किया और कहा आप देवता या मनुष्य हैं। आप बड़ी कृपा करके यहाँ आये हैं। आपने बड़ी प्रिय बात कही है। आपको मैं एक सहस्र गौ, एक सौ ग्राम, और कुण्डलधारिणी, शुभाचरणवाली, सोने के समान रूपवाली और चन्द्रमा के समान मुखवाली अनेकों स्त्रियों को दे रहा हूँ।[4]

इत्यादि हनुमान् को भरत जी देते हैं फिर हनुमान् ने सारा विवरण राम के वनवास का सुनाते हैं।[5] इन श्लोकों से स्पष्ट है कि हनुमान को वाल्मीकि जी ने ब्रह्मचारी नहीं माना है अन्यथा कन्याओं का इनको देने का प्रयोजन था ?

---

[1] उपर्युक्त—६-१२८,२-१७।

[2] उपर्युक्त—६-१२८,१८-२०।

[3] उपर्युक्त—६-१२८, २१-२३।

[4] उपर्युक्त—६-१२८, २८-४५।

[5] उपर्युक्त—६-१२९,१-५८।

रामचन्द्र के राजगद्दी पर वैठने के पश्चात् सीता जी मुक्ताहार, जो वड़ी-वड़ी मणियों से ग्रथित था तथा वस्त्र इत्यादि हनुमान् जी को देती हैं।[1]

मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम्।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ।।७९।।
अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुभेनवे ।।८०।।

इससे यह ज्ञात होता है कि वानर लोग वस्त्राभरण पहिनते थे।[2] वे रूपवान् थे तथा जैसा रूप चाहे धारण कर सकते थे। ताम्रवदन के उनके शरीर की हेमाभा थी। वे फल मूल खाते थे, मधु मैरेय पीते थे। इनकी तीन श्रेणियाँ थीं—ऋक्ष, वानर, गोलांगुल[3]। ऋक्ष भालू नहीं थे क्योंकि इन्हें हरिश्रेष्ठ कहा है[4]। वानर अपने से वड़ों का अभिवादन हाथ जोड़ कर करते थे। इनमें वड़ी विनय थी तथा ये सदाचारी थे। हनुमान् जी परम तेजस्वी थे, महावलवान् थे तथा वाक्पटु, सर्वशास्त्र-विशारद थे।

वनपर्व महाभारत में भी हनूमान् के दर्शन होते हैं। वनपर्व में जव भीमसेन द्रौपदी के हेतु फूल लेने को जाते हैं तो एक मोटी शिला पर हनुमान् जी को लेटे हुए देखते हैं[5]। यहाँ हनुमान् जी अपना परिचय यों देते हैं—

अहं केशरिणः क्षेत्रे वायुना जगदायुषा।
जातः कमलपत्राक्ष हनूमान् नामवानरः।।[6]

उनका स्वरूप भी यहाँ मिलता है।

इस मिलन का वर्णन व्यास जी ने यों किया है—'भीमसेन ने कदलीवन में एक मोटी शिला पर लेटे हुए वानरराज महावाहु हनुमान् जी को देखा। विद्युत् के समान चकाचौंध उत्पन्न करनेवाली उनकी प्रभा थी। उनकी ओर देखना

---

[1] उपर्युक्त—६-१३१, ७९-८०।

[2] सीता हनूमान् को सुन्दरकाण्ड में श्वेत वस्त्र पहिने देखती हैं। उपर्युक्त—५-३२-१।

[3] उपर्युक्त—१-१७-१९।

[4] उपर्युक्त—५-५७, २२।

[5] महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर—वनपर्व षट्चत्वारिंशदधिकशततमो अध्यायः, पृ० १३५३-१३७१।

[6] महाभारत—३, १४७, २७।

[7] महाभारत—३-१४७, ७५-८२।

कठिन था, उनकी कांति विद्युत के समान पिंगल वर्ण की थी। उनका गर्जन वज्रपात की गड़गड़ाहट के सदृश था। उनके कन्धे चौड़े और पुष्ट थे। उन्होंने बाँह के मूल भाग को तकिया बना कर अपनी मोटी और छोटी ग्रीवा को रख छोड़ा था। उनके शरीर का मध्यभाग तथा कटि प्रदेश पतले थे। उनकी पूँछ का अग्रभाग कुछ मुड़ा हुआ था जो ऊपर की ओर उठ कर ध्वजा के समान सुशोभित हो रहा था। उनके ओठ पतले थे जी और मुख का रंग ताम्बे के रंग के सदृश था। कान लाल रंग के थे। भौंह चंचल हो रही थी। उनके मुख में श्वेत चमकते हुए दाँत और दाढ़ें अपनी सफेदी तथा तीखे अग्रभाग के कारण बड़ी शोभा पा रही थीं। इस कारण उनका मुख किरण सहित चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहा था। मुख की दंतावली मुख पर आभूषण का काम कर रही थी। स्वर्णमय कदली वृक्षों के बीच विराजमान महातेजस्वी हनुमान् जी ऐसे जान पड़ते थे मानो केसर की क्यारी में अशोक पुष्प का गुच्छा रख दिया गया हो। हनुमान् जी अपने शरीर की कान्ति से प्रज्वलित अग्नि के समान जान पड़ रहे थे। उनकी मधु के समान पीली आँखें इधर उधर देख रही थीं। परिचय प्राप्त करने के पश्चात् भीमसेन ने प्रार्थना की कि मैं आपका वह पूर्वरूप जो समुद्र पार करने के समय आपने धारण किया था उसे देखे बिना किसी प्रकार नहीं जाऊँगा[1]। यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ तो आप स्वयम् ही अपने को प्रकट कर दीजिये—

भीमसेन के ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने भाई को प्रसन्न करने के हेतु अपना वह रूप दिखाया जो समुद्र लाँघने के समय उन्होंने धारण किया था। उनका शरीर बहुत बढ़ गया। कदली खण्ड पर छा गया। ये दूसरे पर्वत के समान दिखाई देने लगे। ताम्र के समान मुख में तीक्ष्ण दाँत दिखाई दे रहे थे, कुटिल भृकुटी थी तथा कुटिल मुख था। उनकी पूँछ बड़ी लम्बी थी जो सारे दिशा को व्याप्त कर रही थीं। ऐसा महान् रूप कौरवनन्दन भीम को दिखाई दिया। इसे देख कर भीम बार बार हर्षित होने लगे। वे सुवर्ण के पर्वत के समान लगते थे और उनकी कांति से आकाश प्रदीप्त हो रहा था, इत्यादि।

इसी संवाद में हनुमान् कहते हैं कि मैंने राम से वरदान माँग लिया है कि जब तक राम कथा पृथ्वी पर प्रचलित रहेगी तब तक मैं जीवित रहूं।[2]

पावद् राम' कथेयं ते भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवेय मित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत्॥

---

[1] उपर्युक्त—पंचाशदधिकशततमो अध्यायः (१५०), पृ० १३६६।

[2] महाभारत—पृ० १३६३।

भीमसेन ने कहा[1]—

सनाथाः पाण्डवाः सर्वे त्वया नाथेन वीर्यवान्।
तवैव तेजसा सर्वान् विजेष्यामो वयं परान्॥१४॥

आपके ऐसा स्वामी पाकर सब पाण्डव सनाथ हो गये। हम लोग उनको ऐसे ही जीत लेंगे। भीमसेन के ऐसा कहने पर हनुमान् जी ने कहा कि मैं तुम्हारा हित करूँगा जब तुम बाण और शक्ति से आहत व्याकुल सेना में घुस कर सिंहनाद करोगे उस समय मैं अपनी गर्जना से उसे और तीव्र कर दूंगा। इसके सिवा मैं अर्जुन की ध्वजा पर बैठ कर ऐसा भीषण गर्जन करूँगा जो प्राणों को हरने वाला होगा जिससे तुम लोग अपने वैरियों को सुगमता से मार सकोगे।[2]

द्रोण पर्व में एक स्थान पर हनुमान् का स्वरूप यों मिलता है[3]—

महौषधिसमायुक्तं हनुमानिव पर्वतम्।

स्त्रियाँ अबध्य हैं इस पर हनूमान् का मत महाभारत में यों दिया गया है[4]—

न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।

कर्ण पर्व में अर्जुन की ध्वजा पर विराजमान हनूमान् का वर्णन यों मिलता है[5]—

कपिश्रेष्ठस्तु पार्थस्य व्यादितास्य इवान्तकः।
द्रंष्ट्राभिभीषयत् भाभिर्दुनिरीक्ष्यो रविर्यथा॥९४॥

कुन्तिकुमार अर्जुन के रथ पर मुँह बाये हुए यमराज के सदृश एक श्वे वानर बैठा हुआ था जो अपनी दाढ़ों से सब को डराया करता था वह रवि कं प्रभा के समान जान पड़ता था—

उत्पपात् महावेगः कक्ष्यामभ्याहनत्तदा।
नखैश्च दशनैश्चैव गरुडः पन्नगं यथा॥९६॥

---

१. उपर्युक्त—एकपंचाशदधिक शततमो अध्यायः, पृ० १३७१।

२. उपर्युक्त—पृ० १३७१।

३. उपर्युक्त—द्रोण पर्व, पृ० ३४९३।

४. उपर्युक्त—द्रोण पर्व—पृ० ३५११-६७-६८ प्लवंगनः प्लवेन गच्छतीति, वानरः इत्यमरः ३, ३, १३७।

५. उपर्युक्त—कर्णपर्व—पृ० ४०६३।९४।

अर्जुन की ध्वजा का वह विकट वेशवाली वानर उस समय अपने स्थान से उछला और कर्ण की सांकलयुक्त ध्वजा पर चोट करने लगा जैसे गरुड़ अपने पंजों और चोंच से सर्प पर आक्रमण करता है।[1]

महाभारत में रामकथा वनपर्व के २७४ अध्याय से प्रारम्भ होकर २९१ अध्याय तक दी हुई है। जयद्रथ द्वारा द्रौपदी के हरण पर युधिष्ठिर बड़े दुःखी हुए और उन्होंने मार्कण्डेय ऋषि से पूछा कि क्या संसार में मेरे जैसा मन्द-भाग्य दूसरा पुरुष है। इस पर मार्कण्डेय मुनि ने रामकथा सुनाई। यह कथा अत्यन्त संक्षेप रूप में यहाँ वर्णित है। कतिपय विद्वानों का ऐसा मत है कि राम की कथा का मूल रूप यहीं था।[2] इसमें भी हमें सर्वप्रथम हनुमान् जी का दर्शन ऋष्यमूक पर्वत पर होता है। जब विराध राम को सुग्रीव से मैत्री करने की सलाह देता है तो राम पम्पासर की ओर चल देते हैं और वहीं से ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचते[3] और वहीं श्रीरामजी एवं लक्ष्मणजी पर्वत के ऊपर पाँच वीर वानरों को देखते हैं। तब सुग्रीव अपने सचिव, वीर, हिमालय के समान विशाल एवं महाबुद्धिमान् हनुमान् जी को राम जी और लक्ष्मण जी के पास भेजते हैं। हनुमान्जी ने बात करके सुग्रीव के साथ राम जी की मित्रता करा देते हैं।

इसके पश्चात् वाली से सुग्रीव का युद्ध होता है। उसमें पहिचान के लिये हनुमान् सुग्रीव के गले में एक माला डाल देते हैं—[4]

न विशेषस्तयोर्युद्धे यदा कश्चन दृश्यते।
सुग्रीवस्यतदा मालां हनुमान कण्ठ आसजत्॥

इसके पश्चात् हनुमान् के लंका से लौटने पर हम उन्हें राम को सीता का संवाद देते पाते हैं। यहाँ हनुमान् राम से मिल कर लंका नहीं जाते न उनकी अंगूठी लेकर जाते हैं—[5]

यहाँ की कथा रामायण की कथा से बहुत भिन्न नहीं है। यहाँ चूड़ामणि के स्थान पर सीता जी जयंत के काकरूप में आने की बात हनुमान जी को बता देती हैं।

---

१. उपर्युक्त—कर्णपर्व, पृ० ४०६३-९६।

२. बुल्के—रामकथा—पृ० ५३-५४ (ऐसे विचारकों में जेकोवी का स्थान मुख्य है।)

३. महाभारत—२८० अध्याय ९-११

४. उपर्युक्त, अध्याय २८०-३०।

५. उपर्युक्त—अध्याय २८१-३३ तथा आगे, गीता प्रेस पृ० १७४२।

धारिता येन वैदेही कालमेतमनिन्दता।
प्रत्ययाथे कथं चंमां कथयामास जानकी।
क्षिप्रामिषीकां काकाय चित्रकूटे महागिरौ।
भवता पुरुषव्याघ्र प्रत्यभिज्ञान कारणात्॥
(एकाक्षि विकलः काकः सुदुष्टात्मा कृतश्चवै।)
ग्राहयित्वाहमात्मनं ततो दग्ध्वा च तां पुरीम्।
सम्प्राप्त इति तं रामः प्रियवादिनमार्चयत्।

इसके पश्चात् सुग्रीव की आज्ञा से वड़े बड़े वानर वीर माल्यवान पर्वत पर लक्ष्मण इत्यादि के साथ बैठे हुए राम के पास आने लगते हैं।[1] जव सेना के एकत्र हो जाने पर सुग्रीव सहित राम एक दिन शुभ तिथि, उत्तम नक्षत्र और शुभ मुहूर्त में प्रस्थान करते हैं[2] इस सेना के मुहाने पर हनूमान तथा पृष्ठभाग में लक्ष्मण हैं।

राम रावण के युद्ध के समय जव धूम्राक्ष कपिसैन्य को विचलित कर देता है तव हनूमान उसे युद्ध में मार डालते हैं[3]—

जव इन्द्रजीत राम लक्ष्मण को अपने शरों द्वारा नागपाश में बाँध लेता है तो उस समय और वीर सेनारथियों के साथ हनुमान भी उन दोनों की रक्षा करने लगते हैं।[4] इसके पश्चात् इस पाठ के अनुसार विभीषण उनको प्रज्ञास्त्र द्वारा सचेत करते हैं[5] तथा सुग्रीव विशल्या नाम की महाऔषधी को मन्त्रों के साथ प्रयोग करके उनके घावों को भर देते हैं। इसी समय कुवेर का भेजा हुआ जल लेकर एक गन्धर्व आता है जिसे राम लक्ष्मण तथा वानर वीर अपनी अपनी आँखों में लगाते हैं।[6] इससे माया द्वारा छिपे हुए राक्षस भी इन्हें दिखाई देते हैं।

इन्द्रजीत की मृत्यु के पश्चात् रावण स्वयं राम से लड़ने को निकलता है और वानर यूथपों से लड़ता हुआ राम की ओर दौड़ता है। तव दौड़ते हुए उस क्रोधी रावण को मैन्द, नल, नील, अंगद, जाम्ववान् और हनुमान् जी रोकते हैं।[7]

---

१. महाभारत (गीता प्रेस)—पृ० १७४५—अध्याय २८३, १-२।
२. उपर्युक्त—पृष्ठ १७४६—अध्याय २८३, १४-१६।
३. उपर्युक्त—पृ० १७५४-२८६ १०-१४।
४. उपर्युक्त—पृ० १७६०-२८९, ४।
५. उपर्युक्त—पृ० १७६०-२८९, ५।
६. उपर्युक्त—पृ० १७६०—अध्याय २८९, ५-१३।
७. उपर्युक्त—अध्याय—२९०-२९१ २०-३२; १-४४।

राम रावण को ब्रह्मास्त्र से मार कर भस्म करने के पश्चात् जब सीता के सतीत्व की साक्षी देवताओं के देने पर उन्हें पुनः ग्रहण करते हैं तब राम ब्रह्मा से दो वर मांगते हैं।[1] इस पर ब्रह्मा जब तथास्तु कहते हैं तो सीता जी भी हनुमान् को वर देती हैं कि 'जब तक राम की कीर्ति संसार में रहे तब तक तुम. . .जीवित रहो'।[2]

अयोध्या के समीप पहुँचने पर वानरों में श्रेष्ठ हनुमान् को राम भरत के पास भेजते हैं। हनुमान् जी साधु वेष में पादुका सामने रखकर बैठे हुए भरत को देखते हैं उन्हीं के साथ ही शत्रुघ्न भी हैं।[3]

इस प्रकार देखा जाय तो वाल्मीकि के रामायण में और महाभारत के रामोपाख्यान में हनुमान् के चरित्रों में कुछ विशेष अन्तर नहीं मिलता यों कथानक में तो थोड़ा बहुत अन्तर है।

भास कृत अभिषेक नाटक राम तथा सुग्रीव की मैत्री से प्रारम्भ होता है। भास का काल निर्णय करना कठिन है परन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कालिदास के मालविकाग्निमित्र के पूर्व भास ने अपने नाटक लिखे क्योंकि कालिदास इस नाटक के प्रारम्भ में ही कहते हैं—प्रथितयशसां भास-सौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य क्रियायां कथं बहुमानः।[4] यहाँ वाली द्वारा सुग्रीव को पीड़ित होते देख कर हनुमान् कहते हैं—

हनमान्—हा धिक्। (ससम्भ्रमं राममुपगम्य) जयतु देवः अस्यैषावस्था। बलवान् वानरेन्द्रस्तु दुर्बलश्च पतिर्मम। अवस्था शपथश्चैव सर्वमार्येण चिन्त्यताम्[४]।

रामः—हनूमान्। अलमलं सम्भ्रमेण। एतदनुष्ठीयते। (शरं मुक्त्वा) हन्त पतितो वाली। वाली सुग्रीव को आदेश देता है कि स्त्रियों को समझाओ यहाँ उनके आने का काम नहीं है। सुग्रीव वाली से कहते हैं—यदाज्ञापयति महाराजः। हनूमान्। एवं क्रियताम्।

---

[1] उपर्युक्त—अध्याय २९१, ४४-४६।

[2] उपर्युक्त—पृ० १७६९ अध्याय २९१, ६०-६३।

[3] भास नाटक चक्रम्—अभिषेक नाटकम्—सं० श्री बलदेव उपाध्याय—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी—प्रस्तावना—पृ ० ४। यह भी सम्भव है कि यह अंश पीछे से जोड़ दिया गया हो परन्तु भाषा की दृष्टि से कालिदास की भाषा से भास की भाषा का प्रवाह सरल है।

[4] उपर्युक्त—प्रथम अंक १५ पृष्ठ १२।

हनमान्—यदाज्ञापयति कुमारः (निष्क्रान्तः) यहाँ हनमान् सुग्रीव को कुमार कह कर सम्बोधन करते हैं महाराज नहीं क्योंकि सुग्रीव अभी तक मूर्धाभिषिक्त नहीं हैं। हनुमान् अंगद को बुला लाते हैं—अंगद। इत इतः। और अंगद के पूछने पर ये महाराज बाली को दिखा भी देते हैं—

हनुमान्—एष महाराजः।

वाली के माँगने पर हनुमान् उसे पानी लाकर पिलाते हैं।[1] द्वितीय अंक के आरम्भ में हनूमान् के समुद्र लाँघने का वर्णन कुकुम तथा विलमुख के वार्तालाप में मिलता है।

कुकुमः—श्रूयतां लब्ध्वा वृत्तान्तं रामपत्न्याः खगेन्द्रात् आरुह्यागेन्द्र सद्विप्रेन्द्रं महेन्द्रम्। लंकामभ्येतुं वायुपुत्रेण शीघ्रं वीर्यप्राबल्यालंघनः सागरोऽद्य[2]।

सीता की विरहावस्था में हनूमान् का प्रवेश लंका में होता है उनके हाथ में राम की अंगूठी है। (ततः प्रविशति हनूमान् अंगुलीयकहस्तः।[3])

हनूमान् वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी रावण के भवन का वर्णन करते हैं—

हनूमान्—(लंकां प्रविश्य) अहो रावणभवनस्य विन्यासः इत्यादि।

हनुमान् जी को सीता के दर्शन अशोक वन में होते हैं जैसा वाल्मीकि रामायण में है।

रावण के वाक्यों को सुन कर हनुमान् जी को विश्वास हो जाता है कि यही सीता है। रावण के जाने के पश्चात् हनुमान् जी सीता को राम का संवाद देते हैं।

हनुमान् जी कहते हैं कि रामजी ने आपके वियोग में भोजन छोड़ दिया है, उनका शरीर पीला पड़ गया है और सदा आपकी चिन्ता करने के कारण आँखों में आँसू भरा रहता है। आपके लिए सुग्रीव से उन्होंने मित्रता की है, वाली को मारा है और आपको ढूंढ़ने के लिए चारों तरफ वानरों को भेजा है।

इसके बाद हनुमान् जी ने कहा कि गृध्रराज के वचन से मैं यहाँ आया हूँ। सीताजी राम जी की दशा पर अपनी चिन्ता एवं दुःख प्रकट करती हैं और कहती हैं कि मैंने स्वप्न में देखा है कि वे धनुर्धारी वानरों के साथ लंका में आयेंगे और रावण का वध करेंगे। हनुमान् जी ने कहा कि आप चिन्ता न करें मैं धनुर्धारी श्रीराम को अभी आपके सामने ला रहा हूँ। सीताजी ने कहा कि रामजी से यहाँ

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ २१।

२. उपर्युक्त, अंक २, १, पृ० २४-२५।

३. उपर्युक्त—अंक द्वितीय, श्लोक २ के ऊपर।

का वृत्तान्त वैसा ही कहना है जिससे मेरे दुःखों को सुनकर वे चिन्ता एवं शोक से पराभूत न हो जायँ। इसके बाद हनुमान् जी अशोक वन को नष्ट करने की बात तथा राक्षसों को मारने की बात सोचने लगते हैं।

इसके पश्चात् तृतीय अंक में हनुमान् जी द्वारा अशोक वन के विनाश का वर्णन शंकुकर्ण द्वारा प्राप्त होता है।[1] यह वर्णन रावण विभीषण एवं हनुमान् जी के संवाद रूप में है।

जब मेघनाद हनुमान् जी को पकड़ कर रावण के समक्ष ले आता है, तब हनुमान् जी कहते हैं कि राक्षसों ने मुझे नहीं बाँधा है, मैंने स्वयं राक्षसराज के दर्शन के लिए बंधन को स्वीकार किया है। रावण ने पूछा तुम कौन हो, किसलिए आये हो और क्यों मेरे उपवन में तथा अन्तःपुर में प्रवेश किया। हनुमान् जी ने उत्तर दिया मेरा नाम हनुमान् हैं, मेरी माता अंजना है, एवं पिता पवन देव हैं और श्रीरामजी की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। इसके बाद प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया में रावण क्रुद्ध होकर हनुमान् जी को मारने की आज्ञा देता है। तब हनुमान् जी ने कहा कि तुम भगवान् शंकर की शरण में जाओ, सुदृढ़ दुर्ग में जाओ या रसातल में चले जाओ मैं तुम्हारे सभी अंगों को छिन्न भिन्न करके अभी यमलोक भेज रहा हूँ। इस पर रावण ने अपने पराक्रम का वर्णन किया। उसके पराक्रम को सुनकर हनुमान् जी ने पूछा कि तुम इतने पराक्रमी हो तो अपना रूप बदलकर चोरी से क्यों सीताजी का अपहरण किया[2]।

हनुमान् द्वारा राम के पास जानकी का संवाद लेने का विवरण चतुर्थ अंक में कांचुकी तथा बलाध्यक्ष के कथोपकथन में मिलता है।[3] राम इसके पश्चात् वानर सेना सहित समुद्र के तीर पर पहुँच जाते हैं तथा हनुमान् वानरों को राम की रक्षा के हेतु नियुक्त करते हैं।

इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वानर लोग पहाड़ों के पत्थरों से, पेड़ों से, मुष्टिका से लड़ते थे।

यहाँ समुद्र पर पुल बाँधे जाने का संकेत नहीं प्राप्त होता।[4] रावण को युद्ध में जीत लेने पर राम कहते हैं कि सीता राक्षस के स्पर्श से दूषित हो चुकी है इस कारण वहीं रहे। यह संदेश लक्ष्मण सीता को जा कर देते हैं। लक्ष्मण वहाँ से

---

[1] उपर्युक्त—पृ० ४४-४५।

[2] उपर्युक्त—पृ० ४८-५२; तृतीय अंक श्लोक ४ से आगे।

[3] उपर्युक्त—पृष्ठ ६३-६८।

[4] उपर्युक्त—अंक ४ श्लोक १७ के ऊपर।

लौट कर राम को वताते हैं कि "जयत्वार्यः आर्यस्याभिप्रायं श्रुत्वैवाग्निप्रवेशा प्रसादं प्रतिपालयत्यार्या।[1]

सीता की अग्निपरीक्षा के वाद हनूमान् कहते हैं—

जयतु देवः—एषा कमकमालेव ज्वलनाद् वर्धित प्रभा। पावना पावकं प्राप निर्विकार-मुपागता।

इस कृति में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

भासकृत प्रतिमा नाटक में केवल एक स्थान पर हनुमान् का नाम आय है।[2] यह स्थान राम के अभिषेक के पश्चात् हैं।

कालिदास के रघुवंश में जो राम चरित्र प्राप्त होता है उसमें हनुमान् जी राम की सुग्रीव से मैत्री नहीं कराते, कवन्ध शाप से मुक्त होकर सुग्रीव का पता बताता है और सुग्रीव वानरों को सीता के अन्वेषण के हेतु भेजते हैं। वानरों का साक्षात्कार सम्पाति से होता है तथा उस सूचना पर हनुमान् समु लाँघते हैं।[3]

हनुमान् जी ने लंका पहुँच कर राक्षसियों से घिरी हुई सीताजी को देखा, सीता जी से रामजी के संदेश को कहा और चिह्नस्वरूप रामजी की दी हुई अंगू दी। वे लंका को जलाकर और राक्षसों को त्रस्त कर पुनः रामजी के पास लौ आते हैं। इसके वाद रामजी की सेना लंका में जाती है और युद्ध होता है। यु में हनुमान जी वृक्षों से, पत्थरों से, और नख से प्रहार करते हैं ऐसा वर्णन है।

यहाँ भी हनुमान् जी ही भरत को राम के आगमन का संदेश देते हैं[4]—

शंके हनुमत्कथितप्रवृत्तिः प्रत्युदग्तोमां भरतः ससैन्यः। १३-६४
रामाज्ञया हरिचमूपतयस्तदानीं कृत्वा मनुष्यवपुरारुरुहुर्गजेन्द्रान्।१३-७

कालिदास के विवरण से यह सिद्ध होता है कि ये वानर इच्छानुसार रू धारण कर सकते थे। हनुमान् की पूंछ का विवरण यहाँ नहीं मिलता। इसमें हनुमान् को रामभक्त का विशेषण कालिदास ने कहीं नहीं दिया है। ऐसा लगता है कि उस काल तक हनुमान की अलग से रामभक्त के रूप में पूजा

---

[1] उपरोक्त—अंक ८, श्लोक ६ पृष्ठ ११३-११८।

[2] भास—प्रतिमा नाटक—भास नाटक चक्रम्—२ भाग : सं० आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी। पृष्ठ १८२-१८३।

[3] रघुवंश—१२, ५७-६७, ७१, ७३, ७७, ७८।

[4] उपर्युक्त—१३-६४।

नहीं होती थी। इस सन्दर्भ में केवल इतना मिलता है कि उत्तर गिरि हिमालय पर हनुमान जी को और दक्षिण गिरि त्रिकूट पर विभीषण को राम ने अपने कीर्ति-स्तम्भ के रूप में स्थापित किया[1]।

भट्टिकाव्य में राम-कथा के साथ जो हनुमान चरित्र प्राप्त होता है वह प्रायः वाल्मीकि में वर्णित हनुमान-चरित्र के सदृश ही है। इसमें सुग्रीव राम-लक्ष्मण को देख कर सशंकित होकर हनुमान को उनके विषय में पता लगाने को भेजते हैं[2]।

हनुमान ऋष्यमूक पर्वत पर आते हैं और राम-लक्ष्मण से उनका परिचय पूछते हैं। इस पर राम अपनी सब कथा बताते हैं।

इसमें भी सीता की खोज करने के हेतु हनुमान को भेजा जाता है। हनुमानजी अँगूठी लेकर आकाश में इतने वेग से जा रहे हैं कि मालूम होता है, भगवान् सूर्य के घोड़े लगाम तोड़कर स्वच्छन्द भाग रहे हों।

समुद्र-तट पर पहुँच कर हनुमान जी सीता की खोज के हेतु जाते हैं। यहाँ इन्हें वृषाकपि कहा है[3]।

५४२ विलोक्य सलिलोच्चयानविसमुद्रमभ्रंलिहान्।
भ्रमन्मकरभीषणं समधिगम्य चाऽधः पयः॥
गमाऽऽगमसहं द्रुतं कपिवृषाः परिप्रेषयन्।
गजेन्द्र-गुरुविक्रमं तरु-मृगोत्तमं मारुतिम्॥ १०८-७ सर्ग० ॥

हनुमान जी जब समुद्र लाँघने को उद्यत होते हैं उस समय का इनका विग्रह यहाँ भी मिलता है[4]।

मार्ग में मैनाक मिलता है जैसे रामायण में हनुमान उसका अभिवादन करते हैं। फिर रामायण के क्रम से इन्हें राक्षसी इत्यादि मिलती हैं, अन्त में ये सीता को अशोक वन में देखते हैं।

लंका में हनुमान जी बड़ी बुद्धिमानी से इस वृक्ष से उस वृक्ष पर जाते हुए धीरे-धीरे वहाँ पहुँचते हैं जहाँ सीताजी शोकमग्न बैठी हुई हैं और सोच रही हैं कि शत्रु से मेरा उद्धार होगा कि नहीं।

---

[1] रघुवंश—१५-१०३।

[2] महाकवि श्रीभट्टि विरचितं भट्टिकाव्यम्—जयमंगलकृत टीकया, जयमंगलव्यासमेतम्-विनायक शास्त्री निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई—१९२८। षष्ठः सर्ग, ८७-१०५।

[3] यहां हनुमान को वृषाकपि कहा गया है। ७सर्ग १०८ श्लोक।

[4] भट्टिकाव्यत्—८ सर्ग-१-५४३, ५४४

८

इतने में रावण वहाँ आ जाता है और सीता को त्रास दिखाना प्रारम्भ करता है और जब सीता उसका तिरस्कार करती हैं तब वह राक्षसियों को भय दिखाने का आदेश देता है।

राक्षसियों द्वारा सीता को त्रास देने पर त्रिजटा उन्हें अपना स्वप्न सुनाती है। इस पर वे सब हट जाती हैं। हनुमान जी पेड़ पर से ही राम का यश-गान करने लगते हैं। यह सब रामायण के वर्णन से मिलता हुआ है।

इसके पश्चात् हनुमानजी सीताजी को सब कथा सुनाते हैं तथा राम की अँगूठी देते हैं।

६५२ इति चिन्तावतीं कृच्छ्रात् समासाद्य कपिद्विपः ।
मुक्तां स्तोकेन रक्षोभिः प्रोचेऽहं रामकिंकरः ॥११०॥

लंका से लौटने के पश्चात् हनुमान राम को सब संवाद देते हैं।[1] युद्ध में हनुमान वाल्मीकि रामायण की भाँति धूम्राक्ष तथा अकम्पन का वध करते हैं[2]।

कुम्भकरण की मृत्यु के पश्चात् रावण देवान्तक, अतिकाय, त्रिशिरा तथा नरान्तक को युद्ध में भेजता है।

अंगद नारन्तक को तथा हनुमान देवान्तक और त्रिशिरा को मारते हैं[3]।

१२६२ परिघेणाऽवधिष्टाऽथ रणे देवान्तको वली।
मुष्टिनाऽददात् तस्य मूर्धानं मारुताऽऽत्मजः। ८१-सर्ग, १५॥

इसके वाद त्रिशिरा हनुमानजी पर शक्ति का प्रयोग करता है और हनुमान जी उसके घोड़ों को नष्ट कर देते हैं[4]।

१२६४ अवभ्राजत ततः शक्ति त्रिशिराः पवनाऽत्मजे।
हनूमता क्षतास् तस्य रणेऽमृषत वाजिनः॥८३॥
१२६५ अस्त्रसच्चाऽऽहतो मूर्ध्नि खड्गं चाऽजीहरद् द्विषा।
प्राणानौज्झीच खड्गेन छिन्नैस्तेनैव मर्धभिः॥८४॥

इसके पश्चात् इन्द्रजीत जब ब्रह्मास्त्र से सबको मूर्च्छित कर देता है तब जामवन्त पवनकुमार हनुमान जी को हिमालय से ओषधि लाने को भेजते हैं।

---

[1] सर्ग १०, ३२-४२।
[2] सर्ग १४, ७३-८१।
[3] उपर्युक्त, लंका काण्ड—सर्ग ८१-१५।
[4] उपर्युक्त, लंका काण्ड—सर्ग ८३-८४।

१२८५ ज्ञामिष्टमारुतिस् तत्र तौ चाऽव्यहृषतां ततः।
प्राहेष्टं हिमवत् पृष्ठे सर्वौषधिगिरिं ततः। १०४॥
१२८६ तौ हनूमन्तमानेतुमोषधीं मृतजीविनीम्।
सन्धानकरणीं चाऽन्यां विशल्यकरणीं तथा। १०५॥

यहाँ इस स्थान की कथा से वाल्मीकि की कथा में कुछ अंतर मिलता है। वहाँ सब ओषधियाँ प्रज्वलित हो रही हैं। हनुमान अभीष्ट ओषधि को नहीं पहचान पाते। अतः ओषधि-सहित पर्वत को ही लेकर चल पड़ते है। वें लंका में पर्वत को ले आते हैं और ओषधि से सब को जीवित करते है[1]।

इसके पश्चात् हनुमान निकुम्भ को मारते हैं।

१३०२ निकुम्भो वानरेन्द्रस्य प्राहैषीत् परिघं ततः।
हनूमांश्चाऽऽपतन्तं तममाङ्क्षीद् भोगि-भीषणम्।
१३०३ प्रोर्गुवीत् तेजसा रातिमरासीच् च भयंकरम्।
ग्रीवां चाऽस्य तथाक्राक्षीदजिजीवद् यथानतम्।

इसके पश्चात् जब इन्द्रजीत माया की सीता का वध करने के लिए उद्यत होता है तब हनुमान उससे कहते हैं कि :—

१३६६ ततो मायामयीं सीतां घ्नन्खङ्गेन वियद् गतः।
अदृश्यतेन्द्रजिद् वाक्यमवदत् तं मरुत्सुतः॥ २०=१७ सर्ग॥
माऽपराघ्नोदियं किंचिदभ्रश्यत पत्युरन्तिकात्।
सीतां राक्षस! मा स्मैनां निगृह्णाः पाप दुःखिताम्॥२१॥ इत्यादि

जब रावण लक्ष्मण को शक्ति से आघात करता है तब हनुमान की लाई हुई ओषधि से उनकी पुनः चेतना लौटती है। इस प्रकार हनुमान दो बार ओषधि लेने जाते हैं।

१४४० स स्फुरस्योदकर्ष च सौमित्रेः शक्तिमग्रजः।
असिंचदोषधीस् तोयाः समानीता हनूमता॥ ९४-१७ सर्ग॥

रावण की मृत्यु के पश्चात् हनुमान जी लंका में सीता को संदेश देते हैं तथा सीता का संदेश राम को देते हैं।[2] इत्यादि।

---

[1] उपर्युक्त, लंका काण्ड, पृ० १२८५।
[2] उपर्युक्त, लंका काण्ड २०, १५३१-१५४०, १-१०।

श्रीमद्शंकराचार्य विरचित **शिवनामावल्याष्टकम्** (श्लोक ७) में शिव को वृषाकपि कहा गया है।

कैलाशशैलविनिवास वृषाकपे हे
मृत्युंजय त्रिनयन त्रिजगन्निवास।
नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ
संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष।।

इससे ऐसा ज्ञात होता है कि शिव का एक नाम वृषाकपि भी था। शिव पुराण में हनुमान को शिव का अवतार बताया गया है। यदि वृषाकपि शिव का नाम था तो हनुमान का वृषाकपि होना निश्चित-सा हो जाता है। श्रीमद् आदि शंकराचार्य का समय प्रायः सातवीं शताब्दी माना जाता है। यदि यह ठीक हो तो शिव पुराण की कथा जिसमें हनुमान को शिव से जोड़ा गया है वह इसके आस पास की होनी चाहिये।

भवभूति-कृत **महावीरचरितम्** में अधोलिखित सामग्री प्राप्त होती है।[1] सीता जी ने परवश पड़े रहने की अवस्था में अपना नामांकित उत्तरीय सुग्रीव के पास फेंका था—"अनुसायानामांकमुत्तरीयम्"

हनुमान के विषय में लक्ष्मण जी कहते हैं कि हनुमान जी महामहावीर हैं। इन्होंने जन्म लेते ही अपने पराक्रम से देवताओं एवं असुरों को चकित कर दिया था।

वहीं पर श्रमण कहता है कि केशरी वानर की पत्नी अंजना के गर्भ से पवन देव के द्वारा हनुमान जी का जन्म हुआ है और ये बड़े पराक्रमी हैं।

अधोलिखित श्लोक में भवभूति भी हनुमान का दूसरा नाम वृषाकपि देते हैं।[2]

यत्संक्रन्दनन्दनः कपिवृषा निर्मथ्य दोः स्तम्भयो
र्व्यापारेणनिरास्थरस्थिगिरिवद् देवद्विषो दुन्दुभेः।

---

[1] भवभूति—महावीर चरितम्—सं० टोडरमल—ए० ए० मेकडानल आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस—१९२८ (भवभूति का काल इनके अनुसार आठवीं शताब्दी का प्रथम चतुरांश है—भूमिका पृ० २७।

[2] यहाँ भी इन्हें वृषाकपि कहा गया है। श्लोक ३४।

तत्कंकालमकाण्डपाण्डुघनप्रस्पर्धि रुन्धत्पुनः
पादांगुष्ठविवर्तनादयमितो निर्विन्ध्य मा विध्यति[1]।३९

आगे चलकर हनुमान के लंकादहन की कथा प्राप्त होती है।

माल्यवान्—उक्तं च किष्किन्धातः प्रतिनिवृत्तेन चारकेण यत सीतामन्वेष्टुमभिदुद्रुवः कपिपुंगवा रति।

भवभूति ने हनुमान द्वारा अशोक वन के नष्ट करने इत्यादि की कथा त्रिजटा से कहलाई है। वह माल्यवान से कहती है कि मैं अभागिन क्या कहूँ। इस एक दुष्ट वानर ने क्षणमात्र में लंका को जला कर तथा वृक्ष एवं पत्थरों के प्रहार से राक्षसों का नाश कर दिया एवं अक्षय कुमार को भी मार डाला[2]।

त्रिजटा कहती है—छोटे नानाजी! मेरे सामने ही एक वानर सीता से बातें कर रहा था। मैंने देखा कि सीता ने अपने केश से निकालकर एक आभरण उसके हाथ में दिया है[3]।

त्रिजटा कहती है कि देखने में सुकुमारी और व्यवहार में मृदु भी यह मानुषी सीता हम राक्षसियों की भी राक्षसी हो गयी है। छोटे नानाजी! पहले कहाँ हम राक्षसों का निवास दण्डकारण्य पर्यन्त सम्पूर्ण पर्वतों पर था। सम्पूर्ण जम्बूद्वीप हम लोगों की विहार-भूमि थी। अब हमारे ही नगर में हम लोगों का रहना कठिन हो रहा है।

हरिभद्र सूरी-कृत धूर्ताख्यान[4] में जो प्रायः ८वीं शताब्दी का ग्रंथ माना गया है हनुमान के विषय में अधोलिखित सामग्री प्राप्त होती है। मूलदेव खण्डपाना के कथानक का समाधान करते हुए कहता है कि हनुमान 'णीलाई' के गर्भ से उत्पन्न हुए। इसे संस्कृत में अंजना कहा है—जातः कुन्त्या भीमसेनाऽजंनया हनुमानपि।[5] १३६ कदाचित् प्राकृत का णीलाई शब्द ही ठीक हो और इनकी माता का प्राचीन नाम अंजना न होकर णीलाई ही रहा हो।

---

१. उपर्युक्त, पृ० १३९।

२. उपर्युक्त, पृ० १५४, अंक ६४।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ १५६।

४. श्री हरिभद्र सूरि—धूर्ताख्यान, भारतीय विद्यामंदिर, बम्बई, सं० २०००। डा० ए० एन० उपाध्याय-कृत प्रस्तावना, पृ० १। यह ग्रंथ प्राकृत में है जिसका संस्कृत रूपान्तर यहाँ दिया गया है। यह जैन-ग्रंथ है। हिन्दुओं की कथाओं का यहाँ उपहास किया गया है।

५. संस्कृत-पाठ में अंजना है। पृ० ४५ प्राकृत में णीलाई है-पृ० २५।

शशक द्वारा एलाषाढ़ के कथानक के समाधान में यह कहा गया है कि:- "सुनने में आता है कि वायु-पुत्र ने उत्पन्न होते ही माता अंजना से अपनी क्षुध पूर्ति के लिए आहार माँगा। माता ने फल-भोजन के लिए कहा। तब उसने उदी मान सूर्य को पका फल समझकर पकड़ लिया। सूर्य ने उसे चूर्ण कर दिया। त माता अंजना ने रोते हुए अपने पति पवनदेव से निवेदन किया। पवनदे क्रुद्ध होकर रसातल में जाकर बैठ गये जिससे वायु का निरोध हो गया औ सम्पूर्ण संसार मृतप्राय हो गया। इससे देवता चिन्तित हुए और पवनदेव के प्रसन्न करने के लिए हनुमानजी के अंगों के चूर्णों को मिलाकर हनुमानजी को पुन जीवित किया। उस चूर्ण में पवनपुत्र की ठुड्ढी (हनु) नहीं मिली अतः उ बालक नाम का हनुमान रखा गया। इसीलिए भाई मैं कहता हूँ कि ये सब अपू हैं। पवन के अंग से जन्म और चूर्ण हुए बालक को पुनः चूर्ण मिलाकर जीवि करना, ये बातें हम लोग कैसे कहते हैं।"

यह कथा रामायण में दूसरी भाँति मिलती है। वहाँ हनुमान के शरीर के जोड़ की कथा नहीं मिलती तथा वहाँ इन्द्र हनुमान को वज्र मारते हैं।[1] जैन साहि के अनुसार इनका नाम हनुमान इस कारण पड़ा था कि इनका लालन-पाल हनुरुह द्वीप में हुआ था। यहाँ रामायण की कथा की हँसी उड़ाई जा र है।

भाई! रामायण में कहा गया है कि जटायु नामक पक्षी ने रावण से यु किया। रावण ने तलवार से उसके पंख काट दिये और वह जमीन पर गिर गया। सीता जी ने कहा कि रामजी के दूत के दर्शन से तुम्हारे पंख पुनः जम जायेंगे। सीताजी को ढूँढ़ते हुए हनुमानजी वहीं आ जाते हैं। जटायु पूछता है—तुम कौन हो? हनुमान जी अपना परिचय देते हैं और जटायु उन्हें रावण से हुए अपने युद्ध की कथा तथा सीताजी को लंका ले जाने की कथा सुनाते हैं। इसके बाद जटायु के पंख निकल आते हैं और वह उड़ कर आकाश मार्ग से देवपुर को चला जाता है। यह कथा भी रामायण से भिन्न है। जटायु रावण से लड़ता है और संपाती के पंख चन्द्रमा के आशीर्वाद से निकलते हैं।

हे भद्र! रामायण की और कथा सुनो। रामजी की आज्ञा से हनुमानजी सीताजी को खोजने के लिए अपने हाथों से समुद्र को तैर कर एक क्षण में लंका में पहुँच जाते हैं।

---

[1] किष्किन्धा काण्ड—६६, ८, २८। उत्तर काण्ड २५-३६।

शशक द्वारा एलाषाढ़ के कथानक के समाधान में इसके आगे की कथा यों मिलती है। लंका जलाने की कथा शश तथा खण्डपाना के सम्वाद में है।

हनुमान लंका जला देते हैं। रामजी की आज्ञा से समुद्र में सेतु बाँधकर रामजी की सेना लंका में पहुँच जाती है, रावण के सैनिकों से युद्ध होता है, लक्ष्मण जी को शक्ति लगती है और वे मूर्च्छित हो जाते हैं। तब हनुमान जी द्रोणाचल जाकर ओषधि ले आते हैं जिससे लक्ष्मण स्वस्थ होते हैं। हनुमान जी के द्वारा लायी गयी विशल्या नाम की ओषधि वानरों को भी लगाई जाती है जिससे वानरों के छिन्न अंग जुट जाते हैं और मृत वानर सजीव हो जाते हैं।

कथा सरित्सागर में जो हनुमान की कथा मिलती है वह रामकथा के साथ इस प्रकार है :—[1]

वालि ने सुग्रीव को जब देश से निकाल दिया तब सुग्रीव के साथ बहुत-से वानर थे उनमें हनुमान प्रमुख थे।

इसी बीच रावण उस जंगल में आया और राम को स्वर्णमृग दिखा कर धोखा देकर सीता को हर ले गया। इस पर राम बहुत दुःखी हुए और उन्होंने सुग्रीव से मैत्री की। सुग्रीव वालि का वध चाहता था। राम ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने के हेतु सात ताड़ के वृक्ष एक बाण से फाड़ डाले। इसके पश्चात् राम किष्किन्धा गये और वहाँ वालि को खेल-खेल में मार डाला।

तब वानर वीरों के साथ हनुमान सीता की खोज को गये और राम सीता के शोक में इसी जंगल में आँसू बहाते हुए पड़े रहे। अन्त में हनुमान ने समुद्र को सम्पाती के कहने पर पार किया तथा हनुमान जी सीता का समाचार ले आये। सीता का समाचार मिलने पर राम अपनी वानरी सेना के साथ समुद्र पर पुल बाँध कर लंका पहुँचे और अपने शत्रु रावण को मार कर सीता को लें आये और पुष्पक विमान पर चढ़ कर इसी अरण्यक के ऊपर से गये। इस प्रकार इस वृहत कथा में बड़ा संक्षिप्त रूप राम कथा का प्राप्त होता है, परन्तु इसमें भी हनुमान का समुद्रलंघन, सीता का अन्वेषण तथा राम को सीता-विषयक संवाद देने की कथा प्राप्त होती है।

---

[1] १. सोमदेव कृत कथा सरित्सागर—दी ओशन आफ स्टोरी—सी० डब्लू० टानी। अनुवादक-सम्पादक : एन० एम० पेंजर ख० ८ चार्ल्स जे साबेयर लिमिटेड, लन्दन, १९२७, पृ० ४४-४५, नं० १६६ दी स्टोरी आफ राम।

यह कथा नरवाहन दत्त को उसकी स्त्री प्रभावती ने उस समय सुनाई जब वह ऋष्यमूक पर्वत पर पम्पासर के पास गुफाओं में रहता था और जव वह भी राम के सदृश अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।[1]

शक्तिभद्र द्वारा विरचित आश्चर्य चूड़ामणि नामक नाटक में जो प्रायः ९वीं शताब्दी का होना चाहिये[2] हनुमान का दर्शन छठें अंक में होता है। यहाँ समुद्र-लंघन के पश्चात् हनुमान सीतान्वेषण में संलग्न दिखाये गये हैं।[3]

(ततः प्रविशति हनूमान् अंगुलीयकहस्तः) षष्ठोऽङ्कः

हनूमान्—संप्रति हि

मैनाक से मिलता हुआ, समुद्र को लाँघता हुआ और अपनी आशुगति से देवताओं और गुरुओं को भी विस्मित करता हुआ हनुमान रामजी के वाण के समान लंका में पहुंच जाते हैं। सोचते हैं कि अव यहाँ वह प्रदेश कहाँ है जिसे गृद्धराज ने इंगित किया था। चारों तरफ देख कर और सीताजी को न पाकर हनुमान् जी चिन्ता में पड़ जाते हैं। वे सोचते हैं कि सीताजी को राक्षसों ने मार दिया है। मेरा यहाँ आना तथा सुग्रीव का मनोरथ सव व्यर्थ हुआ। इसके वाद सीताजी का विलाप सुनायी देता है। विलाप का अनुसरण करते हुए हनुमान् जी सीताजी के सामने प्रकट होते हैं और अपने को रामजी का दूत वताते हैं। अपने परिचय में हनुमान् जी कहते हैं कि मैं वायु का पुत्र हूँ, सुग्रीव का आज्ञाकारी सेवक हूँ और मेरा नाम हनुमान है। इसके वाद हनुमान जी वालि-वध की कथा तथा श्रीरामजी की सुग्रीव से मैत्री की कथा सुनाते हैं और रामजी की दी हुई अंगूठी सीता जी को देते हैं। सीताजी उस अँगूठी को बड़े आदर से देखती हैं और अपनी प्रत्येक अंगुलियों में उसे वार-वार धारण करती हैं।

सीता के पूछने पर हनुमान राम से भेंट का वर्णन करते हुए उनके स्वरूप का विवेचन करते हैं और वताते हैं कि उनकी मैत्री सुग्रीव से उन्होंने ही करायी थी, फिर वालि को मार कर राम ने सुग्रीव को राज्य दिया और सुग्रीव ने वानरों को आपको खोजने के लिए भेजा है[3]।

---

[1] उपर्युक्त—पृष्ठ ४३।

[2] शक्तिभद्र—आश्चर्य चूड़ामणि—सं० कुप्पस्वामी शास्त्री, बालमनोरमा प्रेस, मैलापुर, मद्रास १९३३, भूमिका-पृष्ठ ५-६।

[3] उपर्युक्त—पृ० १७९ तथा आगे।

इसके पश्चात् हनुमान संपाती से मिलने की कथा का विवरण देते हैं और यह कहते हैं कि उसी के बताने पर वे यहाँ पहुँचे---ततस्तदुपदेशात् लंघितो महार्णवः प्राप्तमिदमुद्यानम्। आगे चलकर राम का संदेश देते हैं।

इसके पश्चात् सीता अपनी चूड़ामणि हनुमान को देती हैं और हनुमान से उनकी दशा का राम से वर्णन करने का अनुरोध करती हैं। इसके पश्चात् सप्तम अंक में विद्याधर तथा सौदामिनी के संवाद में हनुमान के विषय में यह सामग्री प्राप्त होती है:---

विद्युतो व्रजामि सुरलोकमारुतैर्मरुतां पथा भरतकोपल त्विषा।
जलभारसान्द्रमुदरं पयोमुचामहमलिखन् वलयवज्रकोटिभिः। ३

नेपथ्य---आदत्तामग्निद्यप्रभृति हुतमसंदूषितं यातु धार्नैराप्लुत्याकाशगंगा पयसि मुनिवृषाः सप्त सन्ध्यां जपन्तु मानोर्वाहाभजेरन्न चकितमृजुना वर्तमना मन्दराद्रिं साध्यश्चारित्रभंगाज्जहतु भयमापस्तार्गलाद्यौरपि स्यात्।

युद्धके पश्चात् राम हनुमान को सीता की परीक्षा के हेतु बुलाने को भेजते हैं। सीता अनुसूया के आशीर्वाद से सर्वाभरण भूषित राम के पास आती हैं। राम हनुमान से पूछते हैं कि---यही सीता हैं न? हनुमान और लक्ष्मण अपना मुँह फेर लेते हैं। हनुमान कहते हैं कि मैंने लंका में दूसरी सीता को देखा था। लक्ष्मण कहते हैं कि मैंने सीता का शरीर कभी नहीं देखा। इस पर सीता कहती हैं कि मैं अग्नि में प्रवेश करना चाहती हूँ।

हनुमन्नाटक में[1] हनुमान का चरित्र वाल्मीकि रामायण के सदृश ही वर्णित है---हाँ, यहाँ इन्हें रौद्रावतार कहा है।

जानकी के आभूषणों को देख कर राम के विलाप करने पर हनुमान जी कहते हैं कि धैर्य धारण कीजिये, रावण को जीत कर मैं ही सीता को ला सकता हूँ।

सुग्रीव के पूछने पर कि कौन इन राजकुमारों में ताड़का के मारनेवाला है हनुमान जी कहते हैं---ये राम हैं। इन्होंने ताड़का को मारा है।

जब राम सुग्रीव से पूछते हैं कि तुम्हारे कटक में कोई ऐसा है जो निःशंक लंका को देख कर यहाँ लौट आने की शक्ति रखता हो तो हनुमान जी कहते हैं---

अष्टांगुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशांगुलः।
बाहू मे पश्य भो नाथ कथं रत्नाकरं तरेः॥[2]

---

[1] श्रीमद्धनुमद्विरचित---हनुमन्नाटक---राम स्वरूप शर्मा कृत भाषा टीका सहित,-वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९८१, पृ० ७६, अंक ५-३३।

[2] उपर्युक्त षष्टोऽङ्कः पृ० ८८।

हनुमान जी कहते हैं मेरा शरीर आठ अंगुल का है, पूँछ १२ अंगुली की मेरी भुजाओं को भी देख लीजिये, मैं कैसे समुद्र को पार कर सकता हूँ। इस जाम्बवान कहते हैं :—

देव ! ये हनुमान जी रुद्र के अवतार हैं, इनकी स्तुति कीजिये। राम जी स्तुति करके कहते हैं कि आपके बिना यह कौन कर सकता है। तव म पराक्रमी हनुमानजी प्रसन्न होकर, कहते हैं—"देव ! सुनिये। समुद्र को आल के समान, मेघों को पल्लव के समान, नक्षत्र तथा सूर्य-चन्द्रमा को फल के सम और आकाश को वृक्ष के समान मैं समझता हूँ। आप सीताजी के अन्वेषण लिए आज्ञा दीजिये। महाराज आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूँ—लंका को यहां लाकर रख दूं, या जम्बूद्वीप को लाकर रख दूँ, या समुद्र को सोख लूँ या विन्ध्या और मन्दराचल को उखाड़ दूँ। आज्ञा हो तो रावण को यहीं ले आऊँ, या सीता को ले आऊँ, या समुद्र में सेतु बाँध दूं।" हनुमान जी के इस प्रकार के वाक्य कर रामजी ने अपनी अँगूठी हनुमान जी को दी और कहा कि समुद्र को लाँघ तथा सीता को आश्वासन देकर शीघ्र लौट आओ। इसके वाद हनुमान मैनाक पर्वत को समादृत करते हुए वड़े वेग से समुद्र को लाँघते हैं[1]।

समुद्र के तट पर शाल तथा तमाल के वृक्षों को देखते हुए हनुमान अप पूँछ को ऊपर उठाये हुए अनायास ही समुद्र के पार हो जाते हैं[2]। इसके अन पवनकुमार रामचन्द्रजी की आज्ञानुसार मच्छर के समान रूप धारण क जानकी जी के पास पहुंचते हैं तथा शिंशुपा के वृक्ष के नीचे बैठी हुई जानकी सामने अँगूठी डाल देते हैं और उनको आश्वासित करके रामजी का सं सुनाते हैं।

इसके वाद हनुमानजी माता सीताजी से पूछते हैं कि राजवाटिका किध है। सीता जी कहती हैं कि दक्षिण दिशा में। तब हनुमान जी अपना विशा रूप धारण करते हैं और रावण के उपवन को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। इसी स मेघनाद आकर ब्रह्मास्त्र से उन्हें बाँध लेता है और रावण पूछता है—तुम कौन हो हनुमान जी कहते हैं, "मैं तुम्हारे पुत्र का वध करने वाला राम का दूत हूँ"। राव अपने पराक्रम का वर्णन करता है। तब हनुमान जी कहते हैं, "कहाँ मेरु और क रावण ! करोड़ों-करोड़-रावण जहाँ कीड़े-फतिंगे के समान हैं"। रावण हनुमान पर तलवार चलाता है, पर हनुमानजी के शरीर पर तलवार की धार का कुछ

---

[1] हनुमन्नाटक—पृ० ८९-९१।

[2] उपर्युक्त—६-१२, पृ० ९३।

प्रभाव नहीं पड़ता। इसके वाद हनुमान जी की पूँछ में आग लगा दी जाती है और हनुमान जी उसी आग से लंका को भस्म कर देते हैं।

यहां रावण जिज्ञासा करता है, "कि मैंने तो रुद्र को तुष्ट किया है। यदि ये रुद्र हैं तो क्यों मेरी नगरी को जला र; हैं?" फिर उत्तर देता है कि "मैंने अपने दस शिरों से दस रुद्रों को तुष्ट किया, परन्तु ग्यारहवें को नहीं।"

राक्षस कहते हैं कि इस एक पवनपुत्र वानर ने इतना उपद्रव कर दिया है, तव वानरों की सेना पता नहीं क्या कर डाले।

छटें अंक में हनुमान जी गर्वोक्ति करते हुए और लंका को जलाते हुए श्री सीता जी के पास जाते हैं, प्रणाम करते हैं और शिरोमणि लेकर चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं। क्षण भर में वे श्रीरामजी के सामने उपस्थित हो जाते हैं। रामजी उनके आलिंगन के लिए उठ खड़े होते हैं। तव हनुमान जी कहते हैं कि मैंने समुद्र को नहीं पी लिया, राक्षसपुरी को चूर्ण नहीं किया, रावण के शिरों को नहीं लाया और सीताजी को भी नहीं लाया। मैं केवल संदेश वाहक हूँ। अतः मैं आपके आलिंगनरूपी पारितोषिक का पात्र नहीं हूँ। ऐसा कहकर हनुमान जी रामजी के समक्ष लज्जा के कारण जड़वत् स्थिर हो जाते हैं।

हनुमानजी रामचन्द्रजी को आश्वासन देते हैं और सीताजी की दी हुई चूड़ामणि देते हैं तथा उनका संदेश सुनाते हैं।[1] फिर रामचन्द्रजी के पूछने पर कि दशानन के विद्यमान रहते हुए ऐसी लंका को जहाँ कि देवताओं की भी पहुँच नहीं है, उन्होंने कैसे जलाया।[2] हनुमानजी उत्तर देते हैं कि "सीता के कोपानल से तथा उनके निःश्वास से लंका पहिले ही दग्ध हो गयी थी। मेरा तो इतना ही पराक्रम था कि मैं एक शाखा से दूसरी शाखा पर जाऊँ। समुद्र को तो मैंने आपके प्रभाव से ही पार किया।

सातवे अंक में सुग्रीव से हनुमानजी कहते हैं कि, "आपने राज प्राप्त कर लिया। अहंकार के वश में होकर आपने रामजी के महा कार्य की सुधि ही विसार दी···"

आश्विन शुक्ल विजय दशमी के दिन वानरी सेना के साथ रामचन्द्रजी प्रयाण करते हैं[3]। इस प्रयाण के विषय में हनुमान जी कहते हैं

---

[1] उपर्युक्त—षष्ठो अंकः ३८-४०।

[2] उपर्युक्त—षष्ठो अंकः-४२।

[3] हनुमन्नाटकम्—७-२

कि "हे प्रभो! आप के प्रयाण को सर्पराज कमठ की पीठ पर अंकित रहे हैं"[1]।

समुद्र पर पुल बंध जाने पर हनुमान जी कहते हैं कि आपके ही प्रभाव ये पत्थर समुद्र में तरे हैं।[2]

यहाँ पर इसके पश्चात् हनुमानजी का चरित्र युद्ध के समय में मिलता है कुम्भकरण के आने पर हनुमानजी उनसे लड़ने को उद्यत होते हैं।

इसी बीच रामचन्द्र तीरों से उसकी छाती फाड़ देते हैं तथा उस खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं। इसी समय हनुमान द्वारा आघात के कार उसका मस्तक हिमाचल पर जा गिरता है और लांगूल द्वारा लपेटा हुआ शरी आकाश में चक्कर काटने लगता है।[3]

यह प्रसंग रामायण में नहीं मिलता।

मेघनाद के यज्ञ को भंग करने वाले भी हनुमान ही हैं।[4]

रावण मेघनाद-वध के पश्चात् ब्रह्मा की दी हुई जिस शक्ति को लक्ष्म पर चलाता हैं उसे हनुमानजी व्यर्थ कर देते हैं।

लंकेश्वरः सुतवधारुणवक्त्रचक्रस्तत्रैकवीरनिधनां क्षिपति स्म शक्तिम्।
सौमित्रिवक्षसि रुचार्धपथे ज्वलन्तीं क्षिप्ताऽम्बुधौ हनुमता तरसा गृहीत्वा।

इस पर ब्रह्म प्रदत्त-शक्ति को व्यर्थ जाते देख कर रावण ब्रह्मा पर ही क्रो कर उन्हीं को मारने को उद्यत होता है। तब ब्रह्मा नारद के द्वारा हनुमानजी को वहाँ से हटवा देते हैं हनुमानजी के हटने पर रावण पुनः वह शक्ति मंत्रों से अभिमन्त्रित करके चलाता है। यह लक्ष्मणजी के हृदय को विदीर्ण करती हुई

---

[1] तुलसी : रामचरितमानस—

सहिं सक न भार उदार अहिपति बार-बारहिं मोहई।
गहं दसन पुनि-पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुवीर रुचिर प्रयान प्रस्थिति जानि परम सोहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अविचल पावनी॥

[2] तुलसी : महिमा यह न जलधि कइ बरनी।
पाहन-गुन न कपिन्ह कइ करनी॥
श्री रघुवीर प्रताप ते सिन्धु तरे पाषाण।

[3] हनुमन्नाटकम्—९-३८।

[4] हनुमन्नाटकम्—१२-१८।

[5] हनुमन्नाटकम्—पृ० १७८-१७९-१३-२।

कच्छप के पास चली जाती है। लक्ष्मण को मूर्च्छा आने पर हनुमान जी रामसे कहते हैं कि आपको धीरज रखना चाहिये।

रामचन्द्रजी के विलाप करने पर हनुमान जी कहते हैं :—

देव पश्य

सप्ताम्भोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैव गोत्राचलाः ।
पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम् ।
एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
कोऽसौ यास्यति राक्षसो रघुपते ! किं कार्मुकं त्यज्यते ।। १२

इसके पश्चात् हनुमानजी रामचन्द्रजी को और समझाते हैं।[1]

राम लंका से सुषेण नाम के वैद्य को लाने के लिए हनुमान को भेजते हैं[2]। सुषेण आकर कहते हैं कि विशल्या नाम की ओषधि के बिना इनको चेतना आना कठिन है। यह औषधि द्रोणाद्रि पर्वत पर होती है।

हनुमानजी राम से पुनः कहते है कि आप थोड़ी देर अपना चित्त स्थिर रखिये जब तक मैं सुषेण को लंका पहुचा आऊँ। वे कहते हैं कि जितना समय सरसों के दाने को गर्म तेल में डाल कर भूनने में लगता है उतने ही समय में मैं विशल्या औषधि को ले आता हूँ।[3] लक्ष्मणजी की माता को दुःस्वप्न होता है।

हनुमान जी जब द्रोणाद्रि शिखर पर पहुँचेते हैं तो सभी पेड़ों से चमक निकलती दिखाई देती है। इस पर हनुमान उस पर्वत को ही उखाड़ लेते हैं और शीघ्रता से चल पड़ते हैं। भरतजी सुमित्रा के स्वप्न की शान्ति के हेतु यज्ञ कर रहे हैं उसी समय हनुमानजी वहाँ अयोध्या के ऊपर से जाते हैं। हनुमानजी को भरतजी राक्षस समझ कर सर से मारते हैं। यह प्रसंग रामायण में नहीं है।[4] इस पर ये 'हा राम ! हा लक्ष्मण' कहते हुए अपने लांगूल में पर्वत को बाँधे हुए मूर्च्छित हो गिर पड़ते हैं।

---

[1] उपर्युक्त—पृ० १८३-१८४।

[2] उपर्युक्त—पृ० १३-१७। यहाँ सुषेण लंका का वैद्य है। रामायण में सुषेण सुग्रीव का एक सेनापति है।

[3] उपर्युक्त—१३-१८-२१।

[4] यह प्रसंग तुलसी-कृत रामचरितमानस में हैः रामायण में नहीं है।—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि ।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवण लगि तान।।६-५८।।

इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि द्रोणगिरि को हनुमानजी अपनी पूँछ में हुए हैं। इनका विग्रह प्रायः बांये हाथ में पर्वत लिये हुए दिखाई देता है। में पर्वत लपेटे हुए नहीं दिखाई देता। हनुमानजी का वशिष्ठ जी उपचार हैं और उनकी बेहोशी दूर हो जाती है। भरतजी के बाहु के पराक्रम को की इच्छा से हनुमानजी कहते हैं :—

जिज्ञासया भरतबाहुपराक्रमस्य
रामस्तु तस्य युधि लक्ष्मणशक्तिभेदे।
श्रान्तोऽहमित्यथ गिरिं नय तं कुमारं
वाक्यं जगाद हनुमान् भरतं सरोषः ॥२७॥

तव भरतजी ने......

श्रुत्वेति तस्य वचनं भरतः शराग्रे
साद्रिं कपिं समधिरोप्य गुणे नियोज्य
मोक्तुं दधे झटिति कुण्डलिनं चकार
तुष्टाव तं परमविस्मयमागतः सः ॥२९॥[1]

उत्तीर्य बाणात्कुशलं गृहीत्वा सम्पूज्य बाहुं भरतस्य वाग्भिः।
मनो दरिद्रस्य यथा दिगन्तं तथा हनूमाच्छिविरं जगाम ॥३०

हनुमान जी आधी रात को लंका पहुँचते हैं। यहाँ इन्हें रुद्रावतार भी कहा है :—

अद्रिं रुद्रावतारः प्रलयसमुदितद्वादशार्कानुकारं
द्रोणं दोष्णा दधानः कटकनिकटमागतोऽप्यर्धरात्रे।३१।

इनकी आगे इसी नाटक में यों प्रशंसा की गई है—

कपिकटकभटानां गण्डगोपालनामा
समरशिरसि धीरो योऽञ्जनायास्तनूजः।
दिशतु विशदलक्ष्मीं लक्ष्मणस्यात्मनः श्री
चरणनलिननत्या नित्यसत्योदयश्रीः ॥३४॥

रामजी प्रसन्न होकर कहते हैं, "तुम्हारे उपकार का बदला मैं नहीं दे सकता"

इसके पश्चात् हनुमानजी औषधि लाकर लक्ष्मण के चोट पर लेप करते हैं जिससे लक्ष्मण सचेत हो जाते हैं तथा सर नभ में चला जाता है।

---

[1] तुलसी—चढ़ु मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहिं जहँ कृपा निकेता।

राम-रावण के युद्ध के समय देवराज इन्द्र के भेजे हुए रथ की ध्वजा पर हनुमानजी को रामचन्द्रजी बैठाते हैं। इस पर लंकापति रावण पूछता है कि राम की पताका पर यह कौन बैठा है। लोहिताक्ष कहता है "जिसने खेल में ही समुद्र को लांघकर सीताजी को राम का सन्देश दिया, जिसने लंका को जलाया और जो लक्ष्मण को ओषधि लाकर जिला पाया वही मारुत सुत रामजी की पताका पर है"।

लड़ाई के अन्त होने पर लक्ष्मण तथा वायुपुत्र जानकीजी को विमान में बैठाकर लाते हैं—

हनुमानजी जानकीजी को रावण की मृत्यु का संवाद देते हैं[1]।

मुरारि कृत अनर्घराघव में हनुमानजी का प्रथम प्रकरण गुह के इस कथन में आता है—

गुहः क्षणं च देवस्य महावीरसंवादगोष्ठीयमृष्यमूकयात्रामन्तरयिष्यति।
तदहमग्रतो गत्वा दिष्ट्या वर्धयामि सूर्यतनयम्॥[2]

यहाँ हनुमान को महावीर की संज्ञा दी गयी है।

यहीं गुह हनुमान के विषय में यह भी सूचना देता है:—

गुहः—अयमपि किष्किन्धेश्वरस्कन्धावारैकवीरो भगवतः प्रभजंनस्य परस्त्रैणेय। पुत्रो हनुमान्[3]।

लक्ष्मण यह कहते हैं:—

ब्रह्मशापपरिक्लिष्टस्ववीर्यज्ञानयन्त्रितः।
अन्यैरपि भुवं वीरैः कीर्यमाणामुपेक्षिते॥५१॥
नियतमनेन सख्या हृदयशल्यमस्माकमुद्धरिष्यते।

इसके पश्चात् यह भी सूचना मिलती है कि हनुमान अंगद को युवराज पद पर अभिषिक्त करते हैं। इसके पश्चात्—

माल्यवान् हनुमान के लंकादहन की सूचना देते हैं:—[4]

दग्धाः प्रदीप्तपावकपरिचयपिण्डस्य हेमवेश्मानः।
क्षणमुत्पुच्छयमाने हनुमति लंकापुरीदेशाः॥

इसके पूर्व की कथा भी यहीं कुछ मिलती है।[5]

---

[1] हनुमन्नाटक, पृष्ठ २१४-२१६।

[2] श्री मुरारि, अनर्घराघव, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९०८, अंक ५, ३१ कविता के पश्चात् पृष्ठ २०५।

[3] उपर्युक्त पृष्ठ २१४।

[4] उपर्युक्त पृष्ठ २१४।

[5] उपर्युक्त—पृष्ठ २१५।

माल्यवान् सारण से कहते हैं : कथमेवं विशीर्यतीव नः कुलमिदम्
खरादीनवधीद्रामो वत्साक्षं च मारुतिः।
स्वयं निष्क्रामयामास दशास्यश्च विभीषणम् ॥५॥ इत्यादि

वत्स! केसरी की पत्नी की कोख से पवनदेव की कृपा से उत्पन्न वानर द्वारा विलुण्ठित अशोकवन को देख कर तुम्हारे महाराज ने विभीषण से कहा वत्स! देखो दो मानवपुत्रों की धृष्टता से इस कपि कीट (वानरों में कीड़े समान) ने यह क्या किया हैं'[1]?

माल्यवान् ने पुनः कहा "वत्स सारण! वालि के वध के द्वारा अपनी शत्रुता शोध करने वाले वानरों के स्वामी तथा मित्रता के द्वारा साक्षात् उपकृत सुग्रीव हनुमानजी के द्वारा हम लोगों के वृत्तान्त को जानने के लिए ऐसा किया है"[2]।

जयदेव-कृत प्रसन्न राघव नामक[3] नाटक के पाँचवें अंक में नदियाँ त सागर वार्तालाप कर रहे हैं। इसमें जानकी-हरण की कथा तथा सुग्रीव की रा से मैत्री की कथा मिलती हैं। इसी में वानरों को सीता की खोज के हेतु भेजने की क भी प्राप्त होती हैं। तुंगभद्रा नदी कहती है कि सीताजी के नूपुर प्रदान से विश्व रामजी ने बड़ी सरलता से वालि को मार कर सूर्यपुत्र सुग्रीव को वानर-राज्य प अभिषिक्त किया हैं। इसके बाद समुद्र ने पूछा तब क्या हुआ? तुंगभद्रा ने कहा सुग्रीव ने भी रामजी की धर्मपत्नी को ढूँढ़ने के लिए कुमुद, नल, नील, अंगद त हनुमान आदि वानरों को दशों दिशाओं में भेज दिया हैं। इसके बाद सागर अप मुख ऊपर उठा कर देखता हैं कि कई कोसों में व्याप्त दूसरे हिमालय की तरह विशा कोई बड़ी तीव्र गति से समुद्र को पार कर रहा हैं।

छठवें अंक में रत्नशेखर लंका का दृश्य नाटक के रूप में राम-लक्ष्मण के सम उपस्थित करता हैं।

सीता त्रिजटा से आग के लिए प्रार्थना करती हैं और वह कहती हैं कि इ समय इस स्थान पर अग्नि उपलब्ध नहीं हैं। उसके पश्चात् सीता अशोक के पे से अग्नि देने को कहती हैं। इसी समय हनुमान राम नामांकित मुद्रिका अशोक के पेड़ से गिरा देते हैं। सीता पहिले सन्देह करती हैं कि यह मुद्रिका लंका में कै आयी फिर उसी से राम-लक्ष्मण का कुशल समाचार पूछती हैं।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २२०।

[2] उपर्युक्त, पृ० २२४, अंक ६, ११ श्लोक के पश्चात्।

[3] जयदेव कवि विरचितम्—प्रसन्नराघवम्, सं० श्री जीवानन्द विद्या सागर भट्टाचार्य, श्री रामपुर—रहेश सत्ययन्त्रे—१८७२ ई०।

(पटाक्षेपेण प्रविश्य) हनुमान्—कुशलं देवि ! कुशलम् ।

सीता—अमी अमुह कोसि तुमं ?

हनुमान जी इसका उत्तर देते हैं कि वे कुशल से हैं। सीता के पूछने पर कि वे कौन हैं वे बताते हैं कि वे तारा के पति के अनुचर तथा राम के दूत हैं और मरुत के पुत्र हनुमान हैं। इसके पश्चात् हनुमान सीता को सुग्रीव की राम से मैत्री, बाली की मृत्यु इत्यादि का समाचार देते हैं। इसके पश्चात् राम का सन्देश देते हैं। "तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन रहत सदा तव पाहीं"। इत्यादि।

सीताजी चूड़ामणि को हाथ में लेकर चूड़ामणि सम्बन्धी पूर्व वृत्तान्तों को स्मरण करती हैं। तब हनुमान जी कहते हैं—"देवि श्रीराम के चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा मुझे शीघ्र जाने के लिए बाध्य कर रही है"। सीता जी रोती हुई कहती हैं कि "तुम्हारे बिना मेरी यह दशा राम जी को कौन सुनायेगा"। तब हनुमान जी सीता को आश्वासन देते हैं और कहते हैं कि शीघ्र ही लक्ष्मण जी के धनुष की गंभीर ध्वनि से राक्षसों की बहुयें रोयेंगी। इसी समय नेपथ्य से आवाज़ आती है कि "अरे वानर! राजकुमार अक्ष को मार कर कहाँ भागा जा रहा है। रावण की आज्ञा से धनुर्धारी मेघनाद तुम्हें मारने के लिए पहुँच रहे हैं।"

इस पंक्ति से ऐसा ज्ञात होता है कि अक्षयकुमार को मार कर हनुमान सीता के पास पहुँचते हैं। यहाँ के कथोपकथन से ऐसा ज्ञात होता है मेघनाद की ही आज्ञा से हनुमान की पूँछ में आग लगाई जाती है। वे पूँछ की आग से लंका को जला देते हैं तथा अपनी पूँछ समुद्र में बुझा कर वे समुद्र पार करके राम के पास चले जाते हैं।

इस दृश्य को देख कर रामचन्द्र जी भूल जाते हैं कि वे नाटक देख रहे हैं और कह उठते हैं "प्रिये हमारी प्रतीक्षा करो"। लक्ष्मण कहते हैं, यह तो विद्याधरों द्वारा प्रणीत नाटक है आर्य आपके मन में ऐसा भ्रम क्यों हो रहा है ?"

सप्तम अंक में विद्याधर तथा विद्याधरी के कथोपकथन में लक्ष्मण के शक्ति लगने का विवरण तथा हनुमान के गंधमादन से महाऔषधी लाने का वृत्तान्त मिलता है।[1] इसे सूँघ कर लक्ष्मण चैतन्य हो जाते हैं।

काश्मीर के महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित रामायण मंजरी में[2] हनुमान के जन्म

---

[1] उपर्युक्त पृष्ठ १५०।

[2] क्षेमेन्द्र--रामायण मंजरी--काव्यमाला,--८३, सं० केदारनाथ इत्यादि, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई १९०३, पृष्ठ ४६२-४६३ ।

की कथा राम रावण युद्ध के पश्चात् दी गयी है जैसे वाल्मीकि के रामायण के काण्ड में मिलती है।[1] यहाँ भी राम जी अगस्त्य मुनि से पूछते हैं—

रामजी अगस्त्य जी से हनुमान जी के पराक्रम का वर्णन करते हैं और पूछे कि इतना पराक्रम रखते हुए भी ये उससे विस्मृत से क्यों रहते थे। इस पर अग जी कहते हैं कि "केशरी की पत्नी अंजना में पवन देव की कृपा से उत्पन्न होते इन्होंने खाने की इच्छा से सूर्य को पकड़ लिया। उसी समय सूर्य ग्रहण के लिए भी वहाँ पहुँचा और इस बालक को वहाँ देख कर इन्द्र से निवेदन किया। इन्द्र ऐ वत गज पर आरूढ होकर वहाँ आए। विशाल ऐरावत को देख कर इस वा ने उसे पकड़ना चाहा। तब इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया। वज्र के प्रहार से वा का हनु (ठुड्ढी) टूट गया। इसके बाद पवनदेव रुष्ट हो गए। ब्रह्मा जी आए बालक को स्वस्थ किया। इसी कारण इनका नाम हनुमान पड़ा। देवताओं वरदान दिया कि उनके स्वस्थ अस्त्र-शस्त्र इनके पर काम न करें। इसलिए ये मान निर्भय होकर विचरण करते रहे। आश्रमवासी मुनियों के वल्कल तथा कमण्ड आदि को छिन्न भिन्न किया करते थे। तब मुनियों ने इन्हें शाप दिया कि ये पराक्रम से तब तक विस्मृत रहेंगे जब तक कोई इन्हें उसका स्मरण न दिलायेगा"

यहाँ इस कथा में तथा रामायण की कथा में कोई विशेष भेद नहीं है।[2] इस में भी वाल्मीकि रामायण की भाँति हनुमान का प्रथम साक्षात्कार सुग्रीव के स के रूप में होता है।[3]

हनुमान अग्नि की साक्षी देकर राम से सुग्रीव की मित्रता करा देते हैं।

इसके पश्चात् राम को सुग्रीव सीता के वस्त्राभूषण दिखाते हैं जिन्हें देख कर विह्वल होते हैं। सुग्रीव के धैर्य देने पर वे सुग्रीव से उनका वृत्तान्त पूछते हैं जिसे बताते हैं तथा दुन्दुभी की अस्थियाँ तथा सप्तताल दिखाते हैं। दुन्दुभी की अस्थि को राम दस योजन दूर फेंक देते हैं और तालों को भी एक सर से छेद देते हैं।[4] त परान्त वालि और सुग्रीव के युद्ध का वर्णन मिलता है। यह उसी प्रकार का है

---

[1] यों वाल्मीकि के रामायण में किष्किन्धाकाण्ड में भी हनुमान की क प्राप्त होती है। परन्तु उत्तर काण्ड में यह विस्तार से दी हुई है।

[2] हनुमान नाम का अर्थ सिद्ध करने के हेतु यह कथा गढ़ी हुई होती है। यहाँ यह रामायण से उद्धृत है। रामायण में भी पीछे से जोड़ी हुई होती है। ६९०-७१८, १-१०।

[3] रामायण मंजरी—पृष्ठ १७१।

[4] उपर्युक्त पृष्ठ १७४-१७८।

रामचरित मानस में हैं।[1] सुग्रीव राज्य प्राप्ति के पश्चात् भोग विलास में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि राम के कार्य को ही भूल जाते हैं।[2]

इसी बीच में राम लक्ष्मण को भेजते हैं। वे जब क्रोधयुक्त होकर कहते हैं कि 'मैं इस पुर को ही नष्ट कर दूंगा।' तब हनुमान उनको समझाते हैं तथा बताते हैं कि दूत वानरों को बुलाने को भेजे गए हैं।

लक्ष्मण की भर्त्सना से सुग्रीव लज्जित होते हैं। इस पर हनुमान बताते हैं कि दूत वानरों को लाने को भेज दिए गए हैं वे शीघ्र आयेंगे।

लक्ष्मणेनेत्यभिहिते तथेत्युक्त्वा हरीश्वरः।
परिवृत्याननं किंचिदुवाच पवनात्मजम्॥
कुलाचलेषु सर्वेषु समुद्रेषु वनेषु च।
दिक्षु द्वीपेषु गगने निर्मलेष्वासु भूमिषु॥
ये शैलजलदप्रख्या वसन्ति हरियूथपाः।
तूर्णमायन्तु ते दूतैस्त्वद्विसृष्टैयदाज्ञया॥
राजाज्ञा दूषका येतु नायन्ति मदमोहिताः।
शरीरे दुःसहस्तेषां दण्डः क्षिप्रं निपात्यताम्॥
इत्युक्ते प्लवगेन्द्रेण हनुमद्वाक्यचोदिताः।
कपीनां भीमवेगानां कोट्यस्तूर्णं दिशोर्ययुः॥

इसके पश्चात् वानरों के आने पर सुग्रीव उन्हें सीता को खोजने के हेतु विविध दिशाओं में भेजते हैं।

इस प्रकार खोजते हुए अंगद, हनुमान इत्यादि 'स्वयम्प्रभा' के स्थान पर पहुँचते हैं और उस वन में प्रवेश कर के एक राक्षस को मार कर मणि हेममयपुर में पहुँच जाते हैं।

हनुमान जी अंगद से कहते हैं कि मित्र को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। आपको ज्ञात है कि सुग्रीव के कोई पुत्र नहीं है और आप ही उनके उत्तराधिकारी हो। आपको क्रमागत राज्य को छोड़ना नहीं चाहिए।

अंगद को हनुमान की बातें नहीं जँचती और वे कुशासन पर लेट जाते हैं। संपाति इनको देख कर भोजन की इच्छा से इधर आता है। अंगद से अपने भ्राता जटायु की कहानी सुन कर वह उसको तिलांजलि देकर कहने लगता है कि 'मेरे पुत्र सुपार्श्व ने

---

[1] उपर्युक्त पृष्ठ १८९-१८०। रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड—दोहा ७ से १०।

[2] उपर्युक्त पृष्ठ १९०।

की कथा राम रावण युद्ध के पश्चात् दी गयी है जैसे वाल्मीकि के रामायण के काण्ड में मिलती है।[1] यहाँ भी राम जी अगस्त्य मुनि से पूछते हैं—

रामजी अगस्त्य जी से हनुमान जी के पराक्रम का वर्णन करते हैं और पूछे कि इतना पराक्रम रखते हुए भी ये उससे विस्मृत से क्यों रहते थे। इस पर अग जी कहते हैं कि "केशरी की पत्नी अंजना में पवन देव की कृपा से उत्पन्न होते इन्होंने खाने की इच्छा से सूर्य को पकड़ लिया। उसी समय सूर्य ग्रहण के लिए भी वहाँ पहुँचा और इस बालक को वहाँ देख कर इन्द्र से निवेदन किया। इन्द्र ऐ वत गज पर आरूढ होकर वहाँ आए। विशाल ऐरावत को देख कर इस बा ने उसे पकड़ना चाहा। तव इन्द्र ने वज्र का प्रहार किया। वज्र के प्रहार से बा का हनु (ठुड्ढ़ी) टूट गया। इसके वाद पवनदेव रुष्ट हो गए। ब्रह्मा जी आए औ वालक को स्वस्थ किया। इसी कारण इनका नाम हनुमान पड़ा। देवताओं वरदान दिया कि उनके स्वस्थ अस्त्र-शस्त्र इनके पर काम न करें। इसलिए ये ह मान निर्भय होकर विचरण करते रहे। आश्रमवासी मुनियों के वल्कल तथा कम आदि को छिन्न भिन्न किया करते थे। तव मुनियों ने इन्हें शाप दिया कि ये अ पराक्रम से तव तक विस्मृत रहेंगे जव तक कोई इन्हें उसका स्मरण न दिलायेगा

यहाँ इस कथा में तथा रामायण की कथा में कोई विशेष भेद नहीं है।[2] इस में भी वाल्मीकि रामायण की भाँति हनुमान का प्रथम साक्षात्कार सुग्रीव के स के रूप में होता है।[3]

हनुमान अग्नि की साक्षी देकर राम से सुग्रीव की मित्रता करा देते हैं।

इसके पश्चात् राम को सुग्रीव सीता के वस्त्राभूषण दिखाते हैं जिन्हें देख क विह्वल होते हैं। सुग्रीव के धैर्य देने पर वे सुग्रीव से उनका वृत्तान्त पूछते हैं जिसे वताते हैं तथा दुन्दुभी की अस्थियाँ तथा सप्तताल दिखाते हैं। दुन्दुभी की अस्थि को राम दस योजन दूर फेंक देते हैं और तालों को भी एक सर से छेद देते हैं।[4] उ परान्त वालि और सुग्रीव के युद्ध का वर्णन मिलता है। यह उसी प्रकार का है

---

[1] यों वाल्मीकि के रामायण में किष्किन्धाकाण्ड में भी हनुमान की क प्राप्त होती है। परन्तु उत्तर काण्ड में यह विस्तार से दी हुई है।

[2] हनुमान नाम का अर्थ सिद्ध करने के हेतु यह कथा गढ़ी हुई होती है। यहाँ यह रामायण से उद्धृत है। रामायण में भी पीछे से जोड़ी हुई होती है। ६९०-७१८, १-१०।

[3] रामायण मंजरी—पृष्ठ १७१।

[4] उपर्युक्त पृष्ठ १७४-१७८।

रामचरित मानस में हैं।[1] सुग्रीव राज्य प्राप्ति के पश्चात् भोग विलास में ऐसे निमग्न हो जाते हैं कि राम के कार्य को ही भूल जाते हैं।[2]

इसी बीच में राम लक्ष्मण को भेजते हैं। वे जब क्रोधयुक्त होकर कहते हैं कि 'मैं इस पुर को ही नष्ट कर दूंगा।' तब हनुमान उनको समझाते हैं तथा बताते हैं कि दूत वानरों को बुलाने को भेजे गए हैं।

लक्ष्मण की भर्त्सना से सुग्रीव लज्जित होते हैं। इस पर हनुमान बताते हैं कि दूत वानरों को लाने को भेज दिए गए हैं वे शीघ्र आयेंगे।

लक्ष्मणेनेत्यभिहिते तथेत्युक्त्वा हरीश्वरः।
परिवृत्याननं किंचिदुवाच पवनात्मजम्॥
कुलाचलेषु सर्वेषु समुद्रेषु वनेषु च।
दिक्षु द्वीपेषु गगने निर्मलेष्वासु भूमिषु॥
ये शैलजलदप्रख्या वसन्ति हरियूथपाः।
तूर्णमायन्तु ते दूतैस्त्वद्विसृष्टैयदाज्ञया॥
राजांज्ञा दूषका येतु नायन्ति मदमोहिताः।
शरीरे दुःसहस्तेषां दण्डः क्षिप्रं निपात्यताम्॥
इत्युक्ते प्लवगेन्द्रेण हनुमद्वाक्यचोदिताः।
कपीनां भीमवेगानां कोट्यस्तूर्णं दिशोर्ययुः॥

इसके पश्चात् वानरों के आने पर सुग्रीव उन्हें सीता को खोजने के हेतु विविध दिशाओं में भेजते हैं।

इस प्रकार खोजते हुए अंगद, हनुमान इत्यादि 'स्वयम्प्रभा' के स्थान पर पहुँचते हैं और उस वन में प्रवेश कर के एक राक्षस को मार कर मणि हेममयपुर में पहुँच जाते हैं।

हनुमान जी अंगद से कहते हैं कि मित्र को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। आपको ज्ञात है कि सुग्रीव के कोई पुत्र नहीं है और आप ही उनके उत्तराधिकारी हो। आपको क्रमागत राज्य को छोड़ना नहीं चाहिए।

अंगद को हनुमान की बातें नहीं जँचती और वे कुशासन पर लेट जाते हैं। संपाति इनको देख कर भोजन की इच्छा से इधर आता है। अंगद से अपने भ्राता जटायु की कहानी सुन कर वह उसको तिलांजलि देकर कहने लगता है कि 'मेरे पुत्र सुपार्श्व ने

---

[1] उपर्युक्त पृष्ठ १८९-१८०। रामचरितमानस, किष्किन्धाकाण्ड—दोहा ७ से १०।

[2] उपर्युक्त पृष्ठ १९०।

जानकी को रोते हुए जाते देखा था।" एक दिन वह मेरा भोजन देर में लाया, जब उससे इस विलम्ब का कारण पूछा तो उसने यह कथा बतायी। मैंने उसे धिक्क कि "तू ने दशरथ की पुत्रवधू को बचाया क्यों नहीं, वह मेरे मित्र के लड़के की है।"[1] सुपार्श्व की कथा रामायण में नहीं है। फिर सम्पाति के पंख निकल आने वह बताता है कि सीता लंका में है जो शतयोजन पार है। उनसे कहता है कि स्वयम् बूढ़ा हो गया है इस कारण पार नहीं जा सकता परन्तु वानर तो तैर कर जा सकते हैं। जाम्बवान ने कहा "तुमने उपाय जो बताया उससे लंघन की हमें चिन्ता हो गयी है"। जाम्बवान की बात सुन कर वह अपने पुत्र स्मरण करता है जो तुरन्त वहाँ आ जाता है। वह कहता है कि 'अंगद मेरे पीठ बैठे मैं उन्हें लंका पहुँचा देता हूँ।' परन्तु स्वाभिमानी अंगद उसका यह प्रस्ता स्वीकार नहीं करते।[2]

इस कृति की संपाति की कथा रामायण की कथा से भिन्न है। रामायण सम्पाति के पुत्र की कथा है ही नहीं।

परन्तु इसमें भी वाल्मीकि रामायण की भाँति जाम्बवान हनुमान को पार जाने को प्रोत्साहित करते हैं जिसमें वे राम कार्य कर आयें। इसी प्रसंग में उनके जन्म की कथा बताते हैं जो वाल्मीकि रामायण की भाँति ही है।[3] अप्सरा का नाम जिसने श्रापवश अंजना हो कर जन्म लिया था यहाँ पुञ्जिकस्थ के स्थान पर मुक्तिकास्थली कहा गया है।[4] इस कृति के अनुसार इनका न हनुमान इस कारण पड़ा कि इनका वाम-हनु गिरि पर गिरने से टूट था। यहाँ इनके इन्द्र के वज्र से आहत होने की कथा नहीं है। परन्तु हनुमान अर्थ तो हनू सहित होता है टूटा हनू नहीं होता। इस प्रकार जाम्बवान वाक्यों को सुन कर ही अपनी पूँछ उठा कर हनुमान वृहत्काय हो जाते हैं समुद्र को लाँघने को तत्पर हो जाते हैं।

यहाँ केसरी को भरद्वाज द्वारा वर प्रदान करने की कथा कहाँ से ली गयी है कहना कठिन है। यदि हनुमान का जन्म इस वर के कारण हुआ तो फिर का अंजना के साथ सम्भोग करने की कथा का कोई अर्थ नहीं रह जाता। व प्रसाद से ही ये इतने वली हुए। कदाचित् इनके पवन से जन्म की कथा चल कर जोड़ दी गई हो।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २२१, ४१७-४२८।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २२२, ४३३-४४१।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २२६, ४७९-४९२। [4] उपर्युक्त, पृष्ठ २२६-४८

इनके यह कहने पर कि वें महेन्द्र गिरि पर चढ़ कर समुद्र को लाँघ जायँगे। अंगद सब वानरों को लेकर महेन्द्र पर्वत पर चढ़ जाते हैं।

इनके चरणों से दब कर उस गिरि के रहनेवाले सब जीव त्रस्त हो जाते हैं। यहाँ के दृश्य का वर्णन वाल्मीकि के वर्णन की ही भाँति सुन्दर है।[1]

सागर ने सगरवंशीय राम के दूत को जाते देख कर उसके विश्राम के विषय में सोच कर मैनाक से इनको आश्रय देने को कहता है। मैनाक तुरन्त समुद्र के तल से उठ कर खड़ा हो जाता है और वह हनुमान से कहता है कि इन्द्र जब सब पर्वतों का पक्ष काट रहे थे तो पवन ने उसकी सहायता की थी। इस कारण वह उनका आतिथ्य करना चाहता है। हनुमान कहते हैं "मैंने राम-कार्य किए बिना विश्राम न करने का प्रण किया है"। इसके पश्चात् मैनाक को छू कर वे आगे बढ़ जाते हैं[2]।

आगे बढ़ने पर हनुमान से नागमाता सुरसा की भेंट होती है। यह राक्षसी का भयानक रूप धारण करके उनके समक्ष उपस्थित होती है और उनको खाने के हेतु उद्यत होती है। इससे हनुमान जी कहते हैं "मैं राम कार्य करके आ जाऊँ तब स्वयम् तुम्हारे भक्षण के लिए आ जाऊँगा"। परन्तु जब वह उनको जाने नहीं देती तो हनुमान अपना शरीर बड़ा करते हैं। इस पर 'जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।' अन्त में अंगुष्ठ मात्र का शरीर धारण कर के वे उसके मुख में प्रवेश कर के बाहर निकल आते हैं। इस प्रकार वह आश्वस्त हो कर देवताओं के पास विमान पर चढ़ कर चली जाती है।[3] आगे बढ़ने पर उन्हें राहु की माता सिंहिका का दर्शन होता है जो छाया ग्रहण कर के जीवों का भक्षण करती थी उसके मुख में भी इसी प्रकार हनुमान प्रविष्ट होते हैं और उसको मार डालते हैं।[4] इसको मार कर वे बड़े वेग से आगे बढ़ते हैं।[5] इस समय इनके स्वरूप का यहाँ वर्णन इस प्रकार है[6]—

मूर्ध्निच्छत्राभिरामैः श्वसनविचलितैः पार्श्वयोश्चाभिरामैः।
कण्ठे मालायमानैरुरसि तनुतरैरुत्तरीयानुकारैः।
पृष्ठे लांगूललीलावलनपरिचितैः स्कन्धयोः केसराभैः।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैः किमपि कपिपतिर्वेगिगामीरराज॥

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २२८-२२९।
[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २३०, ५३४-५३८।
[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २३०-२३१, ५३८-५४४।
[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २३१-२३२, ५५०-५५९।
[5] उपर्युक्त, पृष्ठ २३२, ५६०-५६४।
[6] उपर्युक्त, पृष्ठ २३३।

समुद्र लाँघ कर जब हनुमान जी लंका के तट पर उतर जाते हैं तो बड़े प्र
होते हैं। इसमें लंका का राक्षसी स्वरूप में हनुमान से समागम नहीं दिखाया ग
है। यों लंका नगरी का वर्णन बड़ा सुन्दर है।[1] रावण के मंदिर में सीता को न दे
कर हनुमान बहुत खिन्न होते हैं।[2] फिर अशोक वन की ओर चले जाते हैं।

सुग्रीव तथा राम और देवताओं को प्रणाम कर के वे अशोक वन में प्रवि
होते हैं। वहाँ—

तत्र कांचनशाखस्य महतः शिंशुपातरोः।
अपश्यन्मारुतिर्मूले नारीं कमललोचनाम्॥

सीता वहाँ राक्षसियों से घिरी हुई बैठी हैं।[3] सीता यही है ऐसा मन में विचा
करके हनुमान जी तरु-पल्लवों में छिप जाते हैं।

इसी बीच दशानन काम से पीड़ित हो कर अशोक वन में आता है। उसक
तेज असह्य है और वह नारियों से घिरा हुआ है तथा नाना आभूषणों से सुसज्जि
है।[4] सीता को रावण यहां दो मास की अवधि देता है इसके पश्चात् त्रिजटा अप
स्वप्न राक्षसियों को सुनाती है।[5]

राक्षसियों के हटने पर पेड़ पर से ही हनुमान सीता को राम की कथा पू
सुनाते हैं और कहते हैं कि 'राम ने आपकी कुशल पूछने को मुझे भेजा है।'[6]

इस अमृत वाणी को सुनकर सीता यह निश्चित नहीं कर पाती कि यह स्व
है या प्रत्यक्ष है। ऊपर मुख उठा कर पल्लवों के बीच वानर को देख कर सोच
लगती हैं कि वानर का स्वप्न में देखना तो अशुभ होता है परन्तु यह तो प्रत्यक्ष
दिखाई दे रहा है कहीं यह रावण तो नहीं है यह सोच कर अपनी आँखें बन्द क
लेती हैं। हनुमान जी उनकी यह दशा देख कर उन्हें आश्वासन देते हैं तथा राम
की अंगूठी देते हैं।[7]

आश्वस्त होने पर वे अपनी दशा का वर्णन करती है तथा हनुमान के माँगने प
चिह्न रूप में सीता जी शक्रसुत की कथा सुना कर उन्हें अपनी चूड़ामणि देती हैं।[8]

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २३५-२३७।

[2] उपर्युक्त, सुन्दर काण्ड, पृष्ठ २४१, ९५-१२१।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २४५, १३८-१४६।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २४९, १९६-१९९।

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ २५४, ३००-३०९।

[6] उपर्युक्त, पृष्ठ २५८, ३१०-३१४।

[7] उपर्युक्त, पृष्ठ २६२-२६३, ३३४-३६१।

[8] उपर्युक्त, पृष्ठ २६३-२६९, ३८१।

सीतां प्रदक्षिणीकृत्य प्रस्थितः पवनात्मजः।
वर्धमानवमुर्वीरः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥

जाते समय वे सीता की प्रदक्षिणा करते हैं और सोचते हैं कि यदि मैं बिना किसी को जनाए रात्रि में सब को सोता छोड़ कर चला जाता हूँ तो हमारे भुजबल के द्वारा अर्जित हमारी ख्याति को कौन जानेगा। इस पर ये अशोक वन के बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ना प्रारम्भ करते हैं[1] और जो राक्षस उस वन की रक्षा करते थे जैसे जम्बुमालि इत्यादि, उनको मार डालते हैं। सात मन्त्रिपुत्रों को मार कर दुर्घं आदि का वध करते हैं।[2] इसके पश्चात् अक्षयकुमार का वध करते हैं।[3] मेघनाद के ब्रह्मास्त्र छोड़ने पर हनुमान यह सोच कर कि रावण के दरबार को देखना चाहिए अपने को बँधवा लेते हैं।[4]

वे रावण की सभा में उसे रत्नजटित सिंहासन पर आसीन देखते हैं तथा उसका अपार वैभव उनके सम्मुख आता है।[5] प्रहस्त द्वारा रावण के प्रश्नों के पूछे जाने पर ये उसको सीधा ही उत्तर देते हैं 'मैं स्वयम् आपको देखने की इच्छा से यहाँ आया हूँ अन्यथा मुझे ये बन्धन नहीं बाँध सकते।[6]" रावण क्रोध करके इन्हें मार डालने की आज्ञा देता है परन्तु विभीषण के समझाने पर इनके लांगूल में आग लगाने की आज्ञा प्रदान करता है।[7] यह भी योजना परोक्ष में जला कर वध करने की थी—

इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा जगाद दशकंधरः।
दह्यतामस्य लांगूलं प्रियपुच्छाहि वानराः॥

पूँछ में आग लगने से इन्होंने सारी लंका तो जला दी परन्तु फिर दुःखी हुए कि कहीं सीता को तो नहीं जला डाला। इस कारण उनके पास पुनः पहुँचते हैं।[8] इधर सरमा राक्षसी सीता को सब समाचार बताती हैं।

सीता अग्नि को नमस्कार करके हनुमान की रक्षा की प्रार्थना करती है। उधर हनुमान पुनः अशोक वन में पहुँच कर तथा जानकी को अदग्ध देख कर प्रसन्न होते

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २६४-२६६, ३८८-४१३।
[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २६८-२६९।
[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २७०-५३५।
[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २७०-२७२।
[5] उपर्युक्त, पृष्ठ २७२-२७३।
[6] उपर्युक्त, पृष्ठ २७३-५०६।
[7] उपर्युक्त, पृष्ठ २७४-२७६।-५३५
[8] उपर्युक्त, पृष्ठ २२९, ५७२-५७७।

हैं।[1] इसके पश्चात् एक पहाड़ी पर चढ़ कर ये सागर को पार करते हैं। लौ में पुनः मैनाक को अंगुली से छू कर अपने साथियों के पास पहुँच जाते हैं वैदेही की कुशल का समाचार देते हैं।

जब मधुवन के रक्षक निवारण करते हैं तो अंगद उन्हें मारते हैं। इस पर रक्षक सुग्रीव के पास दौड़ कर जाते हैं। सुग्रीव समझ जाते हैं कि सीता को हनुमा देख आए। पुनः ये लोग राम लक्ष्मण के पास आते हैं। हनुमान राम को लंका सब संवाद सुनाते हैं तथा सीता का सन्देश और चूड़ामणि देते हैं।

इसके पश्चात् लंका के दुर्ग की गुप्त तथा प्रत्यक्ष रचना के विषय में रामच पूछते हैं और हनुमान सविस्तार सब बताते हैं।

विभीषण के राम के पास आने पर जब राम सब वानर सेनापतियों से इन साथ व्यवहार के विषय में मंत्रणा करते हैं तो हनुमान हाथ जोड़ कर निवेदन कर हैं "यह लंका का कोश, दुर्ग तथा राष्ट्र को छोड़ कर आया है इस कारण इस प विश्वास किया जा सकता है। आपके गुणों के कारण ही यह आया है।" य सुन कर राम जी कहते हैं कि चाहे विभीषण में दोष हो अथवा गुण मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। इन वाक्यों से हनुमान के नीतिज्ञ तथा दूरदर्शी होने का परिचय मि गया है।

जब इन्द्रजित राम तथा लक्ष्मण को सरों से मार कर नागपाश में बाँध क मृतप्राय कर देता है तो सुषेण नामक कपियूथप कहता है "देवासुर संग्राम में औषधि काम में लायी गई थी उसे द्रोण पर्वत से हनुमान ले आवें।" यहाँ सुषेण वानरयूथप ही कहे गए हैं। रामचरित मानस की भाँति लंका के वै नहीं।[2]

इसी समय नारद आ जाते हैं और राम से गरुड़ को स्मरण करने को कहते हैं।[4] राम के स्मरण पर गरुड़ आकर उन्हें स्वस्थ कर देते हैं।[4] यहाँ यह नहीं ज्ञात होता कि हनुमान औषधि लेने जाते कि नहीं। इसके पश्चात् धूम्रकेतु को हनुमान मार डालते हैं।[5]

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ २७९, ५७९-५८०।

२. जैसे सुषेण को वाल्मीकि में वानरयूथप बताया गया है। लंकाकाण्ड ५४८-५४९। रामचरित—मानस-लंकाकाण्ड दोहा ५४-५५

३. उपर्युक्त पृष्ठ २८३-२८४।

४. उपर्युक्त, पृष्ठ ३३३-३३४, ५५०-५६१।

५. उपर्युक्त, पृष्ठ ३३५-३३६।

रावण से हनुमान के प्रथम युद्ध की कथा इस रामायण में वाल्मीकि रामायण की भाँति ही है।[1] दूसरी बार जब इन्द्रजित के शरों द्वारा सारी सेना और राम तथा लक्ष्मण आहत होकर अचेत हो जाते हैं तो जाम्बवान हनुमान को औषधि लेने भेजते हैं तथा उसका पता बताते हैं। हनुमान औषधि को नहीं पहिचानने के कारण पूरा पर्वत ही उठा लाते हैं और औषधि के गन्ध से ही राम तथा लक्ष्मण सचेत हो जाते हैं। यहाँ औषधि का नाम विशल्या बताया गया है।

स विलंघ्य समादाय दीप्तमौषधिपर्वतम्।
तूर्णं तद्ग्रहणत्रासोत्सहसान्तर्हितौषधम्॥
तदन्तर्धानकुपितो नादेनावृत्यरोदसीम्।
स शृंगमौषधिगिरेरुत्पाट्य प्रययौ जवात्॥
अथौषधीनां गन्धेन विशल्यौ रामलक्ष्मणौ।
रूढव्रणौ क्षणात्संज्ञां नष्टशोकाविवापतुः॥

इसके पश्चात् हनुमान उस पर्वत शिखर को पुनः रख आते हैं।

इसके पश्चात् निकुम्भ को हनुमान मुष्टि प्रहार से वध करते हैं।[2] पुनः इन्द्रजित तथा हनुमान के युद्ध का यहां वर्णन मिलता है।

दशानन द्वारा विभीषण पर फेंकी हुई शक्ति को जब लक्ष्मण स्वयम् अपने वक्षस्थल पर सहन करते हैं तो उनको पुनः मूर्छा हो जाती है तो सुषेण पुनः हनुमान को औषधि लाने को भेजते हैं।[3]

रावण की मृत्यु के पश्चात् विभीषण के राजा होने पर वाल्मीकि रामायण की भाँति हनुमान सीता को संवाद देने को भेजे जाते हैं और लौट कर राम जी से कहते हैं कि सीता देवी आपके दर्शन की इच्छुक हैं। लौटते समय पुष्पक विमान पर चढ़ कर राम जब भरद्वाज आश्रम में पहुँचते हैं तो हनुमान को भरत का कुशल समाचार लेने को भेजा जाता है,[4] जैसी कथा वाल्मीकि रामायण में है।

इतनी ही कथा हनुमान की इस ग्रंथ में उपलब्ध होती है। इस कथा में और वाल्मीकि की रामायण की कथा में बहुत थोड़ा अन्तर है जैसे इनकी माता का नाम, तथा संपाती के पुत्र की कथा इत्यादि।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ३४२-३४३।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ १२२६-१२२७।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ३७१, १०३२-१०३७।

[4] उपर्युक्त, उत्तर काण्ड, १५९-१६५।

क्षेमेन्द्र कृत दशावतार चरितम्[1] के अन्तर्गत भी रामावतार मिलता है। इ हनुमान का चरित्र संक्षेप में दिया है। वालि के मारने के पश्चात् जब वानर सी को खोजने जाते हैं तो हनुमान भी भेजे जाते हैं।

जटायू राम की कथा सुन कर कहता है कि "राम की अमृत रूपी कथा सुन मेरे पंख उग गए, मेरा शाप छूट गया और मैं लंका के उपवन में निरुद्ध सीता को देख रहा हूँ।"

महामति जाम्बवान् और अंगद आदि की प्रार्थना पर वायुपुत्र हनुमान महेन्द्र पर्वत पर चढ़ कर छलाँग मारते हैं। बीच में सिंहिका नाम की राक्ष का मानमर्दन करते हुए वे मैनाक को हाथ से स्पर्श कर लंका के तट पर उतर जा हैं। लंका में वे रात्रि में रावण के अन्तःपुर में सीता को ढूँढ़ते हैं। वहाँ पर हास उल्लास में लगी हुई रावण की पत्नियों को देखते हैं पर सीता जी को नहीं पाते। इस बाद ढूँढ़ते हुए उद्यान में सीता जी को देखते हैं। एकान्त में उनसे बातें कर के वे का भंजन करते हैं और अक्षय कुमार को मारते हैं, मेघनाद से युद्ध करते हैं बाद में ब्रह्मास्त्र में बाँधे जाते हैं। उनकी पूँछ में आग लगा दी जाती है। हनुमान इसी आग से लंका को भस्म कर देते हैं। इसके बाद वे सीता जी का सं ले कर श्री रामजी के पास चले जाते हैं।

लंका के युद्ध में इन्द्रजीत जब सब वानरों को हताहत कर देता है जाम्बवान् हनुमान को औषधि लाने भेजते हैं। यहाँ यह तीसरी बार प्र आता है।

महाकवि श्री राजशेखर द्वारा बाल रामायण नामक नाटक में[2] कर्पूरच हनुमान के विषय में अधोलिखित सूचना दिलाई जाती है।[3]

भौमं यज्जलधिं जवेन हनूमानुल्लंघ्य लंकां गतो
यच्चाशोकमहावनं दलितवानक्षंच यत् क्षुस्मवान्।
सीतोपायनमौलिरत्न सहितः प्राप्तश्चयत् त्वामसौ
तत्राप्येष भवत्प्रभावमहिमा निर्यन्त्रणः कारणम्॥

---

१. क्षेमेन्द्र—दशावतार चरितम्, सं० पं० दुर्गा प्रसाद तथा काशीन पाण्डुरंग, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३० दूसरा संस्करण—काव्यमाला २६।

२. राजशेखर, बालरामायणम्—टीकाकार—जीवानन्द विद्यासाग भट्टाचार्य, कलकत्ता १८८४।

३. उपर्युक्त, ७ अंक–१३।

समुद्र पर जव सेतु बन रहा है उस समय—

वक्तीत्र वानरवलानि हसन हनूमान् भद्रोमवल्लिषु दृढं कुरुतावलम्बम्।
येनैष सागरमहं लघुलंघयामि श्यामाचरैश्च समरं सहयोजयामि॥

हनुमान जी राम की मृकुटी को देख कर कहते हैं—

हनुमान—साश्चर्यं पुरोऽवलोक्य प्रणम्य च।

सेयं देव! मृकुटि रचना मुंचतुतल्ललाटं ज्योतिश्चन्द्रस्तवकिलशिखाचापदण्डं च वाणः।

वारां मध्यादयमुदयते पन्नगीगतकीर्त्तिः सार्द्धं दारैर्नंदपरिवृतः सांजलिर्यंत्समुद्रः।

इस कथन से ऐसा लगता है कि हनुमान को अंग विज्या का ज्ञान है। इसके बाद सुग्रीव वानरों को सेतुवन्ध के लिए पर्वत ले आने की आज्ञा देते हैं। हनुमान जी सुग्रीव की आज्ञा वानरों को सुनाते हैं और कहते हैं वानरों के लिए क्या दुष्कर है!

सेतु वन्ध जाने पर हनुमान राम से कहते हैं—

हनुमान—विहस्य। देव विजितमस्माभिर्यत् प्रमुख स्वविमुखं राक्षसबलम्।

रामः—प्रवृते रणकर्माणि सैन्योः सारणापसरणानि गणशो भवन्ति कुतस्तत्र जयः पराजयो वा।

हनुमान—देव! नैवं यत् किल प्रमुखविमुखं बलं द्वादश वर्षाणि न सम्मुखी भवतीति प्रायोवादः।

रामः—विहस्य। भद्र हनुमान! किमनेन विमुखेन-सम्मुखेन वा यदिह न धूर्जटिघरोद्धारेऽप्यकुण्ठो दशकण्ठो नापि विनिर्जितमघवा मेघनादः (पुरोऽवलोक्य) कथं लंका प्रतोलीमतिक्रम्य राक्षसबलं वर्त्तते। ऊर्ध्वमवलोक्य सकौतुकम् कोऽयं दिव्ये विमाने?

हनुमान—रजनीपतिः।

मेघनाद के युद्ध के विषय में सुमुख से यह कहलाया जाता है कि

यद्भैरवाक्रतिकराल कपालपाणि फेट्कारडाभरतरौ निनादानुबन्धः
तन्नूनपत्र हनुमान् समराय पत्रं सौमित्रिणा विरचितोऽयमखर्वगर्वः।।१९[२]

यहाँ पर रावण के सम्मुख दुर्मुख और सुमुख नामक राक्षस दूत मेघनाद और लक्ष्मण के युद्ध का वर्णन करते हैं। ये दोनों कहते हैं कि लक्ष्मण जी और मेघनाद के भयंकर युद्ध को विमान में वैठ कर देवगण भी देखने लगे। उसी समय महाबली हनुमान जी भयंकर शब्द करते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं।[२] आगे सुमुख कहता है

---

१. उपरोक्त, अंक ७, पृष्ठ ४३१-४३२।

२. उपरोक्त, ८-१९, पृष्ठ ५००।

कि अपने तेज से समुद्र को भी लाँघने वाले हनुमान के शिर पर मेघनाद को वा मारा परन्तु वह उन्हें छू कर गिर पड़ता है। इस प्रकार वाण व्यर्थ हो जाता है।

नवें अंक में चित्रगुप्त द्वारा यह समाचार मिलता है कि धूम्राक्ष तथा अकम्प को हनुमान मार डालते हैं। इसके पश्चात् देवान्तक तथा त्रिशिरा को भी हनु मार डालते हैं।

दशम अंक में लंका के पतन का विवरण लंका देती है। इसमें हनुमान चरित्र पूरा दिखाई देता है। लंका कहती है "समीर से उत्पन्न केशरी एक वानर ने सुन्दर उपवन आदि से सुशोभित, आकाशचुम्वी लीलाम तथा मणिमय भवनों वाली इस नगरी को स्मरण शेष कर दिया और नि निर्भीक वह यहाँ परिभ्रमण कर रहा है। इसके पश्चात् वह लंका जला डालता है।

सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात् नेपथ्य से यह समाचार प्रसारित होता कि भगवान राम सब वानरों तथा विभीषण के सहित पुष्पक विमान पर कर अयोध्या चलते हैं और हनुमान को भरत को सूचना देने के हेतु जाता हैं—

सम्प्रेषितश्च हनुमान् भरतस्य पार्श्वं लंकांगनाचकितनेत्र निरीक्षित श्रीः।
यात्येष वारिनिधिलंघनदृष्टसारोराज्याभिषेक समयोचितकार्य्यसिद्ध्यै।

राम सीता को उन स्थानों को दिखा रहे हैं जहाँ विविध लड़ाइयाँ हुई इसी स्थान पर कहते हैं—

अत्रासीत् फणिपाशबन्धनविधिशक्त्याभवद्वैवरे।
गाढं वक्षसि ताड़िते हनुमता द्रोणाद्रिरत्राहृतः॥
दिव्यैरिन्द्रजिदत्रलक्ष्मणशरैर्लोकान्तरं लम्भितः।
केनाप्यत्र मृगाक्षि राक्षसपतेः कृत्ता च कण्ठाटवी॥

आगे हनुमान अयोध्या से वापस आकर समाचार देते हैं—

हनुमान्—प्रणम्य। देव। मतः श्रुतवृत्तान्तो वशिष्ठः संमं भरतशत्रुघ्ना मन्याभिश्च प्रकृतिभिस्त्वदभिषेक-सज्जस्तिष्ठति। (सर्वे परिक्रमन्ति)

श्री अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि द्वारा विरचित श्री रामाभ्युदयम्[1] काव्य राम विवाह तक का ही प्रसंग है इस कारण इसमें हनुमान का चरित्र नहीं होता।

---

[1] श्री अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि, श्री रामाभ्युदयम्—सं० प्रसन्न कु गुहा—तारकचन्द्र चक्रवर्ती, नोआखाली, बंगाल, बंगीय सं० १३०३।

इसी प्रकार मल्लाचार्य प्रणीत उदार राघव में भी हनुमान का चरित्र नहीं प्राप्त होता।[१]

श्री महादेव कवि के अद्‌भुतदर्पण में हनुमान का पात्रों में तो नाम नहीं आता परन्तु सूत्रधार के अधोलिखित कथन में कुछ उनके विषय में विवरण मिलता है[२]—

सूत्रधार कहता हैं—अये ! भय मत करो, इस रूपक में गुणवान् गुप्तचर श्री हनुमान जी के द्वारा शत्रु के मर्म के खोल देने पर उसी क्षण समुद्र में सेतु बाँधा गया और महाराज रामजी के लंका में प्रवेश करते ही शत्रु नाश की सूचना देने के शकुन होने लगे। अब सर्वमान्य कुमार लक्ष्मण जी की भूमिका पहले होनी चाहिए। आप तब तक विश्राम करें अभी दशानन का प्रवेश हो रहा है। इसी समय महोदर कहता है कि यह क्या हुआ पवन तनय ने वृक्षों से भरे हुए पद्मवन को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर दिया।

तब विद्युज्जिह्व कहता है "वृक्षों से सुशोभित चैत्य का प्राकार नष्ट कर दिया गया है, चारों ओर से घिराव किया जा रहा है और कुम्भकर्ण मार डाला गया है"[३]।

हनुमान ने राम को सीता के विषय में जो संदेश दिया था वह यहाँ राम से कहलाया गया है—

लक्ष्मणः—अयं किम्। अयं च वृक्षः शिशुपा नाम।
रामः—साधुवत्स सर्वमिदं पत्याभिजानासि हनूमदानिवेदितम्।
लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् (स्वगतम् निश्वस्य)।
अयेयं शिशुपागूढे क्रीडाभूमिघरान्तिके। रावणप्रहितैरार्या रक्ष्यते राक्षसीजनैः।[४]

अद्‌भुत रामायण में जो महर्षि वाल्मीकि द्वारा लिखित कहा जाता है[५] हनुमान का चरित्र इस प्रकार मिलता है—[६]

---

१. मल्लाचार्य, उदार राघव—सं० गोपाल नारायण—गोपालनारायण मुद्रालय, मुम्बई।

२. महादेव—अद्‌भुत दर्पण—सं० पं० शिवदत्त—टुकाराम जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८६९ काव्यमाला ५५, पृष्ठ ५।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ४७-५ अंक।

४. उपर्युक्त, पृष्ठ ६२ अंक ६।

५. अद्‌भुत रामायणम्—महर्षि वाल्मीकि विरचितम्—पं० श्रीयुक्त रामशरण विद्यावागीशेन संस्कृतम्—प्रकाशकम श्री प्रतापचन्द्र मैत्रेण—कालिका-ताराजधान्यास् सरस्वती यन्त्रे मुद्रितम्—शकाब्द १८०८।

६. उपर्युक्त, दशम सर्गः, पृष्ठ ४०।

यहाँ भी ऋष्यमूक पर्वत पर जब राम पहुँचते हैं तो सुग्रीव इनका भेद लेने लिए भिक्षु रूप में हनुमान को भेजते हैं। ये भिक्षु रूप में जाते हैं। यहां पर हनुम जी देखते हैं कि वे चतुर्भुज हैं, हाथ में शंख चक्र गदा एवं पद्म लिये हुए हैं, पीले व पहने हैं, लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों सेवा कर रही हैं, देवर्षि, पितृ गण तथा गन्ध आदि स्तुति कर रहे हैं और शेष जी सहस्र फणों से छत्र लगाए हुए हैं।[1] यह दे कर हनुमान जी विस्मित हो जाते हैं। एक क्षण आंखें बन्द कर के हनुमान जी स्तु करते हैं। तब राम जी अपना रूप दिखाते हैं। इसके बाद हनुमान जी द्विभु श्रीराम जी को देख कर प्रसन्न हो जाते हैं और उन्हें अपना परिचय देते मैं पवन पुत्र, सुग्रीव का मंत्री हूँ और सुग्रीव ने आपके पास भेजा है। मैं जान चाहता हूँ आप दोनों कौन हैं"। काँपते हुए और विह्वल हो कर पूँछते हुए हनुमा जी से राम जी कहते हैं—

> रामः प्राह हनूमन्तमात्मानं पुरुषोत्तमः।
> वत्स वत्स हनूमंस्तमू भक्तो यत् पृष्टवानसि ॥१॥

इसके पश्चात् आत्मा परमात्मा का विवेचन है जिसमें परमात्मा को नेति नें कहा है (११, १२, १३, १४, १५ सर्गों में)

सोलहवें सर्ग में कहा गया है कि राम जी ने हनुमान जी से सीताहरण की क सुनायी। तब हनुमान जी ने अपने कंधे पर राम जी तथा लक्ष्मण को सुग्रीव पास लाकर मित्रता करवायी। बाद में हनुमान जी एवं अंगद के कंधे पर चढ़ रामजी तथा लक्ष्मण जी समुद्र तट पर आए। इत्यादि। आगे की कथा वाल्मी रामायण के आधार पर है।

कविराज विरचित राघव पाण्डवीयम् में जो प्रायः १२ वीं शताब्दी का ग्रंथ वाल्मीकि के रामायण के आधार पर हनुमान राम की सुग्रीव से मैत्री कराते हैं।[2]

वाल्मीकि की ही भांति यहां भी सुग्रीव को हनुमान ही उनके दायित्व की बो जागरूक कराते हैं[3] तथा यहाँ भी हनुमान सीतान्वेषण को जाते हैं तथा समुद्र पार करके लंका के अशोक वन में सीता के दर्शन करते हैं तथा उनका समाचार चूड़ामणि राम को लाकर देते हैं[4]।

युद्ध में पवनतनय धूम्राक्ष, अकंपन इत्यादि को मारते है। राम तथा राव के युद्ध में हनुमान की प्रशंसा वैरी भी करते हैं—

---

१. यहाँ इनका स्वरूप विष्णु की भाँति का वर्णित है।

२. कविराज विरचित राघवपाण्डवीयम्, सं० काशीनाथ शर्मा, निर्णयसा यन्त्रालय, मुम्बई १८९७, पृष्ठ ९०।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ९३, ५, ६५।

४. उपर्युक्त, ६, ५-२८।

स कोपितो मारुतिनामनस्वीमहास्त्रजालेन रिपूणाम्।
व्यूहं वृहद्बाहुवलोविभेद प्राग्ज्योतिषेशस्त्रिपुरं यथोग्रः ॥९–२०

इसके पश्चात् हनुमान त्रिशिरा का वध करते हैं—

दधौजिगीषाःघृतिमांजनेयः कृतावमानोपि वृष्णिवीरः।
त्वाष्ट्रस्य वज्रीवरणेत्रिमूर्ध्नश्चिच्छेद भूरिश्रवसः शिरोधिम् ॥१०–२३

लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान औषधि लाते हैं—

स्वशक्तिजृम्भाभिरिवौषधीभिर्निवारितारातिमहास्त्रपीडः।
उज्जीवयन्राजबलं त्रिलोकीं विस्माययामास हरेः कुमारः॥११–७

तथा हनुमान अपने कन्धे पर लक्ष्मण को लेकर मेघनाद से युद्ध करते हैं—

अतुलबलहनूमान्कल्पितस्यन्दनश्रीर्दववदहन इवासो वैरिकक्षं विगाह्य।
प्रतिहितवृषसेवाऽडम्बराघूर्णमेनं प्रसमकृत वाह्वोर्विक्रमाणां निकर्षम् ॥१२–१

रावण को मारने के पश्चात्—

सकुस्यानुकूलेन शनैरारात्पताकीनीम्,प्रभंजनः कुम्भजाशासंभवस्तामवर्धयत।

कृषि पराशर नामक ग्रन्थ में[1] जो कदाचित् ९५० ई० तथा ११०० ई० के बीच में लिखा हुआ माना जाता है,[2] हमें एक मंत्र की प्राप्ति होती है जिसे जप करने से तथा पत्ते पर लिख कर गाड़ने से कीट पतंग इत्यादि की बाधा दूर हो जाती है।[3] यह हनुमान का मंत्र है—

अथ धान्य व्याधिखण्डन मंत्र

ओं सिद्धिः श्रीगुरुपादेभ्यो नमः। स्वस्ति हिमगिरिशिखरशंखकुन्देन्दुधवल-शिलातटान् नन्दनवन-समायतनात् परमेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री मद्रामपादा विजयिनः समुद्रतटे अनेकशतसहस्रवानरगणमध्ये खरनखचरणोद्ध्वं लांगूल पवनसुतं वातवेगं परचक्र प्रमथनं श्रीमद्धनूमन्तमाज्ञापयन्त कुशलमन्नस्य अमुक गोत्रस्य श्री अमुकस्य क्षेत्र खण्ड मध्ये वाता भञ्मायन्ती

शांखीगान्भीवाण्डर मुण्डीवूलीभृगारी कुमारी मडकादमः

अजाचरक शुकशूकरमृगमहिषवराहपतंगादयश्च सर्वे शस्योपघातिनो यदित्व-दीयवचनेन तत् क्षेत्रं न त्यजन्ति तदातान् वज्रलांगूलेन ताडयिष्यसीति ओं आं घं घां, घूं घः।

---

[1] कृषि पराशर—एडिटेड बाई गिरजाप्रसन्न मजूमदार एण्ड सुरेशचन्द्र बानर्जी, दी एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, १ पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता १९६०।

[2] उपर्युक्त, भूमिका, पृष्ठ ८।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ४८।

ज्योतिष तत्व में भी यह प्रकरण मिलता है परन्तु मंत्र में कुछ अन्तर हैं। कदाचित् देवी पुराण के आधार पर लिखा हुआ ज्ञात होता है—

लिखित्वाऽलक्तकेनापि मन्त्रं शस्येषु वन्धयेत्।
न व्याधि कीट हिंस्राणां भयं तत्र भवेत क्वचित्॥

शारंगधर पद्धति[2] में यह प्रसंग मिलता है कि यदि उपवन में चींटी, इत्यादि वहुत कष्ट देते हों तो अधोलिखित मंत्र का जप कर के एक पत्ते पर कर गाड़ दे तो ये बाधायें दूर हो जायंगी—

उपवन विनोद[3] २१६१ वृक्षायुर्वेद।

शलभाखुपतंगानां पिपील्यादेर्भये सति।
अष्टोत्तर शतं जप्त्वा मन्त्रं ततो लिखेत्॥

मंत्र—ऊँ स्वस्ति किष्किन्धास्थितप्रकटपराक्रमान्तर्हिमण्डलोपजीवतस्य हनूमानाज्ञापयति मूषकपतंगपिपीलिका शलभकरमान्वककीट गन्धिकानि स्थातव्यम्। आज्ञामतिक्रममाणस्य शरीरनिग्रहः समावर्तयति। तस्य वानरसिंह क्रममाणस्य सागरम्। कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव नर्दति। हुं फट् नमः।

श्री गेण्डन महोदय ने लिखा है कि हनूमान, भीम, राधा इत्यादि पर भारत ग्रामीण जनता की वड़ी श्रद्धा है।[4] हो सकता है वह इसी विश्वास पर आधा हो कि इनके जप पूजन से कीट पतंग इत्यादि खेती को नष्ट नहीं करते।

वाल्मीकि रामायण की भाँति अध्यात्म रामायण में भी हनुमान का सर्वप्र दर्शन किष्किन्धाकाण्ड में होता है यहां वे सुग्रीव के साथ वैठे हुए मंत्रणा करते दि देते हैं[5] इनको सुग्रीव राम का भेद लेने को भेजते हैं। हनुमान जी वहाँ पहुंच विनीत भाव से राम जी से पूँछते हैं आप दोनों कौन हैं, मुझे ज्ञात होता है कि

---

१. ज्योतिष तत्व, पृष्ठ ६८९-६९०।

२. दी पद्धति आफ शारंगधर, ए संस्कृत अन्थालोजी, एडिटेड बाई पीटर वाल्यूम १, दी टेक्स्ट, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डीपो, बाम्बे १८८८, बाम्बे सं सीरिज नं० ३७ उपवन विनोद, २१६१, २१६३।

३. उपवन विनोद, २१६१, २१६३ यह ग्रंथ १२८३ तथा १३०१ के का लिखा हुआ है। शारंगधर हम्मीर के दरबार में थे।

४. ए० एस० गेण्डन गाड्स (हिन्दू) ई० आर० ई० ख. ६, पृ० २९०, पृष्ठ २८५।

५. आध्यात्म रामायण, गीता प्रेस गोरखपुर, १३वां संस्करण, सं० २० किष्किन्धाकाण्ड ७-१०।

दोनों प्रधान पुरुष हैं जो माया से अपना मानुष रूप धारण कर पृथिवी के भार को हरण करने के लिए तथा भक्तों की रक्षा करने के लिए साक्षात् नर एवं नारायण रूप से अवतीर्ण हुए हैं। इस शब्द को सुन कर राम जी लक्ष्मण से कहते हैं कि इस बटुक को देखो। इसने इतने वाक्य कहे हैं पर इनमें एक भी व्याकरण का दोष नहीं आया है। इसने अवश्य ही व्याकरण का अध्ययन किया है।

वाल्मीकि रामायण से यहाँ हनुमान की कथा में कोई नई बात नहीं मिलती। तुलसीकृत रामायण का ही हनुमान स्वरूप यहाँ भी दिखाई देता है। वानर सेना का वर्णन इस प्रकार यहाँ मिलता है।[1]

'हिमालय आदि कुल पर्वतों पर उत्पन्न हुए सुमेरु, मन्दराचल के समान डील-डौल वाले भिन्न-भिन्न द्वीप, नदी तट और पर्वतों पर रहने वाले अगणित विशालकाय वानर आ रहे हैं। ये सभी देवताओं के अंश से उत्पन्न हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं तथा युद्ध करने में अति कुशल हैं। इनमें से किसी को एक, किसी को दस, किसी को अयुत हाथियों का बल है। कोई-कोई के बल का परिमाण ही नहीं है। कोई कज्जलगिरि के समान काले हैं, कोई सुवर्ण के समान सुनहरे रंग के हैं, किन्हीं का मुख रक्त वर्ण है और किसी-किसी के शरीर पर बड़े-बड़े बाल हैं। कोई शुद्ध स्फटिक के समान दिखाई देते हैं, कोई राक्षस जैसे रंग के हैं। ये सभी वानर युद्ध के लिए उतावले हैं इसलिए गर्जते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं। ये सब आपकी आज्ञा-पालन के हेतु उद्यत हैं तथा फल मूल खाने वाले हैं।'[2]

हनुमान की यहाँ प्रशंसा इस प्रकार की गयी है—

हनूमानेष विख्यातो महासत्वपराक्रमः।
वायुपुत्रोऽतितेजस्वी मन्त्री बुद्धिमतां वरः॥[3]

हनुमान ही राम नामांकित अंगूठी लेकर सीता के पास भेजे जाते हैं। समुद्र पार जाने के समय जाम्बवन्त के वचनों को सुन कर हनुमान जी ने बड़े जोर से सिंहनाद किया तथा समुद्र को लाँघने और लंका को भस्म करने के हेतु त्रिविक्रम की भाँति अपना शरीर बड़ा किया।[4]

---

[1] उपर्युक्त, ६, ५, ६-११।

[2] मैसूर के चिड़ियाघर में ऐसे ही अनेक रंगों के और अनेक आकृतियों के वानर देखे जा सकते हैं।

[3] किष्किन्धाकाण्ड, ६, १२-१३।

[4] किष्किन्धाकाण्ड, ९, २१-२४।

यहाँ भी हनुमान जी तुलसीकृत रामायण की भाँति राम के अमोघ वाण तरह जाते हैं[1]—

अमोघं रामनिर्मुक्तं महाबाणमिवाखिला:।
'जिमि अमोघ रघुपति कर वाना। एही भाँति चला हनुमाना।'
—सुन्दरकाण्ड, तुल

यहाँ हनुमान की परीक्षा लेने को पहिले सुरसा मार्ग में रोक कर खड़ी हो हैं[2] और मैनाक पीछे समुद्र से निकलता है।[3] तुलसीकृत में मैनाक पहिले निकलता सुरसा पीछे आती है—

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। ते मैनाक होहि श्रमहारी।
हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
रामकाज कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम॥
जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानै कहु वल बुद्धि बिसेषा।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता॥

आगे चलने पर इनकी छाया को सिंहका नाम की राक्षसी पकड़ लेती है उस मारकर ये आगे बढ़ते हैं।[4] ऐसा ही वर्णन तुलसीकृत रामायण में भी है। लं प्रवेश इन्होंने सूक्ष्म शरीर धारण कर के किया।

तुलसीकृत रामायण में 'मसक समान रूप कपि धरी' यह विवरण प्रा होता है। लंका नाम की राक्षसी ने इनके मार्ग को रोका जिसे इन्होंने बायें हा घूँसा मारा तो वह मुँह से खून फेंकती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब उसने हनु को आशिर्वाद दिया कि जाओ तुम लंका में प्रवेश कर के सब कार्य करो। लंका ने ब्रह्मा से जो वरदान पाया था उसका भी उल्लेख है जैसा तुलसी रामायण में है—

जव रावनहि ब्रह्म वर दीन्हा। चलत विरंच कहा मोहि चीन्हा॥
विकल होसि तैं कपि के मारे। तव जानेसि निशिचर संहारे॥
... ...
प्रविसि नगर कीजै सव काजा। राखि हृदय कोशलपुर राजा॥[5]

---

[1] सुन्दरकाण्ड, १, ३।

[2] सुन्दरकाण्ड, १, १२-२३।

[3] सुन्दरकाण्ड, १, २६-३४।

[4] रामचरित मानस; अध्यात्म रामायण, सुन्दरकाण्ड, १, ३५-३८।

[5] रामचरित मानस—१, ५४-५६।

अध्यात्म रामायण में लंका ही इनको जानकी जी का पता बताती है[1]—

रावणान्तः पुरवरे क्रीडाकाननमुत्तमम् ॥५४॥
तन्मध्येऽशोकवनिका दिव्यपादपसंकुला ॥
अस्ति तस्यां महावृक्षः शिंशुपानाम मध्यगः ॥५५॥
तत्रास्ते जानकी घोरराक्षसीभिः सुरक्षिता।
दृष्टैव गच्छ त्वरितं राघवाय निवेदय ॥५६॥

सीता जी के सामने वे जब जाते हैं तो उनके मुख का वर्ण अरुण कहा गया है और शरीर का पीत वर्ण तथा इनका आकार कलविंक या कलवंक नामक पक्षी के बराबर बताया गया है।

कलविंकप्रमाणांगो रक्तास्यः पीतवानरः।

यहाँ वे अपने को राम का दास सुग्रीव का सचिव घोषित करते हैं। यह राम के दास वाली बात वाल्मीकि रामायण में नहीं है[2]—

दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्य परमात्मनः ॥२३॥
सचिवोऽहं हरीन्द्रस्य सुग्रीवस्य शुभप्रदे।
वायोः पुत्रोऽहमखिलप्राणभूतस्य शोभने ॥२४॥

तुलसीकृत रामायण के सदृश ही ये सीता को अपना संदेश देते हैं। हनुमान जी जानकी जी को अपना विशाल रूप भी दिखाते हैं जैसा तुलसीकृत रामायण में वर्णित है—

श्रुत्वैतद्वचनं देव्यै पूर्वरूपमदर्शयत्।
मेरुमंदरसंकाशं रक्षोगणविभीषणम् ॥६४॥ (३ सर्ग)
...........सुनि कपि प्रकट कीन्ह निज देहा।
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

इसके उपरान्त वे अशोक वाटिका उजाड़ डालते हैं और वहाँ के चैत्य प्रासाद को तोड़ डालते हैं।

सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात्।
उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभंजामित विक्रमः ॥७६॥ (३ सर्ग)

---

१. अध्यात्म रामायण सुन्दरकाण्ड—३, २०।
२. सुन्दरकाण्ड—३, २३-२४।

रावण की सेना को नाश कर के जब वे अक्षयकुमार को भी मार डालते हैं
इन्द्रजीत उन्हें ब्रह्मपाश में बांधकर रावण के सम्मुख ले जाता है।[1] रावण की स
में हनुमान जी वैसी ही बातें करते हैं जैसी तुलसीकृत रामचरित मानस में व
हैं। अन्तर इतना ही है कि यहाँ प्रहस्त उनसे प्रश्न करता है, तुलसीकृत में रा
स्वयम्। यहाँ हनुमान अध्यात्म की भी बातें करते हैं।[2] उसी प्रकार लं
जलाते हैं[3] जैसे रामचरित मानस में है तथा सीता जी से विदा हो कर वानरों
पास आते हैं।[4] इसके पश्चात् राम को सब संवाद सुनाते हैं—

यथावद्भाषितं वाक्यं श्रुत्वा रामो हनूमतः।
उवाचानन्तरं वाक्यं हर्षेण महता वृतः।[5]
कार्यं कृतं हनुमता देवैरपि सुदुष्करम्।
मनसापि यदन्येन स्मर्तुं शक्यं न भूतले।
शतयोजन विस्तीर्णं लंघयेत्कः पयोनिधिम्।
लंकां च राक्षसैर्गुप्तां को वा धर्षयितुं क्षमः।
भृत्यकार्यं हनुमता कृतं सर्वमशेषतः।
सुग्रीवस्येदृशो लोके न भूतो न भविष्यति।।[6]

हनुमान जी यहाँ लंका का भी वर्णन करते हैं—[7]

लंका दिव्या पुरी देव त्रिकूटशिकरे स्थिता।१७।।
स्वर्णप्राकारसहिता स्वर्णाट्टालकसंयुता।
परिखाभिः परिवृता पूर्णभिर्निर्मलोदकैः।१८।।
नानोपवनशोभाढ्या दिव्यवापीभिरावृता।
गृहैश्चित्र शोभाढ्यैर्मणिस्तम्भमयै शुभैः।।१९।। इत्यादि

यहाँ युद्ध में रावण की शक्ति से लक्ष्मण को मूर्छा आती है—[8]

---

१. सुन्दरकाण्ड—३, ७८-७९।
२. सुन्दरकाण्ड—४, ७-२५।
३. सुन्दरकाण्ड—४, ३४-४५।
४. सुन्दरकाण्ड—५, १-२०।
५. सुन्दरकाण्ड—५, ३६-५८।
६. युद्धकाण्ड—१, १-४।
७. युद्धकाण्ड—१, १७-२६।
८. युद्धकाण्ड—६, ७-११।

स शक्तिर्लक्ष्मणतनुं विवेशामोघशक्तितः।
यावन्त्यः शक्तयो लोके मायायाः सम्भवन्तिहि।
....
मूर्च्छितः पतितो भूमौ तमादातुं दशाननः।
....
कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयेल्लघुराक्षसः।
ग्रहीतुकामं सौमित्रं रावणं वीक्ष्य मारुतिः॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।
तेन मुष्टिप्रहारेण जानुभ्यामपतद्भुवि॥
....
अथ लक्ष्मणमादाय हनुमान् रावणार्पितम्।
....

फिर राम हनुमान से द्रोणाचल से वही औषधि लाने को कहते हैं जो[1] वानर वीरों को जिलाने के हेतु वे पहिले लाये थे।

उवाच मारुतिं शीघ्रं गत्वा क्षीर महोदधिम्।
तत्र द्रोणगिरिर्नाम दिव्यौषधिसमुद्भवः।
तमानय द्रुतं गत्वा संजीवय महामते॥

इस समय रावण कालनेमि के गृह पर जाता है और उसे हनुमान को रोकने को भेजता है। हनुमान को रोकने को कालनेमि आश्रम बनाता है और वहाँ उसकी वही दुर्गति होती है[2] जो तुलसीकृत रामचरित मानस में मिलती है। हनुमान जी औषधि न मिलने पर द्रोणाचल पर्वत ही ले आते हैं[3]—

अदृष्ट्वा चौषधींस्तत्र गिरिमुत्पाट्यसत्वरः।
गृहीत्वा वायुवेगेन गत्वा रामस्य सन्निधिम्॥

यहाँ राम और लक्ष्मण हनुमान की पीठ पर चढ़ कर रावण और मेघनाद से युद्ध करते हैं।[4]

आरुह्य जगतां नाथो हनुमन्तं महाबलम्।
..........................॥
..........................।
इत्युक्त्वा लक्ष्मणं दृष्ट्वा हनूमत्पृष्ठतः स्थितम्॥

---

१. युद्धकाण्ड—६, ३१-३३।
२. युद्धकाण्ड—७, १-३२।
३. युद्धकाण्ड—७, ३४-३५।
४. युद्धकाण्ड—६, १९; ९, २४।

अध्यात्म रामायण में रावण गदहों के रथ में राम से लड़ने आता है[1]—

पिशाचवदनैर्घोरैः खरैर्युक्तं भयावहम्।
सर्वास्त्र शस्त्रसहितं सर्वोपस्कर संयुतम्॥३-११ सर्ग, युद्ध

यहाँ रावण से सर्वप्रथम हनुमान जी का युद्ध होता है—

हनुमानथ चोत्प्लुत्य रावणं योद्धुमाययौ।
आगत्य हनुमान् रक्षोवक्षस्यतुलविक्रमः॥६-११ सर्ग, युद्ध
मुष्टिवन्धं दृढं वद्ध्वा ताडयामास वेगतः।
तेन . . . मुष्टिप्रहारेण . . . . . . जानुभ्यामपतद्रथे॥७॥
मूर्च्छितोऽथ मुहूर्तेन रावणः पुनरुत्थितः
उवाच च हनूमन्तं शूरोऽसि मम सम्मतः॥८॥
हनुमानाह तं धिङमां यस्त्वं जीवसि रावण॥९॥
त्वं तावन्मुष्टिना वक्षो मम ताडय रावण।
पश्चान्मया हतः प्राणान्मोक्ष्यसे नात्र संशयः।
तथेति मुष्टिना वक्षो रावणेनापि ताडितः॥१०॥
निघूर्णमाननयनः किञ्चित्कश्मलमाययौ।
संज्ञामवाप्य कपिराड् रावणं हन्तुमुद्यतः॥११॥
ततोऽन्यत्र गतो भीत्या रावणो राक्षसाधिपः।
. . . . ॥१२॥

रावण की मृत्यु के पश्चात् विभीषण के राज्याभिषेक होने पर राम जी हनुमान से कहते हैं कि 'तुम लंका के राज्य प्रासाद में जाओ और सीता युद्ध का सब समाचार कह कर उनका उत्तर लेकर आओ।' जैसा वाल्मीकि रामायण में वर्णन है या रामचरित मानस में है।[2]

इस पर जानकी जी हनुमान को वरदान देती हैं—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली प्राह मारुतिम्।
सर्वे सौम्य गुणाः सौम्य त्वय्येव परिनिष्ठिताः॥१३॥

---

[1] इस प्रकार का गदहों का रथ सर्वप्रथम सुमेर में दिखाई देता है। एन० क्रामर—दी सुमेरियन्स, पृष्ठ १६० के सामने टेल अगरब के शरा से प्राप्त काँसे का।

[2] अध्यात्म रामायण—सर्ग १२, ५१-५९।

यहाँ का वर्णन तुलसीकृत रामायण की भाँति है। माया सीता का अग्नि में प्रवेश करना इत्यादि सभी उसी भाँति है। यहाँ भी हनुमान् जी को ही रामचन्द्र अयोध्या भरत का कुशल समाचार लेने को भेजते हैं।[1]

शृंगवेरपुर में पहुँच कर वे गुह को राम का कुशल संवाद देते हैं फिर भरत के पास नन्दीग्राम पहुँचते हैं।[2]

प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥६०॥
गवां शत सहस्रं च ग्रामाणां च शतं वरम्।
सर्वाभरणसम्पन्ना मुग्धाःकन्यास्तु षोडश ॥६१-१४ सर्ग, युद्धकाण्ड

यहाँ भरत जी हनुमान को इस प्रिय संवाद सुनाने पर एक लक्ष गौ, सौ अच्छे गाँव और समस्त आभूषणों से अलंकृत १६ मुग्धा कन्यायें देते हैं। इनको यदि ब्रह्मचारी माना जाय तो इनको कन्याओं का देना कहाँ तक युक्तिसंगत है। परन्तु यहाँ जब हनुमान जी रावण के राजमहल में प्रवेश करते हैं तो इनको अपने ब्रह्मचर्य के भंग होने का डर नहीं लगता।[3] जब भरत जी और अयोध्यावासी सब नगर के बाहर राम जी के स्वागत के हेतु आते हैं उन्हें दूर पर चन्द्रमा की कांति वाला पुष्पक विमान दिखाई देता है।[4]

राज्याभिषेक के पश्चात् रामचन्द्र जी एक हार वैदेही को देते हैं उसे हाथ में लेकर वैदेही देखने लगती है तब राम कहते हैं कि तुम जिसे चाहो यह दे दो इस पर वे हनुमान को यह हार दे देती हैं। हनुमान को हाथ जोड़े देख कर राम उनसे वर माँगने को कहते हैं—

हनूमंस्ते प्रसन्नोऽस्मि वरं वरय कांक्षितम्।
दास्यामि देवैरपि यद् दुर्लभं भुवनत्रये ॥११॥
हनूमानपि तं प्राह नत्वा रामं प्रहृष्टधीः।
त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम ॥१२॥
अतस्त्वन्नाम सततंस्मरन् स्थास्याभिभूतले।
यावत्स्थास्यति ते नामलोके तावत्कलेवरम् ॥१३॥
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकांक्षितः।
रामस्तथेति तं प्राह मुक्तिस्तिष्ठ यथासुखम् ॥१४॥

---

[1] युद्धकाण्ड—१४, ३८-४४।

[2] युद्धकाण्ड—१४, ४९-५३।

[3] उपर्युक्त, सुन्दरकाण्ड—२, १-३।

[4] उपर्युक्त, युद्धकाण्ड—सर्ग १४-७६-७८।

कल्पान्ते मम सायुज्यं प्राप्स्यसे नात्र संशयः।
तमाह जानकी प्रीता यत्र कुत्रापि मारुते।
स्थितं त्वामनुयास्यन्ति भोगा सर्वे ममाज्ञया॥१६॥

इस वर का विवरण महाभारत वाले राम प्रकरण में मिलता है जहाँ भ और हनुमान की भेंट होती है। यहाँ भी हनुमान जी कहते हैं कि 'जब त राम का नाम संसार में रहेगा तब तक मैं रहूँगा इत्यादि। ये हिमालय प तपस्या करने को जाते हैं।

अध्यात्म रामायण के उत्तर काण्ड में ब्रह्मा जी के नेत्र के जल से एक क के उत्पन्न होने की कथा मिलती है।[1] एक दिन इसने एक सरोवर को देख क उसमें पानी पीने की इच्छा से प्रवेश किया। उसमें से निकलने पर उसका ना स्वरूप हो गया और उसे देख कर इन्द्र के वीर्य से वाली का तथा सूर्य के वीर्य सुग्रीव का जन्म हुआ। सूर्य ने हनुमान को सुग्रीव की सहायता को दिया।[2]

तस्य दत्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः॥१४॥

प्रातःकाल उठने पर कपि की पूर्ववत वानर आकृति हो गयी।[3] एक देव को ब्रह्मा जी ने उस वानर के साथ[4] किष्किन्धापुर में भेज दिया और कह दि कि जब रामावतार हो तो वानर लोग इनकी सहायता करें। इन्हें यहाँ ऋ राज भी कहा है तथा वानर भी जैसे इन दोनों में कोई भेद ही न हो।[4]

फलमूलादिभिः सार्धं पुत्राभ्यां सहितः कपिः।
नत्वा चतुर्मुखस्याग्रे ऋक्षराजः स्थितः सुधीः॥१६॥

इन्हें कपि भी कहा गया है[5]—

पानीयं पातुमागच्छत्तत्रच्छायामयं कपिम्।

इसी वर्णन से यह भी पता लगता है कि इस कपि का रूप जब नारी हुआ तब इन्द्र तथा सूर्य उस पर मोहित हुए अर्थात् वाली तथा सुग्रीव एक स से उत्पन्न हुए थे[6]—

ततः सुरेशोः देवेशं पूजयित्वा चतुर्मुखम्।
गच्छन्मध्याह्न समये दृष्ट्वा नारीं मनोरमाम्॥१०॥
भानुरप्यागतस्तत्र तदानीनेव भामिनीम्।
दृष्ट्वा कामवशोभूत्वा ग्रीवादेशेऽसृजन्महत्॥

---

१. उत्तरकाण्ड—३, ३-६।
२. उत्तरकाण्ड—३, ७-१४।
३. उत्तरकाण्ड—३, १५।
४. उत्तरकाण्ड—३, १७-२२।
५. उत्तरकाण्ड—३, १६।
६. उत्तरकाण्ड—३, ८।

यदि ये लोग एक स्त्री से उत्पन्न हुए थे तो वानर केवल नाम ही के थे।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि अध्यात्मरामायण १४ वीं या पन्द्रहवीं शताब्दी में लिपिबद्ध किया गया। यह रामानन्द सम्प्रदाय का एक विशेष ग्रंथ माना जाता है।[1] इसी से आनन्द रामायण, तुलसीकृत रामचरितमानस, एकनाथ की मराठी रामायण प्रभावित हैं। इसे रामानन्द का रचा हुआ सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।[2] इसमें राम को परमेश्वर परमब्रह्म का अवतार माना गया है और हनुमान को राम के भक्त तथा दास के रूप में उपस्थित किया गया है।

श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गत आनन्द रामायण के सारकाण्ड, किष्किन्धा चरित्र के अष्टम सर्ग में हनुमान का चरित्र वाल्मीकि रामायण की भाँति ही मिलता है।[3]

यहाँ भी वानरों को बुलाने को हनुमान् दूत भेजते हैं और पीछे हनुमान अंगद इत्यादि सीता की खोज के हेतु भेजे जाते हैं। हनुमान को ही राम यहाँ भी अपनी नामांकित अंगूठी देते हैं। हाँ, यहाँ राम अपना मंत्र भी हनुमान को देते हैं।

> ततो रामो मुद्रिकां स्वां ददौ मारुतिसत्करे।
> 'मन्नामाक्षरयुक्तेयं सीतायै दीयतां रहः।'
> ततो रामो निजं मंत्रं ददौ तस्मै हनूमते।
> तन्मंत्रस्य लक्षमिते कृत्वा तु जपलेखने[4]।

वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी हनुमान जी समुद्र लाँघ कर लंका पहुँचते हैं तथा वहाँ सीता की खोज करते हैं[5]।

हनुमान जी रात्रि में रावण के शयनागार में घूमते रहते हैं। बाद में वे अशोक वन में जाते हैं। वहाँ शिंशपा वृक्ष के नीचे सीता जी को देखते हैं। सीता जी दुर्बल हो रही हैं, एक वेणी धारण कर रही हैं और जमीन पर लेटी हुई राम-राम उच्चारण कर रही हैं। सीता जी के शरीर पर आभूषण नहीं हैं। उधर रावण स्वप्न में

---

१. बुल्के—रामकथा—हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९६२, पृष्ठ १७१।

२. दी आथरशिप आफ दी अध्यात्म रामायण—जर्नल गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टिट्यूट भाग १, पृष्ठ २१५-३९।

३. श्री आनन्द रामायण—प्रकाशक—डी० वी० मूलगांवकर, गोपाल नारायण कम्पनी, कालबा देवी रोड, बम्बई १९२६ ई०, पृष्ठ ३५।२-१३।

४. आनन्द रामायण—७७-९४।

५. उपर्युक्त, १७-३१।

देखता है कि कोई वानर आया है और सीता जी को देख कर राम जी से जा सब सुनायेगा। इसलिए वह अशोक वन में आता है कि उस वानर के सीता जी को तंग करें और वह जाकर राम जी को सुनाये जिससे राम के हाथ से शीघ्र मृत्यु प्राप्त हो। अतः स्त्रियों के साथ रावण वहाँ पहुँचता है

तत्क्षिपद्धेमपर्यंके रावणस्य कपिस्तदा।
विभीषणस्य पर्यंके वसनं रावणस्य च॥

यहाँ हनुमान के लंका में उत्पात की जो कथा मिलती है वह वाल्मी इत्यादि रामायणों में नहीं प्राप्त होती। रावण के स्वप्न की बात भी वाल्मी रामायण में नहीं है।

यहाँ भी वाल्मीकि रामायण की भाँति जानकी को राम की अंगूठी दे परन्तु जानकी चूड़ामणि के स्थान पर कंकण देती हैं।[1]

यहाँ हनुमान जी कहते हैं कि राम मंत्र उनकी रक्षा करेगा[2] तथा रा की भाँति अशोक वन को नष्ट करते हैं।

इसके पश्चात् अशोक वन को उजाड़ने की, अक्षकुमार को मारने की मेघनाद द्वारा ब्रह्मास्त्र से हनुमान के बाँधे जाने की कथा है।

ब्रह्मास्त्रेणाऽथ बद्ध्वा तमानयामास रावण।
ततो रावण वाक्येन प्रहस्तः प्राह मारुतिम्॥
कस्त्वं कुतः समायातः प्रेषितः तेन वा वद।
ततः स रामवृत्तं कथयामास विस्तरात्॥
दूतस्तं बोधयामास रावणं वायुनन्दनः॥

इसके पश्चात् कथा का प्रवाह रामचरित मानस की भाँति ही है।

हनुमान के पूँछ काटने की आज्ञा का भी वर्णन वाल्मीकि रामायण में है। यहाँ पूंछ जलाने का प्रस्ताव हनुमान ही करते हैं। पूँछ के बढ़ाने पर और घी से लंका का रहित हो जाना वाल्मीकि रामायण में नहीं है। जैसा कहा गया है।

रावण की आज्ञा से सब राक्षस हनुमान जी की पूँछ में कपड़ा लपेटने हैं। राज भवन से तथा पुरवासियों के घर से वस्त्र लाये जाते हैं। पुरवा को नंगा (दिगम्बर) कर दिया जाता है। बिस्तरे के चादर, और स्त्रियों कंचुक भी लाये जाते हैं। इतने पर भी वह लम्बी पूंछ पूँरी तरह से वेष्टित नहीं है है तब सभास्थान, ध्वज, पगड़ी, पताका, मन्दोदरी आदि रानियों तथा वि

---

[1] आनन्द रामायण—उपर्युक्त १२४। [2] उपर्युक्त—१२९-१३

के वस्त्र लाये जाते हैं। उस समय लंका में वस्त्र के लिए कोलाहल मच जाता है। तब हनुमान जी अपनी पूंछ वस्त्रों से पूर्ण वेष्टित दिखला देते हैं। इसके बाद राक्षस लोग पूंछ पर घी और तेल गिराने लगते हैं। लंका में घी और तेल की समाप्ति हो जाती है। वालकों के घर में दीप जलाने के लिए भी घी तेल नहीं वचता है। लंकावासी नर नारी नंगे ही पूंछ जलाने में लग जाते हैं। उनमें परस्पर लज्जा भी नहीं रह जाती है। सव लोग प्रयत्न कर रहे हैं पर पूंछ में आग प्रदीप्त नहीं होती है। उस समय हनुमान जी कहते हैं कि यजमान रावण स्वयं फूंके तब आग प्रज्वलित होगी। यह सुन कर रावण अपने दशों मुखों से फूंकने लगता है। आग रावण की दाढ़ी एवं मूछ में लग जाती है। रावण घबड़ा कर अपने वीसों हाथों से दाढ़ी-मूछ की आग वुझाने लगता है। यह देख कर सव राक्षस हँसने लगते हैं। हनुमान जी भी हँसने आ जाता है। रावण को क्रोध आता है और वह कहता है कि इस वानर को यहाँ से दूर करो। रावण के दूत उन्हें मारने लगते हैं तो वे कूद के मकानों पर चढ़ जाते हैं। अपनी पूँछ उलट के आग लगा देते हैं।

हनुमान जी को लंका में घुमाने लगते हैं। पूंछ की आग से लंका के महलों में आग लग जाती। जो राक्षस बीच में आते हैं उन्हें हनुमान जी मारते भी हैं। रावण भी आता है। हनुमान जी पूंछ से उसके मस्तक पर मारते हैं। रावण मूर्च्छित हो जाता है। हनुमान जी राम जी की कीर्ति के कारण रावण को जान से नहीं मारते हैं। रावण को मूर्च्छित देख कर मेघनाद आता है हनुमान जी लक्ष्मण की कीर्ति के लिए मेघनाद को भी जान से नहीं मारते हैं। इसके बाद हनुमान जी पूंछ की आग वुझाने के लिए समुद्र के पास जाते हैं। समुद्र के जल से अपने शरीर की आग वुझ जाने के वाद शान्त चित्त हो कर हनुमान जी सोचने लगते हैं कि मुझसे वहुत वड़ा अपराध हो गया है। लंका को जलाने से इसके बीच में बैठी हुई सीता जी भी अव जल न गयी हों। इस प्रकार राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद तथा तारा सव को मैंने विपत्ति में डाल दिया है। उसी समय आकाशवाणी होती है कि सीता जी नहीं जली हैं। तुम शीघ्र उनका दर्शन करो और राम जी के पास लौट जाओ। हनुमान जी सीता जी के पास जाते हैं और सीता जी से कहते हैं कि मेरे कंधे पर बैठ जाइए मैं अभी राम जी के पास आपको पहुँचा देता हूँ। सीता जी इसे अस्वीकार कर देती हैं और कहती हैं कि यह राम जी के लिए कीर्तिकर नहीं होगा कि और कोई लंका से मेरा उद्धार करे। इसके वाद हनुमान जी सीता जी से मुद्रिका लेकर आकाशमार्ग से प्रस्थान करते हैं। लंका के इस पार पृथिवी पर उतर कर हनुमान जी जल पीने की इच्छा करते हैं इसी बीच एक महात्मा दिखाई पड़ते हैं। हनुमान जी अभिमान के साथ उस महात्मा से जलाशय के संबंध में पूछते हैं।

मुनि अंगुलि से जलाशय की ओर संकेत कर देते हैं। हनुमान जी मुनि के मुद्रिका, मणि तथा पत्र को रख कर जल पीने के लिए जलाशय पर जाते हैं। बीच में कोई छोटा वानर आकर उस मुद्रिका तथा मणि को मुनि की कमण्ड डाल देता है। हनुमान जी जल पी कर आते हैं और वे उस मुद्रिका के लिए हैं तो मुनि कमण्डलु की ओर संकेत करते हैं। हनुमान जी उस कमण्डलु देखते हैं कि उस मुद्रिका के समान हजारों मुद्रिकायें हैं। हनुमान जी मु अपनी मुद्रिका माँगते हैं। मुनि कहते हैं कि जो तुम्हारी हो ले लो। हनुमान आश्चर्य में पड़ जाते हैं और वे मुनि से पूछते हैं कि इतनी मुद्रिकायें आ कहाँ से प्राप्त हुई हैं। मुनि कहते हैं कि राम जी की आज्ञा से अनेकों पवनपुत्र लंका में जा कर मुद्रा लाते रहे हैं और यहाँ रखते रहे हैं। हनुमान उन मुद्रिकाओं को गिनने लगते हैं परन्तु मुद्रिकाओं अंत ही नहीं पाता है, तब हनुमान जी का गर्व दूर होता है और मुनि को प्रणाम करके वे जी के पास चले जाते हैं। राम जी के पास पहुँच कर हनुमान जी उस की कथा सुनाते हैं। राम जी कुछ हँस कर कहते हैं “मैंने ही मुनि का रूप कर तुम्हारे गर्व को दूर करने के लिए वह कौतुक किया था।” उस समय हनु जी देखते हैं कि वह मुद्रिका राम जी की अंगुलि में है। हनुमान जी का गर्व होता है और वे राम जी को साक्षात् विष्णु समझते हैं।[1]

इसके पश्चात् हनुमान जी रामचन्द्र जी से लंका का वर्णन करते हैं सेना का प्रयाण आश्विन शुक्ल दशमी श्रवण नक्षत्र में होता है।

सर्वे गच्छन्तु सर्वत्र सेनायाः शत्रुघातिनः।
आरुह्य मारुतिं चाहं गच्छाम्यग्रेऽङ्गदं ततः॥
आरुह्य लक्ष्मणो यातु सुग्रीव त्वं मया सह।
आगच्छस्वेति चाज्ञाप्य हरीन् रामः स लक्ष्मणः॥

यहीं यह कथा भी मिलती है कि विभीषण के राज्य तिलक का जब विचार करते हैं तो हनुमान समुद्र तट पर रेती से लंका बनाते हैं जो पीछे नाम से विख्यात होती है (१०, ४१-४५)

जब राम समुद्र के किनारे पर शिव लिंग की स्थापना का विचार करते तो हनुमान जी काशी जाते हैं।

राम जी हनुमान जी से कहते हैं कि सागर के संयोग पर मैं अपने नाम का

---

[1] ये दोनों प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं हैं; न आकाशवाणी का मुनि के समागम का।

शिवलिंग स्थापित करना चाहता हूं। आप काशी जा कर एक उत्तम शिवलिंग ले आइये। तब हनुमान जी आकाश मार्ग से एक क्षण में वाराणसी पहुँच कर शिवजी को प्रणाम करते हैं और रामकार्य का निवेदन करते हैं। शिव जी रामचन्द्र के कार्य के लिए दो उत्तम शिवलिंग अर्पित करते हैं और कहते हैं "मैंने दक्षिण में जाने के लिए पहले से ही निश्चय किया था।" इसके बाद हनुमान जी शंकर जी से दक्षिण में जाने के निश्चय के सम्बन्ध में जिज्ञासा करते हैं और शंकर जी अगस्त्य मुनि के साथ की हुई बातों को सुनाते हैं। (१०, ७१, १२०)

यहां पर स्कन्द पुराण की कथा दोहराई गयी हैं।

काशी से शिवलिंग लाने में विलम्ब हो रहा हैं और राम जी हनुमान जी के गर्व को जान जाते हैं। अतः वे ब्राह्मणों से कहते हैं कि मुहूर्त वीत रहा हैं मैं बालू का लिंग बना कर स्थापित कर रहा हूँ। वालुकामय शिव लिंग की स्थापना के वाद हनुमान जी काशी से शिवलिंग लेकर वहाँ उपस्थित होते हैं और वहाँ वे उक्त सिकतामय स्थापित शिवलिंग को देखते है इस पर हनुमानजी को बड़ा कष्ट और क्रोध होता हैं, हनुमानजी पूंछ में शिवलिंग को लपेट कर उखाडने का प्रयास करते हैं। हनुमानजी की पूंछ टूट जाती हैं और वे मूछित हो जाते हैं। रामजी उक्त शिवलिंग के लिए वरदान देते हैं तथा हनुमान जी की पूंछ का स्पर्श कर उसे पूर्ववत् दृढसंधि कर देते हैं। (१०, ११०-१४३)

इसके बाद सेतु बाँधा जाता है। सेतु बँध जाने पर वानरों की सेना उस सेतु के द्वारा समुद्र को पार करती है और राम जी हनुमान जी के कंधे पर चढ़ कर एवं लक्ष्मण जी अंगद के कंधे पर चढ़ कर सेतु के रास्ते लंका में प्रवेश करते हैं। (१०, २०६-२०७)

मेघनाद के द्वारा जब सब वानर घायल हो जाते हैं तब उनको जीवित करने के लिए उपाय सोचा जाने लगता हैं। राम जी के कहने पर आधी रात में हनुमान जी और विभीषण जाम्बवान् के पास जाते हैं। जाम्बवान् राम जी की बात सुन कर कहते हैं कि तुम दोनों में वायुपुत्र कौन हैं, जब तक वह हनुमान जीवित हैं तब तक कोई भय नहीं, उसके द्वारा सभी वानर जिलाए जायंगे। ये कोई साधारण वानर नहीं हैं, ये साक्षात् रुद्र के अवतार हैं। तव हनुमान जी कहते हैं कि आप जिस वायुपुत्र को पूंछ रहे हैं, वह मारुति मैं जीवित हूँ और साथ में दूसरे विभीषण हैं। जाम्बवान् के कथनानुसार हनुमान जी बड़े वेग से द्रोणाचल पर जाते हैं। वहां औषधि को न पहचान कर फूल के समान द्रोणाचल को ही उठा लाते हैं जिससे सब वानर जीवित किए जाते हैं। इसी प्रकार दूसरी बार भी द्रोणाचल लाने की कथा मिलती हैं। जब लक्ष्मण जी पर शक्ति का प्रहार किया जाता है उस

समय भी हनुमान जी द्रोणाचल ला कर औषधि के प्रभाव से लक्ष्मण। को जीवित करते हैं। १२; १५-७१

अंतर्हितानां रामाद्या दर्शनं प्रापुराहवे।
ततः संप्रेषयामास रावणः स्वीयमंत्रिणाः॥

....

दूसरी बार हनुमान का द्रोण पर्वत लाना।

....

तदाययौ रावणः स स्वयं वेगतः॥
सुहृन्मित्रजनेयुक्तो वेष्टितः पुरवासभिः।
रणे विभीषणं दृष्ट्वा कोपाच्छक्ति मुमोच सः॥
पृष्टे विभीषणं कृत्वा ययावग्रे सलक्ष्मणः।
हृदि संताडितः शक्तत्या पश्चात भुवि लक्ष्मणः॥
लक्ष्मणं नगरीं नेतुं तं ययौ स दशाननः।
न चचाल भुजस्तस्य सौमित्रे शेषरूपिणः॥

यहाँ वही कालनेमि वाली कथा मिलती है जो रामचरित मानस में है।

द्रोणाचलं गृहीत्वा स यावद् गच्छति मारुतिः।
विहाय साऽतिवेगेन लंकां तावच्च वै पथि॥
भरतेन शरं मुक्त्वा पर्वतोभुवि पातितः।
भरतं मारुतिर्दृष्ट्वा रामोऽयमिति विह्वालः॥

यहाँ भरत के हनुमान को शर मारने की कथा का भी वर्णन है जैसा चरित मानस में है।

रावण ने दूतों से कहा कि पाताल में जाकर ऐरावण और मैरा से कहो कि लंका में दो राजकुमारों से युद्ध हो रहा है। दूत जा सूचना देते हैं। सूचना पा कर रात्रि में वे दोनों राम एवं लक्ष्मण को के लिए आते हैं। किन्तु वे देखते हैं, कि हनुमान जी की पूंछ की के भीतर राम तथा लक्ष्मण सो रहे हैं। वे दोनों जिस शिला सोये थे, उस शिला को ही उठा लेते हैं। पाताल में ले जा कर वे निकुंभिला के समक्ष वलि चढ़ाना चाहते हैं। इधर हनुमान जी वहीं जाते हैं। द्वार पर मकरध्वज से भेंट हो जाती है। मकरध्वज पूछता है कि तुम हो। हनुमान जी कहते हैं मैं राम जी एवं लक्ष्मण जी को ढूंढ़ते हुए आया हूं। जी एवं लक्ष्मण जी का नाम सुन कर मकरध्वज पूछता है कि अञ्जनीपुत्र मेरे जी सकुशल हैं न। हनुमान जी को आश्चर्य होता है और वे कहते हैं कि हनुमान तो पत्नी ही नहीं है। तब मकरध्वज कहते हैं, "लंका के जलाने के बाद जब

जी अपने शरीर की आग बुझाने के लिए समुद्र पार गए थे उस समय उन्होंने अपने कण्ठ का कफ समुद्र में छोड़ा था। जिसे मकरी ने खा लिया था। उसी के गर्भ से मेरा जन्म हुआ।" इस बात को सुन कर हनुमान जी कहते है कि वह मैं ही हूँ। तब मकरध्वज हनुमान जी को प्रणाम करता है और कहता है कि ये दोनों राक्षस राम जी और लक्ष्मण को कामाक्षी के बलि के लिए ले आये हैं और कल बलि चढ़ेगी। हनुमान जी तत्काल त्रसरेणु के समान छोटा सा रूप बना कर देवी के मन्दिर में घुस कर दरवाजे बन्द कर देते हैं। दूसरे दिन वे दोनों राक्षस पूजा के लिए मन्दिर पर आते हैं। मन्दिर के भीतर से हनुमान जी धीरे से देवी की वाणी में कहते हैं कि आज मेरी पूजा खिड़की से करो, आज जो मुझे देखेगा वह अन्ध हो जायगा। (११, ७३-९३)

दोनों दैत्य बड़े प्रसन्न होते हैं। करोड़ों पंचामृत पूर्ण घट तथा फल आदि लाकर खिड़की से अर्पित करने लगते हैं। हनुमान जी कहते हैं इस ग्रासमात्र भोजन से क्या होनेवाला है। यह सुनकर देवी प्रसन्न है इस बुद्धि वे दोनों दैत्यों ने नगर में जितने भी भक्ष्य मिल सकते हैं लाकर अर्पित किये। बाद में राम और लक्ष्मण को भी धीरे से अर्पित करते हैं। हनुमान जी राम जी एवं लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं और द्वार खोल कर दोनों दैत्यों की भर्त्सना करते हैं। इसके बाद रामजी और लक्ष्मण जी उन पर बाण का प्रहार करने लगते हैं। किन्तु वे दोनों बार बार मरते हैं और पुनः जीवित होकर युद्ध करने लगते हैं। तब हनुमान जी कारण जानने के लिए नगर में जाते हैं। हनुमान जी नगर में देखते हैं कि एक सुन्दरी एकान्त में बैठी है। हनुमान जी जिज्ञासा करते हैं। वह सुन्दरी कहती है "मैं नागकन्या हूँ। मुझे ऐरावण ने बलात् यहां लाकर भोग पत्नी बना लिया है और यह मैरावण भी मुझ पर कुदृष्टि रखता है।" अतः उन दोनों के मरने का उपाय मैं बताती हूँ। परन्तु इस शर्त पर कि राम मेरे साथ विवाह करें यह शर्त हनुमान मान लेते हैं। नागकन्या के बताये हुए उपाय से दोनों दैत्य मारे जाते है इस पर रामजी उसके कक्ष में जाते हैं परन्तु इनके बैठते ही पलंग टूट जाते है इस पर राम कहते हैं कि द्वापर में तू मेरी स्त्री होगी। इसके पश्चात् रामजी तथा लक्ष्मणजी तत्काल लंका में पहुँचा दिये जाते हैं।

वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी हनुमान रावण की मृत्यु के पश्चात् सीता को राम के विजय का संवाद देने जाते हैं—

माघ शुक्लचतुर्थ्यां हि पूर्णे वर्षे चतुर्दशे।
भरद्वाजोऽपि तपसा स्वर्गं निर्माय भूतले ॥६१

पूजयामास श्रीराम सीता वानर संयुतम्।
रामोऽपि हृदि समन्व्य मारुतिं वाक्यमब्रवीत्॥

हनुमान को अयोध्या भी भेजा जाता हैं।

नत्वा रामं वायुपुत्रो ययौ तप्तुं हिंमालयम्।

संक्षेप में यहाँ पवनसुत के जन्म की कथा भी मिलती हैं जो और कथा से थोड़ी सी भिन्न हैं। यहाँ कैकेयी के हाथ से कुछ पायस गिर जाता है उसे एक उठा ले जाता है और उसे अंजना खा लेती हैं। परन्तु पवन का संबंध भी है। दो कथाओं का सम्मिश्रण यहाँ दिखाई देता है।

रामचन्द्र जी लंका से लौटते समय भारद्वाज जी के आश्रम में कुछ क्षणों लिए ठहरते हैं। उसी समय भगवान् राम जी भारद्वाज जी से कहते हैं कि सु के सचिव पवननन्दन में कितना बल और शक्ति है मैं नहीं जान पाया। सुन कर भारद्वाज जी कहते हैं "अंजन नामक पर्वत पर केशरी नामक एक वा रहते थे, उनकी पत्नी का नाम अंजना था। एक समय कैकेयी के खाये पायस अवशिष्ट भाग को एक गृधी इधर ले जा रही थी। अकस्मात् वह पायस उस गृ के मुख से गिर गया और इस अंजना ने उसे खा लिया। उन्हीं दिनों एक घट यह भी घटी। एक दिन केशरी घर से बाहर गए हुए थे। उस समय एक मार्जा अंजना के पास आयी और ये दोनों निर्वस्त्र हो कर क्रीडा करने लगी। इसी स हवा के झोंके से इन दोनों के वस्त्र उड़ गये। इसके निर्वस्त्र शरीर को देख कर प देव का मन विकृत हो उठा और उधर मार्जारी को निर्वस्त्र देख कर एक राक्ष का भी मन विह्वल हो गया। इस प्रकार इन दोनों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। अंज के गर्भ से हनुमान जी तथा मार्जारी के गर्भ से घोर नामक पिशाच। इनका ज चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में मघा नक्षत्र में पूर्णिमा तिथि को हुआ। कल्प भेद यह जन्म समय भी कहा जाता है। जन्म लेते ही हनुमान जी भोजन की इच्छा सूर्य को पकड़ने के लिए गए और राहु के कहने पर इन्द्र ने वज्र से प्रहार किया कथा वाल्मीकि रामायण की कथा के समान यहाँ भी है। ऋषियों ने इन्हें श दिया था कि स्मरण दिलाये बिना ये अपने बल को नहीं जान पायंगे" यह वाल्मी रामायण की कथा भी यहाँ दी गयी है। ११, (१५४-१८९।)

यहाँ इनके वरप्राप्ति की कथा वाल्मीकि रामायण के सदृश ही है।

अतस्तद्बलमहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम्।
स एकदा मुनीनां हि चाश्रमेषु कुशादिकान्॥१८५
चकारतस्तः सर्वान्वार्षयन्मुनिबालकान्।
तस्यतत्कर्म मुनिभिर्दृष्ट्वा शप्तोऽजनीसुतः॥

अद्यारम्य कपिश्रेष्ठ न ज्ञास्यसि स्वपौरुषम्।
यदाऽन्यस्य मुखात्स्वीयं वलं श्रोष्यसि विस्तरात् ॥१८॥
भविष्यति तदापूर्वस्मृतिस्ते पौरुषं पुनः।
अतः सुग्रीवसान्निध्ये विस्मृतः स्वपराक्रमः॥
यदा स्तुतो जांववता पुरा प्रायोपवेशने।
तदा स्मृतिस्तस्य जाता स्वबलस्य हनूमतः॥१८९॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि आनन्द रामायण में वे सभी कथायें हैं जो हनुमान के विषय में विविध साहित्य में मिलती हैं।

श्री प्रवरसेन महीपति द्वारा विरचित रावणवहो या सेतुबन्ध नामक प्राकृत काव्य[1] में हनुमान के चरित्र के विषय में अधोलिखित श्लोकों में कुछ सामग्री प्राप्त होती है—

रामस्य विरहावस्थामाह—

छिज्जई झिण्णावि तणुं अठ्ठिमवाहं पुणो परुण्णं व मुहम्।
रामस्य अईसन्ते आसावन्धेव्व चिरगस हणुअन्ते॥१, ३५॥

आशावन्धनरूप हनुमान जी के आने में विलम्ब देखकर राम जी का क्षीण शरीर और भी क्षीण हो रहा है और रुके हुए आँसू पुनः आने लगे हैं।

अथ हनूमदागमनमाह—

णवरि अ जहासमत्थि अणिवत्ति अकज्जणिव्वत्लतच्छाअम्।
पेच्छइ मारुअतणअं मणोरहं चे अ चिन्तअसु होवण अम्॥१, ३६॥

यथासमर्थित कार्य पूरा करके लौटे हुए मारुततनय को स्वयं प्राप्त मनोरथ के समान देखा।

हनुमान जी ने पहले तो हर्षभरे लोचनों से और वाद में वाणी के द्वारा जानकी जी की प्राप्ति की कथा कही।

अथ हनुमच्चेष्टामाह—

पढमं विअ मारुरणा हरिसभरिज्जन्त लोअणेण मुहेण।
जण अतण आप उत्ती पच्छा वाआइ णिरवसेसंसिठ्ठा॥१, ३७॥

अथ हनूमन्तं प्रति रामव्यापारमाह—

दिठ्ठत्तिण सद्दहिअं झीणत्ति सवाहमन्यरंणी ससिअम्।
सोअइ तुमं ति रुणं पन्हुणा जिअइ त्ति मारुई उवऊढो॥१, ३८॥

रामजी को पहले सीता जी के जीवन के विषय में विश्वास नहीं हुआ,

---

[1] श्री प्रवरसेन विरचितं—सेतुबन्धम्—श्री रामदास, भूपति प्रणीतया टीकासमेतम्—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई—१८९५; रावणहोरावणवह-ओडर सेतुबन्ध—सीगफ्रीड गोल्डस्कमिड्ट लन्दन टुवनर एण्ड कम्पनी, १८८०।

वे चिन्ता एवं शोक करने लगे बाद में सीता जी जीवित हैं यह जानकर हनु जी का आलिंगन करने लगे।

अथ सीतामणिमाह—

चिन्ताहअप्पहं मिव तं च करे खे अणीसहं व णिसण्णम्।
वेणी बन्धणमइलं सोअकिलन्तं व सें पणापेइ मणिम्॥१, ३९॥

बाद में राम जी ने सीता जी द्वारा दी हुई मणि को जो हतप्रभ हो थी उसे प्रणाम करने लगे।

अथ कपीनां हनूमद्दर्शनमाह—

पेच्छन्ताण समुद्दं चडुलो वि अउव्वविम्ह अरसत्थिमिओ।
हणुमन्तम्मि णिवडिमो सगौरवं वाणराणी लोअणणि वहो॥२, ४

समुद्र की तरफ देखते हुए वानरों की आँखें हनुमान जी पर आ रुक गयीं।

अथ वानराणांमोहमाह—

उअहि अलंघणिज्जं दठ्ठूण गआगअं च मारुअतणअम्।
मोहन्धआरिएसु विगूढ़ो भमइ हिअएसु सिं उच्छाहो॥२, ४४॥

अलंघनीय समुद्र के इस पार उस पार हनुमान जी के आने जाने वानरों के हृदय में उत्साह का संचार हुआ।

हनुमदवस्थामाह—

णेच्छइ णिव्वूढभरो लहुअं दप्पुद्धअत्तणं पवणसुओ।
कअपेसणस्स सोहइ घोरं चिअअहइ रक्खिउं वअणिज्जम्॥४, १३॥

हनुमान जी ने अभिमान नहीं किया, स्वामी की आज्ञा पालन क पर धैर्य धारण करना ही शोभा देता है।

कार्यस्य सुखसाध्यतामाह—

पडिवत्तिमेत्तसारं कज्जं थोआवसेसिअं मारुइणा।
संपइ जो च्चेअ उरं देइ पवंगाण पिअइ सोच्चेअ जसम॥४,४८॥

पवन पुत्र हनुमान जी ने सीता हैं ऐसा निश्चय सुना दिया, जिससे क थोड़ा ही शेष रह गया।

इतिकर्त्तव्यमाह—

ता सव्वे च्चिअ समअं दुत्तारं पि हणुमन्तसुहवोलीणम्।
अब्भत्थेम्ह सुरासुराणि व्वूढब्भत्थणाअरं मअरहरम्॥४, ४९॥

हनुमान् जी ने दुस्तर समुद्र को पार किया है, इसलिए यह समुद्र अब दु नहीं रह गया और हम लोगों की प्रार्थना को पूरा करेगा।

अथ तेषामेव दर्शनमाह—

तो गमणवेअमारु अमुहत पडंद्धन्तणं राणि राइ अजलए।
पेच्छन्ति रविकरान्तरघूर्णित पृथुलविद्युतो रजनीचरात्॥४, ५२॥

इसी बीच निशाचर की छाया दिखायी पड़ी।

अथ हनूमद्व्यापारमाह—

णवरि अ लंका दिट्ठो सहाओ पिट्टीसणो मारुइणा।
णिअमेऊण काइवलं वीओदन्तोव्व राहवस्य उवणिओ॥४, ५६॥

इसके बाद विभीषण दिखायी पड़ते हैं।

अथ सुग्रीवस्य विभीषणालिंगनमाह—

वक्सिअणिवेइअत्थो सो मारुइलद्धपच्चआगज हरिसम्।
सुग्गीवेण उरत्थलवणमालामलिअमहुअरं उवऊढो॥४, ५७॥

चरणों में पड़े हुए विभीषण के शिर को रामजी प्रेम से उठाते हैं।

अथ रामस्योन्मादावस्थामाह—

णिन्दइ मिअंककिरणे खिज्जइ कुसुमाउहे जुउच्छइ रअणिम्।
झीणो दिणावर झिजइ जीवेज्ज पिएत्तिमारुइं पुच्छन्तो॥५, ५॥

रामजी चन्द्रमा की किरणों को और रात्रि की निन्दा करते हुए हनुमान जी से सीताजी के जीवन की बात पूछते हैं।

समुद्रक्षोभातिशयमाह—

जलइ वलवाणलो विअ कुट्टइसेलोव्व रामवाणाहिहओ।
रसइजलओव्वउअहि खुहिओ लंघेरमारुओ व्वणहाअलम्॥५, ७७॥

रामजी के वाण से समुद्र में चारों तरफ आग ही आग दिखायी पड़ने लगती है।

नलस्यवलातिशयमाह—

जं जं आणेइ गिरि रहिरह चक्कपरिमट्टसिहरं हणुमान।
तं तं लीलाइ णलो वामकरुत्थम्भिअं रएइ समुद्दे॥ ८-४३॥

हनुमान् जी सूर्य भगवान् के रथचक्र से टूटे हुए जिन-जिन पत्थरों को लाते हैं नल उन पत्थरों को वाएँ हाथ से उठा कर सेतु की रचना करते जाते हैं।

समुद्रशैलोत्कर्षमाह—

वित्थअसरकमलसिरे सेले दरघडिअसे उसंकमलसिरे।
जलणिहि से आलग्गा पाआलधरा धारेन्ति सेआलग्गा॥८-४४॥

पाताल में रहने वाले पर्वत अपने शिर पर शैवाल आदि धारण किए हुए हैं।

अथ सुवेलोपमर्दमाह—

रइणा वि अणुच्छुण्णा वीसत्थं मारुएण वि अणालिद्धा।
तिअसेंहि वि परिहरिआ पवंगमेहि मलिआसुवेलुउच्छंगा॥ १०-२॥

भगवान् सूर्य, मारुत तथा देवगण से भी अस्पृष्ट सुवेल पर्वत के शिख वानर विराजमान होते हैं।

राम के सिर को देख कर जानकी प्रमद वन में गिर जाती हैं।

प्रमदवन प्राप्तिमाह—

पत्ता अ फुडिअमणि अडविवरुठ्ठिअसलिलवद्ध पंकं अमउलम्।
पवणसुभमग्ग पाअवमंगुग्गअवालकिसलअ पमअवणम् ॥ ११-३

राक्षस सब उस प्रमद वन में पहुँच जाते है जहाँ पवनसुत से तोडे गए से किसलय निकल रहे हैं।

त्रिजटा वाक्यस्वरूपमाह—

मारुअसु पुससुवाहं अवऊहेऊण अंस परिअन्त मुहूं।
सम्भरिअ विरहदुक्खं रोत्तव्वन्ते पुणो पइस्स वि अंके ॥११-९

त्रिजटा कहती है रामजी का वध हुआ है यह बात मिथ्या है, अतः हे जी आप रोइये मत, अंचल से अपने आँसू को पोंछ दीजिए। अभी अपने वि दुःख को याद कर रामजी के कंधे पर मुख रख कर रोना है।

किंति समाससिअव्वे मुन्झसि दहवअणदप्प मंगुष्फालम्।
पेच्छन्ती पमअवणं रामाणत्ति अरपवआविद्धदुमम् ॥११-९

हे सीते क्यों मोह कर रही हैं, रामजी के एक ही दूत की करामात प्रमद का भंग देखिए।

सीता जल्पनास्वरूपमाह—

पवगसुअसिठ्ठ तुरिअं इह एन्तस्स अवलम्बिउं मह जीअम्।
विरहलहुअं पिराहव मए जिअन्तीअ जीवअं तुज्झहिअम् ॥११-१

सीताजी विलाप कर रही हैं, कहती हैं कि हे राघव ! पवनसुत से मेरा वृत्त सुनकर आप यहाँ आ गए और मेरे कारण आपका जीवन समाप्त हो गया

त्रिजटा वचनस्वरूपमाह—

सअला निसाअरपरी घरपरिवाडि समणी हरिअरुणणरवा।
एक्केण कआकइणा कह होइहि अणहरक्खरं रामवहम् ॥११-१२

त्रिजटा कहती है श्री राम के दूत एक वानर ने सारी लंका को जला दिया अतः रामजी का वध नहीं हो सकता।

युद्ध प्रशान्तसे अथैषां गजदृष्टिरोधकतामाह—

संरुम्भर दिठ्ठवहं गआण अहिमुहपहाविआण रणमुहे।
मारुकम्पिज्जन्तो वअणव्भसम्मि मुहवड्डोव्व महिरओ ॥१३-५

युद्ध में दौड़ते हुए घोड़े और हाथियों के पैरों से उड़ी हुई धूलि वा के मुख पर छा जाती है।

णवरि अभडवच्छत्थलवणमगाणिराअ पत्थिउच्छलिअए।
रुहिरणइअ महिरओ उम्मूलिअअकूलपाअवोव्वणिसुद्धो ॥१३-६०॥

वीरों की छाती से निकली रुधिर की नदी मार्ग की धूलि को सींच रही हैं।

पलहुअणीहारणिहं संघाइअकमलणलतन्तुच्छाआम्।
घोलइ दरवोच्छिण्णं मारुअमिण्णातलणट्ठिअं रअसेसम् ॥१३-६१॥

वीच-वीच में हवा के द्वारा थोड़ी-थोड़ी धूलि उड़ रही है।

अथगजानां पतनमाह—

रुम्भन्तुज्जअमग्ग घराहरन्तरवलन्तण इसोत्तणिहम्।
वलइ वलन्त घअवडं पडिअगइन्दणिवहन्तरालेसु वलम् ॥१३-६२॥

गिरे हुए हाथियों के वीच में गिरी हुई पताकायें ऐसी मालूम पड़ रही हैं जैसे चट्टानों के वीच में गिरते हुए झरनों के जल दिखायी पड़ते हैं।

हनुमज्जम्वुमालिनोस्तदाह—

हन्तूण जाम्बुमालि झत्ति विहण्णो अइंचिओ पवणसुओ।
स अलतलगाढसाडणभिण्णुच्छलिअ सिरमे असित्तदस दिसम ॥१३-८६॥

हनुमान् जी ने जम्वुमाली को मार दिया और चपेटे की हल्की मार से उसके शिर के मेद एवं मांस चारों तरफ विखर जाते हैं।

धूम्राक्षस्य युद्ध-—प्रहर्षं वहमानो विक्रमिव वैरावन्धम्—

अथ हनुमद्धूम्राक्षसैन्ययोः सांमुख्यमाह—

तस्स सर-णिहाए रोमन्तर लग्ग णिप्फले घुणमाणो।
अक्कमण मोडिअ रहो हिअ धुम्मक्ख घणु संठिओ हसइ कई ॥१४-६४॥

धूम्राक्ष द्वारा प्रयुक्त वाणों को अपने रोम में लगा देख कर अंगों को हिलाते हुए हमुमान जी धूम्राक्ष के रथ और धनुष को तोड़ कर हँसने लगते हैं।

अयतयोर्युद्धमाह—

मग्गो मुअम्मि फलिहोवच्छुच्छलिअ दलिअं ण इट्ठं मुसले।
घुम्मक्ख रोसमुक्कं पवअस्स जहिं तहिं विराइ पहरणं ॥१४।६५॥

हनुमान् जी पर धूम्राक्ष के प्रहत वाण इधर उधर विशीर्ण हो रहे हैं।

अथ हनूमद्देहदाढ्यमाह—

इस युद्ध में हनुमान जी ने बायें हाथ से धूम्राक्ष की ग्रीवा को पकड़ कर दवा देते हैं और गर्जने लगते हैं। १४-६६

अथ धूम्राक्षमरणमाह—

खणवावरिविसंठुलगलन्तपहरणपलम्वि ओहअहत्यम्।
कुणइ पमंजण तणओ उद्मुट्ठि अमुक्क जीविअं घुमक्खम् ॥१४-६९॥

हनुमान जी ने क्षण भर में धूम्राक्ष के बल को समाप्त कर दिया और जीवन से मुक्त कर दिया।

अथाकंपनस्सप्रयाणमाह—

अह णिहए घुम्मक्खे हअसे सम्पि अ गए णिसाअरसण्णे।
दहमुहरुमुहाणतं णिन्तं पेच्छइ अकम्पणं पवणसुओ॥ १४-६
तंपि विइण्णोरत्थलवीसत्थोहरि अणिठ्ठिअाउहणिवहम्।
· भो सुम्भइ हणुमन्तो एक्केक्कक्खुडिअदिप्प इण्णावअवम्॥ १४-६

धूम्राक्ष तथा और राक्षस सेवा के मर जाने पर रावण ने दूसरी सेना उसे हनुमान् जी निर्भीक होकर देखते रहे और एक एक कर के उसका करते रहे।

दशानन तनय द्वारा रामबद्धलक्षणसर्वैरेकदा युद्धमाह—

णीलेण गण्डसेलं दिविएण द्रुमं सिलाअलं मारुइणा।
दारेइ सेरेहि समं णलेण मुक्कं च मलअसिहक्खण्डम्॥१५-३३॥

मेघनाद के युद्ध में नील-गण्डशैल, द्विविद वृक्ष, हनुमान जी पत्थरों से मलय खण्ड से मेघनाद पर प्रहार करते हैं।

लक्ष्मणस्य शक्तिवेधमाह—हनुमान विशल्या नाम औषधि लाते हैं—

सो वि अ पवणसुआणिअ धराहरो सहिविइण्णजीअब्भहिओ।
तह संधिअचावसरो णिसाअरेहि सह जुज्झिउं आढत्तो॥ १५-४

हनुमान् जी ओषधि लाकर लक्ष्मण जी को जिलाते हैं।

इस प्राकृत के ग्रंथ में हनुमान के विषय में कोई ऐसी कथा नहीं मिलती और पूर्व के ग्रंथों में न हो।

भवभूति के उत्तर रामचरित में हनुमान का कोई प्रसंग नहीं मिलता उनका नाम ही मिलता है।[1] वाली का नाम तो आया है परन्तु हनुमान का कहीं नहीं दृष्टिगोचर होता।

दिङ्नाग कृत कुन्दमाला में केवल एक स्थान पर हनुमान का नाम होता है। यहाँ वाल्मीकि जी कहते हैं[2]—

भो भोः साकेत निवासिनः पौराः। नाना दिगन्तवासिनो राजानः। विभी

---

[1] उत्तर रामचरित—भवभूति—सम्पादित टी० आर० रत्नम निर्णय सागर प्रेस, , बम्बई १९३९।

[2] दिङ्नाग प्रणीता—सम्पादक कृष्ण कुमार धवन, भारतीय भवन, जालन्धर, प्रथम संस्करण, अंक ६, कविता ४० के पश्चात्, पृ० २४२।

सुग्रीव हनुमत्प्रभृतयो महारथः।" यहाँ हनुमान को महारथी कहाँ गया है दिङ्नाग का काल ईसवी ७०० से ११११० के वीच का कूता जाता हैं।[1]

कुमारदास कृत जानकी हरणम् नाम के काव्य में हनुमान की कोई कथा नहीं प्राप्त होती। केवल एक स्थान पर "स्तब्धकर्णो नमत्येनं रावण क्षोम मारुतैः" मिलता है, जो कदाचित् हनुमान जी के अशोकवन में विटपों को उखाड़ते समय इनके कानों पर पुष्पों के गिरने की ओर संकेत करता है।[2]

भास्कर भट्ट कृत उन्मत्त राघव में भी हनुमान का चरित्र नहीं मिलता है।[3]

श्री हरदत्त सूरि कृत राघवनैषधीयम्[4] श्लेष काव्य में वहुत संक्षेप में हनुमान का चरित्र प्राप्त होता हैं—

पवमानजनस्तानच्छवामावयवेन संवदितुम्।
आयात्सुग्रीवसुहृद्विनयेन च वार्तमाचारीत् ॥९१॥
लोकोत्तर वृत्तान्तः स लक्ष्मणस्त्वं विराजसे श्रीमान्।
हरिणा मैत्रीं क्षिप्रं स्वकार्यं घटनां प्रकुर्वीथा ॥९७॥

सीतान्वेषण करते हुए समुद्र तट पर पहुँचने पर—

प्राप्त सुवर्णसमुद्र पुण्ययशः प्राप्तसांकेत्यः।
उषितपुरीको मतिमान्नरदेवमयारुणत्तूर्णम् ॥९९॥

....

उत्तमचरितो गच्छन्यधि राजा वाहुकाक्षिककृत्।
परिगणिताक्षवयवोवरुद्ध हरिहृत्कुतूहली नृपतः ॥१०१॥

जैमिनीय कृत अश्वमेध पर्व[5] में रामचन्द्र के अश्वमेध की कथा प्राप्त होती है। यह ग्रंथ उनके लंका से लौटने के समय से प्रारम्भ होता हैं—

सीतामग्निमुखच्छुद्धायस्वपुरं ययौ।
विभाषणेन वीरेणलक्ष्मणेन महात्मना ॥६॥

---

[1] उपर्युक्त, भूमिका, पृ० ३।

[2] कुमारदास–जानकी हरणम्—सं० गोपाल रघुनाथ नन्दगिरकर, बम्बई १९०७, पृ० ३४-२-६६।

[3] भास्कर भट्ट—उन्मत्त राघव—सं० दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पांडुरंग परब, निर्णय सागर प्रेस, बंबई १९२५, काव्यमाला १७।

[4] श्री हरदत्त सूरि—राघव नैषधीयम्—सं० पं० दुर्गाप्रसाद एवं शिवदत्त शर्मा, निर्णय सागर प्रेस बम्बई १८९६।

[5] जैमिनीय अश्वमेध पर्व—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई १९५१।

तथा हनूमत्प्रमुखैर्वानरैः परिवारितः।
अयोध्यां प्रविवेशाथ वशिष्ठ प्रमुखाद्विजाः ।।७।।
पठंतो मंगलं सूत्रं. राम सम्मुखमाययुः।
वशिष्ठ प्रमुखान्दृष्ट्वा ततोदारारमीरथात् ।।८।।
(अध्याय २५, पृष्ठ ७६)

अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ कर के राम घोड़ा छोड़ते हैं जो बाल्मीकि के आश्र में पहुँचता है और 'लव' उसे बाँध लेते हैं। कुश के शत्रुघ्न और लक्ष्मण को से सहित जीत लेने पर भरत को राम उनसे युद्ध करने को भेजते हैं। इनकी से के साथ हनुमान जाते हैं। यहाँ की इस कथा में कुछ नवीनता है। यह क केशव के रामचन्द्रिका के आख्यान से बहुत कुछ मिलती है।

श्रीराम उवाच—

कोऽसौ भरत जानीह सबालो व्रज कानने ।।५३।।
तमानय कुशं जित्वा सानुजं मम सन्निधौ।
समुत्थापय वीरौ तौ मूर्च्छितौ मम बांधवौ ।।५४।।
हनुमानपियात्वेष जांबवान्वानरैः सह।
तवानुवृत्तं कुर्वाणः कुरु वाक्यममोदितम् ।।५५।।
पितृवाक्यं मयाऽकारिव्रजताकाननं प्रति।
त्वया तु न कृतं तस्य जनकस्य वचोमहत् ।।५६।।
नंदिग्रामे प्रवसता जटावल्कलधारिणा।
इदानीं तस्य पापस्य निष्कृतं कुरु राघव ।।५७।।
मद्वाक्य करणादेव पूतो भव महामते।
भरतस्त्वब्रवीद्वाक्यं कथयामिरघूद्वह ।।५८।।
द्वौ श्रुतौ बालकवरौ तव सैन्यानिपातकौ।
न तौ भवान्विजानाति हनूमान्वेत्ति वा न वा ।।५९।।

....

अंगद उवाच—

मन्येहं बालकौ तौ तु रामदुर्मंत्ररूपिणौ ।।६०।।
सीतां लोकापवादेन यज्जहौ रघुनन्दन।

जैमिनीरुवाच—

एवं राम समादिष्टो हनुमत्प्रमुखैर्वृतः ।।६१।।
निर्ययौ भरतः क्रोधाद्रथमारुह्य सत्वरः।

भरतः काननं प्राप्य हनूमन्तमुवाच ह ।।६३।।
हनूमत्पश्य संग्रामे कुशबाणैर्निपातिताः।
रामस्य वीरा बहवो विशिरस्का विबाहवः ।।६४।।

.....

दृश्यन्ते वाहनानांतु क्वचित्केशा क्वचित्स्रजः॥
नदीमिमां समुल्लंघ्य व्रज पारं निरीक्षय॥६८॥
यथागतोसि लंकां त्वं तीर्त्वा जलनिधिं पुरा।
तत्र तौ पश्य पतितौ बांधवौ मामकौ भुवि॥
विलोकनीयौ तौ बालौ त्वया कुशलवौ क्वचित्।

. . . . . .

हनुमानुवाच—

तदातीर्णोऽस्मिभरत सागरम् सीतया स्वयम्॥७०॥
संमुखा सा पुरा जाता विमुखाद्य विलोक्यते।
शोणितौघं नदीं मन्ये दुस्तरां लक्ष्मणाग्रज॥
तथापि तववाक्येन वीक्षितुं यामि बांधवौ।
इत्युक्त्वा तां नदीं तीर्त्वा ददर्श पतितावुभौ॥
शरनिर्भिन्न सर्वांगौ रणे शत्रुघ्नलक्ष्मणौ।
प्रार्थयन्ताविति धरां सीतात्यागेन दुःखिताम्॥
मांकोपंव्रजतौ स्थानं देहि सीताद्रुहोरिति।
हनूमांस्तौ गृहीत्वाथ बाहुभ्यां पुनरागतः॥७४॥
भरतस्य समीपेहि मूर्च्छितौ तरसानृप।
ददर्श भरतो भिन्नौ कुशबाणै समंततः॥७५॥
रथे संस्थापयामास भ्रातरौ विस्मयान्वितः।
रक्षणे चांगदं दत्वा हनूमंतमुवाच ह॥
क्व गतौ बालकौ वीरौ राम सैन्य निपातकौ।
हनूमन्पश्य कुत्रापि बालयेष धरौ सुरौ॥

. . . . . .

गतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ पातयित्वा महारणे।

हनुमानवाच—

मेघनादशरैर्नायं मूर्छितो लक्ष्मणस्तथा॥८७॥
यथास कुशशरैर्व्याप्तो न जहात कश्मलम्॥
मूर्छनामामुपत्येपावीक्ष्य लक्ष्मणमातुरम्।
पश्यंति सैनिकाः सर्वे बालाभ्यां निहतं बलम्॥७९॥

बालकौ कार्मुकयुतौ घनश्यामौ च संगतौ॥१६॥
काकपक्षधरौ वीक्ष्य हनूमानिदमब्रवीत्।

हनूमानुवाच—

एतौ रामाकृती बालौ बलं रामस्य वीक्षकौ॥१७॥
संजास्तिष्ठन्तु सर्वत्र भरताद्या महाबलाः।
एवं ब्रुवाते वीरे तु तदा पवननन्दने॥१८॥

तावत्कुशः प्रत्युवाच लवं रणगतं तदा।
पश्य सैन्यबलं प्राप्तं तुरंगं नेतुमिच्छति॥
व्रजाम्येतद्बलं भ्रातस्तुरंगं त्वं हि पालय।
ततो रामानुजं वीक्ष्य कुशोवचनमब्रवीत॥२०॥
. . . .

भरत जी का वचन सुनकर कुश ने वाण वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया—

भरतं सप्तभिर्वीरं वानरान्पंचसप्तभिः।
हनूमंतं शतेनायं ताडयामास संगरे॥२५॥
वाणानां वालिपुत्रं च सहस्रेण हसन्निव।
नीलं पंचशतैर्विद्ध्वा सप्तत्या च नलं रणे॥२६॥
. . . .
मूर्च्छान्वितस्य पतितः सीता पुत्रेण ताडितः।
. . . . ॥२८॥
गिरिमुत्पाट्य हनुमान्भरतं वीक्ष्य मूर्च्छितम्।
चिक्षेप सीतासुतयोर्मूर्ध्नि योजनमायतम्॥३०॥
तं पर्वतं दीर्घं नेत्र्यै वाणैश्चक्रतुरंवरे।
त्रसरेणुनिभं रुद्रगात्रभूति सुखप्रदम्॥३१॥
पंचभिस्तं हरिसुतं प्रभिन्नमपिमूर्च्छितम्।
शरैकनकचित्रैश्च कुशश्चक्रैस्वपौरुषात्॥३२॥
. . . . ।

रामचन्द्र जी के मूर्छित होने पर—

. . . . ॥
एतस्मिन्नंतरे राजन् लवः कुशमथाब्रवीत्॥६४॥
भ्रातः कुश ग्रहीष्यामि हनुमंतं महावलम्।
सीता वीक्ष्य कपिं हृष्टा भविष्यति न संशयः॥६५॥
रामस्य च रथं रम्यमध्यारोह सुदुर्जयम्।
लक्ष्मणस्य रथं रम्यमधिरुह्य व्रजाम्यहम्॥६६॥
जाम्ववत्प्रमुखान्वीरान्स्वरथे परिपालय।

जैमिनिरुवाच—

पश्य रामादयोवीरा मूर्च्छिता वालसायकैः।
जांववन्मांच कुरुते मूर्च्छितं रामसंभवः॥६९।
किं करिष्यामि यदि मां सनेष्यति वलात्कुशः।
सीतासमीपे मरणं भविष्यति न सशयः॥७०॥
एवं ब्रुवाणे वीरेतु प्राप्तो रणगतो लवः।
जग्राह वानरौ तौहि मुदा कपटमूर्च्छितौ॥७१॥

सीता समीपे गत्वाथ सर्वं निगदितुश्चतौ।
जितोरामः स सैन्योहि समानीतं च भूषणम्॥७२॥
वानरौ कौतुकार्थं ते मयानीतौ निरीक्षय।
मातामर्त्राक्कृतं युद्धं विजयीपुनरागतः॥७३॥
सीता पुत्रौ परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।

सीतोवाच—

मानितौ वानरौ मुंच रणमध्ये च पुत्रक।
मां निरीक्ष्यमृतावेतौ जीवहीनौ भविष्यतः।
ततो तवोमुमोचैतो रणमध्येमहामतिः॥७५॥
एतस्मिन्नतरेराजन् वाल्मीकिर्वरुणालयात्।
आजगाम महातेजा ऋषिभिः परिवारितः॥७६॥
तौ गत्वाथ कथयतां सर्वं कृत्यमशेषतः।
ततो ज्ञात्वा मुनिवरः सर्वातुत्थाप्यमारिणा॥

... .

प्रासाद मंडन में जो प्रायः ११वीं शताब्दी का ग्रथं है हनुमान की मूर्ति मंदिर के चारों ओर के प्रांगण के नैऋत्य कोण में स्थापित करने को लिखा है।[1] यहाँ विविध देवताओं को विविध स्थानों पर रखने का निर्देश है जैसे कुवेर को दक्षिण में[2]; यहाँ इन्हें वानरों का राजा कहा है।

निर्ऋत्यभिमुखः कार्यो हनुमान वानरेश्वरः।
अन्ये विदिङ्मुखा देवा न कर्त्तव्या कदाचन॥४०॥

इस विस्तृत साहित्य के आधार पर कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि वाल्मीकि तथा परवर्ती साहित्य में वर्णित वानर जाति पौराणिक अथवा काल्पनिक जाति थी।[3] कुछ विद्वान् इन्हें निरा बन्दर मानते हैं। जो चित्रण वानरों की सभ्यता का वाल्मीकि के रामायण में मिलता है उसके आधार पर यह प्रमाणित होता है कि वानरों की एक मनुष्य जाति थी। भले ही यह जाति गंगा, यमुना के मध्य देश के आर्यों अथवा लंका के राक्षसों की भाँति सुसंस्कृत न रही हो परन्तु यह जाति निश्छल तथा सरल थी। साम्राज्यवादी आकांक्षाओं से अलिप्त होने के कारण

---

१. सूत्रधार मण्डन—प्रासाद मण्डन, सं० पं० जगद्धर जाटू—काश्मीर सरकार, श्रीनगर १९४७, द्वितीय अध्याय ४० पृ० ८।

२. उपर्युक्त—द्वितीय अध्याय ३९।

३. शान्तिकुमार नानूराम व्यास—रामायणकालीन समाज, सत्साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली, १९५८, पृ० ५३-७४।

इस जाति का भी अपना महत्व था। रामायण में हमें सर्वप्रथम वानर सम्यता निकटतम झाँकी मिलती है।

वानरों को वाल्मीकि ने माया जाननेवाले, शूरवीर, वायु के समान वेगवा नीतिज्ञ, विष्णु के समान पराक्रमी, किसी से परास्त न होनेवाले, तरह तर उपायों के जाननेवाले, दिव्य शरीरधारी, देवताओं के सदृश दिव्य अस्त्रों जाननेवाले (१।१७।२-४) वताया है। यहाँ 'कामरूपिण:' इनका वहुप्रयु विशेषण है। ये इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जैन साहित्य में इ विद्याधर जाति का कहा है तथा इन्हें वानर चिह्न युक्त मुकुट पहिने हुए व किया है। राम लक्ष्मण से पहली भेंट के समय हनुमान अपना कपि रूप त्याग भिक्षु रूप धारण करते हैं। सीता की खोज करते समय वे लंका में अनेक धारण करते हैं।

वानर अपने नखों और दाँतों को शस्त्रों के रूप में प्रयोग करते थे। वाघ समान पैने दाँतों के कारण इनकी आकृति भयानक तथा रोंगटे खड़े करनेवा थी। सर्वे शार्दूल दंष्ट्राश्च—(४।३१।२४), नखदंष्ट्रा युता: सर्वे वीराविकृ दर्शना:। रोमहर्षणा: (४।३१।२३)।

इनका वर्ण

सुग्रीव को हेमपिंगल:, वाली को कनकप्रभ: और हनुमान को ताम्र मुख वा कहा गया है "यस्त्वया कृत संवाद:सीते ताम्रमुख: कपि: (५।५३।२३)। वानरों शरीर पर घने रोयें होते थे और वही हनुमान के शरीर पर भी रहा होगा; सुग्रीव के राज्यप्रासाद में दिव्य वस्त्र तथा मालाधारी प्रियदर्शन वानर भी लक्ष्मण ने वहाँ रूपयौवनगर्वित वानर स्त्रियाँ भी देखी थी—"वहवीश्च विवि कारा रूपयौवनगर्विता:। स्त्रिय: सुग्रीवभवने ददर्श स महाबल:"(४।३३।२२) फिर भी यह मानना पड़ेगा कि रामायणकालीन हनुमान पूँछ नामक उपकर से युक्त थे। जैन साहित्य में इसे इनका आयुध वताया गया है। और किसी पूँछ का वर्णन नहीं मिलता।

वानरों की विशेषताएँ

इनके मानसिक तथा शारीरिक चापल्य का राम वाली पर आरोप लगा हैं। रावण भी यही कहता है—'चपला ह्यविनीतश्च चलचित्ताश्च वानरा (६, ५७, ९)। भरत को भी इनकी चंचलता के कारण हनुमान के वाक्यों प संदेह होता है—'कच्चित्र खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता' (६, १२७, २३) हनुमान भी अपने में इस दुर्गुण को स्वीकार करते हैं—'नित्यमस्थिरचित्ता हि कपयो हरिपुंगव' (४, ५४, ९)। ये स्वभाव के रूखे थे, इनके साथ समझौते

वात करना कठिन था—'न ते सम्भाषितु शक्या सम्प्रश्नोऽत्र न विद्यते। प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप (७, २४, २९)।

दुष्टता तो इनमें भरी हुई थी। मातंग ऋषि ने मतंग वन से इन्हें वहिष्कृत कर दिया था (४, ११, ५५-५९)। मधुवन को नष्ट करने की कथा का चित्रण इनके इस स्वभाव का उत्कृष्ट उदाहरण है (५, ६१, १-१०)। हनुमान के अशोक वन को नष्ट करने का दृष्टान्त भी हमारे समक्ष है ही।

वानर भावुक भी थे। लंका में मंदोदरी को देख कर हनुमान इसे सीता समझ कर हर्ष से विह्वल हो जाते हैं (५, १०, ५४)। हनुमान के लंका से लौटने पर तथा युद्ध के समय राम लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त देख कर वानर बड़े हर्ष का प्रदर्शन करते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण से सीताहरण का वृत्तान्त सुन कर सुग्रीव उद्विग्न हो उठते हैं।

वानरों की कौतूहल की भावना भी उनकी एक विशेषता थी। पुष्पक विमान के अयोध्या पहुँचने पर उसमें वैठे वानर लोग उचक-उचक कर नगर को देखने लगते हैं (६, १२३, ५३)। सीता के अशोक वन से राम के पास आने के समय भी इसी प्रकार की उत्सुकता इनमें दिखाई देती है। वातूनी होने के कारण आपस में वातचीत करने का लोभ भी ये संवरण नहीं कर पाते हैं। इसीलिए संपाती इनसे कहता है कि 'सीता के विषय में जो वता रहा हूँ उसे विना शोर गुल किए सुनो'—कृत्वा नि:शब्द मे आग्रा: शुण्वन्तु हरयो मम (४, ६०, ३०) राम के प्रयाण के समय भी ये किलकारियाँ मारना नहीं भूलते (७, १०९, १६)।

इनका भोलापन, इनकी निराधार आशंकाएँ, मूर्खतापूर्ण कायरता, इनके विचित्र अनुमानों का कारण वनती हैं। पर्वताकार कुंभकरण को देख कर जब वानर इधर उधर भागने लगते हैं तो अंगद इनसे कहते हैं कि यह एक विभीषिका ही है (६, ६६, २०)। जव इन्द्रजीत माया की सीता की हत्या करता है तो हनुमान भी धोखा खा जाते हैं। मंदोदरी को भी हनुमान सीता समझ वैठते हैं। वानर गण सदा समूहों में विचरण करते हैं इसी कारण सीता के अन्वेषण के समय वानरों की अलग-अलग टोलियाँ वनाई जाती हैं एक टोली में अंगद, हनुमान, जाम्बवान की अलग टोली दिखाई देती है। यह दलगत कार्यप्रणाली उन्हें उनके अपने नेताओं में अंध विश्वास करने को वाध्य करती है। जव हनुमान उस गुफा में घुसते हैं जिसमें उन्हें जल होने का अनुमान है तो उनके सव साथी उसमें घुस पड़ते हैं (४, ५०, १७)। इसी प्रकार अंगद जव यह निश्चय करते हैं कि सीता के अन्वेषण में वे विफल रहे और उन्हें प्राणत्याग करना चाहिए इस पर सव वानर ऐसा करने के हेतु उद्यत हो जाते हैं (४, ५५, १९-२०)। जव हनुमान

राक्षस सेनापति अकंपन से अकेले ही सामना करने लगते हैं तो उनके साथी भाग रहे थे लौट आते हैं और लड़ने लगते हैं (६, ५६,, ९)।

किष्किंधा वानरों का गढ़ कहा गया है परन्तु इसके अतिरिक्त और भी से स्थान बताये गए हैं जहाँ ये रहते थे–जैसे पर्वतीय गुफा, नदियों के किनारे के इत्यादि। किष्किंधा नगरी को भी एक गुफा में स्थित वाल्मीकि ने बताया है— प्रति समाविष्टो लक्ष्मणः परवीरहा। प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां राम नात् (४, ३३, १)। इस गुफा में वृक्षों, पुष्पों, प्रासादों, राजमार्गों, नदी नालों होने से (४, ३३) यह साधारण गुफा नहीं कही जा सकती। (ऐसी एक जापान में है परन्तु भारत में हैं कि नहीं इसका पता नहीं।) क्या इनका नि पाषाण युग के अर्ध सभ्य जातियों के निवास की ओर तो संकेत नहीं करता जे० म्युअर ने लिखा है[1] ? क्या वानर भारत की अर्ध सभ्य जाति थी जो राम काल तक पाषाण युग में थी। वाल्मीकि ने कई स्थलों पर वानरों की घनी बस्ति का उल्लेख किया है जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी संख्या कम नहीं जिन वानरों को सुग्रीव ने राम की सहायता के हेतु बुलवाया था वे पूर्व और के आदिवासी राजा प्रतीत होते हैं।

वानर जाति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी ज्ञात होता है। इनका समा हरिगण नाम से विख्यात बताया गया है। हरि शब्द वानरों का पर्यायवाची है इनकी विविध शाखाओं में तीन के नाम ऋक्ष, गोलांगुल और वानर मिलते हैं ऋक्ष पर्वतों पर निवास करनेवाले कहे गए हैं। गोलांगुलों के विषय में कहता है कि वे काले मुँहवाले, घोर और महाबली हैं (६, २७, ३२)। कदाचि ये आज के लंगूर के समान थे। वानर कदाचित् साधारण वानर के रूप के

इनका समाज अनेक यूथों या वर्गों में विभक्त कहा गया है जिनके मुखि यूथप हैं। इनके ऊपर महायूथप हैं। इन सब पर कपियों का राजा है जो किष्कि में रहता है। प्रत्येक कपि राजा के प्रति श्रद्धा रखता है और इसके लिए लड़ने मरने को उद्यत है।

वानर राज्य

वाल्मीकि ने कपिराज्य की ओर भी संकेत किया है। अंगद एक बार सुग्री से स्वतंत्र होकर एक नये राज्य के स्थापित करने की भी बात सोचता है (४, ५ १)। आर्यों की भाँति वानरों में भी ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य मिलने का विधा कहा गया है। वाली इसी कारण राजा होता है तथा अंगद सुग्रीव के निःसन्ता

---

[1] जे० म्युअर—ओरियण्टल संस्कृत टेक्स्ट्स—भाग २, पृ० ४१६।

होने के कारण युवराज बनाया जाता है। इनके यहाँ राज्याभिषेक शास्त्रीय विधि से सम्पन्न होता है (४, २६)। इनके यहाँ गुप्तचरों की भी व्यवस्था वर्णित है। राम और सुग्रीव की मित्रता की सूचना अंगद को गुप्तचर देते हैं और अंगद तारा को। इनके राज्य में कोष की भी व्यवस्था है जैसा हनुमान और सुग्रीव के संवाद से ज्ञात होता है (४, २९, ११)। वानरों के राज्य को अयोध्या के अन्तर्गत बता कर राम बाली के दुराचार के कारण उसके वध को न्यायसंगत बताते हैं। बाली का आर्यों की भाँति दाहसंस्कार भी होता है (४, २५, ५३-५४)।

भोजन

वनचर जाति के होने के कारण अथवा पाषाण युग के आदिवासी होने के कारण ये लोग मूल, फल से उदर पूर्ति करते हैं। लक्ष्मण को शांत करते समय तारा जो धान्य का उल्लेख करती है इससे यह ध्वनि निकलती है कि धान्य का भी इनके भोजन में समावेश प्रारम्भ हो गया था (४, ३५, १३) पर आग का व्यवहार जानते हुए भी वानर भोजन आग पर पकाना जानते थे या नहीं यह कहना सम्भव नहीं है। इस कारण हो सकता है कि इनका आग विषयक ज्ञान केवल काल्पनिक हो क्योंकि आज भी ये आग से डर कर भागते हैं परन्तु हनुमान लंका में आग लगाते हैं[1]।

वस्त्र

वानर वस्त्र भी धारण करते हैं जैसा वाल्मीकि रामायण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। ये प्रायः दो वस्त्र पहिनते हैं जैसा सुग्रीव के इस कथन से पता चलता कि बाली ने उसे एक वस्त्र ही देकर निकाल दिया (४, १०, २६)। सुग्रीव बाली से लड़ने के समय अपनी कमर में लंगोट कस कर बाँधता है—गाढं परिहितः। यहाँ भी इनकी पूँछ के विषय में कोई संकेत नहीं है। बाली की अंत्येष्टि पूर्ण होने पर शोकमग्न सुग्रीव पीले वस्त्र पहिने हुए हैं—क्लिन्नवाससम् (४, २६, १)। सीता सर्वप्रथम हनुमान को श्वेत वस्त्र पहिने देखती हैं—वेष्टितार्जुन वस्त्रम् (५, ३२, १)। वानर आभूषण भी धारण करते हैं। लक्ष्मण सुग्रीव के राज्यप्रासाद में रमणियों को भूषण पहिने हुए देखते हैं—भूषणोत्तम भूषिताः (४, ३३, २३)। बाली को भी हेममाली की संज्ञा दी गयी है। राम को प्रणाम करते समय सुग्रीव के गले के आभूषण लटकने लगते हैं (प्रलम्बीकृत भूषणाः)।

सुगन्ध

वानर पुष्प, गंध, प्रसाधन और अंगराग के प्रेमी भी हैं तथा किष्किन्धा का वायुमण्डल चन्दन, अगरू और कमल की मीठी सुगन्ध से सुवासित बताया

---

[1] वानर यों आग से डरते हैं, यदि हनुमान वानर होते तो लंका में आग लगाने का कार्य न कर पाते।

गया है—चन्दनागुरुपद्मानां गन्धः सुरभिगन्धिताम् (४, ३३, ७)। लक्ष्मण सुग्री सोने के सिंहासन पर बहुमूल्य बिछावन पर दिव्य मालाओं और वस्त्राभूष सुसज्जित बैठे देखते हैं। वे अलंकृत युवतियों से घिरे हुए हैं (४, ३४, ६३-६

संस्कृति

ऐसा पता लगता है कि कपियों ने इस काल तक आर्य संस्कृति अप प्रारम्भ कर दिया है। विनम्रता हनुमान में भरी हुई है। पहिली भेंट में ही हनु राम को अपने विनम्र व्यवहार तथा शालीन शब्दों से अपनी ओर आकर्षित लेते हैं। ये सीता को भी अपने युक्तिपूर्ण भाषण तथा मनोहर शिष्टाचार निःशंक और सुखी कर देते हैं। लंका से लौटने पर हनुमान का उनके साथी हार्दिक स्वागत करते हैं (५, ५७, ३२-३६)। आर्य अथवा गुरुजनों उपस्थिति में कपि समयानुसार उपयुक्त शिष्टाचार का पालन करते हैं हनुमान के रावण के दरबार के आचरण से ज्ञात होता है। लंका में विभीषण परिचय करते समय भी हनुमान अपना परिचय बड़े हीं विनम्र शब्दों में देते सीता का संवाद राम को देते हुए भी हनुमान के व्यवहार में कहीं अभिमान लेश भी परिलक्षित नहीं होता है। आपस के व्यवहार में भी वानर बड़े शिष्ट जैसे, हनुमान का अंगद के प्रति व्यवहार या हनुमान का जामवन्त के प्रति व्यवह या हनुमान का सुग्रीव के प्रति व्यवहार।

उपहारों का आदान-प्रदान भी बहुत होता था जैसा हनुमान के इस कथन ज्ञात होता है 'हे राम ! आप सुग्रीव के राज्याभिषेक के समय कृपा करके कि न्धापुरी में पधारें जिससे उपकृत वानरराज पुष्पों और रत्नों से आपका सत् कर सकें" (४, २६, ४-८)।

रीति-रिवाज

वाली का दाहसंस्कार, सुग्रीव का राज्याभिषेक तो आर्यों की प्रथा के अनु दृष्टिगोचर होते हैं परन्तु सुग्रीव का तारा से विवाह या वाली का रुमा से विवा आदिवासियों की रीति रिवाज की भाँति हैं जो इन्हें इस जाति का होने की ओ संकेत करता है। इसी प्रकार हनुमान की माता का पवन से सम्बन्ध भी इ तथ्य का द्योतक है। जाम्ववान हनुमान को वायु का औरस पुत्र और केसरी क्षेत्रज पुत्र कहते हैं (४, ६६, २९-३०)। हनुमान इसे स्वयम् भी दोहराते (५, १५, ८१)। इसी प्रकार रुमा को प्राप्त करने पर सुग्रीव उसकी शु नहीं कराते हैं। परन्तु इनमें विवाह की प्रथा थी जैसा तारा के कथन से ज्ञा होता है। यह प्रथा कैसे सम्पन्न होती थी इसका कोई निर्देश नहीं मिलता है। तारा कहती है (४, १९, २६) अभार्याः सहभार्याश्च सन्त्यत्र वनचारिणः।

पारिवारिक प्रेम

सीता की खोज में जाते हुए हनुमान अंगद से कहते हैं कि 'वहुत दिन से अपने स्त्री पुत्रों से बिछुड़े होने के कारण ये कदाचित् आपकी आज्ञा मानने में आनाकानी करें' (४, ५४, ७-९)। इससे इनका पारिवारिक प्रेम दिखाई देता है। प्रायः वानर एकपत्नीव्रत पालन करते हैं यों इसके अपवादस्वरूप सुग्रीव और वाली एक दूसरे की स्त्रियों को अपनी स्त्री वनाते हैं। अंजना कहती है कि 'एकपत्नीव्रतमिदं को नाशयितुमिच्छति' (४, ६६, १६)। हनुमान को सीता की खोज करते समय रावण के प्रासाद में मद तथा रति से चूर निद्रावस्था में अनगिनत सुन्दरियों को देखकर सोचने लगते हैं कि कहीं उनका धर्म लोप तो न हो जायगा। "मैंने आज तक दूसरों की स्त्रियों पर दृष्टि नहीं डाली इस प्रकार सोई हुई पराई स्त्रियों को देखने से कहीं मेरा धर्म न भ्रष्ट हो जाय।" कुछ देर विचार करने के वाद उनके मन में यह सन्तोष होता है कि इन स्त्रियों को उन्होंने काम-दृष्टि से नहीं देखा है (५, ११, ३७-४७) परदाराणां अवलोकनस्य धर्मलोपकरिष्यति (११, ३७)। इससे इनके वालब्रह्मचारी होने की कथा वाद की कल्पना ज्ञात होती है।

धर्म

इस साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण के काल तक वानर जातिवाले धीरे-धीरे आर्य धर्म के पालक हो रहे थे जैसा लंका जाते समय हनुमान के सूर्य, महेन्द्र, पवन, स्वयंभू, ब्रह्मा और भूतों के नमस्कार करने से पता चलता है (५, १, ८)। लंका में भी अशोक वाटिका में घुसने से पहिले ये विजय के प्राप्ति की इच्छा से ब्रह्मा, अग्नि, वायु, वज्रधारी इंद्र, पाशयुक्त वरुण, चन्द्र, सूर्य, अश्विन, मरुत, ऋषियों तथा सव भूतों से प्रार्थना करते हैं (५, १३, ६२-६५), परन्तु ऐसा भी सम्भव है कि यह जाति पहिले वानर पूजक थी और किसी यक्ष की जिसका वानर स्वरूप था पूजा करती थी।

हनुमान की विद्वत्ता

हनुमान सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित हैं। शब्दों का शास्त्रीय ज्ञान तो इनको है ही व्याकरण, व्युत्पत्ति और अलंकारों के व्यवहार में भी ये विचक्षण हैं। राम स्वयं कहते हैं कि "जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का पंडित नहीं है वह इस प्रकार बातें नहीं कर सकता। व्याकरण का कई बार इन्होंने अध्ययन किया है क्योंकि इनके मुख से बातें करते समय कोई अपशब्द नहीं निकला।" इनकी वाणी बुद्धि के आठों गुणों से विभूषित है (सुनने की इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, स्मरण रखना, तर्क-

वितर्क द्वारा सिद्धान्तों को निश्चय करना, अर्थ का ज्ञान होना तथा तत्व को समझना, ये बुद्धि के आठ गुण माने गए हैं जो इनमें उपस्थित हैं)। ये ऐसे अच्छे वक्ता हैं कि मारने को उद्यत तलवार लिए हुए शत्रु का भी हृदय इनकी बातों से बदल जाता है (४, ३, ४३)। इसी कारण लक्ष्मण ने इन्हें विद्वान् कहकर सम्बोधित किया है (४, ३, ३७)। हनुमान विभीषण के राम के पास आने पर जो राम को परामर्श देते हैं वह सभ्य, विनीत और शास्त्रोक्त हैं। इनके वचन सारगर्भित, मधुर और संक्षिप्त हैं फिर ये यह सम्मति किसी कामना से नहीं देते हैं (६, १७, ४८-५२)। यही हाल सीता के साथ सम्भाषण के समय होता है। हनुमान में तो विद्वानों के सभी गुण दिखाई देते हैं।

हनुमान जी का औषधि ज्ञान

हनुमान को औषधियों का भी ज्ञान प्रतीत होता है चाहे वह सुषेण या जाम्बवान की भाँति परिपक्व न रहा हो। अन्यथा इनको औषधि लाने के हेतु न भेजा जाता। इन्हें यों भी सभी ज्ञान से इतना प्रेम है कि ज्ञान प्राप्त करने के हेतु ये विश्वभ्रमण करते हैं जैसा वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है।

वाल्मीकि वानरों के चित्रण में परस्पर विरोधी बातों का आश्रय लेते हैं। कभी-कभी तो वे इन्हें मनुष्यों के रूप में दिखाते हैं और कभी इन्हें निरे वन्दरों के रूप में चित्रित करते हैं और साम्य को बनाये रखने के प्रयत्न में अनेक युक्तियों का सहारा लेते हैं। राम को देखते ही वानर एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर उछलते हैं (४, २, ९)। सुग्रीव को समझाते हुए हनुमान कहते हैं कि "आपका वन्दरपन स्पष्ट परिलक्षित हो रहा है तभी आप ऐसे अधीर हो रहे हैं आप अपनी बुद्धि को भी स्थिर नहीं रख सकते"—"अहो शाखामृगत्वं ते व्यक्तमेव प्लवंगमम्। लघुचित्तं तमात्मानं न स्थापयसि यो मतौ (४, २, १७)"। सुग्रीव भी अपने को वानर कहते हैं(४, ५,)इसी प्रकार हनुमान भी लक्ष्मण को चन्दन वृक्ष की पुष्पयुक्त डाली तोड़ कर बैठने को देते हैं (४, ५, २०)। इसके विपरीत वानरों को मनुष्य के रूप में वाल्मीकि वाली और राम के संवाद में, हनुमान और राम के संवाद में अथवा हनुमान और सीता से भाषण में तथा लंका दहन के प्रसंग में या बाली के अन्तिम संस्कार में दर्शाते हैं।

वाल्मीकि रामायण में वानर शब्द १०८० बार प्रयुक्त हुआ है और इसी के पर्याय रूप में वन गोचर, वन कोविद, वनचारी, वनोकस आदि शब्द भी आए

हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वानर शब्द वन्दर का सूचक न होकर वनवासी का द्योतक है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार करनी चाहिए 'वनसि अरण्ये भवः चरो वा इति वानरः, वनौकसः, अरण्यकः।' वानरों के लिए हरि शब्द ५८० बार आया है, प्लवंग शब्द २४० वार आया है जो दौड़ने की क्षमता का द्योतक है। हनुमान इस युग के सब से शीघ्रगामी धावक थे इसी कारण इनकी सेवाओं की कई वार आवश्यकता पड़ती है। कपि शब्द रामायण में २४० वार आया है जो सामान्यतः वन्दर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। हनुमान को पूंछ युक्त प्राणी वताया गया है। इनको मनुष्य मानने में सब से वड़ी वाधा यही है।[1] लांगूलं सम्प्रदीप्तं तु दृष्टं तस्य हनुमतः (५, ५३, ९)। सीता भी प्रार्थना करती हैं कि पूंछ में आग लगाने पर भी अग्नि इन्हें न जलाये (५३, २८-३३) हनुमान भी कहते हैं कि 'अग्नि मुझे क्यों नहीं जला रही है' (५३, ३४-३९)। परन्तु यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाय तो यह पूंछ हाथ पैर के समान शरीर का अभिन्न अंग न होकर वानरों की एक विशिष्ट जातीय निशानी थी जो सम्भवतः वाहर से लगाई जाती थी तभी तो हनुमान की पूंछ जलाने पर भी उन्हें कोई शारीरिक पीड़ा का अनुभव नहीं होता है। यों रावण ने पूंछ को कपियों का सर्वाधिक प्रिय आभूषण वताया है—'कपिनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम्' (५, ५३, ३)। जिस समय हनुमान समुद्र लांघने को उद्यत होते हैं उस समय यह क्यों कहा गया है कि समाविघ्न च लांगूलं हर्षाच्च वलमेयिवान् (४, ६७, ४) सम्भव है कि इनको इस प्रकार पूंछ लगाये हुए देख कर इन्हें आर्यों ने वानर कहा होगा, राक्षस तो तुच्छता के कारण इन्हें वानर कहते थे जैसे एक समय लोग जापानियों को पीला वन्दर कहते थे।[2] पूंछ का वर्णन हनुमान और उनके लंकादहन के प्रसंग में ही विशेष रूप से हुआ है। वाली, अंगद, सुग्रीव तथा वानर स्त्रियों के पूंछ के विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। अन्वेषकों ने पूंछ लगाने वाली जातियों के विषय में भी खोज की है। भारत में विजगापतन के शवरों में पूंछ आभूषण के रूप में पहिनी जाती है।[3] तथा आसाम की कुछ जातियां ऐसी हैं जो विशेष अवसरों पर पूंछ धारण करती हैं इनमें अपेलवी जाति मुख्य हैं।[4]

---

[1] शांतिकुमार नाथूराम व्यास—रामायणकालीन समाज, पृ० ७१।

[2] चि० वी० वैद्य—दी रिडिल आफ रामायण, पृ० २६।

[3] दिनेशचन्द्र सेन—बंगाली रामायण, पृ० ५२।

[4] आसाम के भूतपूर्व राज्यपाल श्री श्रीप्रकाश जी से प्राप्त सूचना के आधार पर ता० ११-२-६६।

अब यह प्रायः मान लिया गया है कि प्राचीन भारत में पशुओं के नाम से अभिहित कई जातियां निवास करती थीं जैसे नाग, ऋक्ष, वानर।[1] कदाचित् ये इन पशुओं के पूजक थे, कालान्तर में उनकी आकृति और स्वभाव उन पशुओं के प्रतिरूप मान लिए गए कदाचित् ये अपना रूप अपने देवता की आकृति के आधार पर बनाते थे जैसे आज भी शिव पूजक शिव का अस्त्र त्रिशूल लेकर चलते हैं, भस्म शरीर में लगाते हैं, नग्न रहते हैं इत्यादि। नाग जाति के लोग अपने मस्तक के पीछे नाग का फन लगाते थे यह उनका जातीय चिन्ह था। पीछे चल कर इन्हें नाग कहा गया है और मोर पूजक अपने सिर पर मोर का पंख लगाये रहते हैं। इसी प्रकार सम्भव है कि वानर जाति वाले पूँछ धारण करने के कारण वानर कहे गए हों।

मन्मथ राय ने वानरों को "भारत के मूल निवासी व्रात्य माना है[1] जो बाद में आर्यों के आने पर दक्षिणी पठार पर जा बसे थे। राम के पहिले ही वे आर्यों के प्रभाव क्षेत्र में आ चुके थे।" रामास्वामी शास्त्री ने 'वानरों को एक आर्य जाति का माना है—ये वे लोग थे जो दक्षिण भारत में बस गए थे और उत्तर के अपने भाइयों से अलग हो गए थे[2]। परन्तु इनके कुछ रीति रिवाज आदि आदिवासियों के जैसे होने के कारण इन्हें आर्य कहना कठिन है।

गोरेशियो, ह्वीलर आदि अन्य विद्वान् वानरों को भारत के दक्षिण की पहाड़ियों का निवासी अनार्य मानते हैं। इनके अनुसार "ये मूलतः वनचर लोग थे परन्तु वे शीघ्र ही आर्य संस्कृति में दीक्षित हो गए थे। सम्भवतः राजा द के दक्षिण विजय के बाद यह आदिवासी जाति विजयी आर्यों के प्रभाव में आयी हो।"[3] वानरों का राज्य कई छोटे-छोटे भागों में विभक्त है। इनके कुछ कबीले सुदूर भागों में भी रहते हैं तथा मधुवन नामक भूमि इनकी विहार भूमि है। वानरों की शासन व्यवस्था राजा, मंत्री, परिषद्, गुप्तचर, सेना, कोष इत्यादि की सहायता से चलती है। राज्याधिकार परम्परागत है। सुग्रीव का राज्याभिषेक इस नियम का अपवाद है। वानर लोग काफी शिष्ट और सभ्य हैं यद्यपि वे राक्षसों और आर्यों से पिछड़े हुए हैं फिर भी इन्हें नील जैसे स्थपति को जन्म देने का गौरव प्राप्त है जिसने भारत और लंका के बीच पुल बाँधा।

---

१. मन्मथनाथ राय——सरस्वती भवन स्टडीज भाग ५, पृ० ७३।

२. रामास्वामी शास्त्री——इण्डियन कलचर——खण्ड ५, पृ० १९५।

३. शांतिकुमार नाथूराम व्यास——रामायण कालीन समाज पृ० ७३।

वाल्मीकि के पश्चात् भारतीय साहित्य में हनुमान की कथा का बहुत विस्तार हुआ परन्तु इन सबका आधार वाल्मीकि का रामायण ही बना रहा। प्रारम्भ में हनुमान में यक्षों के भाँति के चरित्र को देख कर इन्हें वायुपुत्र की उपाधि से विभूषित किया गया और प्रचलित रामकथाओं में वायु के पुत्र और रामभक्त माने गए। सम्भवत: ९वीं या १०वीं शताब्दी से इन्हें शिव का अवतार मान लिया गया। इसका मुख्य कारण यह था कि लोग वैष्णव और शैव मतों का समन्वय करना चाहते थे पीछे चल कर रुद्रावतार हनुमान की दूसरी जन्म-कथाओं की कल्पना हुई जैसे आनन्द रामायण की कैकेई के पायस हरण की कथा, परन्तु इसमें भी अंजना को हनुमान की माता माना गया तथा पवन को इनके जन्म में सहायक जो रूप वाल्मीकि में मिलता है। अंजना का नाम णिलई प्राकृत में मिलता है जो कदाचित् इसके अनार्य होने का द्योतक है। इस कारण उसे बदल कर अंजना कर दिया गया है।

हनुमान के विषय में जो संस्कृत वाङ्मय में सामग्री प्राप्त है उसको देखते हुए आर० सी० मजूमदार का मत है कि अर्ध कपि और अर्ध मनुष्य रूपी हनुमान में देवत्व का प्रतिपादन विशेष रूप से मध्ययुगीन हिंदू धर्म में जब भक्ति मार्ग का प्रचार हुआ तब किया गया[1]। परन्तु इस प्रकार के अर्ध पशु और अर्ध मनुष्य रूपी देवताओं का जो प्रकृति और पुरुष के संयुक्त शक्ति के द्योतक थे, प्रचार मिश्र में सर्वाधिक दिखाई देता है। सम्भव है कि भारत में भी आदिवासी ऐसे देवताओं की पूजा करते रहे हों क्योंकि इनको विघ्ननाशक, संकटमोचन, कीट इत्यादि को नाश करनेवाला, खेती का सहायक देवता भी माना जाता रहा।[2] दिनेशचन्द्र सेन का मत है कि वाल्मीकि रामायण दो कथाओं का सम्मिश्रण है एक वह जो दक्षिण में प्रचलित थी जिसमें राक्षसों और वानरों का प्राधान्य था तथा जिसका रावण नायक था और दूसरी वह जो उत्तर भारत में गायी जाती थी जिसमें क्षत्रियों की प्रधानता थी और जिसके नायक राम थे।[3] इन दोनों कथाओं को चारणों ने सीता हरण के प्रसंग की कल्पना करके जोड़ दिया। इन्हीं कथाओं को जोड़ने पर सम्भव है कि इन्हें ऐसे एक पात्र

---

१. आर० सी० मजूमदर—दी वैदिक एज०, पृ० १६३।

२. हरमन जकोबी—डस रामायण, अनुवादक एस० एन० घोषाल—ओरियण्डल इन्स्टिट्यूट–बड़ौदा, १९६०, पृ० ९९।

३. दिनेशचन्द्र सेन दी बंगाली रामायण युनिर्वसिटी आफ कलकत्ता, १९२०, पृ० ३५-३६।

की आवश्यकता हुई हो जो आश्चर्यजनक कार्य कर सकें। हो सकता है कि किसी यक्ष की जिसका वानर स्वरूप रहा हो भारत के आदिवासी पूजा करते रहे हों। इस यक्ष की कथा उनमें सम्भवतः प्रचलित रही हो उसे चारणों ने अपना लिया हो। बहुत सी जातियां भारत में अपने को वानर वंशज मानती भी हैं जैसे तिब्बती[1] कपिपूजा बहुत सी प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित थी जैसा पहिले लिखा जा चुका है। सम्भव है कि हनुमान के प्रति जनप्रिय श्रद्धा को देख कर इनको अपनाया गया हो क्योंकि पीछे ये वैष्णवों शैवों और शाक्तों और बौद्धों के भी देवता बन गये।[2] लूडर्स का मत है कि "वायुपुत्र शब्द ही विद्याधर या जादूगर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[3]। महाभारत में "वातिक" शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा सुभग्ग जातक में एक विद्याधर की कथा प्राप्त होती है जिसे वायुपुत्र कहा गया है सम्भव है इनके आश्चर्यजनक कार्यों को देखकर इनका नाम वायुपुत्र दिया गया हो"। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे यक्ष देव श्रेणी में होने के कारण स्वयम्भू समझे जाते थे वैसे ही हनुमान भी एक यक्ष थे इस कारण इनको भी वायुपुत्र अर्थात् अज्ञात पिता से उत्पन्न माना गया हो। हनुमान का उत्पन्न होते ही सूर्य की ओर कूद जाना, समुद्र लंघन, लंका का अकेले भस्म करना एक रात में हिमालय से लंका के मैदान में औषधि लाना सब आश्चर्यजनक घटनायें यक्षों की कथाओं के भांति ही हैं। इनकी रामभक्ति, ब्रह्मचर्य की कथा इत्यादि परवर्ती कल्पना है। प्रभञ्जन यक्ष का नाम महामायूरी में दो स्थानों पर मिलता है[4]।

प्रमर्दनश्च गान्धारे तक्षशिल्यां प्रभञ्जनः।
प्रभञ्जनश्च दरदे पिंगलोऽम्बुलये वसेत।

"प्रभञ्जन हनुमान के पिता का तथा इनका भी नाम वाल्मीकि में मिलता है इससे भी संकेत मिलता है कि हनुमान यक्ष थे। (युद्ध ५७-२२) इस प्रकार हो सकता है कि ये कोई यक्ष रहे हों" जिन्हें वाल्मीकि ने अपनी कथा में उसे मनोहर करने को स्थान दिया हो!

---

[1] उपर्युक्त, पृ० ४३।

[2] उपर्युक्त, पृ० ४६।

[3] बागची, पी० सी०—साइनो इण्डियन स्टडीज ख ३ कलकत्ता अप्रैल १९४७, जुलाई १९४७ ख० १, २, पृ० २ , २९, श्लोक ३३ तथा ९२।

[4] किष्किन्धा काण्ड—६६-२६, गीता प्रेस, युद्धकाण्ड ५७-२२ रामस्वामी।

भाषा साहित्य में हनुमान

बंगाली रामकथाओं में हनुमान तथा राम की भेंट का वृत्तान्त अधिक विस्तारपूर्वक रचा गया है। इसके अनुसार लक्ष्मण शिव की वाटिका में फल तोड़ने जाते हैं। वहाँ हनुमान द्वारपाल के रूप में मिलते हैं तथा लक्ष्मण से युद्ध करके उनको हरा देते हैं। लक्ष्मण को लौटने में विलम्ब होने पर राम वहां स्वयं पहुंच जाते हैं। इतने में शिव स्वयं पहुंच जाते हैं तथा इनसे राम का युद्ध होता है। अन्त में शिव राम को हनुमान को समर्पित करते हैं तथा हनुमान शिव की सेवा छोड़ कर रामभक्त हो जाते हैं।[1] ऐसा प्रतीत होता है कि बंगाली रामायण का स्रोत वाल्मीकि रामायण न होकर चारणों की कथा है।[2]

कंब रामायण में हनुमान चरित्र प्रायः वाल्मीकि रामायण की भांति ही है परन्तु कहीं कहीं कुछ कुछ अन्तर भी है जैसे कंब रामायण में हनुमान के कुण्डलों का वर्णन प्राप्त होता है (४, २, ३५) इस रामायण की कथा में यह भी वर्णन है कि राम तथा हनुमान की प्रथम भेंट के समय हनुमान अपने शरीर का विस्तार करके अपनी शक्ति का प्रमाण देते हैं (४, २, ३४)। यहां बाली का चरित्र हनुमान वर्णन करते हैं। बाली कहता है कि कोई महान् कार्य हो तो उसको करने के योग्य यह हनुमान है। इसके सदृश्य कोई सहायक नहीं है। इससे तुम सीता का अन्वेषण कराओ।[3] जब हनुमान सीता के अन्वेषण के हेतु चलते हैं तो राम अभिज्ञान के रूप में प्रथम अपने पूर्वानुराग का रहस्य प्रकट करते हैं 'जब मैं पहिले मिथिला में प्रवेश कर रहा था उस समय सीता ने मुझे अपनी खिड़की से देखा था और हम दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया था दूसरे वन जाने के समय सीता को मूर्च्छा आ गई थी तथा उन्हें बड़ा क्रोध हुआ था; तीसरे नगर से निकलने के पूर्व सीता ने प्रश्न किया था कि अरण्य

---

[1] दिनेशचन्द्र सेन—दी बंगाली रामायन्स, पृ० ४७।

[2] एस वैयापुरी पिल्लै—हिस्ट्री आफ तामिल लांगवेज एण्ड लिटरेचर (मद्रास १९५६), पृ० १२१।

[3] कंब रामायण—कंबन रचित श्री न० वी० राजगोपालन भाग १, पृ० ४४४।

कहां है।[1] 'जब हनुमान और वानर नेताओं के साथ सीता की खोज करने को गुफा में जाते हैं तो हनुमान के कहने पर उनकी पूँछ पकड़ कर दूसरे वानर गुफा में प्रवेश करते हैं।[2] यहां स्वयम्प्रभा अपनी कथा यों बताती है "ब्रह्मा ने यह नगर मय को प्रदान किया था मैं (स्वयम् प्रभा) हेमा अप्सरा को मय की पत्नी बनाकर यहाँ ले आयी थी। इन्द्र इस पर रुष्ट हुए और उन्होंने मय का बध कर दिया तथा मुझे (स्वयम्प्रभा) यहीं कैद कर दिया मेरे अनुनय विनय पर यह वर दिया कि राम के दूत जब सीता को खोजते हुए यहां पहुँचेंगे तब उसका भी छुटकारा हो जायगा। इसके पश्चात् इन्द्र हेमा को स्वर्ग ले गये।" हनुमान यह कथा सुन कर हाथ ऊपर करके अपना शरीर बढ़ाते हैं और गुफा में मार्ग हो जाता है तथा स्वयम्प्रभा स्वर्ग चली जाती है। इस नगर को हनुमान उखाड़ कर समुद्र में फेंक देते हैं।[3] इसके पश्चात् हनुमान के नेतृत्व में वानर लोग बहुत सी घाटियों में से होते हुए और नदियों को पार करते हुए महेन्द्र पर्वत के ऊपर जा पहुँचते हैं।[4]

कंब रामायण के अनुसार सूर्य सम्पाति को यह वर देते हैं कि "जब वानर जनक-नन्दिनी को खोजते हुए आवेंगे और राम नाम का उच्चारण करेंगे तब तुम्हारे पंख पुनः निकल आयेंगे" (४-१५) यह घटना उस समय घटती है जब हनुमान सहित वानर समुद्र के पास पहुँचते हैं। समुद्र लंघन के समय का स्वरूप हनुमान का यहाँ यों वर्णित किया गया है "पूँछ ऊपर उठी हुई है वक्ष संकुचित है कंधे ऊपर उठे हुए हैं बाहु आगे फैले हुये हैं ग्रीवा आगे की ओर झुकी हुई है[5]।" यह शरीर का स्वरूप प्रायः वैसा ही हुआ जैसे आजकल लोग तैरने के पूर्व कूदने के लिए बनाते हैं। समुद्र लंघन के समय में मैनाक, सुरसा तथा सिंहिका के स्थान

---

[1] यह वाक्य अरण्य कहां है तुलसीकृत कवितावली के उस कवित्त का स्मरण दिलाता है जिसमें तुलसी कहते हैं—

पुरतें निकसी रघुवीर वधू धर धीर दिये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सुखि गये अधराधर वै।।
फिरि बूझति है चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अंखिया अति चारु चलीं जल च्वै।।

[2] वही, पृष्ठ ४७२।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२४।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२९-५३४।

[5] उपर्युक्त पृष्ठ २, भाग २।

पर अंगारता की कथायें भी यहां प्राप्त होती हैं। समुद्र पार करके हनुमान लंका में प्रवेश करते समय लंका नाम्म की राक्षसी को परास्त करते हैं फिर सीता का पता लगाते हैं। त्रिजटा को यहां विभीषण की पुत्री माना गया है(५-६)। हनुमान को राम के हेतु सीता अभिज्ञान के रूप में चूड़ामणि देती है, काक का वृत्तान्त सुनाती है तथा यह भी कहती है कि एक बार मैंने राम से पूछा था कि मैं अपनी शुकी का क्या नाम रखूं तो उन्होंने कहा था कि 'मेरी मां दोषहीन कैकेयी का नाम रखो[1]।' यहां इसके पश्चात् अशोक वन का नाश तथा लंका दहन की कथा मिलती है। इसमें हनुमान जब अशोक वन में पहुँचते हैं तो सीता को फाँसी लगाने को उद्यत पाते हैं।

हनुमान यहां इस रामायण में राम के और मंत्रियों के मना करने पर भी विभीषण को शरण में लेने के हेतु विविध तर्क देते हैं[2]—

१. यह छली नहीं है क्योंकि इसके मुख पर कपट का कोई चिन्ह नहीं है।

२. यह राज्य पाने की इच्छा से यहां आया है क्योंकि यह जानता है कि राक्षसों का राज्य उत्तम धर्म के अनुसार नहीं चल रहा है वह नष्ट होने वाला है।

३. बाली की मृत्यु से यह आपका पराक्रम जान गया है।

४. राक्षस बड़े मायावी हैं एक राक्षस अपने पास भी आ जायगा तो अच्छा होगा।

५. जब रावण ने मुझे मार डालने की आज्ञा दी थी तब इसने कहा था कि दूत का मारना अधर्म है।

६. इसके घर में मैं जब गया था तो कोई मद्यपान या मांसाहार इत्यादि के लक्षण नहीं दिखाई दिये।

७. इसकी पुत्री त्रिजटा ने सीता से यह बताया था कि ब्रह्मा के शाप के कारण रावण तुम्हें स्पर्श करने में असमर्थ है।

८. यह आपत्ति में पड़ा है और अभयदान मांग रहा है।

९. यदि यह मान कर कि शत्रु पक्ष के लोग मित्र बनाने के योग्य नहीं हैं हम इसे छोड़ दें तो हम उपहास के पात्र बनेंगे।

युद्ध के समय यहाँ हनुमान लक्ष्मण को अपने कंधे पर बैठा कर कुम्भकरण

---

[1] उपर्युक्त, भाग २, पृष्ठ ८८-८९।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ १०-११।

के सामने जाते हैं[1]। इसी लड़ाई में सुग्रीव पर कुम्भकरण द्वारा फेंके हुए को ये तोड़ कर फेंक देते हैं[2]।

यहां नागपाश में इन्द्रजीत द्वारा लक्ष्मण तथा हनुमान बंध जाते हैं गरुड़ द्वारा उनकी मुक्ति होती है। इस युद्ध में विशल्या नाम की औषधि हनुमान नहीं जाते।[3] दूसरी बार ब्रह्मास्त्र से सबके मूर्छित होने पर जाम्ब हनुमान को संजीवनी औषधि लेने को भेजते हैं।[4] हनुमान औषधियों को सहित लेकर आते हैं[5]। सबके स्वस्थ हो जाने पर उस पर्वत को पुनः यथास् रख आते हैं[6]। यहां इन्द्रजीत माया सीता का सिर हनुमान के सामने का है और अयोध्या पर आक्रमण करने की बात करके यज्ञ पूर्ण करने को जाता हनुमान यह समाचार आकर राम को सुनाते हैं और इनको अयोध्या ले जाने उद्यत भी होते हैं परन्तु विभीषण के समझाने पर रुक जाते हैं। यहां विभी यह पता लगाने जाते हैं कि सीता जीवित हैं अथवा नहीं और वहीं इन्हें यह लगता है कि इन्द्रजीत निकुम्भला में यज्ञ कर रहा है[7]। दूसरी बार हनुमान रा के शूल से आहत लक्ष्मण को पुनर्जीवित करने के हेतु औषधी लेने उसी प पर जाते हैं जिस पर पूर्व में गये थे और औषधि पहचान कर ले आते हैं। इ लगाते ही लक्ष्मण उठ बैठते हैं और हनुमान का आलिंगन करते हैं। राम हनुमान को चिरंजीवी होने का वरदान भी देते हैं[8]। यहां रावण बध के पश् राम के न आने पर भरत चिता में प्रवेश करके अपने प्राण देने को तत्पर जब हनुमान अयोध्या पहुँचते हैं ये उनको रोकते हैं तथा राम की दी हुई अं भी देते हैं[10]।

---

[1] उपर्युक्त, भाग २, पृष्ठ ३१५।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ ३१८।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ३८४-३८६।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ४३५-४४०।

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ ४४४-४४५।

[6] उपर्युक्त, पृष्ठ ४५०-४५१-४५२।

[7] उपर्युक्त, पृष्ठ ४५६।

[8] उपर्युक्त, पृष्ठ ४५७।

[9] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२३।

[10] उपर्युक्त, पृष्ठ ५८५।

राजा, कोन बुद्धा राजू कृत तेलुगु रामायण है जिसे रंगनाथ रामायण कहा जाता है और जो प्रायः १३वीं शताब्दी का ग्रंथ है।[1] इसका आधार वाल्मीकि रामायण है परन्तु इसके कथानक में स्थान स्थान पर वाल्मीकि रामायण से भिन्नता दिखाई देती है। यहां सुग्रीव की शंका पर हनुमान कहते हैं कि ये (राम लक्ष्मण) कोई पुण्यात्मा हैं ये कपट वेषधारी नहीं। हनूमान सुग्रीव के आदेश पर राम के पास जाकर उनके वहां पधारने का उद्देश्य जानने का प्रयत्न करते हैं[2]। वटु का रूप धारण करके राम के समीप जाकर वे उनसे प्रश्न करते हैं। यहां भी हनूमान को व्याकरण, निगम, शास्त्रादि का ज्ञाता बताया गया है।[3] यहां यह कथा मिलती है कि हनुमान ने एक समय तपस्या की और जब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उनको दर्शन दिया तो उन्होंने उनसे पूछा कि मेरे मोक्ष तथा इच्छित कार्यों की सिद्धि का आधार तथा आराध्य कौन है। तब ब्रह्मा ने बताया था कि जो उनके शरीर के आभूषणों को देख सकेगा वही उनका स्वामी और प्रभु होगा। इसके पश्चात् हनुमान से लक्ष्मण कहते हैं कहा कि 'राम की इच्छा है कि सुग्रीव को अपना मित्र बनायें। पवनकुमार सुग्रीव से जाकर सब समाचार निवेदन करते हैं। उनसे आज्ञा पाकर वे पुनः राम और लक्ष्मण के पास आते हैं और उनको अपने कंधों पर बैठा कर ऋष्यमूक पर्वत पर ले जाते हैं। तब सुग्रीव मनुष्य रूप धारण करके उनसे मिलने जाते हैं तथा अग्नि को साक्षी देकर इनकी मैत्री होती है। अंगद जो वहीं क्रीड़ा कर रहा है इनकी बातों को सुनकर अपनी माता तारा से सब बातें बता देता है। सुग्रीव तथा बाली के युद्ध के पश्चात् बाली के मारे जाने पर हनुमान तारा को समझाते हुए कहते हैं क्योंकि ऐसी कोई धर्मनीति है जिसे तुम नहीं जानती। यह सब कार्य भगवान की इच्छा से होते हैं। इसमें बाली सुग्रीव को उपदेश करता है तथा उसे अपनी माला देता है और अंगद के संरक्षण का भार भी। वर्षा के बीतने पर हनुमान ही सुग्रीव को उसके कर्त्तव्य का स्मरण दिलाते हैं। हनुमान, सुशीर, नील, अंगद, जाम्बवान, गज, गंधमादन, गवाक्ष, विजय, मैक द्विवीघ तथा तार के साथ सीता को खोजने को दक्षिण जाते हैं, राम उन्हें अंगूठी

---

१. कोन बुद्धा राजू रचित मूल तिलुगु रामायण—रंगनाथ रामायण—अनु० ए० सी० कामाक्षि राव, सं० अवध नन्दन—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६१ परिचय पृष्ठ २ , सन् १३८०।

२. उपर्युक्त, पृष्ठ १७५।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ १७६।

देते हैं। मार्ग में स्वयम्प्रभा के आश्रम में ये वानर पहुँचते हैं तब हनुमान के पर वह अपना सारा वृत्तान्त बताती है" तथा उन्हें समुद्र के पास पहुँचा दे वहाँ पहुँच कर सम्पाती के बताने पर जब सब वानर समुद्र पार करने में अ असमर्थ बताने लगते हैं तो जाम्बवन्त हनुमान से पूछते हैं कि 'हे पवनसुत यह तक उचित है कि अपना काम हम पर छोड़ कर तुम चुपचाप बैठे रहो।' पवनसुत के उत्पत्ति की कथा यों मिलती है। यह कथा वाल्मीकि की कथा के नि सदृश्य ही है। पुंजिकस्थली नाम की अप्सरा का अग्नि के शाप से अंजना के रू जन्म, केसरी नाम के वानर की पत्नि बनना तथा पवन द्वारा गर्भाधान। प्रकार जाम्बवान सिद्ध कर देते हैं कि उनका भी बल पवन के समान ही है " भी आयुध से तुम्हारी मृत्यु नहीं हो सकती अतः तुम ही समुद्र पार करो तथा का दर्शन करो और सब कपियों के प्राणों की रक्षा करो।" तब हनुमान क कि "मैं समस्त लोको के हितार्थ समुद्र पार करूँगा, भले ही देवता भी मुझे मैं उन्हें भी जीत लूँगा। भूमिसुता को देख कर ही वापस आऊँगा।" इतना कर हनुमान महेन्द्र गिरि पर चढ़ जाते हैं और त्रिविक्रम विष्णु के सदृश्य बहुत शरीर धारण करते हैं। अंगद आदि वानरों से अनुमति लेकर अपने पिता देवता का स्मरण कर के राम के चरणकमलों को हृदय में धारण कर के आ की ओर उसी प्रकार उछलते हैं जैसे गरुड़ अमृत पाने के हेतु उछले थे। समु हनुमान को इस प्रकार जाते हुए देख कर समुद्र मैनाक को उनके आथित्य सत् हेतु प्रेरित करता है। इसे देख कर राक्षसों की माया समझ कर हनुमान उसे छाती से धक्का देते हैं। जिससे वह छिन्न-भिन्न होने लगता है तब मनुष्य का धारणकर के वह हनुमान से निवेदन करता है कि उसे समुद्र ने उनके आथित्य स के हेतु आज्ञा दी है। तब हनुमान कहते हैं कि "मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं समुद्र के में नहीं ठहरूँगा।" यह कह कर वे उसे स्पर्श कर के कहते हैं कि "अब तुम्हारी फलवती हुई अब तुम जाओ।" तब गंधर्व, अमर, तथा मुनिगण हनुमान परीक्षा लेने के हेतु सुरसा नाम की नागमाता को भेजते हैं। वह आ कर कहती है "तुम्हारा मैं भोजन करूँगी।" हनुमान कहते हैं कि "मैं राम कार्य कर के समय तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।" जब वह जाने नहीं देती और अपना बड़ा करती है तो हनुमान अपना रूप अंगुष्ठ प्रमाण कर के उसके मुख में प्रवेश के बाहर निकल आते हैं। तब सुरसा ने उन्हें आशिर्वाद देती है कि "शीघ्र तुम्हारा कार्य सिद्ध हो'।" इसी प्रकार छायाग्राहिणी नाम की राक्षसी को

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ २०७।

कर ये आगे बढ़ते हैं।[1] समुद्र पार कर के ये लंका के पास के सुवेल पर्वत पर चढ़ते हैं और वहीं से लंका को देखते हैं। यहाँ उस नगरी की सुन्दरता का वर्णन प्राप्त होता है। हनुमान लंका के सुदृढ़ गढ़ को देख कर सोचने लगते हैं कि वानर इसे कैसे जीतेंगे, कैसे समुद्र पार करेंगे इत्यादि। फिर ये बिल्ली के समान सूक्ष्म रूप धारण करते हैं।[2] ज्योंही ये लंका में प्रवेश करने लगते हैं भयंकर आकार वाली राक्षसी के रूप में इनका मार्ग रोक कर खड़ी हो जाती है और पूछती है कि "तुम कौन हो, तुम इस नगर में क्यों प्रवेश कर रहे हो, किसने तुम्हें भेजा है।" इत्यादि इस पर हनुमान वही प्रश्न दोहराते हैं। इस पर वह कहती है क "मैं दशकंधर की आज्ञा से बड़े प्रयत्न से इस नगर की रक्षा करती रहती हूँ। मेरा नाम लंकिणी है।" तब हनुमान कहते हैं कि "मैं इस नगर को देखने की इच्छा से आया हूँ मुझे जाने दो।" तब तो वह राक्षसी बिगड़ जाती है और हनुमान के वक्षस्थल पर एक घूंसा मारती है। हनुमान यह विचार कर के स्त्री वध करना पाप है उसे ऐसा घूंसा जमाते हैं कि वह सारी शक्ति खो कर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। धीरे-धीरे उठ कर वह हनुमान से कहती है कि "हे कपिकुलोत्तम मुझ पर कृपा करो जिस दिन इस नगर का निर्माण हुआ था ब्रह्मा ने मुझसे कहा था कि अब तुम्हें वानर दुःख पहुँचायेगा तब राक्षसों का नाश होगा।" इस प्रकार कहती हुई वह स्त्री चली जाती है। तब हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं। सीता को खोजते हुए वे एक-एक कर के राक्षसों के सभी घरों में घूमते हैं फिर वे रावण के अन्तःपुर में जाते हैं जब वहाँ भी सीता नहीं मिलतीं तो वे रावण के उद्यान में जाते हैं। वहाँ के एक भवन पर चढ़ कर वे अशोक वन के एक प्रांतर भाग में अशोक वृक्ष के निकट सीता को देखते हैं। इसी समय रावण वहाँ आता है और उससे जो सीता की वार्ता होती है उससे हनुमान को निश्चय हो जाता है कि ये ही सीता हैं। हनुमान एक बार सोचते हैं कि रावण को मार ही डालें परन्तु यह विचार कर के कि इससे उनके प्रभु के हित की हानि हो सकती है वे बैठ जाते हैं। मंदोदरी रावण को समझाती है इस पर वह राक्षसियों को सीता को सताने का आदेश देकर अंतःपुर में चला जाता है। जब राक्षसियाँ सीता को सताने लगती हैं तब त्रिजटा अपना स्वप्न उनको सुनाती है। हनुमान सीता के दुःख को शांत करने हेतु राम का संवाद सुनाते हैं। जब सीता को उन पर विश्वास नहीं होता तो वे पेड़ पर से उतर आते हैं और सीता को अंगूठी देकर कहते हैं कि "आपको मुझ पर विश्वास हो जाय इस उद्देश्य से राम ने यह अंगूठी देकर मुझे भेजा

---

[1] यहाँ इस रामायण का किष्किन्धा काण्ड समाप्त होता है।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २१७।

हैं।" सीता के पूछने पर वे अपनी जन्मकथा प्रारम्भ कर के सब हाल बताते सीता उन्हें कल्पान्त तक जीवित रहने का आशिर्वाद देती हैं। हनुमान उन्हें आश्वासन देते हैं और कहते हैं कि "चलिए स्वयं आपको अपनी पीठ पर ले क यत्न से समुद्र को लांघ कर प्रातःकाल होते-होते प्रभु के पास पहुँचा दूं।" इ सीता जी कहती हैं कि "परपुरुष का स्पर्श करना पाप है।" वायुसुत को वे की कथा सुनाती हैं। फिर उन्हें राम के हेतु संदेश देती हैं। इसके पश्चात् ह सीता के कहने पर अपना वास्तविक रूप दिखाते हैं। सीता से चूड़ामणि कर के वे वहाँ से चल देते हैं। रावण को अपने आगमन का समाचार देने के हे अशोक वन का नाश कर देते हैं और वहाँ की अट्टालिकाओं को गिरा देते हैं। राक्षस रक्षक उन पर झपटते हैं तो उनको एक-एक कर के मार डालते हैं। की रक्षा के हेतु जो राक्षसियाँ नियुक्त हैं वे जा कर रावण से निवेदन करती "एक वानर आया है उसने अशोक वाटिका को उजाड़ दिया, वह राम का ज्ञात होता है।" इस पर रावण अपने अस्सी हजार राक्षसों को अशोक भेजता है। इन सब को हनुमान मार डालते हैं, पुनः रावण दूसरी सेना भेज उनकी भी वही गति होती है जो जंबुमाली इत्यादि की हुई थी। राक्षसों को के पश्चात् अन्त में अक्षयकुमार से युद्ध कर के उसे भी मार डालते हैं। यहां इन्हें का अंश भी कहा है।[2] मेघनाद उन्हें ब्रह्मास्त्र से बांध लेता है। इसके प वह उन्हें रावण के सम्मुख उपस्थित करता है। रावण के पूछने पर ह कहते हैं कि "मैं राम का दूत हूँ" और अपने आने का सारा वृत्तान्त उसे हैं और यह भी सलाह देते हैं कि उसे सीता राम को दे देना चाहिए। इ रावण आज्ञा देता कि हनुमान को मार डाला जाय। विभीषण के यह कहने कि दूत अवश्य होता है रावण यह आज्ञा देता है कि उसकी पूंछ लोगों के समक्ष जला दी जाय और नगर मार्ग में घुमा कर छोड़ दिया राक्षस इस आज्ञा का अक्षरशः पालन करते हैं और उनकी पूंछ तेल में कर कपड़ा लपेट कर उसमें आग लगा देते हैं। राक्षस स्त्रियाँ यह दे सब हाल जान कर सीता से निवेदन करती हैं। सीता जल ले कर अ प्रार्थना करती हैं कि वे हनुमान के लिए शीतल हो जायँ। इधर हनुमान ब्रह्म का जप कर के अपने को ब्रह्मास्त्र से छुड़ा लेते हैं तथा कूद कर एक ऊँचे मह चढ़ जाते हैं और सब ओर अग्नि लगा देते हैं। इससे सारा नगर अग्निमय हो जा

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २१५-२१९।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २३७।

इस पर उन्हें संदेह होने लगता है कि कहीं सीता भी तो नहीं जल गयी, इस कारण वे पुनः अपनी पूँछ समुद्र में बुझा कर के सीता के पास पहुँच जाते हैं। उनसे मिल कर वे लंका के पश्चिम द्वार पर आते हैं और उसके किवाड़ों को अपने पदाघात से तोड़ डालते हैं तथा महलों को नष्ट कर के सुवेल पर्वत पर पुनः पहुँचते हैं। वहाँ से समुद्र लांघ कर के वे इस पार पहुँच जाते हैं तथा अंगद इत्यादि वानरों को सब अपना समाचार सुनाते हैं। मार्ग में मधुवन में उन लोगों के साथ मधुपान करते हैं तथा दधिमुख नामक राक्षक को मार कर भगा देते हैं। दधिमुख जाकर सब समाचार सुग्रीव को देता है। सुग्रीव क्रुद्ध होते हैं परन्तु लक्ष्मण उन्हें समझाते हैं कि कदाचित् वे वानर राम कार्य कर आये हैं। इस पर सुग्रीव दधिमुख को सान्त्वना देते हैं और उन वानरों को बुलाने को भेजते हैं। उनके पास आने पर वानर सेना द्वारा उनका स्वागत कराया जाता है।[1] राम के पास पहुँच कर हनुमान लंका का सब हाल उन्हें सुनाते हैं तथा उन्हें चूड़ामणि देते हैं। इस पर रामचन्द्र उस रत्न का इतिहास बताते हैं तथा उसकी कथा का स्मरण आने से विलाप करते हैं। पश्चात् हनूमान सीता का संवाद देते हैं "सूर्यवंश तिलक के वियोग में मैंने दस महीने असंख्य दुःखों को झेलते हुए बिताए हैं। दो महीने के पश्चात् रावण मुझे मारने का निश्चय कर चुका है। इस कारण तुम राम भूपाल से निवेदन करो कि अब मेरे प्राण नहीं बचेंगे।" इसके पश्चात् हनूमान सीता को बताई हुई जयन्त की कथा की पुनरावृत्ति करते हैं। युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में ही राम हनुमान की प्रशंसा करते हैं तथा आलिंगन करते हैं। राम के लंका के विषय में पूछने पर हनुमान वहाँ का सब विवरण देते हैं तथा राम को लंका चलने को उत्साहित करते हैं।

राम वानर सेना सहित समुद्र के किनारे डेरा डालते हैं।[2] रावण द्वारा निष्कासित होने पर विभीषण राम के पास आते हैं। हनूमान राम को विभीषण के गुण बताते हैं। जब समुद्र पर सेतु बँधने लगता तो नल वानरों द्वारा लाए हुए पर्वतों को एक हाथ से ले कर दूसरे हाथ से समुद्र में रखते जाते हैं इस पर हनुमान को बड़ा क्रोध होता है वे अपनी सारी शक्ति लगा कर एक सात योजन का पर्वत उठा लाते हैं। राम समझ लेते हैं कि हनुमान के क्रोध का कारण क्या है इस कारण नल से वे आज्ञा देते हैं कि वह उस पर्वत को दोनों हाथों से पकड़े[3]। इस पर वानरों हर्ष प्रकट करते हैं। सेतु बँध जाने पर राम और लक्ष्मण हनुमान तथा नील के कन्धों पर

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २४४।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २६१।

[3] यह कथा रामायण में नहीं मिलती।

बैठ कर सुवेलाद्रि पर्वत की ओर जाते हैं। सारण रावण को हनुमा परिचय देते हुए कहता है कि ये ही वायुपुत्र हनुमान हैं जो वाल्या में उदित होते हुए सूर्य को फल समझ कर तीन सहस्र योजन उड़े थे उदयगिरि पर गिरे थे जिससे उनकी हनु टूट गयी थी इसलिए इनका हनुमान पड़ा[1]।

सुवेल पर्वत की झाँकी का दृश्य भी यहां दिखाई देता है।[2] राम मायामृ चर्म पर बाम भुजाग्र को अपने कपोल का आधार बनाये हुए सुग्रीव की जंघा मस्तक टेके हुए पवन पुत्र के जंघों पर पैर पसार कर आराम कर रहे थे। नील उनके चारों ओर हैं, विभीषण कान के पास हैं। युद्ध में धूम्राक्ष को हनु मारते हैं।[3] इसके पश्चात् अकंपन युद्ध के हेतु आता है उसे भी हनूमान एक वृ मार डालते हैं। हनुमान रावण से युद्ध करते हैं परन्तु रावण के मुष्टि प्रहार मूर्छित हो जाते हैं।[4] लक्ष्मण रावण से युद्ध करते हैं परन्तु वे भी शक्ति ल मूर्छित हो जाते हैं। रावण उनको उठाने की चेष्टा करता है परन्तु वह विफल है तब हनुमान उनको उठा कर ले जाते हैं।[5] इसके पश्चात् राम रावण से हनु के कंधे पर चढ़ कर युद्ध करते हैं तथा उसको पराजित कर के लंका लौट जा विवश करते हैं।[6] फिर हनुमान त्रिशिरा को मारते हैं।[7] जब इन्द्रजीत ब्रह्म चला कर सब को मूर्छित कर देता है तब हनुमान को जाम्बवत चन्द्र शैल तथा शैल के बीच औषध के शैल से संजीवकरणी, विशल्यकरणी, संधानकरणी, सं कर्णी ये चार औषधियों को लाने को भेजते हैं। हनूमान उस पर्वत को ही उठा ले आते हैं। उन औषधियों से सब वानर जीवित हो जाते हैं। फिर रावण उपदेश मान कर हनुमान उस पर्वत को यथास्थान रख आते हैं।[8] हनूमान इ

---

[1] हनुमान का अर्थ हनु के सहित होगा न कि हनु रहित, इस कारण टीका ठीक नहीं लगती।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २९८।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ३१२-३१३।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ३२७-३२८।

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ ३ ०।

[6] उपर्युक्त, पृष्ठ ३३०-३३१।

[7] उपर्युक्त, पृष्ठ ५७।

[8] उपर्युक्त, पृष्ठ ३६६-३६७।

पश्चात् निकुंभ को मार डालते हैं। इन्द्रजीत को मारने के हेतु लक्ष्मण हनुमान के पीठ पर चढ़ कर निकुम्भला पहुँचते हैं जहाँ वह यज्ञ कर रहा था।[1]

यहाँ सुलोचना के पातिव्रत्य की कथा भी प्राप्त होती है।[2] दूसरी बार पुनः लक्ष्मण के हेतु जब वह रावण के शक्ति लगने से मूर्छित हो जाते हैं तो हनुमान विशल्या इत्यादि चारों औषधियाँ ले आते हैं, बीच में कालनेमि नाम के राक्षस का संहार करते हैं तथा मकरी को मारते हैं।[3] उनके लौटने पर राम उनका बड़ा स्वागत करते हैं।[4] रावण की मृत्यु के पश्चात् हनुमान सीता को राम के विजय का संवाद देते हैं।

इस रंगनाथ रामायण में रामेश्वर में राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना का भी पूरा विवरण प्राप्त होता है। इसके अनुसार रामचन्द्र जी लौट रहे हैं तो उनके समक्ष भयंकर रूप धारण किए हुए रावण उपस्थित होता है। इस स्वरूप को देख कर राम विभीषण से प्रश्न करते हैं तो वे कहते हैं कि "रावण ब्रह्मा की संतति में जन्म लेने के कारण ब्राह्मण था इस कारण आपको ब्रह्महत्या लगी है इसका आपको प्रायश्चित्त कर के आगे बढ़ना चाहिए। आप ब्रह्मा का स्मरण कीजिए वे आपको इसकी विधि बतलायेंगे।" ब्रह्मा आकर राम से कहते हैं कि "यह विश्रवसु का पुत्र मोक्षार्थ आपके पास आया है इसे सन्तुष्ट कीजिए तथा इस सेतु पर अपने नाम का शिवलिंग स्थापित कीजिए।" राम पवनसुत को लिंग लाने की आज्ञा देते हैं तथा कहते हैं कि "शुभ लग्न दो घड़ी तक ही शेष है।" हनूमान तुरन्त काशी जाते हैं और गंगा में स्नान कर के विश्वनाथ का दर्शन कर उनकी आज्ञा से एक शिवलिंग ले चलते हैं। इधर राम को अतिकाल होने लगता है तो वे बालू से एक शिवलिंग बनाते हैं तथा पार्वतीनाथ के सामने सीता जी बालू का एक नन्दी बनाती हैं। उस लिंग की राम जब पूजा कर रहे हैं उसी समय हनुमान जी वहाँ पहुँच जाते हैं। राम को बालू का शिवलिंग स्थापित कर के पूजा करते देख कर उनके मन में क्षोभ होता है। वे कहते हैं कि "आपकी आज्ञा से मैं काशी गया और वहाँ से शिवलिंग लाया, आपने एक दूसरे शिवलिंग की स्थापना कर दी। आपके मन में मेरे प्रति प्रेम नहीं रह गया है।" तब राम कहते हैं कि "तुम मेरे भाइयों में एक हो अतः तुम अब इस शिवलिंग को हटा कर अपने लाये हुए शिवलिंग को प्रतिष्ठित कर दो।" हनुमान ने उस शिव-

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ३८५।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ ३९५-३९९।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ३१५-३१६।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ४१५-४ ७।

लिंग को अपनी पूंछ में लपेट कर उठाना चाहा परन्तु वह नहीं हिलता। इस पर अ सारी शक्ति लगा कर उसे उखाड़ने का प्रयत्न करते हैं परन्तु वे रक्त वमन क हुए मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं इत्यादि।[1] विभीषण की प्रार्थना पर वे सेतु को देते हैं। जिसमें कोई उस मार्ग से पुनः लंका न जा सके।[2] यह प्रसंग वाल्मी रामायण में नहीं है।

भरत को अपने आगमन की सूचना देने के हेतु हनुमान को नन्दीग्राम भे जाता है। मार्ग में शृंगवेरपुर में वे गुह को राम के आगमन का संदेश दे कर राम वियोग में उसे अग्नि प्रवेश करने से रोकते हैं। इसी प्रकार भरत भी निराश हो जब चिता में प्रवेश करने का उपक्रम कर रहे हैं उसी समय हनुमान पहुँच कर उन राम के आगमन का समाचार सुनाते हैं और कहते हैं कि "वे जानकी के साथ में ठहरे हुए हैं, आपका समाचार लेने को उन्होंने भेजा है।" भरत को इस विश्वास नहीं होता तो पवनसुत राम के वनवास का पूरा विवरण देते हैं। हनुमान को गजमुक्ताओं और मणियों की माला देते हैं। कनकांवर श्रेष्ठ आ असंख्य धन और नगर भेंट करते हैं।[3] फिर हनुमान गुह को लिवा लाते हैं वह को भेंट अर्पित करता है। जब राम राज्य प्रासाद में पहुँचते हैं तो वे अपने साथियों को भोजन कराते हैं। इसी समय जब वे स्वयं भोजन का एक ग्रास चुकते हैं तो हनुमान उनकी थाली ले जाते हैं और उसमें से प्रसाद रूप सब वानरों भोजन वितरण करते हैं जिसे सब अगस्त के पत्ते पर लेते हैं। रामचन्द्र हनुमान भक्ति से बहुत ही संतुष्ट होते हैं। इस रामायण की गोन वुद्ध ने जो विट्ठल के पुत्र थे रचना की है।[4]

कृत्तिवास की रामायण में तुलसीकृत रामचरित मानस की भाँति राम लक्ष्मण देख कर सुग्रीव का भय तथा हनुमान के प्रयत्न से उसकी राम से मैत्री का वर्णन है।[5] कृत्तिवास ने हनुमान के जन्म कथा का पूरा वर्णन दिया है। रामचरित की भाँति उसे एकदम उड़ा नहीं दिया है यहाँ हनुमान पवन के अवतार हैं। वाल्

---

[1] यह प्रसंग स्कन्द पुराण में इसी प्रकार दिया हुआ है जिसका वि पहिले दिया जा चुका है।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ ४६३-४६६।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ४६८-४७०।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ४७६।

[5] कृत्तिवासी रामायण—रामानन्द चट्टोपाध्याय, प्रवासी प्रेस, संस्करण, १३५२ बंगाब्द, किष्किन्धा काण्ड, पृष्ठ २१४-२१५।

रामायण की भाँति अंजना तथा पवन के आलिंगन से उत्पन्न नहीं। केसरी नामक इनके पिता प्रभास तीर्थ में ऋषियों को त्रास देने वाले धवल हाथी का संहार कर के उनसे एक वली पुत्र प्राप्त करने का वरदान पाते हैं। जन्म के उपरान्त हनुमान सूर्य को पका फल समझ कर खाने के हेतु दौड़ पड़ते हैं। उसी समय राहू ग्रास की तिथि होने के कारण सूर्य की ओर जाता है परन्तु अपने स्थान पर एक दूसरे व्यक्ति को देख कर इन्द्र के पास दौड़ जाता है। इन्द्र अपने ऐरावत पर चढ़ कर उस स्थान पर पहुँचते हैं। हनुमान ऐरावत को बड़ा फल समझ कर सूर्य को छोड़ कर इधर ही दौड़ पड़ते हैं। इस पर इन्द्र उन पर वज्र प्रहार करते हैं जिससे वे मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं। पवन इनका संरक्षण करते हैं तथा अपना बहना बन्द कर देते हैं जिससे त्रस्त होकर सभी देवता ब्रह्मा के नेतृत्व में आकर हनुमान को वर देते हैं। परन्तु इनको अपने वल का स्मरण इस कारण नहीं रहता क्योंकि ये वाल्यावस्था में देवताओं द्वारा अमोघ वरदान प्राप्त कर के मुनियों के आश्रम में जाकर उनको त्रस्त करने लगते हैं, तव इनको मुनि लोग शाप दे देते हैं कि जब तक तुम्हें कोई तुम्हारे बल का स्मरण न करायेगा तव तक तुम्हें अपने वल का स्मरण नहीं आयेगा। इसी कारण जाम्ववान इनको वल का स्मरण दिलाते हैं। मानस में इस कथा का संकेत मात्र है जाम्ववान कहते हैं—पवन तनय वल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना ...इत्यादि जिसे सुन कर ही उन्हें अपने वल का स्मरण हो आता है। "सुनतहि भयउ पर्वताकारा।"

हनुमान के सुग्रीव की मैत्री होने तक तथा उसका मंत्री होने तक के जीवन की और कोई कथा वाल्मीकि रामायण की भाँति कृत्तिवासीय रामायण में भी नहीं प्राप्त होती है। ब्रह्म पुराण की उस कथा को छोड़ कर जिसमें ये अपनी विमाता को गोदावरी के संगम पर स्नान कराते हैं और इनके जीवन के इस काल के विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। राम की सुग्रीव से मैत्री कराने के पश्चात् ये राम के दूत के रूप में राम की अंगूठी लेकर लंका की ओर प्रस्थान करते हैं।[1] मार्ग में उन्हें एक गुफा में वाल्मीकि की स्वयंप्रभा के स्थान पर यहाँ सजी-धजी युवती दिखायी देती है।[2] यह यहाँ मानस की भाँति राम के पास नहीं जाती। यहाँ भी सम्पाती अपने

---

१. वाल्मीकि रामायण में—स्वनामांकीय शोभितं अंगुलीयम् (किष्किन्धा ४४, १२) देते हैं।

२. रामनाथ त्रिपाठी—कृतवासी बंगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन—चन्द्रप्रकाश शर्मा, आदर्श प्रेस, अलीगढ़ १९६३, पृष्ठ १९२।

सूर्य तक उड़ने की कथा कहते हैं तथा हनुमान सम्पाती को पूर्ण रामकथा
हैं। यहीं इसी प्रसंग में हनुमान वाल्मीकि की भी कथा सम्पाती को सुना
'वाल्मीकि छिलेन पूर्व्वे व्याध अवतार।"[1] राम कथा को सुनकर संपाती के
पंख उग आते हैं। "सातकाण्ड रामायण हनुमान कय। सम्पाति पक्षीर
हइल उदय।"[2] यहाँ और एक कथा मिलती है कि सम्पाती का पुत्र सुपार्श्व
को पीठ पर चढ़ा कर समुद्र पार ले जाने का प्रस्ताव रखता है परन्तु उसे
स्वीकार नहीं करते। यह कथाप्रसंग वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय संस्करण के
पर वर्णित ज्ञात होता है।[3] कृत्तिवासी रामायण में जाम्बवान का हनुमान
प्रोत्साहित करने का प्रसंग सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में आता है, यहीं जाम्ब
हनुमान के जन्म की कथा भी वर्णन करते हैं।

समुद्र पार जाने में जो बाधायें आती हैं उनमें मैनाक, सुरसा और सि
की कथायें यहाँ भी मानस के सदृश ही प्राप्त होती हैं परन्तु इनका यहाँ
विस्तार है। यहाँ मैनाक और इन्द्र के संघर्ष का भी वर्णन है। यहाँ भी हनु
मैनाक पर विश्राम नहीं करते। लंका पहुँचने पर हनुमान की भेंट राक्षसी लंका
से न होकर[4] उग्र चंडा अथवा चामुंडा से होती है जो बड़ा भयंकर रूप धारण
हुए हनुमान के समक्ष प्रकट होती हैं। यहाँ ये खर्पर, खड्ग तथा मुंडमाला धारण
हुए दिखाई गयी हैं। वे शिव जी की प्रिया कही गयी हैं। जब हनुमान उनसे
हैं कि "माता आप यहाँ क्यों हैं" तो वे उत्तर देती हैं कि "जब ब्रह्मा ने स्वर्ण लं
सृजन किया था तभी से मैं इसकी रक्षा करती हूँ। जब तक राम का अ
नहीं होता और वानर उनका दूत बन कर नहीं आता तब तक शंकर जी ने
निवास करने के लिए कहा है।" हनुमान जब अपना परिचय देते हैं तब व
हँसती हुई कैलास चली जाती हैं।[5] इसी कथा के आधार पर चित्र भी न
(फलक ४६) लंका रूपी राक्षसी का चामुण्डा के रूप में परिवर्तन कदाचित्
प्रभाव से हुआ है।[6] सीता को हनुमान स्वयं ढूँढ़ लेते हैं जैसा वाल्मीकि में व

---

१. कृत्तिवास रामायण—किष्किन्धा, पृष्ठ २०७।

२. उपर्युक्त, किष्किन्धा, पृष्ठ २०९।

३. वाल्मीकि रामायण—गौड़ीय पाठ ४, ६३, १६।

४. अध्यात्म रामायण में स्पष्ट कहा है—लंकापुरी साक्षाद्राक्षसी वेष
५, १, ४३।

५. कृत्तिवासीय रामायण—चामुण्डा प्रसंग, सुन्दर काण्ड पृष्ठ २२२

६. बृहद्धर्मपुराण (बंगीय) पूर्व खण्ड—अध्याय २०।

यहाँ ये विभीषण के घर में रुकते नहीं, किसी से मिलते भी नहीं। अशोक वन में रावण सीता को मारने दौड़ता है। फिर सीता को देख कर अचेत हो जाता है और खाँड़ा फेंक कर वलात्कार करने की इच्छा से उनकी ओर दौड़ता है तो मंदोदरी उसे पकड़ कर नल कूवर के शाप की वात याद दिलाती है तथा कहती है कि नारी स्पर्श से ही प्राण निकल जायंगे। "रावण सीतारे देखि मोहे अचेतन। खाण्डा फेलि जायवले धरिते तखन।"[1] रावण सीता को इस रामायण में दो मास की अवधि देता है। "दुइ मासे रावण दियाछे प्राणदान।"[2] हनुमान यह सब वार्ता छिप कर सुनते हैं। रावण के जाने के पश्चात् वे स्वयं प्रकट होकर सीता को अंगूठी देते हैं। मानस की भाँति पेड़ के ऊपर से अंगूठी डाल नहीं देते। कृत्तिवासीय रामायण में भी हनुमान सीता को अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाना चाहते हैं और उन्हें आश्वासित करने के हेतु अपना विराट रूप धारण करते हैं। यहाँ हनुमान के प्रस्ताव को अस्वीकार करने के तीन कारण वताये गए हैं—एक तो समुद्र पार करते समय सीता केडर कर गिरने की सम्भावना तथा दूसरा परपुरुष का स्वेच्छा से स्पर्श तथा तीसरा रावण के समान ही चोरी कर के सीता को ले जाना—

केमोन तोमार पृष्ठे आमी होन स्थिर।
सागरे पोड़िले खावे हांगार कोमीर॥
परपुरुषे स्पर्श नाहीं लाये मोन।
कि कोरिवे वले धरि आनिले रावण॥
रावणे मोते की कोरिवे मोरे चुरी।
ताके मारि उद्धारे तवे वहादुरी॥[3]

रामचरितमानस की भाँति यहाँ भी हनुमान अशोक वन को उजाड़ते हैं तथा मेघनाद द्वारा पकड़ कर रावण के दरवार में लाये जाते हैं। हनुमान तथा रावण के संवाद में भी दोनों में समानता ही है। कृत्तिवासीय रामायण में भी मानस की भाँति ही विभीषण ही हनुमान को मृत्युदण्ड से वचाते हैं तथा उनकी पूंछ में आग लगाई जाती है। कृत्तिवास की रामायण में विभीषण के घर का इस अग्नि से वचने का कारण व्रह्मा का वर कहा गया है और कुम्भकरण के घर के वचने के दो कारण वताये गए हैं—एक तो यह कि वह पेड़ों की आड़ में था तथा दूसरा यह कि उसकी मृत्यु युद्ध में लिखी थी।

---

१. कृतिवासीय रामायण—सुन्दर काण्ड, पृष्ठ २२७।
२. उपर्युक्त, पृष्ठ २३१।
३. उपर्युक्त, पृष्ठ २३१।

ब्रह्मा बोरे विभीषणेर गृहो नाही पोड़े।
कुम्भकर्ण गृहो बाँचे गाछेर आओड़े॥
युद्ध करि मोरिवार निर्वन्ध जे आछे।
तेई अन्य घोर पोड़े तार घोर बाँचे॥[१]

हनुमान के नहीं जलने का कारण यहाँ सीता का वर बताया गया है। पहिली भेंट में ही उनको यह वर देती हैं। पीछे चल कर वे अग्नि से प्रार्थ करती हैं कि वे हनुमान की रक्षा करें[२] 'काय मोने वाके यदि आमि होई सती। तव छांई हेतु पोवे अव्याहति।'[३] वाल्मीकि रामायण में भी सीता अग्नि से होने की प्रार्थना करती देखी जाती हैं।[४] कृत्तिवास की रामायण में हनुमान पूँछ समुद्र में फेंक कर बुझाने का प्रयत्न करते हैं। जब नहीं बुझती तो सीता जाते हैं। सीता उनसे अपने मुख के अमृत से बुझाने का आदेश देती हैं। वैसा ही करते हैं और आग बुझ जाती है किन्तु मुख जल जाता है। इस पर से कहते हैं कि तुम्हारे कार्य में मेरा मुँह काला हो गया हमारे साथी हँसेंगे। कहती हैं कि तुम्हारे सभी साथियों का मुख काला हो जायगा। 'सीता बोले वर्ग केहु नाहि छाँड़ा। मम वाक्ये साकेलेर हावे मुख पीड़ा।'[५] इससे ऐसा होता है कि कृत्तिवास ने हनुमान की लंगूर के रूप में कल्पना की वन्दर के स्था क्योंकि बन्दर का मुख लाल होता है काला नहीं। लंगूर का मुख कृष्ण वर्ण का है। यह कथा उसी प्रकार की ज्ञात होती है जैसे गिलहरी के शरीर के ऊ धारियाँ राम के अँगुली की निशानी कही गयी है। 'काष्ठ विड़ालेर केनो अपमान। जेमोन सामार्थ्य जाई बान्धुक सागर।'[६]

कृत्तिवासीय रामायण में सेतुबन्ध के अवसर पर हनुमान तथा नल के की बात मिलती है।[७] सेतु निर्माण के समय नल वन्दरों के लाये हुए पाषाण को बायें हाथ से लेकर दक्षिण कर से समुद्र में डालते हैं इस पर हनुमान क्रुद्ध यह देखने की इच्छा से कि नल में कितना बल है वे गंधमादन पर्वत को ही

---

[१] उपर्युक्त, पृष्ठ २३१।
[२] उपर्युक्त, पृष्ठ २३८-२३९।
[३] उपर्युक्त, पृष्ठ २३७।
[४] वाल्मीकि—५, ५३, २७-३३।
[५] कृत्तिवासीय रामायण, पृष्ठ २३९।
[६] उपर्युक्त, पृष्ठ २५७।
[७] उपर्युक्त, पृष्ठ २५६।

कर तथा रोम-रोम में पत्थर बाँध कर तथा मस्तक पर और पूंछ में चार-चार पत्थर लपेट कर आकाश मार्ग से चलते हैं। नल यह देख कर घबड़ा कर राम के पास पहुँचते हैं तव राम हनुमान को समझा कर शांत करते हैं।

सेतु पर शिव लिंग की स्थापना का विवरण इस रामायण में दो वार आया है जैसा स्कन्द पुराण के ब्रह्मखण्ड में है[1]। एक वार तो सेतु वनने के पश्चात् नल राम की आज्ञा से एक देवल का निर्माण करते हैं जिसमें श्वेत शिव लिंग की स्थापना होती है। हनुमान केवल यहाँ कुबेर के सरोवर से पद्म ला देते हैं। पूजा के समय शंकर स्वयं उपस्थित होते हैं और राम का हाथ पकड़ लेते हैं।[2] दूसरी वार जव लंका से राम लौटते हैं तव वे सीता सहित शिव की पूजा करते हैं इस अवसर पर लक्ष्मण जी वालू का लिंग वनाते हैं।[3] समुद्र पार करने पर रावण द्वारा भस्मालोचन को भेजने की कथा यहाँ मिलती है जिसे राम ब्रह्मास्त्र पर दर्पण लगा कर नाश करते हैं।[4] रावण के पास दूत भेजने के अवसर पर राम हनुमान को भेजने का प्रस्ताव करते हैं परन्तु जाम्बवान यह तर्क उपस्थित करते हैं कि हनुमान को भेजा जायगा तो रावण क्रुद्ध होगा और यह समझेगा कि इनके पास और दूसरा कोई वीर नहीं है।[5] युद्ध का क्रम कृत्तिवासीय रामायण में प्रायः वही है जो वाल्मीकि में है। मेघनाद द्वारा वाँधे गये नागपाश के समय गरुड़ आते हैं और अपने को राम का वाहन वताते हैं।[6] राम गरुड़ के अनुरोध पर इस अवसर पर कृष्ण का रूप धारण करते हैं। वानर उस रूप को न देख सकें इस कारण गरुड़ उनको अपने पंख से ढंक लेते हैं। यहाँ हनुमान ही केवल उनको इस रूप में देख लेते हैं और कहते हैं कि इसका वदला वे कृष्णावतार में लेंगे।[7]

रावण के प्रथम युद्ध के समय हनुमान के तमाचा मारने पर रावण उनके अद्भुत वल की प्रशंसा करता है परन्तु ये इस पर खिन्न होते हैं कि उनके तमाचे से भी रावण नहीं मरा। 'हनुमान वोले मोर किसेर वखान। मोर चापड़े ते तोर रोहिल प्राण।'[8]

---

१. स्कन्द पुराण-ब्रह्मखण्ड अ० ७ और ४४-४६।

२. उपर्युक्त, पृष्ठ २५८।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ४४८।

४. उपर्युक्त, पृष्ठ २५८-२५९।

५. उपर्युक्त, पृष्ठ २७३।

६. उपर्युक्त, पृष्ठ २९१।

७. उपर्युक्त, पृष्ठ २९१।

८. उपर्युक्त, पृष्ठ ३०२।

अपना दक्षिण कर उठाये हुए तमाचा मारने की मुद्रा में हनूमान की कई मूर्ति मिलती हैं (फलक २३, २९, ३५ इत्यादि)। रावण लक्ष्मण को उठाने का प्रय यहाँ भी करता है परन्तु असफल रहता है और उन्हें हनुमान उठा कर राम के पास आते हैं। राम उन्हें पलक मारते ध्यान के द्वारा जिला देते हैं "घेयाने जियान र चक्षुर निमेषे।"[1] यहाँ मेघनाद के चार युद्धों का वर्णन है, दूसरे युद्ध में कुम्भकर्ण वध के पश्चात् समस्त वानर सेना को अचेत कर देता है तब सुषेण नाम के वान वैद्य के निर्देश पर हनुमान औषधि लेने जाते हैं। मार्ग में उनसे कालनेमि नाम राक्षस से भेंट होती है जिसे रावण ने उनके मार्ग में विघ्न उत्पन्न करने को भेजा था जब वे कालनेमि के बताए हुए सरोवर में पानी पीने को उतरते हैं तो वहाँ गंधका नामक मकरी उनके पैर को पकड़ लेती है। उसे मार कर वे ऊपर आते हैं। य मकरी पहिले अप्सरा थी जो दक्ष मुनि से शाप से मकरी हुई थी।[2] सरोवर से निक कर मकरी से सब वृत्तान्त जान कर हनुमान कालनेमि से मल्लयुद्ध कर के उसे मा डालते हैं। गन्धमादन पर जब हनुमान जी पहुँचते हैं तो वहाँ इनको गंधर्वों से लड़ करना पड़ता है। उनके हाहाहूहू को हरा कर वे औषधि लेने पहाड़ पर चढ़ते हैं इन्हें औषधि का ही पता नहीं लगता तब वे औषधि के पहाड़ को ही उखाड़ लेते हैं।

औषध ना पाये हनूमाने मोने मन।
....
चौसठ योजन सेई गिरिवर खान।
एक हाथे उपाड़िले वीर हनुमान॥[4]

इधर हनुमान को औषधि के पहाड़ की ओर जाते देख कर रावण ने सूर्य बुला कर डाटा और कहा कि तुम समय असमय का विचार छोड़ कर अभी उद हो जाओ जिससे लक्ष्मण की मृत्यु हो जाये। जब सूर्य उदय होने लगते हैं तो हनूमान उन्हें बन्दी बना कर अपने बगल में दाब लेते हैं। राम के कहने पर ही सू को प्रणाम कर के मुक्त करते हैं। जब वे पहाड़ को ले कर चलते हैं तो भरत के ब की परीक्षा करने के हेतु अयोध्या के ऊपर से उड़ते हैं। उस समय भरत वशिष्ठ साथ बैठे हुए राम की पादुका पर चँवर डुला रहे हैं उन्हें। यह देख कर बड़ा क्षो होता है कि एक जन्तु पादुका को लाँघ कर चला जा रहा है इस कारण वे शत्रुघ्

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ३०४।
२. उपर्युक्त, पृष्ठ ३८५।
३. उपर्युक्त, पृष्ठ ३८७।
४. उपर्युक्त, पृष्ठ ३९०-३९१।

वालकपन के खेलनेवाले वांटुल धनुष पर एक वाण चढ़ा कर मारते हैं। यह धनुष ८० मन का था। हनुमान भूमि पर गिरने के पश्चात् राम राम स्मरण करने लगते हैं 'भूमि पड़े करे हनु श्री रामेर स्मरण'[1]। इस पर भरत उन्हें उठाते हैं और उन्हें सान्त्वना देते हैं परन्तु ये अपने क्रोध का संवरण नहीं कर सकते और कहने लगते हैं कि तुमने राम से राज्य छीना, रावण ने उनकी स्त्री छीन ली, अव तुमने मुझे मार कर अपना वैर साध लिया 'तुमि राज्य निलहे रावण निले नारी।..........आमारे मारिये तव एई ह्योले लाभ।' प्रकाश ह्योले राम संगे वैर मान[2]। मानस के विपरीत यहाँ हनुमान स्वयं कहते हैं कि अव मैं इस पर्वत को लंका ले जाने में असमर्थ हूँ। यदि इसे एक योजन तक ऊपर उठा दिया जाय तो कदाचित् मैं इसे उठा कर ले जा सकूँ। भरत ने कान तक धनुष को खींच कर वाण से पर्वत को १०० योजन ऊपर उठा दिया। इस पर हनुमान भरत की प्रशंसा करने लगे।[3] शतेक योजने उर्द्ध तूलि दिया वाणे। हनुमान भरतेर विक्रमे वाखाने। इसके पश्चात् सुषेण के द्वारा उपचार होता है और सव सेना चेतना प्राप्त कर लेती हैं। जव हनुमान राम की आज्ञा से उस पर्वत को यथा स्थान रखने चलते हैं तो रावण उनके पीछे सात राक्षस लगा देता है जिन्हें हनुमान अपनी पूंछ में लपेट कर मार डालते हैं।

मेघनाद जव निकुम्भला में यज्ञ करना प्रारम्भ करता है तो लक्ष्मण कपि सेना लेकर उसके यज्ञ को विध्वंस करने चलते हैं। यह कार्य विभीषण की सम्मति से किया जाता है। इस स्थान पर कृत्तिवास ने एक विचित्र कथा का वर्णन किया है। यहां मेघनाद के यज्ञकुण्ड को हनुमान अपने मूत्र से वहा देते हैं। 'यज्ञकुण्ड ऊपरे ते हनुमान मूते। फल फूल यज्ञेर भासिया जाय स्रोते।'[4]

इस रामायण में महिरावण अहिरावण की कथा विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।[5] इसके अनुसार जव रावण के मुख्य मुख्य योद्धा राम और उनकी सेना के द्वारा मारे जा चुके थे और वह हताश होकर वैठा था तव उसकी माता ने उसे उसके पुत्र अहिरावण का स्मरण दिलाया। यहाँ यह मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न कहा गया है। रावण के स्मरण करते ही अहिरावण के मस्तक पर टंकार होती है और वह खड़िया

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ३९२।

२. उपर्युक्त, पृष्ठ ३९३।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ३०३।

४. उपर्युक्त, पृष्ठ ३७३।

५. कृत्तिवासीय रामायण—पृष्ठ ३९४-४०९।

से मंत्र लिख कर स्मरण करनेवाले का पता लगा कर उपस्थित होता है। रावण युद्ध का सब वृत्तान्त बताता है—कैसे शूर्पणखा की राम के भाई लक्ष्मण नाक काटा जाना, खर दूषण इत्यादि राक्षसों को मारा जाना इत्यादि। पीछे महिरावण को यह भी बताता है कि इन्द्रजीत, वीरबाहू और कुम्भकर्ण मार गए हैं। इस पर महिरावण पिता को सान्त्वना देता है और कहता है कि वह मंत्र बल से राम और लक्ष्मण को पकड़ कर अपने नगर में ले जायगा जहाँ वह काली को बलि चढ़ा देगा। रावण इस योजना को सुन कर प्रसन्न हो जाता है। में सब ओर हर्ष मनाया जाने लगता है। विभीषण पक्षि का रूप धारण लंका जा कर इसका कारण जान लेते हैं। वहाँ से आकर वे सब बातें राम को देते हैं। इस पर अधोलिखित प्रबन्ध किए जाते हैं। राम विष्णु का चक्र आका स्थित कर देते हैं जिसमें महिरावण आकाश से न उतर आये। नल को पाता मार्ग की रक्षा करने को नियुक्त किया जाता है, राम लक्ष्मण के चारों ओर ए बनाया जाता है और हनुमान को इस दुर्ग के द्वार की रक्षा करने को नियुक्त कि जाता है। विभीषण अपने ऊपर सब प्रबन्धों के निरीक्षण का भार लेते हैं। निरन्तर हनुमान को सजग करते रहते हैं कि वे किसी को दुर्ग के भीतर न जाने महिरावण इस दुर्ग में प्रवेश करने के अनेकों प्रयत्न करता है परन्तु वह विफल है। अन्त में वह विभीषण का रूप धारण करके दुर्ग में प्रवेश करता है तथा और लक्ष्मण को अपने नगर उठा ले जाता है। जब विभीषण को पता लगता है वे हनुमान को बहुत बुरा भला कहते हैं और उन्हें ही राम लक्ष्मण को लाने को हैं। हनुमान उसी मार्ग से महिरावण के नगर में पहुँचते हैं जिस मार्ग से वह गया ये एक बहुत छोटे बन्दर का रूप धारण कर के राज्य प्रासाद में प्रवेश करते हैं। पेड़ की एक डाल पर बैठ जाते हैं जो एक तड़ाग के पास था और जहाँ राक्ष स्नान करते थे। एक बूढ़ा मनुष्य महिरावण के चरित्र का वर्णन करते हुए कहता है कि केवल मनुष्य तथा वानर ही महिरावण को मार सकते हैं। य मनुष्यों को हर कर ले आया है और यहाँ एक बन्दर है ये शगुन अच्छे नहीं हैं। समय राज्य की एक दासी यह बताती है कि जो दो आदमी लाए गए हैं उनको के समक्ष बलि दी जायगी। हनुमान जी एक मक्खी का रूप धारण करके प्रासाद में पहुँचते हैं। ये खोजते-खोजते उस स्थान पर पहुँच जाते हैं जहाँ लक्ष्मण सुषुप्त अवस्था में बन्दी पड़े थे। इनको हनुमान जगा कर सब विवरण देते हैं। उसके पश्चात् ये काली के मंदिर में पहुँचते हैं और देवी से प्रश्न करते हैं क्या किया जाय। काली उन्हें यह मार्ग बताती हैं कि राम से यह कहा जाय कि महिरावण उन्हें बलि देने को ले आवे तो उससे वे कहें कि वह उन्हें काली को

करना बताये। इस प्रकार जब वह अपना मस्तक नत करे तब यह तलवार जो मेरे हाथ में है इससे तुम उसका मस्तक काट देना।" हनुमान पुनः राम के पास जाते हैं और उनसे यह सब योजना बताते हैं। जब महिरावण राम और लक्ष्मण को बलि देने को ले आता है तो राम उससे कहते हैं कि मैं तो किसी के समक्ष मस्तक न नवाने के कारण यह नहीं जानता कि किस प्रकार यह कार्य किया जाता है, यदि तुम मुझे दिखा दो तो मैं वैसे ही मस्तक नवाऊँ। इस पर महिरावण काली का अभिवादन करने को अपना मस्तक झुकाता है तथा हनुमान तुरन्त काली के खड्ग से उसका सिर धड़ से अलग कर देते हैं और उसी खड्ग से और राक्षसों को मार भगाते हैं। जब महिरावण की स्त्री यह सब वृत्तान्त सुनती है तो वह लड़ने को आती है। वह काली की मूर्ति यह कह तड़ाग में फेंकवा देती है कि इसने समय पर मेरे पति की रक्षा नहीं की। वह भी हनुमान द्वारा मारी जाती है। उसके पेट में हनुमान की लाठी लगने से अहिरावण का जन्म होता है। यह विकट शिशु पैदा होते ही लड़ने लगता है।[1] हनुमान इसे भी मारते हैं। युद्ध के पश्चात् मानस की भाँति यहाँ भी हनुमान सीता को युद्ध का समाचार देने जाते हैं तथा पीछे भरत को भी राम के आगमन की सूचना देने जाते हैं।

राजगद्दी के पश्चात् हनुमान की रामभक्ति दिखाने के हेतु कृतिवास रामायण में सीता हनुमान को हार प्रदान करती हैं। उस हार को हनुमान दाँतों से चबा कर फेंक देते हैं; इस पर लक्ष्मण क्रुद्ध होते हैं। हनुमान कहते हैं कि राम नाम से रहित धन का क्या प्रयोजन है। इस पर लक्ष्मण कहते हैं कि फिर शरीर धारण करने का क्या प्रयोजन है। हनुमान अपना शरीर फाड़ कर उसमें लिखे हुए राम नाम को दिखा देते हैं।[2] ऐसी मूर्तियाँ काशी में भी हैं जिसमें हनुमान अपना हृदय चीर कर दिखा रहे हैं और उसके भीतर राम लक्ष्मण दिखायी दे रहे हैं। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कृत्तिवास ने एक और प्रसंग यहाँ जोड़ा है। सीता हनुमान को भोजन कराने लगती हैं तो क्या देखती हैं कि वे खाते ही चले जाते हैं। इस पर सीता चिन्तित होती हैं। ध्यान से देखने पर उन्हें यह पता लगता है कि ये साक्षात् शिव के अवतार हैं, तब वे सावधानी के साथ उनकी क्षुधा शान्त करती हैं।[3]

---

[1] दिनेशचन्द्र सेन—बंगाली रामायण—पृष्ठ २५६ तथा आगे।

[2] कृत्तिवासीय रामायण—पृष्ठ ४६१।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ४६२।

उत्तर-काण्ड में वाल्मीकि रामायण की भाँति यहाँ भी अगस्त्य मुनि रा को सब कथाएँ सुनाते हैं। यहाँ ये वर्णन करते हैं कि मेघनाद को वही मा सकता था जो १४ वर्ष पर्यन्त निद्रा, स्त्री तथा भोजन का त्याग करे। इसप रामचन्द्र पूछते हैं कि क्या लक्ष्मण ने ऐसा किया तो उसके उत्तर में लक्ष्म प्रमाण देते हैं। इस अवधि में जो फल उन्हें भोजन के हेतु दिए गए थे वे उ उन्होंने रख छोड़े हैं। उनको लाने जब हनूमान जाते हैं तो वे उनसे उठते नहीं तब लक्ष्मण उन्हें उठा कर लाते हैं। इस प्रकार हनुमान का गर्व भी भं किया जाता है तथा मेघनाद को वर की बात भी सत्य कराई जाती है।[1] ल कुश के युद्ध में भी हनुमान के पराजय का वर्णन यहाँ आता है।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कृत्तिवास ने जो चरित्र हनुमान का अप रामायण में उपस्थित किया है वह वाल्मीकि रामायण के उनके चरित्र से कुछ दूर तक तो मिलता हुआ है; जैसे यहाँ भी वे पण्डित हैं, संयमी हैं, वीर हैं, बुद्धि मान तथा सुग्रीव के योग्य सचिव हैं परन्तु यहां इसके अतिरिक्त ये राम भक्त भी हैं। इन्हीं गुणों के कारण राम इनको ही अपनी अंगूठी सीता के हेतु दे हैं। कृत्तिवास ने इनके वानरी चापल्य का भी दिग्दर्शन कराया है। य इनमें एक ओर तो राम के प्रति अनन्य भक्ति है तो दूसरी ओर अज्ञता भी राम ने गरुड़ को जब कृष्णरूप दिखाया तो इस पर ये गरुड़ से ईर्ष्या करने ल हैं और प्रतिशोध लेने को उद्यत हो जाते हैं। सीता द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य मा को इस कारण तोड़ डालते हैं कि उसमें राम नाम नहीं है। वे कभी कभी य धैर्य भी नहीं रख पाते। सीता के अन्वेषण में जब सीता उन्हें रावण के घर नहीं दिखाई देती तो वे रोने लगते हैं। निद्रित रावण को देख कर डर जाते तथा रावण की सभा में उसका प्रभुत्व देखकर राम के चरणों का स्मरण कर लगते हैं।[3] परन्तु फिर भी ये रावण को खरी खोटी सुनाने से चूकते नहीं इनकी चपलता इनके मेघनाद की यज्ञवेदी पर मूत्र त्याग से तथा नल के झग से स्पष्ट हो जाती है। यहाँ ये कर्त्तव्यपरायण, सरल, बुद्धिवाले राम भक्त हैं इस ग्रंथ की रचना प्रायः १५ वीं शताब्दी में मानी जाती है।[4]

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ४६६-४६८।

[2] कृत्तिवास की रामायण—५५२ तथा आगे।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २२४, २२६।

[4] रामनाथ त्रिपाठी—कृत्तिवासी बंगला रामायण और रामचरितमान का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ३२३।

केशव कृत रामचन्द्रिका में हनुमान का चरित्र जो मिलता है वह प्रायः वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही आधारित ज्ञात होता है। केशवदास संस्कृत के पण्डित थे और उन्होंने उस स्रोत से बहुत कुछ लिया है। प्रौढ़ पाण्डित्य के कारण इनके काव्य में प्रवाह तथा माधुर्य की कमी होना स्वाभाविक था। यहाँ भी हनुमान का राम से समागम ऋष्यमूक पर्वत पर होता है। वे विप्र वेष धर कर राम का मर्म लेने आते हैं।[1]

जव कपिराज रघुपति देखे। मनो नर नारायण सम लेखे॥
द्विज वपु कै हनुमन्त आये। वहु विधि दै आशिष मन भाये॥५२॥
सव विधि रूरे वन मह को हो। तन मन सूरे मनमथ मोहौ।
सिरसि जटा वाकल वपुधारी। हरिहर मानौ विपिन विहारी॥५३॥
परम वियोगी सम रस भीने। तन मन एकै युग तन कीने॥
अव तुम का लगि बन आये। केहि कुल हौ कौनहि पुनि जाये॥५४॥

राम इस पर अपने को दसरथ का सुत वता कर सीता हरण की कथा कहते हैं। हनुमान—

या गिरि पर सुग्रीव नृप ता संग मन्त्री चारि।
वानर लई छड़ाई तिय दीन्हो वालि निकारि॥
वा कह जो अपनो करि जानो। मारहु वालि विनय यह मानौ॥
राज देउ दै वाकी तिया को। तो हम देहिं वताय सिया को॥५७॥
आरत की प्रभु आरति टारौ। दीन अनाथन को प्रभु पारौ॥
व्यावर जंगम जीवजु कोऊ। संमुख होत कृतारथ सोऊ॥५८॥
वानर हनुमान सिधारयो। सूरज को सुत पायनि पारयो।
राम कह्यो उठि वानर राई। राजसिरी सुख स्यो तिय पाई॥

वाली बध के पश्चात् जब सुग्रीव ने राज्य पा लिया तथा शरद ऋतु के आने पर भी राम के पास नहीं आए तव लक्ष्मण किष्किन्धा जाते हैं और उसे डराते हैं तब सुग्रीव[2]—

---

[1] केशव कौमुदी—रामचन्द्रिका प्रथम भाग—टीकाकार लाला भगवानदीन जी दीन, प्रकाशक—रामनारायणलाल, इलाहाबाद मार्ग शीर्ष सं० २००१, वि०, पृष्ठ १९६।

[2] उपरोक्त, पृष्ठ २१३–१३, ३०-३१।

बोलि लिये हनुमान सबैजू। ल्यावहु वानर बोलि सबैजू।।
घर लगै न काहू विरमाही। एक न कोऊ रहै घर माहीं।।
....
दिसि दिसि अवगाहन सीतहि चाहन यूथप यूथ सवै नढये।
नल नील ऋक्षपति अंगद के संग दक्षिण दिसि को विदा भये।
बुद्धिविक्रम व्यवसाय युत साधु समुझि रघुनाथ।
वल अनन्त हनुमंत के मूंदरी दीन्ही हाथ।।३२।।

दक्षिण दिशा में पहुँचने पर जब अवधि वीत जाने लगी और सीता का पता नहीं मिला तो अंगद कहते हैं कि "समुद्र के पास ही अपना घर बनाया जाय क्योंकि घर जाने पर सुग्रीव मारे विना नहीं छोड़ेगा" तब हनुमान कहते हैं[1]—

अंगद रक्षा रघुपति कीन्हो। सोध न सीता जल थल लीन्हो।।
आलस छांड़ो कृत उर आनो। होहु कृतघ्नी जनि सिख मानो।।३५।।
जीरण जटायु गीध धन्य एक जिन रोक रावण विरथ कीन्हो सहि नि
प्राण हानि।।
हुते हनुमन्त वलवंत तहाँ पाँच जन दीन्हे हुते भूषन नर रूप जानि।।
आरत पुकारत बार बार, लीन्हो न छड़ाय तुम सीता अति भीति मानि।।
गाय द्विज राज तिय काज न पुकार लागै भागवै तरक घोर चोर को अभ
दानि।।

संपाती के बताने पर हनुमान जी समुद्र पार जाने को उद्यत होते हैं[2]—

हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस लीकसी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राममुद्रिका विमान कैधों लच्छन को बाण छुट्यो रावण निशंक को।
गिरिगज गण्ड ते उड़ान्यो सुवरन अलि सीता पद पंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छुटी केशोदास आसमान में कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को।।
उदधि नाक पति शत्रु को उदित जानि वलवंत।
अंतरिच्छ हो लच्छि पद अच्छ [छुआ हनुमन्त]।।३९।।
बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि।
लीलि लियो हनुमंत तेहि कढ़े उदर कहँ फारि।।
कछु राति गये करि वंश दसा सी। पुर माँझ चले वन राजि विलासी।
जवहि हनुमंत चले तजि शंका। मग रोक रही तिय ह्वै तव लंका।।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २१५-१३-३५।
[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २१६।

लंका—कहि मोहि उलंघि चले तुम को हो। अति सूक्ष्म रूप धरे मग को हो।
पठये केहि कारण कौन चले हौ। सुर हौ किधौ सुरेश भले हौ।
हनुमान—हम वानर हैं रघुनाथ पठाये। तिनकी तरुणी अवलोकन आये।
लंका—हति मोहि महापति भीतर जैये।
हनुमान—तरुणिहि हते कवलौं सुख पैये।
लंका—तुम मारेहि पै पुर पैठन पैहो। हठि कोटि करौ घर ही फिर जैहो।।
हनुमंत बली तेहि थापर भारी। तजि देह भई तव ही वह नारी।।

लंका कहती है कि उसे ब्रह्मा ने वर दिया था कि 'जव हनुमंत आयेंगे और तुझे मारेंगे तव लंका विभीषण की होगी।' ऐसा कह कर वह नारी जव चली जाती है तो हनुमान सारी नगरी को देखते हैं।[1]

हनुमान रावण को मणि-जटित पलंग पर सोते देखते हैं—

तव हरि रावन सोवत देख्यो। मनिमय पतिका की छवि लेख्यो।।
तहँ तरुणी बहु भाँतिन गावैं। विच बिच पखावज वीण वजावैं।।४८।।

वहुत फिरने के पश्चात् सीता को सिसुपा वृक्ष के नीचे देखते हैं[2]—

धरे एक वेणी मिली मेल सारी। मृणाली मनो पंक ते काढ़ डारी।।१३-५२
सदा राम नामै रटैं दीन वानी। चहूँ ओर है राकसी दुःखदानी।।
ग्रसी वुद्धि सी चित चिंतानि मानी। किधौं जीम दंतावली में वखानी।।
किवौं घेरि कैं राहु नारीन लीनी। कला चन्द्र को चारुपियूष भीनी।।
किधौं जीव की जोति मायान लीनी। अविद्यान के मध्य विद्या प्रवीनी।।
मानो संवर स्त्रीन में कामनामा। हनुमान ऐसी लखी राम वामा।।५५।।

इतने में रावण आकर सीता को प्रलोभन देना प्रारम्भ करता है। सीता के परुष वचन कहने पर उसे दो मास की अवधि देता है।[3] सीता जव दुःखी होकर अशोक वृक्ष से अंगार की याचना करती हैं। तव हनुमान रामांकित मुद्रिका ऊपर से डाल देते हैं[4]—

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २१९।
[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २१९।
[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २२०।
[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २२२-२२६।

देखि देखिकै अशोक राजपुत्रिका कह्यो देहि मोहि अगितैंजुअंग आगहैं
ठौर पाई पौनपूत डारि मुद्रिका दई। आसतास देखि कै उठाय हाथ कै

अँगूठी को देख कर सीता का चित्त भ्रम में पड़ जाता है। तब उन्हें ऊपर
पर वानर दिखाई देता है।[1] जब सीता पूछती हैं कि "तुम कौन हो बताओ
तो शाप दे दूंगी।" तब हनुमान वृक्ष पर से उतर आते हैं।

डारि शाखा झूमि। कपि उतरि आयो भूमि।
संदेस चित्त महू चाई। तब कहीं बात बनाई॥७२
कर जोरि कह्यो हौं पौन पूत। जिय जननि जानि रघुनाथ दूत।
रघुनाथ कौन ? दशरत्थ नन्द। दशरत्थ कौन ? अज तनय चन्द॥
केहि कारण पठयो यहि निकेत ? निज देव लेन सन्देश॥
गुण रूप शील शोभा सुभाव। कछु रघुपति के लक्षण सुनाव॥
अति जदपि सुमित्रानन्द भक्त। अति सेवक है अति सूर सक्त॥
अनु जदपि अनुज तीनो समान। पै तदपि भरत भावत निदान॥
ज्यों नारायन उर श्री वसंति। त्यों रघुपति उर कछु दुति लसंति॥
जग जितने हैं सब भूमि भूप। सुर असुरन पूजै राम रूप॥७६॥
मोहि परतीति यहि भांति नहिं आवई। प्रीति कहि धौ सुनर वानरन्हवयौं
बात सब वर्णि परितीति हरि त्यों दई। अंसु अन्हवाय उर लाय मूंदरी

फिर हनुमान ने रामचन्द्र के विरह का वर्णन किया।[2] इसके पश्चात् हनु
ने कहा—

सुगति सुकेशि सुतेनि सुनि सुमुखि सुदंति सुश्रोनि।
दरसवैगो वेगही तुमको सरसिज योनि।
कछु जननि दे प्रतीति जासौं रामचन्द्र आवई।
सुम सीस की मणि दई यह कटि सुजस तन जग गावई।
सब काल हौ अमर अरु तुम समर जयपद पाइ हौ।
सुत आज ते रघुनाथ के तुम परम भक्त कहाइहौं॥९५॥
कर जोरि पग परि तोरि उपवन कोरि किंकर मारियों।
पुनि जंबुमाली मंत्रिसुत अरु पंचमंत्रि संहारियो।
रन मारि अक्ष कुमार बहु विधि इन्द्रजित सो युद्ध कै।
अति ब्रह्म अस्त्र प्रमाण मानि सो वश्य मो मन शुद्ध कै॥९६॥

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २२७–१३, ६६-६९।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २३५।

रावण पूछता है—

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक, दूत वली रघुनन्दन जू को।
को रघुनन्दन रे ? त्रिशिरा खर दूषण—दूषण भूषण भूको।
सागर कैसे तर्‌यो ? जस गोपद, काज कहा ? सिय चोरइ देखो।
कैसे बँधायो ? जो सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥१४-१॥

जब रावण यह आज्ञा देता है कि "इस वानर को यातना देकर मार डालो और इसके मांस को बाँट कर खा डालो।" तव विभीषण यह सलाह देते हैं कि "यह दूत है छोड़ दीजिए। मंत्रियों से पूछ कर और कोई दण्ड दीजिए।" तब रावण की आज्ञा से-

तूल तेल बोरि बोरि जोरि जोरि वाससी।
लै अपार रार ऊन दून सूत सौं कसी॥
पुंछ पौन पूत की सँवारि वार दी जरीं।
अंग को घटाई कै उड़ाई जात भो तहीं॥४॥

इसका यह परिणाम हुआ कि सब घरों में आग लग गयी।[1] केवल विभीषण का घर बचा—

हनुमत लाई लंक सब बच्यो विभीषन धाम।
जनु अरुणोदय वेर में पंकज पूरब जाम॥
हनुमंत लंकहि लाई कै पुनि पूँछ सिंधु बुझाई कै।
शुभ देखि सीतहि पाँ परे मनि पाय आनन्द जी भरे॥१३॥
विदा पाइ सुख पाइ कै चले जबै हनुमन्त।
पुहुप वृष्टि देवन करी सागर रतन अनन्त॥
यहि पार अंगद भेटियो सब को सबै दुख मेटियो।
जयसी कछु बीतई सबै तिनसो कही तयसी तबै॥१६॥

इसके पश्चात् अंगद इत्यादि वीर मधुवन के फल खाते हैं और वहाँ के मालियों को मारते हैं—

रघुनाथ पै जवही गये, उठि अंक लावन को भये।
प्रभु मैं कहा करनी करी, सिर पायँ की धरती धरी॥२२॥
चिन्तामणि सी मणि दई रघुपति कर हनुमंत।
सीता जी को मन रँग्यो जनु अनुराग अनन्त।
श्रीरघुनाथ जबै मणि देखी, जी मह भागदशा सम लेखी।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २४१-२४३।

फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पाई। मानहु अंध सुडीठि सुहाई॥२४॥

फिर हनुमान ने सीता की दशा का वर्णन किया—

कछु सीय दशा कहि मोहि न आवे। चर की जब बात सुनैं दुख पावे।
सर सो प्रति वासर वासर लागैं। तन घाव नहीं मन प्रानन खारैं॥

यहाँ लाला भगवानदीन जी ने अपनी टीका में यह लिखा है कि हनुमान
विद्या के आचार्य माने जाते हैं।[1] हनुमान जी एक गुप्त बात भी बताते हैं
प्रकार है कि कुरंग के आने के पहिले राम ने सीता को अग्नि में प्रवेश
कहा था।[2]

आगम कनक कुरंग के कही बात सुख पाइ।
कोपानल जरि जाय जनि शोक समुद न बुड़ाइ॥

राम ने हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा—

साधु हनुमंत बलवंत जसवंत तुम गये एक काज को अनेक करि आये हो॥

हनुमान ने उत्तर दिया—

गई मुद्रिका लै पार, मनि मोहि लाई बार।
कह कर्‌यो मैं बल रंक, अति मृतक जारि लंक॥३३॥
अति हन्यो बालक अच्छ, लै गयो बाँधि विपच्छं।
जड़ वृच्छ तोरे दीन, मैं कहा विक्रम कीन॥३४॥

तब रामचन्द्र सेना को लेकर प्रयाण करते हैं।[3] हनुमान जी के
बैठ कर चलते हैं।[4] जब विभीषण राम से मिलने आते हैं तो हनुमान
ग्रहण करने का मंत्र देते हैं[5]—

जान्ते विभीषण न राक्स राम राजा।
प्रह्लाद नारद विशारद बुद्धि साजा।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २४९।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २५१—

राजसुता एक मंत्र सुनो अब। चाहत हौं भुवभार हर्‌यो सब॥
पावक में निज देह राखहु। छाय शरीर मृगै अभिलाखहु ॥पूर्वा

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २५३।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २५५-३९।

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ ३०३-३०४।

सुग्रीव नल नील अंगद जामवंता।
राजाधिराज बलिराज समान संता॥१५-२२॥

जब रावण युद्ध में विभीषण पर शक्ति चलाता है और उसे लक्ष्मण अपने ऊपर ले लेते हैं तथा मृतक समान हो जाते हैं तब विशल्या औषधि लेने को हनुमान को भेजा जाता है। वे शीघ्र ही औषधि का पर्वत लाते हैं और लक्ष्मण जी उठते हैं।[1] मार्ग में ये विघ्न डालनेवालों को मार डालते हैं।[2] जब कुम्भकर्ण गदा लेकर चलते हैं तब हनुमान गदा को पूंछ से लपेट कर समुद्र में डाल देते हैं।

दशग्रीव को बंधु सुग्रीव पायो। चल्यो लंक लैकै भले अंक लायो॥
हनूमंत लीलैं रत्यों देह भूल्यो। छुट्यो कर्ण नासहि लै इन्द्र फूल्यो॥
सँभार्‌यो घरी एक दू में मरुकै। फिर्‌यो राम ही सामुहे सो गदा लै॥
हनुमंत सो पुंछ सो लाइ लीन्हौं। न जान्यो कबै सिंघु में डारि दीन्हौं॥२६॥

कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजित के मरने के पश्चात् रावण ने एक दूत राम के पास भेजा। यह नई घटना यहाँ मिलती है। इस दूत ने लौट कर रावण के समक्ष जो राम की दशा का वर्णन किया उसमें हनुमान का भी चित्र मिलता है—

भूतल के इन्द्र भूमि पौढ़े हुते रामचन्द्र मारीच कनक मृग छालहि बिछाये जू।
कुंमहर कुंभकर्ण नासा हर गोद सीस चरण अंक पै अक्ष अरि उर लाये जू।
देवान्तक-नारान्तक अंतक त्यों मुसकात विभीषण बैन तन कानन रखाये जू।
मेघनाद मकराक्ष महोदर प्राणहर बाण त्यों विलोकत परम सुख पाये जू॥१९॥

दूसरा चित्र हनुमान का केशवदास ने अधोलिखित उपस्थित किया है जब राम के लिये इन्द्र ने अपना रथ भेजा उस समय हनुमान जी ध्वजा पर बैठ जाते हैं।[3]

कोटिन भाँति न पौन ते मन ते महालघुता लसे।
बैठि के ध्वज अग्र श्री हनुमन्त अन्तक ज्यों हसें॥
रामचन्द्र प्रदक्षिणा करि दक्ष ह्वै जब ही चढ़ें।
पुष्प वर्षि बजाय दुंदुमि देवता बहुधा बढ़ैं॥३८॥

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ३०५-३०६।

२. हन्यो विघ्नकारी बली बीर बामैं गयो शीघ्रगामी गये एक यामें।
चल्यो लै सबै पर्वतें कै प्रणामै। न जान्यो विशल्य औषधी कौन तामें।५०
पृ० ३०५॥

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ३३३।

रावण की मृत्यु के पश्चात् राम हनुमान को सीता के पास भेजते हैं—

जय जाय कहो हनुमंत हमारो। सुख देवहु दीरघ दुःख विसारो॥
भूषण भूषित कै शुभ गीता। हमको तुम वेगि दिखावहु सीता॥२०
हनुमन्त गये तहहीं जहँ सीता। अस जाय कही जय की सब गीता॥
पग लागि कह्यो जननी पग धारो। मग चाहत हैं रघुनाथ तिहारो॥२॥

रामचन्द्रिका के उत्तरार्ध या दूसरे भाग में रामचन्द्र हनुमान को भरत को
लेने को भेजते हैं।[1]

हनुमंत बली तुम जाओ तहाँ। मुनिवेष भरत्थ बसते जहाँ।
ऋषि के हम भोजन आजु करैं। पुनि प्रात भरत्थहिं अंक भरैं॥

हनुमान जाकर देखते हैं—

हनुमंत विलोके भरत सशोके अंग सकल मलधारी।२१
वलका पहिरे तन सीस जटागन हैं फल मूल अहारी॥
बहु मंत्रिन गन में राज काज में सब सुख सो दिन तोरे।
रघुनाथ पादुकनि, मन वच प्रभु गनि सेवत मंजुलि जोरे॥

हनुमान जी भरत से कहते हैं—

सब शोकनि छाँड़ो भूषण माड़ो कीजै विविध बधाये।
सुर काज सँवारे, रावण मारे रघुनन्दन घर आये॥
सुग्रीव सुयोधन, सहित विभीषण, सुनहु भरत शुभ गीता।
जय कीरति ज्यों सँग अमल सकल अँग सोहत लक्ष्मण सीता॥

सुमित्रा से राम कहते हैं[2]—

इन सुग्रीव विभीषणे अंगद अरु हनुमान।
सदा भरत शत्रुघ्न सम माता जी मैं जान॥

रामचन्द्र के राज्य तिलक के अवसर पर हनुमान शाही झण्डे को
हुए हैं[3]—

---

[1] केशव कौमुदी (दूसरा भाग) केशवदास कृत रामचन्द्रिका की
टीका—टीकाकार स्व० लाला भगवानदीन (दीन), रामनारायण
पब्लिशर एण्ड बुकसेलर, इलाहाबाद १९४५, पृ० ९।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ ३२-१३।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ८८-२७।

जामवन्त हनुमन्त नल नील मरातिब साथ।
छरी छबीली शोभिजे दिगपालन के हाथ॥

तिलक के पश्चात् राम सबको सब वस्तुएँ प्रदान करते हैं।[1]

दीन्हो मुकुट विभीषणे आपनो अपनें हाथ।
कंठमाल सुग्रीव को दीन्हीं श्री रघुनाथ॥
माल श्री रघुनाथ के उर शुभ्र सीतहि सो दई।
अर्पियों हनुमन्त को अतिदृष्टि कै करुणामई॥

जब अश्वमेघ के घोड़े को लव कुश ने बाँध लिया तो शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण के हारने पर रामचन्द्र भरत को भेजते हैं। उनके साथ जाम्बवान, हनुमान और सुग्रीव, विभीषण इत्यादि भी जाते हैं[2] वहां आकर—

जाम्बवन्त विलोकियो रण भूमि भू हनुमंत।
श्रोग की सरिता बही सु अनन्त रूप दुरंत॥

हनुमान उन बालकों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं[3]—

नाम वरण लघु वेष लघु कहत रीझ हनुमन्त।
इतो बड़ो विक्रम कियो, जिते युद्ध अनन्त॥

इस पर भरत कहते हैं—

हनुमन्त दुरंत नदी अब नाखौ। रघुनाथ सहोदर जी अभिलाषौ॥
तब तो तुम सिंधुहिं नाँघि गये जू। अब नाँघहु काहे न मीत भले जू॥

हनुमान[4]—

सीता पद सन्मुख हुते गयो सिन्धु के पार।
विमुख भयो क्यों जाहुं तरि, सुनो भरत यहि बार॥

अंगद जब लड़ने जाते हैं तो हनुमान मना करते हैं। राम कहते हैं[5]—

अंगद जीति इन्हें गहि ल्यावो, के अपने बल मारि भगाओ॥
वेगि बुझावहु चित चिता को, आजु तिलोदक देहु पिता को॥
अंगद तो अंग अंगन फूले। पौन के पुत्र कह्यो अति भूले॥

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ९०-३२-३३।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ २६०-३७-१।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ २६२-४।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ २६२।

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ २६८-२६९।

जब सब रणमें हार जाते हैं तो लव और कुश, हनुमान और जाम्ववान, घोड़े को लेकर राजाओं के मुकुटों के साथ सीता के पास जाते हैं[1]—

रण जोथ के सब शीश भूषण संग्रहे जु भले भले।
हनुमन्त को अरु जाम्ववंतहि वाजि स्यों ग्रसि लै चले॥
रण जीत के सब साथ लै करि मातु के कुश पाँ परे।
सिर सूंघ कंठ लगाय आनन चूमि गोद दुऊ धरे॥
चीन्ह देवर के विभूषण देखि के हनुमन्त।
पुत्र हो विधवा करी तुम कर्म कीन दुरंत।
बाप को रण मारियो अरु पितृ भ्रातु सँहारि।
आनियो हनुमन्त बाँधि न आनियो मोहि गारि॥

तुलसी ने रामचरित मानस में हनुमान को राम के आदर्श भक्त के रूप में किया है—स्थान-स्थान पर इनकी अभिमानरहित भक्ति का प्रदर्शन है। रा और लक्ष्मण से इनका पहिला साक्षात्कार पम्पासर के पास ही होता है जैसा वाल्मीकि के रामायण में है। सुग्रीव वालि के डर से राम तथा लक्ष्मण के वि जानने को इन्हें भेजता है।

धरि बटु रूप देखतैं जाई। कहेसु जानि जिय सयन बुझाई॥
पठए बालि होई मन मैला। भागों तुरत तजौ यह सैला॥
विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ।............॥ कि०

पीछे चल कर राम को प्रभु जान कर उनके चरण पर हनुमान अपना रख देते हैं—

प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाहि नहि बरना॥
....
मोर न्याउ मैं पूछा साइं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाइं॥

इसके पश्चात् ये दोनों भाइयों को अपने कन्धों पर चढ़ा कर सुग्रीव से कराने के हेतु ले चलते हैं—

यहि विधि सकल कथा समुझाई। लिए दुओ जन पीठ चढ़ाई॥
....

ये राम की सुग्रीव से मैत्री कराते हैं—

तव हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाय।
पावक साखी देई करि जोरी प्रीति दृढ़ाय॥

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २७२-२७३।

यहाँ इनको सुग्रीव का आदर्श मंत्री भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है। जब सुग्रीव विषयविलास में रामकार्य भूल जाते हैं तो ये ही उनको पुनः उनके कर्त्तव्य का स्मरण दिलाते हैं—

इहाँ पवनसुत हृदय बिचारा। राम काज सुग्रीव बिसारा॥
निकट जाय चरनन्हि सिर नावा। चारि हु बिधि तेहि कहि समुझावा॥

ये ही दूतों को वानरों को बुलाने के हेतु भेजते हैं—

तब हनुमंत बुलाये दूता। सब कर करि सम्मान बहूता॥
भय और प्रीति नीति दिखराई। चले सकल चरनन्ह सिर नाई॥

इन्हीं को लक्ष्मण को समझाने के हेतु भेजा जाता है—

सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि विनती समझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन वंदि प्रभु सुजस बखाना॥

सीता के हेतु इन्हीं को राम अपनी मुद्रिका देते हैं तथा संदेश देते हैं, अंगद या जामवंत को नहीं—

पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बुलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी॥
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपा निधाना॥

मार्ग में भी हनुमान अपनी बुद्धि का परिचय देते हैं—

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलई न जल घन गहन भुलाने॥
तब हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जल पाना॥
चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि विवर एक कौतुक देखा॥

वे सब वानर इन्हीं को आगे करके विवर में प्रवेश करते हैं। यहाँ इनमें नेतृत्व करने की क्षमता दिखाई गयी है—

आगे कै हनुमंतहि लीन्हा। पैठे विवर विलम्ब न कीन्हा॥

जब समुद्र के पास ये लोग बैठे थे और किसी वानर को समुद्र पार जाने का साहस नहीं हो रहा था, अंगद जो युवराज था उसने भी यही कहा कि—

अंगद कहइ जाऊँ मैं पारा। जिय संसय किछु फिरती बारा॥

उस समय जामवंत ने हनुमान से कहा—

पवन तनय बल पवन समाना। बुधि विवेक विग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होई तात तुम पाहीं॥
राम काज लगि तब अवतारा। सुनतहिं भयउ पर्वताकारा॥

वाल्मीकि में यहाँ उनके जन्म की कथा दी हुई है परन्तु यहाँ केवल उनको तनय ही कहा गया है। यहाँ इनका रंग कनक के समान तुलसीदास जी ने है—

कनक वरन तन तेज विराजा। मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा॥

तुलसीदास जी ने इनके समुद्रलंघन का विवरण भी अनोखा दिया है। बहुत सी बात कह दी है—

जिमि अमोघ रघुपति कर वाना। ताही भाँति चला हनुमाना॥

रघुपति के बान का यह प्रभाव था कि, वह जाय, कार्य पूर्ण करे और तरक पुनः आ जाय। इनको मार्ग में मैनाक, सुरसा तथा एक राक्षसी मिलती है। यहाँ वाल्मीकि में भी है। राक्षसी का नाम यहाँ नहीं है। वहाँ से ये लंका पहुँच जाते नगर में ये मसक के समान छोटा रूप धारण करके प्रवेश करना चाहते हैं—

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नर हरी॥

वहाँ इन्हें लंका नाम की निसाचरी मिलती है—

नाम लंकिनी एक निसचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी॥

रावण के नगर का यहां वृत्तान्त बहुत थोड़ा है। यहाँ इन्हें विभीषण का दिखाई देता है—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहं भिन्न बनावा॥

इसमें जाकर ये विभीषण से पहिचान करते हैं तथा उसकी सहायता से सीता पता पाकर अशोक वन में प्रविष्ट होते हैं। वहाँ वे वहीं अपना छोटा रूप धा करके जाते हैं—

करि सोई रूप गयउ पुनि तहवाँ। वन अशोक सीता रह जहवाँ।

सीता को देख कर इनको बड़ा दुख होता है—

परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन।

जब ये अशोक के पेड़ के पत्तों के बीच में छिपे बैठे हुए थे तभी रावण आता है। अन्त में त्रिजटा अपना सपना सब राक्षसियों को सुनाती है। सम्भ है कि इस सपने को सुन कर ही हनुमान जी के मन में इसे सत्य कर दिखाने आकांक्षा जागी हो—

सपने वानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी॥

सीता को बहुत विरहाकुल अवस्था में देख कर हनुमान राम की अंगू उनके सामने डाल देते हैं। सीता की आज्ञा पाने पर ही ये प्रकट होते हैं परन्

सीता इनके संवाद देने पर और अंगूठी अर्पण करने पर भी "फिरि बैठी मन बिसमय भयऊ।" ये तब राम की शपथ खाते हैं—

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य शपथ करुनानिधान की॥

इनके सप्रेम वचन सुनकर ही सीता के मन में विश्वास उत्पन्न होता है। यहाँ एक विचित्र बात यह है कि पहिले तो हनुमान स्वयं राम का सन्देश देते हैं परन्तु कदाचित् ब्रह्मचारी होने के कारण ये राम के मुख से ही उनका विरह वर्णन करते हैं—

रघुपति कर संदेशु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ भरे बिलोचन नीर॥
(सुन्दरकाण्ड १४)

कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुं सकल भए विपरीता॥ इत्यादि

जब सीता को यह संदेह होता है कि इसके समान छोटा वानर क्या कर सकेगा तो ये अपना रूप दिखाते हैं—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अति बलबीरा॥

यहाँ सीता इनको आशिर्वाद देती हैं—

आशिष दीन्हि रामप्रिय जाना। होहु तात बलसील निधाना॥
अजर अमर गुन निधि सुत होहू। करहु बहुत रघुनायक छोहू॥

इनको इसके पश्चात् भूख लग जाती है—

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा॥

तब सीता की आज्ञा से ये अशोक वन के फल खाने को आगे बढ़ते हैं और—

फल खाएसि तरु तोरै लागा।

वहाँ के रक्षकों ने जब इनको रोका तो उन्हें ये मार डालते हैं। पीछे अच्छ कुमार को भी उसकी सेना सहित नष्ट करके अपने बल का परिचय देते हैं। अन्त में मेघनाद द्वारा बाँधे जाकर रावण के दरबार में पहुँचते हैं। रावण के प्रश्नों का उत्तर ये जिस प्रकार देते हैं वह बहुत ही समुचित है—

कह लंकेस कवन तै कीसा। केहि के बल घालेहि बन खीसा॥

उसके सब प्रश्न पूछ लेने पर—

सुनु रावण ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया॥
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा। तोहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

यहाँ इनका दूतत्व अंगद के दूतत्व से बहुत भिन्न है। ये अपने चातुर्य का प्रमाण इस प्रकार देते हैं कि जब तक रावण अपने प्रश्नों को नहीं कर लेता तब तक उत्तर देना प्रारम्भ नहीं करते तथा रावण के परा की ओर परिमार्जित भाषा में ही संकेत करते हैं—

जानउँ मैं तुम्हार प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन कर जस पावा। सुनि कपि वचन विहसि विहरावा॥

अपने युद्ध का तर्क कैसा सुन्दर देते हैं जिससे इनके नैयायिक होने आभास मिलता है—

खायऊँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव ते तोरेउँ रूखा॥
जिन मोहि मारा तेहि मैं मारा। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारा॥

अर्थात् अन्याय तो हनुमान के ही साथ होता है। रावण को कोई नहीं सूझता तो कहता है—

मिला हमहि कपि गुरु वड़ ग्यानी।

और अन्त में हनुमान को मारने की आज्ञा देता है उसी समय विभीष जाते हैं और रावण उनकी इस सलाह पर कि कोई दूसरा दण्ड देना चा कहता है कि हनुमान की पूँछ में पट बाँध कर तेल वोर कर आग ल जाय। इस कार्य का क्या परिणाम होगा यह हनुमान जी ने पहिले ही समझ लि

वचन सुनत कपि मन मुसकाना। भई सहाय सारद मैं जाना॥

यह उनकी बुद्धिमता का परिचायक है। जब निशाचरों ने उनकी पूंछ में लगा दी तो उन्होंने पुनः अपना रूप छोटा कर लिया—

भयउं परम लघु रूप तुरंता।

तुलसीदास जी ने इनके न जलने का कारण यह दिया है—

ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरजा॥

फिर अपनी पूँछ समुद्र में बुझा कर सीता जी से चूड़ामणि लेकर इस पार जाते हैं—

चरन कमल सिरु नाइ कपि गवन राम पहँ कीन्ह।

चलते चलते वे गर्जन कर के अपने पयान की सूचना भी रावण को दे समुद्र के पार पहुँच कर वानरोचित किलिकिला शब्द करते हैं। राम के पास कर रामचन्द्र को चूड़ामणि देते हैं तथा जानकी के कष्ट की कथा कहते हैं। भी कुछ ऐसा आभास होता है कि सीता स्वयं ही अपना दुःखड़ा कह रही है—

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आये जल राजिव नयना।।

हनुमान जी अपनी भक्ति का यहाँ भी परिचय देते हैं—

कह हनुमंत विपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई।।

पुनः

वारबार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठव न भावा।।

राम उन्हें कृपा करके अपनी भक्ति देते हैं—

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी।।

विभीषण जब राम के पास आते हैं और राम सुग्रीव से यह विचार विमर्श करते हैं कि उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाय तो सुग्रीव नीति की ही बात बताते हैं कि इसे बाँध कर रखना चाहिए परन्तु राम कहते हैं कि

सखा नीति तुम्ह नीक विचारी। मम पन सरनागत भयहारी।

यह सुन कर हनुमान प्रसन्न होते हैं—

सुनि प्रभु वचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।

और रामायणों की भाँति हनुमान ने अपना मत प्रकट करते हैं न यह कहते हैं कि जब वे लंका गये थे तो विभीषण ने उनकी सहायता की थी क्योंकि उनकी बुद्धि ने पहिले ही यह बता दिया था कि भगवान इसे अपने शरण में लेंगे और उन्हें अपने भगवान में विश्वास था। वे सिद्ध थे इस कारण उनका विश्वास दृढ़ था—।

कौने हु सिद्धि कि बिनु विश्वासा।

हनुमान जी अपने बल का प्रदर्शन नहीं करते थे जैसा इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है। रावण का गुप्तचर सुक कहता है—

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन मह तेहि बल थोरा।।

अंगद भी हनुमान के विषय में कुछ ऐसा ही कहते हैं। ये तो हनुमान का विपुल बल देख चुके थे—

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन।।
चलइ बहुत सो वीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई।।[1]

यह ठीक भी है क्योंकि तुलसीदास जी ने पहिले ही कहा है कि जो ज्ञानी हैं वे अपने को छिपा कर रखते हैं—

कह नृप जे विग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना।।
सदा रहहिं अपनपौ दुराये। सब विधि कुसल कुवेष बनाये।।[2]

---

[1] तुलसीकृत रामचरित मानस—लंकाकाण्ड।

[2] तुलसीकृत रामचरित मानस—बालकाण्ड।

हनुमान के कुवेष की तो तुलसीदास जी ने पहिले ही दुहाई दी थी—

किएहु कुवेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

हनुमान के बल का परिचय युद्ध के समय विशेष रूप से मिलता है। पहिले युद्ध में—

निज दल विकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहं करई लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥

— — —

कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥

इसके पश्चात् वे लंका के गढ़ पर चढ़ कर रावण के भवन को ही ढहा देते हैं—

कलस सहित गहि भवन ढहावा। देखि निसाचर पति भय पावा॥

मेघनाद के पहिले युद्ध में—

देखि पवन सुत कटक विहाला। क्रोधवंत जनु धायउ काला॥
महासैल एक तुरत उपारा। अति रिसि मेघनाद पर डारा॥
आवत देखि गयउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई॥

इसी युद्ध में जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी और वे मूर्छित हो गए तो मेघनाद उन्हें उठा कर लंका ले जाने का प्रयत्न करने लगा परन्तु कुछ फल नहीं हुआ—

तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥

उसके पश्चात् हनुमान सुषेन नाम के वैद्य को लंका से उनके भवन समेत ले आते हैं—

धरि लघु रूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता॥

इन्हीं को औषधि लेने को भेजा जाता है। यहाँ सुषेन वानर सेनानी नहीं हैं अपितु लंका में रहनेवाले राक्षस वैद्य हैं। रावण द्वारा भेजे हुए कालनेमि से मार्ग में इनकी भेंट होती है—

मारुत सुत देखा शुभ आश्रम। मुनिहि बूझि जल पियों जाय श्रम॥

उससे जब हनुमान ने जल माँगा तो उसने अपना कमण्डलु देना चाहा इस पर हनुमान उसके मायानिर्मित आश्रम के सरोवर में जल पीने गए तो एक मकरी ने उनका पैर पकड़ लिया। उसको जब इन्होंने मार डाला तो दिव्य शरीर धारण कर के वह यान पर चढ़ कर चली गयी। उसी ने यह भी बता दिया कि यह राक्षस है मुनि नहीं है। हनुमान इसे अपनी पूंछ में बाँध कर मार डालते हैं वे जब शैल पर

पहुंचते हैं तो औषधि नहीं पहिचान पाने पर पर्वत को ही उठा कर चल देते हैं—

देखा सैल न औषधि चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥

यहाँ यह कथा भी मिलती है कि भरत द्वारा ये गिराये जाते हैं—

गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुर ऊपर कपि गयऊ॥
देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥ ५८, लंकाकाण्ड।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय वचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥

तब भरत कहते हैं—

जो मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।
तौ कपि होउ विगत श्रम सूला। जौ मो पर रघुपति अनुकूला॥

हनुमान जी तुरन्त उठ बैठते हैं। कदाचित् यह प्रसंग इस कारण जोड़ा गया है कि हनुमान को अपने बल का गर्व हो गया था। भरत जी उनसे कहते हैं—

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जह कृपा निकेता॥

इनके अभिमान की बात इसी स्थान पर है—

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रताप बिचारि बहोरी। वंदि चरन कह कपि कर जोरी॥
तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहऊ नाथ तुरन्त।
अस कहि आयसु पाइ पदवंदि चलेउ हनुमंत॥६०॥

जब राम विलाप कर रहे हैं तभी हनुमान औषधि का पर्वत लेकर पहुँच जाते हैं—

आइ गयउ हनुमन्त जिमि करुना महँ वीर रस।
हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥

जब कुम्भकरण युद्ध में आता है उस समय भी हनुमान से उसका युद्ध होता है—

तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्‍यो धरनि व्याकुल सिर धुन्यो॥

रावण के प्रथम युद्ध में जब रावण लक्ष्मण जी को ब्रह्मप्रदत्त प्रचंड शक्ति मारता है और वे संज्ञाहीन होकर गिर पड़ते हैं तो उन्हें उठा कर लंका ले जाना चाहता है परन्तु अपने मनोरथ में विफल ही रहता है। उसी समय—

देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहि मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥८३॥
जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सम्भारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोंहीं। जौ तैं जियत रहसि सुरद्रोही॥
अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥

वह दसानन जिसने कैलाश को शंभु सहित उठा लिया था वह लक्ष्मण को उठा सका और हनुमान ने उठा लिया इस कारण उसको विसमय होना स्वाभावि ही है। इस प्रकार हनुमान में भार वहन करने का बल, अपनी पूँछ से और मुष्टि से आहत करने का बल रावण से कम नहीं है। रावण के दूसरे युद्ध में भी हनुमा और रावण की लड़ाई होती है—

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धायउ हनुमान गिरिधारी।
रथ सारथी तुरंग निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥

× × ×

पुनि रावन कपि हतेउ प्रचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥
गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एक हनत करि क्रोधा॥
सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं॥
बुधि बल निसचर परइ न पार्‌यो। तब मारुत सुत प्रभु सम्भार्‌यो॥
सम्भारि श्री रघुबीर धीर पचारि कपि रावन हन्यो।
महि परत उठि पुनि लरत देवन्ह जुगल कहु जय जय भन्यो॥

हनुमान जी राम जी के इतने विश्वासपात्र हैं कि इन्हें ही सीता को अ विजय का संदेश देने को भेजा जाता है—

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुशल लै तुम्ह चलि आवहु॥

दूर से ही ये सीता को प्रणाम करते हैं और सब संदेश सुनाते हैं। इनको सीत पुनः आशिर्वाद देती हैं--

सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहु हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहु समेत अनन्त॥

जब हनुमान राम के पास आकर सीता की कुशल सुनाते हैं। तब राम विभीषण को आज्ञा देते हैं कि हनुमान के संग जाकर सीता को ले आओ। पीछे हनुमान ही भरत के पास भी राम का कुशल समाचार ले कर भेजे जाते हैं—

प्रभु हनुमन्तहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनावहु। समाचार ले तुम चलि आवहु॥

जब हनुमान जी भरत जी के पास पहुँचते हैं तो विप्र रूप धारण करते हैं—

राम विरह सागर मह भरत मगन मन हात।
विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥१॥ उत्तरकाण्ड

तब हनुमान उनकी भक्ति को देख कर बड़े हर्षित होते हैं। उनको संवाद देने में भी बड़ी चतुराई का परिचय देते हैं—

जासु विरह सोचहु दिनराती। रटहु निरन्तर गुनगन पांती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता। आयउ कुसल देव मुनि त्राता।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

पहिले भरत जी को सीताहरण तथा लक्ष्मण के शक्ति लगने की बात हनुमान जी ने बताई थी अब वे सीता सहित अनुज को लेकर आने की बात कहते हैं तथा रण जीतने की बात भी बताते हैं जिससे उनका मनोभाव ज्ञात हो जाय। भरत जी पूछते हैं—

को तुम तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय वचन सुनाए॥
मारुत सुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना॥
दीनबन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥

भरत जी समझ नहीं पा रहे हैं कि हनुमान को क्या दें "तो कहु देउ काह सुनु भ्राता।" और

"नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही॥"

अन्य रामायणों में हनुमान को भरत कन्यायें गाँव इत्यादि देते हैं फिर हनुमान जी तुरत राम के पास लौट जाते हैं और उनको सब कुशल समाचार सुनाते हैं। जब सब वानर विदा होते हैं तब सबको तो वस्त्र भूषन मिलते हैं परन्तु हनुमान को यहाँ कुछ नहीं मिलता। जाते समय हनुमान सुग्रीव से राम के पास रहने की आज्ञा माँगते हैं। यहाँ भी अपना विनीत स्वभाव दिखाते हैं—

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भांति विनय कीन्हे हनुमाना॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहउं देवा॥
पुन्यपुंज तुम्ह पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा॥

विनयपत्रिका में हनुमान की स्तुति इस प्रकार मिलती हैं[1]—

जयति निगमागम-व्याकरन-करनलिपि काव्य कौतुक-कला कोटिसिंधो।
साम गायक, भक्त कामदायक वामदेव श्री रामप्रिय प्रेम बंधो॥
. . . .
जयति विहगेस-बलबुद्धि-वेगाति-मदमथन, मनमथमाथन ऊर्ध्वरेता।
महानाटक-निपुन, कोटि कविकुल-तिलक गान गुन-गन्धर्व-जेता॥
. . . .।२

इनका कुछ स्वरूप भी मिलता है—

जयति वात संजात, विख्यात विक्रम, बृहद्बाहु बलविपुल बालधिविसाला।
जातरूप चला कर विग्रह लसत लोम विद्युल्लता ज्वालमाला।
जयति बालार्क-वरवदन, पिंगल नयन, कपिस कर्कस जटाजूटधारी।
विकट भृकुटि, बज्र दसननख, वेरि मदमत कुंजर पुंजकारी।
. . . .।२
जयति सुविसाल विकराल-विग्रह, बज्रसार सर्वांग भुजदण्ड भारी।
कुलिस नख दसन वर लसति वालधि बृहद बैरि सस्त्रास्त्र धर-कुधरधारी।
. . . .।
जयति जय बज्रतनु दसन, नख, मुख विकट, चंड भुजदंड तरु सैलपानी।
. . . .
जयति दसकंठ घटकरन वारिदनाद-कदन कारण कालनेमि हंता।
. . . .।२

यहां इन्हें रुद्रावतार भी कहा है—

जयति मर्कटाधीस मृगराज विक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
. . . .।२६
जयति रनधीर रघुवीर-हित देवमनि रुद्र-अवतार संसारपाता।
. . . .।२

रामायण में तो इनके जन्म तथा बालकाल की लीला की कथा नहीं मिल परन्तु यहां विनय पत्रिका में इसका कुछ विवरण है—

---

[1] तुलसीदास—विनयपत्रिका, गीता प्रेस।

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत विधु विबुध कुल कैरवानन्दकारी।
केसरी चारु-लोचन-चकोर सुखद, लोकगन सोक संतापहारी॥
जयति जय बालकपि केलि कौतुक उदित चंडकर मंडल ग्रासकर्ता।
राहु-रवि-सक्र पवि गर्व खर्वीकरन सरन भयहरन, जय भुवन भर्ता।
जयति रनधीर रघुवीर-हित देव मनि रुद्र-अवतार संसार पाता॥

विनयपत्रिका में तुलसीदास जी ने इन्हें संकटमोचन, विद्याविशारद, काल, कर्म तथा माया का नाश करनेवाला भी कहा है[1] –

सुमिरत संकट सोच विमोचन मूरति मोद निधान की।
जयति मर्कधीस मृगराज विक्रम महादेव मुद मंगलालय कपाली॥
जयति पर जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता।
साकनी-डाकनी-पूतना-प्रेत-वैताल-भूत प्रमथ-जूथ जंता॥
जयति वेदान्तविद, विविध विद्या-विशारद-वेद वेदांग-विद ब्रह्मवादी।
ज्ञान वैराग्य विज्ञान भाजन विभो! विमलगुनगनत सुक नारदादी॥
जयति कालगुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-ज्ञानव्रत, सत्यरत, धर्मचारी।
सिद्धि-सुरवृन्द-जोगीन्द्र-सेवित सदा दास तुलसी प्रनत भय तमारी॥२६

. . . .

रित अति भीति ग्रह प्रेत चौरानल व्याधिबाधा समन घोर मारी॥
. . . . ।२८

इस विनय की कविता में तुलसीदास जी ने इन्हें जन्त्र, मंत्र द्वारा अभिचार को ग्रसनेवाला, साकनी, डाकनी, पूतना, प्रेत, वैताल, भूत, प्रमथ को जीतनेवाला तथा वेदान्तविद, विविध विद्याओं का विशारद, वेदों को जाननेवाला ब्रह्मत्व का निरूपण करने की सामर्थ्य रखनेवाला कहा है। इन्हें भय रूपी तम का नाश करनेवाला बताया है। दूसरे छन्दों में इन्हें भूमि पाताल जल गगनगंता, सामगाता, नृत्यकारी, निगमागम करन लिपि काव्यकौतुक विशारद, महानाटक-निपुन गान गुन गर्व गन्धर्व जेता कहा है।[2]

---

[1] तुलसी ग्रंथावली—काशी नागरी प्रचारिणी सभा—सं० १९८० प्र० सं०, पृष्ठ ४७५-४७६।

[2] उपर्युक्त पृष्ठ ४७३-४७५

अघट-घटना-सुघट, सुघट विघटन विकट भूमि, भूमि, पाताल, जल गगनगं

. . . .

सामगाताग्रणी, कामजैताग्रणी, रामहित रामभक्तानु

. . . .

जयति सिंहासनासीन सीतारमन निरखि निर्भर हरष नृत्यका

. . . . ।१२

विप्र सुर सिद्ध मुनि आशिषाकर-वपुष-विमल गुन बुद्धि वारिधि विधा

. . . .

यहाँ इनके महाभारत में अर्जुन की पताका पर वैठने की वात भी मिलती है—

जयति भीमार्जुन-व्याल सूदन-गर्वहर धनंजय रथत्रान के

हनुमान वाहुक में भी इनके वालकाल के विषय में कुछ विवरण मि है—[2]

भानु सों पढ़न हनुमान गये भानु मन अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो
पाछिले पर्गनि गय गगन मगन-मन क्रम को न भ्रम कपि वालक-विहार सो
कौतुक विलोकि लोकपाल हरिहर विधि लोचननि चकाचौंधी चितनि खभारसो
वल कैधों वीर रस, धीरज कै, साहस कै तुलसी सरीर धरे सवनि को सारसो

इस पद से यह पता लगता है कि इन्होंने सूर्य से विद्या प्राप्त की थी। सू की ओर[3] मुख कर के पीछे की ओर चलते हुए इन्होंने विद्या अध्ययन किया था

महाभारत में ये जव अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान हुए तो उ समय का विवरण भी हनुमान वाहुक में मिलता है—

भारत में पारथ के रथ केतु कपिराज, गाज्यो सुनि कुरुराज दल हलचल भो
कह्यो द्रोन भीषम समीर सुत महावीर, वीर रस वारि निधि जाको वल जल भो
वानर सुभाय वालकेलि भूमि भानु लागि फलंग फलांगहुते घाटि नभतल भो
नाई-नाइमाथ जोरि जोरि हाथ जोधा जोहैं हनुमान देखे जग जीवन को फल भो

---

१. यहाँ इनको भूमि, पाताल, जल, गगनगंता कहने से ऐसा ज्ञात हो है कि तुलसीदास जी इनके समुद्र तट तक जाने, समुद्र-लंघन आकाश मार्ग से संजी वनी लाने तथा महिरावण से पाताल में जाकर युद्ध की ओर संकेत कर रहे हैं

२. तुलसीदास—हनुमान बाहुक—टीकाकार महावीर प्रसाद माल वैद्य—गीता प्रेस, गोरखपुर सं० २०२२, पृष्ठ ७-८।

रामायण की कथा का संक्षेप विवरण यहाँ प्राप्त होता है—

गोपद पयोधि करि होलिका ज्यों लाई लंक निपट निसंक पर पुर गलवल भो।
द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर कंदुक ज्यों कपि खेल वेल केसो फल भो।
संकट समाज असमंजस भो रामराज काज जुग पूगनि को करतल पल भो।
. . . . ॥६॥

सिंहिका संहारि वल, सुरसा सुधारि छल लंकनी पछारि मारि वाटिका उजारी है।
लंक परजारि मकरी विदारि वार वार, जातुधान धारि धूरधानी करि डारी है।
तोरि जमकातरी मंदोदरी कढ़ोरी आनी रावन की रानी मेघनाद महतारी है।
भीर वांहपीर की निपट राखी महावीर कौन सो सकोच तुलसी के सोच भारी है।

हनुमान वाहुक में इन्हें संकटहरन कहा गया है—

देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग छोटे वड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान वाम रामदूत की रजाइ माथ मान लेत हैं।
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुरोग जोग हनुमान आन सुनि छाड़त निकेत हैं।
क्रोध कीजै कर्म को प्रवोध कीजे तुलसी को सोध कीजे तिनको जो दोष देत हैं।

इस प्रकार तुलसीदास ने रामचरित मानस में हनुमान को राम का अनन्य भक्त, अतुलित वलशाली, वुद्धि का सागर, ज्ञान का निधान, गरुड़ के समान शीघ्रगामी, वड़े-वड़े पहाड़ों को उठाने में समर्थ, विनम्र तथा सभाचतुर के रूप में प्रदर्शित किया है। यहाँ उनके जन्म की कथा नहीं मिलती।

कवितावली में भी उन्हें साहसी रामभक्त, वलवान इत्यादि कहा गया है—

जव अंगदादिन की मतिगति मंद भई, पवन के पूत को न कूदिवेको पलुगो
साहसी के सैल पर सहसा सकेलि आई, चितवन चहूँ ओर, औरनि को कलुजो।
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो कोल कलमल्यो, अहि कमठ को वलुगो।
चारिहु[1] चरन के चपेट चापे चिपटि गो उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥१॥

जव लंका में हनुमान ने आग लगा दी—

लाइ लाइ आगि भागे वालजाल जहाँ तहाँ लघु ह्वै गिरि मेरु ते विहाल भो।
कौतुकी कपीसु कूदि कनक कंगूरा चढ्यो रावन भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहि काल भो।
तुलसी विराज्यो व्योम वालधी पसारि भारी देखे हहरात महा कालु सों कराल भो।
तेज को निधानु मानो कोटिक कृसानु-भानु नख विकराल मुख तैसो विकराल भो।

इस प्रकार तुलसीदास जी ने इनको पग-पग पर राम भक्त, राम का दास, वल वुद्धि का सागर, संकट हर, ज्ञानी दरसाने का प्रयत्न किया है।

---

[1] कवितावली—गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ ३९।

काश्मीरी राम कथा जिसे राम अवतार चरित कहते हैं १८वीं शता लिखी गयी। इसके लेखक दिवाकर भट्ट थे।[१] हो सकता है कि इस ग्रंथ का कोई प्राचीन कृति रही हो परन्तु अभी तक वह सामने नहीं आयी है। यों १६वीं शताब्दी के बने कुछ राम कथा के काश्मीरी चित्र मिले हैं जिनमें एक की राजगद्दी का चित्र है। इसमें वानर वीर उनके सामने खड़े हैं। यह कथा पार्वती के संवाद के रूप में प्रस्तुत की गयी है। प्रायः इस काल तक जितना के चरित्र का विकास हुआ है वह सब यहाँ मिलता है। एक कथा यहाँ विशेष मिलती है कि नारद सीता की खोज करने को गए हुए हनुमान को लंका में चरित सुनाते हैं।

माधव कृत माधव कंदली रामायण आसाम में प्रचलित है।[२] इसके पाँच अयोध्या से युद्ध काण्ड तक माधव कृत माने जाते हैं। शंकर देव को उत्तर का तथा उनके शिष्य माधव देव को आदि काण्ड का रचियता माना जाता है। रामायण प्रायः वाल्मीकि के रामायण पर आधारित है तथा कृत्तिवास की से प्रभावित है। इसमें हनुमान का चरित्र प्रायः वैसा ही दिखाया गया है कृत्तिवास ने वर्णन किया है। यहाँ समुद्र लंघन के समय सुरसा से हनुमान भेंट सब से पहिले होती है, कालनेमि का वृत्तान्त भी श्री रामचरित मानस भाँति यहाँ भी मिलता है। हनुमान अशोक वाटिका को उजाड़ने के पूर्व ब्राह्मण का रूप धारण कर के रावण से मिलते हैं। शंकर देव ने उत्तर वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही लिखा है। इस कारण इसमें हनुमान वही चरित्र प्राप्त होता है जो वाल्मीकि रामायण में है।

मलयालम की प्राचीन रामायण का नाम रामचरितम या रामचरित है प्रायः १५वीं शताब्दी में लिखी गयी थी। इसके रचयिता ट्रावेन्कोर के एक थे।[३] इसमें केवल वाल्मीकि के युद्ध काण्ड की सामग्री है तथा यह प्रायः वा रामायण का अनुवाद मात्र है। इसी प्रकार मलयालम की आध्यात्मरामा संस्कृत की अध्यात्म रामायण का अनुवाद ही है। मलयालियों में यह लोकप्रिय रामायण है।

---

[१] जी० ए० ग्रियरसन—दी काशमीरी रामायण कलकत्ता—१८ बुल्के—रामकथा, पृष्ठ २३६-२३७।

[२] बुल्के—वही, पृष्ठ २३६-२३७।

[३] आर० नारायण पणिक्कर—भाषा साहित्य चित्रम्, भाग १, पृष्ठ १७२।

कन्नड़ की रामकथा तोरवे रामायण नामक ग्रंथ में प्राप्त होती है। यह वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ पर आधारित है[1] परन्तु इस ग्रंथ के कुछ कथानक आनन्द रामायण से भी लिए हुए ज्ञात होते हैं जैसे कालनेमि का वृतान्त जिसमें हनुमान कालनेमि को मारते हैं। यह वर्णन तुलसीकृत रामचरित मानस से मिलता हुआ है। इसी प्रकार हिमालय यात्रा के समय भरत और हनुमान का परस्पर दर्शन तथा युद्ध के समय मंदोदरी का केश ग्रहण इत्यादि। इस रामायण में राम की भक्ति का प्रतिपादन है। लंका दहन के वर्णन में आनन्द रामायण के सदृश जव स्त्रियों के कपड़े उतारा जाना और हनुमान की पूँछ वाँधने को कपड़ा लंका में नहीं रह जाता तथा व्रह्मा के अनुरोध पर हनुमान का अपनी पूँछ वढ़ाना वन्द करना तथा अंजना की जन्मकथा, अभिज्ञान स्वरूप राम का सीता के साथ चित्रकूट में जल क्रीड़ा का वर्णन हनुमान को वताना तथा हनुमान का राम का उच्छिष्ट खाना, सेतु वाँधने के समय मछलियों का सेतु पर आक्रमण तथा हनुमान का मछलियों की रानी से सम्भोग, माया सीता के वध की सच्चाई की परीक्षा के हेतु हनुमान का लंका जाना, हनुमान का लंका जाकर अंगद को ले आना, औषधि पर्वत का अपने आप अदृश्य हो जाना, समुद्र लंघन के पश्चात् तृण विन्दु से हनुमान की भेंट आनन्द रामायण के आधार पर नहीं है।

हरिवर विप्र कृत लवकुशेर युद्ध[2] में केशव कृत रामचन्द्रिका की भाँति राम की सेना से लव कुश का युद्ध वर्णित है। यह ग्रंथ भी प्राचीन है। हो सकता है कि यह १५वीं शताब्दी का हो। उड़िया साहित्य की प्राचीनतम राम कथा सिद्धेश्वर परिडा ने लिखा। यह अप्राप्य है। यह १५वीं शताब्दी की कृति मानी गयी है।[3] वलराम दास कृत जगमोहन रामायण का प्रचार अधिक हुआ। यह प्रायः १६वीं या १७वीं शताब्दी की कृति है। यह कथा वाल्मीकि रामायण के आधार पर होती हुई भी वहुत कुछ परिवर्तित तथा परिवर्धित है। सरलादास की महाभारत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इसकी रामायण में हनुमान को रुद्रावतार माना गया है तथा इनके 'वज्र कोपीन' का भी उल्लेख है तथा इनको व्रह्मचारी माना गया है। इसमें हनुमान तथा नल के कलह का भी वर्णन प्राप्त होता है। वलराम दास कृत जगमोहन रामायण में

---

१. वुल्के—रामकथा—पृष्ठ २२८-२३०।

२. वुल्के—वही, पृष्ठ २४४।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ २५५-२५७।

हनुमान की हिमालय यात्रा में कालनेमि की भेंट की कथा कृत्तिवास रामायण के सदृश ही है।

मराठी में एकनाथ की रामायण मिलती है। इसका नाम भाव रामायण है।[1] इसमें वर्णित हनुमान की कथा में अधोलिखित कुछ विशे तायें मिलती हैं जैसे हनुमान के लंका में पहुँचने पर विभीषण के घर प्रवेश तथा उसे राम कीर्त्तन में संलग्न देखना। लंका में हनुमान का उत्पा रावण की सभा में अपनी पूँछ को कुंडलाकार करके वैठना तथा दहन पूर्व हनुमान का रावण को उत्तेजित करना तथा कहना कि उनकी पूंछ तव तक आग नहीं लग सकती जव तक वह अपने मुख से फूंके नहीं त रावण का फूंकना और उसकी दाढ़ी का जलना, हनुमान की वीरता प्रशंसा में ब्रह्मा का पत्र, हनुमान के गर्व का औषधि लाते समय निवार हनुमान के पुत्र की उत्पत्ति की कथा महिरावण के प्रसंग में, दशरथ के यज्ञ पायस से हनुमान के उत्पत्ति की कथा। इनका कोपीन पहिने हुए जन्म, हनुमा के वरदान की कथा जिसके अनुसार राम ने उन्हें यह आशीर्वाद दिया कि ज भी रामकथा हो वहाँ वह उपस्थित रहें। ये सव इसकी विशेषतायें हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा साहित्य में हनुमान के चरित का स वाल्मीकि रामायण में दिए हुए चरित से परिवर्तित तथा परिवर्धित हैं। प्रय सभी स्थलों पर इनको राम भक्त के रूप में प्रदर्शित करने का स्पष्ट दिखाई दे है। चाहे वह उत्तर प्रदेश के साहित्य में हो अथवा और दूसरे प्रदेशों के साहि में हो।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ २५५-२५७।

विदेशों में हनुमान का चरित्र

भारत के वाहर भारतीय सम्यता का जो प्रचार हुआ तो दक्षिण अमेरिका के पीरू योरप के रूमानिया, जावा, सुमात्रा, कम्वोडिया, थाईलैण्ड, वर्मा, चीन, तिव्वत, खोतान में भी रामकथा पहुँच गयी। हनुमान का चरित्र इसका अभिन्न अंग वन जाने के कारण इसका भी प्रचार प्रसार तथा परिवर्धन हुआ। भारत की राम लीला की भाँति आज भी राम कथा का अभिनय, कम्वोडिया, जावा, थाईलैण्ड, वर्मा में होता हैं। कम्वोडिया में मनीपुर की भाँति मुख पर चेहरा लगा कर पात्र मूक अभिनय करते हैं। हनुमान का चेहरा श्वेत रंग का रहता है तथा सुग्रीव का लाल रंग का। हनुमान का चेहरा देखने में वड़ा भयंकर लगता है। इसमें मस्तक पर टोपी रहती हैं। यहाँ इसे रेआम कहते हैं। प्रायः रामायण की कथाओं को कई अंशों में विभाजित कर के अभिनय होता है। इसमें अधिक अभिनीत कथानकों में हनुमान के चरित्र से सम्वन्धित सुवानमाछा (सुवर्णमत्स्या) द्वारा हनुमान का विमोहन तथा तथा शोकातुर सीता के पास राम का समाचार लाना मुख्य है।[1] प्रायः सोलहवीं शताब्दी में कम्वोडिया की प्राचीन अभिनय पद्धति का अन्त हो गया था। उस काल में इन लोगों के राजा शिशोनाथ ने इसका पुनरुद्धार किया और थाइलैण्ड से इसके हेतु नर्तकियाँ वुलवाईं। यहाँ का नृत्य प्राचीन भारतीय नृत्य की भाँति रंग देवता की पूजा से प्रारम्भ होता है।[2] पहिले कर्णधार या सूत्रधार नृत्य के अधिष्ठाता देवता की वन्दना करता है और नर्तक सिर पर नैवेद्य लेकर आठ दिग्पालों को समर्पण करते हैं। एक नर्तकी नारियल का जल और दूसरी सुरा समर्पण करती है फिर सव अभिनेता धान का लावा चारों दिशा में छिड़कते हैं। कर्णधार स्वयं कृषि का मुकुट धारण करत है और उसके पश्चात् रावण को मुखावर्त पहिनाता है, इसके पश्चात् अभिनेता को मुकुट पहिनाता हैं। स्त्री पात्रों को पवित्र जल में डुवो कर एक सूत्र देता है तथा चावल के पानी में घोली हुई सुरभि का तिलक

---

[1] जोन्स, सर, विलियम—दी वर्क्स—लन्दन १७९९ खं० १, पृष्ठ ३०।

[2] भरत नाट्य शास्त्र—१, १२३। इन लोगों का सब से बड़ा उत्सव राम सिताओ है।

लगाता है। उन्हें आशिर्वाद देकर नृत्य का आरम्भ कराता है।[1] इसके अतिरिक्त यहाँ चर्म पट के आधार से छाया नाटक के रूप में भी कथा दिखाई जाती है। हनुमान का चित्र जो बनाया जाता है उसमें उनको मस्तक पर ऊँचा मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में तौक, वक्षस्थल पर तौक और हार, मणिवन्धों पर कंकण, बाहुओं पर केयूर, कटि में करधनी, पैरों में पायजेब पहिने दिखाया जाता है। ऊपर का अंग वस्त्ररहित रहता है परन्तु नीचे के अंग में धोती रहती है, मुख तथा पैर इनके बन्दर के रहते हैं। पूँछ लम्बी रहती है और शरीर मनुष्यों के ऐसा रहता है। इनके एक हाथ में तलवार रहती है और दूसरी मुट्ठी बाँधे हुए रहती है, प्रायः इन्हें आकाश मार्ग से जाते हुए ही दिखाया जाता है।[2]

थाईलैण्ड में इसी प्रकार राम कथा को रामकियेन (राम कीर्ति) कहते हैं; यहाँ भी चेहरा लगा कर ही अभिनय होता है। इस कारण पात्र बोल नहीं सकते। इनका पाठ या वार्तालाप कोनपाक नामक एक सूत्रधार बोलता रहता है। कथोपकथन के अभाव में मुद्रायें, पदाघात, संगीत तथा कोनपाक की कथा का पाठ ही अभिनय को पूरा करता है। प्रत्येक पात्र के हेतु गति, लय तथा मुद्राओं का सम्यक् ज्ञान आवश्यक होता है। इस अभिनय का कथानक रामकियेन से ही लिया गया है। थाई में प्रथम रामकियेन वर्तमान चक्री राजवंश के संस्थापक महाराजा राम प्रथम ने लिखा। राम द्वितीय का रामकियेन (१८०९-१८२४) संक्षिप्त है परन्तु रंगमंच के हेतु लिखा गया है। अभिनय मण्डली अपने सुविधानुसार कथानक में परिवर्तन भी करती रहती है। राम षष्ठ ने जो रामकियेन लिखा उसका आधार वाल्मीकि रामायण ही है (१९१०-१९२५); यही आजकल चालू है। अभिनय की दृष्टि से पात्रों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है, यथा—पुरुष, स्त्री, राक्षस तथा वानर। इनके प्रशिक्षण के हेतु थाई में राज्य द्वारा निर्मित एक ललित-कला विभाग है। गुरु पात्र बनने के इच्छुक व्यक्तियों को उपरोक्त चार श्रेणियों में बाँट कर शिक्षा देना प्रारम्भ करते हैं। सर्वप्रथम इन्हें शास्त्रीय ढंग से प्रणाम करना सिखाया जाता है। इसके पश्चात् ताम्राफोन-राम नामक ग्रंथ में वर्णित दूसरी मुद्रायें सिखाई जाती हैं, जैसे हनुमान के यक्ष को मारने की मुद्रा में जिसे हनुमान फ्लान याक कहते हैं। इस पुस्तक में प्रायः ६८ मुद्रायें हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही एक दूसरे का अभिनय

---

[1] डा० लोकेशचन्द्र—एशिया के हृदयांचलों में राम—धर्मयुग—२३-१०-१९६६, पृष्ठ १२।

[2] उपर्युक्त चित्र, पृष्ठ १२ पर।

कर सकते हैं। वेष-भूषा पात्रानुसार होती है। पुरुषों की वेशभूषा उदात्त, सम्पन्न तथा गाम्भीर्य का द्योतक तो नायिकाओं की सौन्दर्य तथा शीलपूर्ण आचार का और राक्षसों का उग्रता का द्योतक रहती है। वानरों की वेशभूषा में इसके विपरीत चंचलता दृष्टिगोचर होती है। रथ की भाँति का मंच, धनुष-बाण, त्रिशूल इत्यादि सभी रामकथा को सजीवता प्रदान करते हैं। प्राय: चेहरे से पात्र पहिचाने जा सकते हैं परन्तु आज देवता तथा मनुष्य पात्र चेहरा नहीं लगाते परन्तु इनके मुकुटों के रंग से उनको पहिचाना जा सकता है। राम का मुकुट हरा, भरत का लाल, लक्ष्मण का पीला तथा शत्रुघ्न का जामुनी रंग का रहता है। प्राय: भारत की भाँति यहाँ लीला खुले आकाश के नीचे होती हैं। सामान्यत: रामायण की एक या दो लीलाओं के दृश्य उपस्थित किये जाते हैं।

थाई में लीला के अतिरिक्त रामायण का अभिनय कम्बोज की भाँति छाया नाटक के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। इसे नाड् कहते हैं। इस शब्द का अर्थ होता है चमड़े की पुतली। चमड़े को घिस कर चिकना कर लिया जाता है और उस पर कलाकार चित्र बनाते हैं फिर चित्र के रिक्त स्थानों को काट डाला जाता है। इसके उपरान्त इसे गहरे रंग से रंगते हैं पर जिस पट पर छाया पड़ती है वह श्वेत वस्त्र का होता है। इसके दोनों ओर रंगीन कपड़े के परदे रहते हैं। दो नाड् धारक दो मोमबत्तियाँ शिव तथा विष्णु की अर्चना के हेतु जलाते हैं। इसके पश्चात् शिव तथा विष्णु की संगीत के द्वारा प्रार्थना की जाती है फिर नाड् धारक घोषणा करते हैं कि रामकियेन पट पर दिखाया जायगा।

थाई की रामकियेन की कथा प्राय: कम्बोज की कथा के सदृश ही है यह वाल्मीकि रामायण और रामकियेन से कुछ मिलती हुई है। यहाँ भी हनुमान का जन्म अंजना तथा पवन के सम्बन्ध से होता है। लक्ष्मण से इनका युद्ध होता है तथा अपनी माता के बताये हुए संकेत के आधार पर ये राम को नारायण पहिचान कर अपने को उनकी सेवा में अर्पित करते हैं तथा राम और लक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाते हैं। बाली मृत्यु के समय आहत होने पर अंगद, सुग्रीव तथा अपनी पत्नी को राम के सुपुर्द करता है तथा हनुमान को उनकी सेवा के हेतु उपयुक्त बताता है। रामकियेन में यह भी कथा मिलती है कि सुग्रीव जम्बू के डर से राम की सहायता नहीं करता तब लक्ष्मण जम्बू को एक पत्र लिख कर यह बताते हैं कि राम विष्णु के अवतार हैं परन्तु उसे विश्वास नहीं होता। इस पर हनुमान तथा सुग्रीव जम्बू को हरण कर के राम के पास लाते हैं तथा राम को देख कर वह अपनी सारी सेना उनकी सहायता को देता है। इसके पश्चात् जम्बू या जाम्बवान ज्योतिष से विचार कर के राम को बताता है कि सीता ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया है तथा रावण उनसे

४० घनु की दूरी पर रहता है वह स्वयं वहाँ जाने में असमर्थ हैं। इस पर और वानरसेनापतियों को लंका जाकर इस तथ्य की जाँच करने का प्रस्ताव हैं। सब को इस कार्य करने में असमर्थ पाकर हनुमान को लंका जाने का देते हैं। हनुमान लंका जाने को इस शर्त पर तैयार होते हैं कि राम उनके एक पत्तल में खायें। इस पर राम हनुमान को स्नान कर आने का आदेश फिर हनुमान और राम एक पत्तल में खाते हैं तथा हनुमान लंका जाते (अध्याय २२)। जब हनुमान सीता की खोज करने को चलते हैं तो इन्हें ग्रंथ में स्वयंप्रभा के स्थान पर पुष्पमाली नाम की स्त्री मिलती है। यहाँ इस स्त्री से रमण करके उसे स्वर्ग भेज देते हैं। वह एक अप्सरा कही गयी है रम्भाहरण में मयन के राजा की सहायता करने के कारण अभिशप्त हुई (अध्याय ३३), हनुमान इसके पश्चात् जब समुद्र लाँघते हैं तो नारद के में पहुँच जाते हैं। वहाँ वे नारद मुनि से रात भर रहने का स्थान माँगते नारद उनको एक कुटी के पास ले जाते हैं। हनुमान नारद की परीक्षा लेने हेतु अपना शरीर बहुत बड़ा करते हैं इस पर नारद कुटी का आकार बढ़ाते फिर जब ये अपने शरीर को और बढ़ाते हैं तो नारद तपोबल से अत्यन्त पानी की वर्षा करते हैं जिससे हनुमान को अपना शरीर छोटा करना पड़ता

थाईलैण्ड की राजधानी बांकाक में एक बुद्ध का मंदिर है जिसमें बुद्ध एक बैठी हुई भूमि स्पर्श मुद्रा में मूर्ति है। यह मूर्ति हरे जेड पत्थर की है जो बुद्ध की मूर्ति के नाम से विख्यात है। इस बुद्ध मंदिर को वात फ्रो केओ कहते इसके चारों ओर दालानें बनी हुई हैं जिनके पूर्व दक्षिण और पश्चिमी भीतों चित्र बने हुए हैं। ये चित्र रामकियेन नामक थाईलैण्ड के ग्रंथ पर आधारित इसी प्रकार वात बुद्धरसावन् सोमदेत फ्रा बुद्धघोसा चर्मनामक भवन में १७ वीं शताब्दी के चित्र है। वात रुतवुराना नामक विहार की भित्ति भी के चित्रों से परिपूर्ण हैं। ये चित्र प्रायः बांकाक के वाथ सुथात हैं तथा बड़े सजीव हैं। एक में रावण अपनी प्रजा से प्रयाण के पूर्व विदा है इसमें नियति की विडम्बना का स्पष्ट चित्र दिखाई देता है। करुण रस चित्र ओतप्रोत है। इसी प्रकार वात फो जो बांकाक के राज्य प्रासाद के उसके द्वार पर भी रामायण के चित्र मोतियों द्वारा खचित हैं। इतना ही थाई की कलाकृतियों पर भी रामायण के चित्र देखने को मिलते हैं। का अर्थ है राम कीर्ति। यह कथा वाल्मीकि की रामकथा से कुछ भिन्न है। राम की दो वानर सेनायें थीं। एक खीतखिन् (किष्किन्धा) में तथा जाम्बू में। रामकियेन की सब से प्राचीन हस्तलिखित प्रति जो उपलब्ध है

१७ वीं शताब्दी की है।[1] रामकियेन के पात्र सब श्याम के निवासी हैं तथा घटना स्थल भी सब श्याम में ही बताये गए हैं। हनुमान और नल का समुद्र बनाने के समय कलह होता है जिसका निपटारा राम करते हैं।[2] राम को अहिरावण द्वारा पाताल ले जाने की कथा भी यहाँ मिलती है।[3] यहाँ अंगद वाली तथा मंदोदरी का पुत्र है।[4] यहां भस्मालोचन की भी कथा मिलती है। हनुमान की प्रेम लीलायें भी यहां जैन पद्म पुराण की भाँति मिलती हैं। यहाँ ये स्वयंप्रभा, वेंजकाया, सुवर्णमच्छा नामक नागकन्या वानरी अप्सरा के अतिरिक्त मंदोदरी से भी क्रीड़ा करते हैं और उसके संजीवन यज्ञ को भंग करने के हेतु दसकंठ के रूप में पहुंच कर उसका आलिंगन करते हैं।[5] एक दिन ये रावण के पास पहुँच कर राम की निन्दा करते हैं और रावण की ओर से युद्ध करने का प्रस्ताव करते हैं तथा एक दिन युद्ध भी करते हैं। इन्हें रावण पुरस्कार स्वरूप इन्द्रजीत की सारी सम्पत्ति देता है और मंदोदरी के साथ एक रात्रि बिताने की भी आज्ञा देता है।[6]

दूसरे दिन जब हनुमान सरोवर में स्नान करने जाते हैं तो एक जोंक उनके ठुड्ढी में चिपक जाती है जिसे ये हटा नहीं पाते तब ये नारद के पास आकर क्षमा याचना करते हैं और जोंक अपने आप गिर जाती है।[7] लंका पहुँचने पर इनकी लंका से भेंट होती है जैसे वाल्मीकि रामायण में बताया गया है। लंका में ये उत्पात भी करते हैं। सीता के दर्शन के समय ये उसी समय पहुँचते हैं जब वे अपनी वेणी से अपनी ग्रीवा में फाँसी लगा चुकी थीं। ठीक समय पर पहुँच कर ये उनके वेणी की गाँठ खोल देते हैं (अध्याय १४)।

सेतुवन्ध के पूर्व विभीषण की पुत्री बेंजकिया रावण की आज्ञा से सीता के रूप में नदी में मृतवत् बहती हुई जाती है। इस दृश्य को देख कर राम के

---

[1] डा० लोकेशचन्द्र—एशिया के हृदयांचलों में भगवान राम—धर्मयुग पृष्ठ १२।

[2] पी० खाइसगुट—एतूड सूर ला लितरा त्यूर सिआमीज (पारी १९५१) पृष्ठ ५७६।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ६१४।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ६१३।

[5] उपर्युक्त, अध्याय २३. २५, २६, ३१, ३४।

[6] उपर्युक्त, अध्याय ३५।

[7] बुल्के—रामकथा, पृष्ठ ४९९।

निराश होने पर हनुमान उसे जलती हुई चिता पर रख देते हैं इस पर वह अ वास्तविक रूप में प्रकट हो जाती है। पीछे उसे राम हनुमान के साथ लंका देते हैं। हनुमान बेंजकिया को लुभा कर उससे एक पुत्र भी उत्पन्न करते है (अध्याय २५)[1] सेतुबन्ध के समय रावण अपनी नागकन्या स्वर्णमच्छा सेतु नष्ट करने को भेजता है। जब वह अपनी सेना के साथ सेतु को नष्ट क लगती है तो हनुमान पहुँच कर उससे सेतु पुनः बनवाते हैं तथा उससे एक पु मच्छानु उत्पन्न करते हैं।[2] समुद्र पार करने पर लंका के पास एक मनोहर दिखाई देता है। यह वन भानुराज ने राम की सेना को आकर्षित क भूमि के नीचे खींच लेने को अपने मस्तक पर धारण किया था। हनुमान भू में प्रवेश करके उसे मार डालते हैं। (अध्याय २६), रावण के गुप्तचर सुक्ष्म जब गीध के रूप में राम की सेना में प्रवेश करते हैं तब विभीषण के संकेत हनुमान उसे पकड़ लेते हैं।[3]

रामकियेन के अनुसार इन्द्रजीत जब ब्रह्मास्त्र से लक्ष्मण तथा वानर से को बहुत आहत कर देता है तब राम मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं तथा सुषेण कहने पर हनुमान औषधि लेने को भेजे जाते हैं। इसी प्रकार यहां हनुमान तीन बार औषधि लेने जाना पड़ता है—यहाँ एक बार कुम्भकरण की शक्ति से (अध्याय २८), फिर इन्द्रजीत के ब्रह्मास्त्र से (अध्याय ३०), तथा उसके पश्चा रावण की शक्ति से (अध्याय ३३), लक्ष्मण संज्ञाहीन होते हैं। तीनों बा हनुमान जाते हैं। कुम्भकरण अपनी ओक्ख शक्ति नामक भाले से लक्ष्मण मूर्छित करता है तथा हनुमान उनकी चिकित्सा के हेतु औषधि तथा पाँच नदियों जल लेने जाते हैं। यह जल भरत के पास बताया गया है। हनुमान हिमालय से औष और अयोध्या से जल ले आते हैं।[4] इसके पश्चात् जब कुम्भकरण अपनी शक्ति जगाने को यज्ञ करना आरम्भ करता है तो उसे अंगद तथा हनुमान विध्वंस करते है इसी प्रसंग में यह भी कथा मिलती है कि कुम्भकरण अपना शरीर बढ़ा कर वान की ओर आती हुई नदी के प्रवाह को रोक देता है। इस पर हनुमान प्यासे वान के दुःख को निवारण करने के हेतु उस पर पद प्रहार करते हैं जिससे वह जाता है।

---

[1] बुल्के, रामकथा पृष्ठ ५५३।

[2] उपर्युक्त, पृष्ठ ५५२।

[3] उपर्युक्त, पृष्ठ ५५४।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ५७१।

इस ग्रंथ के अनुसार रावण कई मायावी योद्धाओं को राम से लड़ने को भेजता है। सहस्रतेज नामक राक्षस के पास एक ऐसी गदा है कि उसके अग्रभाग को जिसके भी सामने कर दे वही तत्काल मर जाय। उसके इस आयुध का रहस्य समझ कर हनुमान उसके पास पहुंच कर अपने को वाली का दास घोषित करके उसके विश्वासपात्र वन जाते हैं और उससे उस गदा को देखने के वहाने ले कर उसी के सम्मुख कर देते हैं। जव वह मर जाता है तो उसके सहस्र शीशों को काट कर राम के पास ले आते हैं। इसकी मृत्यु के पश्चात् सागं आदित्य नाम का राक्षस भेजा जाता है। इसके पास ऐसा दर्पण है जिसका अक्स यदि किसी पर पड़ जाय तो वह वहीं मर जाय। अंगद इस दर्पण को प्राप्त कर लेते हैं तथा राम उसे मार डालते हैं। सिद्धासुर ऐसा प्रतापी है कि वह इच्छानुसार देवताओं के आयुधों को मंगा सकता है। हनुमान को जव इसका पता लगता है तो वे वानरों की सेना को आकाश में स्थित कर देते हैं। और उन्हें यह आदेश देते है कि जव उस राक्षस के स्मरण करने पर देवता आयुध भेजें तो वे उन्हें वीच में ही ले लें। यह प्रवन्ध करके हनुमान उसे युद्ध के हेतु आह्वान करते हैं। सिद्धासुर आयुधों का आवाहन करता है परन्तु वीच में ही वानर उनको ले लेते हैं, इस प्रकार हनुमान उसका वध करने में समर्थ होते हैं। उसकी मृत्यु के पश्चात् विरूंचवंग एक अदृश्य घोड़े पर चढ़ कर युद्ध के हेतु आता है। उसके घोड़े को राम नष्ट कर देते हैं परन्तु वह स्वयं माया कर के वच जाता है तथा आकाश नामक पर्वत की सृष्टि करके उसमें छिप जाता है। वहाँ उसकी भेंट एक वानरी से होती है जो उसे समुद्र के फेन में छिप जाने की सलाह देती है। यह वानरी वास्तव में एक शापित अप्सरा थी। विरूंचवंग की खोज में लीन हनुमान की भेंट इस अप्सरा से होती है। इसके साथ ये रमण करते हैं। अप्सरा प्रसन्न हो कर उनको विरुंचवंग का पता वता देती है। इस पता के आधार पर हनुमान उसे खोज कर उसका वध कर देते हैं।[1] (अध्याय ३१)।

रामकियेन में मैरावण की कथा इस प्रकार है। रावण जव मैरावण को बुलाता है तो वह मायाचूर्ण से वानरों को सुला देता है और राम को हनुमान के मुंह से निकाल कर पाताल ले जाता है। हनुमान पाताल पहुँच कर अपने पुत्र मच्छानु से मिलते हैं इसके पश्चात् विरख्खन नामक मैयरव की वहन से भेंट करते हैं। विरक्खन को मैयरव ने आदेश दिया था कि वह एक हण्डा जल भर दे जिसमें उसका पुत्र उवाला जा सके। इससे वह बहुत क्षुब्ध थी। यह हनुमान को पद्मतंतु के रूप में अपने दुपट्टे में छिपा कर राम के पास पहुँच जाती है तथा मैयराव के मृत्यु का उपाय

---

[1] बुल्के, पृष्ठ ५९८, ५९९।

भी बताती है। हनुमान मैयराव को मारकर विरक्खन के पुत्र को राजा तथा मच्छानु को युवराज बनाते हैं। इसके पश्चात् राम को लंका ले आते हैं।[1] यह मच्छानु स्वर्णमच्छा नामक रावण की पुत्री का पुत्र था जिसे रावण ने सेतुवन्ध से समय सेतु को नष्ट करने को भेजा था और हनुमान ने उससे मच्छानु नामक पुत्र उत्पन्न किया था।

रावण द्वारा शक्ति के प्रहार से लक्ष्मण संज्ञाहीन हो जाते हैं तो हनुमान औषधि के अतिरिक्त इन्द्र के धेनु का गोबर, कालनाग का चौका, तथा रावण का वेलन भी ले आते हैं। रावण का वेलन ले जाते समय वे मंदोदरी तथा रावण के केश एक में बाँध देते हैं।[2] (अध्याय ३३)। रावण जब यज्ञ करने लगता है तो हनुमान उसके विध्वंस करने जाते हैं। रावण के तीसरे यज्ञ को विध्वंस करने का श्रेय भी हनुमान को ही रामकियेन में दिया गया है। यह कथा इस प्रकार है कि मंदोदरी ने उमा से संजीव यज्ञ का रहस्य जान लिया था जिससे अमृत प्राप्त होता है। हनुमान रावण का रूप धारण करके मंदोदरी के पास जाते हैं और उसे अपने बाहुपाश में बाँधकर उसका सतीत्व नष्ट कर देते हैं जिससे रावण का यज्ञ नष्ट हो जाता है। (अध्याय ३४)। इसी रचना में एक और स्थान पर हनुमान तथा मंदोदरी के रमण की कथा मिलती है।[3] इस कथा के अनुसार रावण का जीव गोपुत्र नामक रावण के गुरु के पास एक मंजूषा में बन्द है जिसे हनुमान और अंगद जाकर छल से प्राप्त कर लेते हैं जिससे रावण की मृत्यु होती है। (अध्याय ३५)। रामकियेन के अनुसार जब विभीषण राज्य करने लगते हैं तो रावण का सखा महापाल देवासुर लंका को घेर लेता है। इस पर विभीषण राम से सहायता माँगते हैं। राम हनुमान को भेजते हैं और वे लंका जाकर उसका वध करते हैं।[4] (अध्याय ३९)

रामकियेन के वर्णन के अनुसार हनुमान की माता अंजना का नाम स्वाहा है। वह गौतमपुत्री है। अपनी माता अहिल्या का व्यभिचार अपने पिता से कहने के कारण उसकी माता उसको शाप देती है कि पुत्र प्रसव करने तक वह एक पैर पर खड़ी रहे। शिव इस लड़की पर दयावंत होकर वायु को स्वाहा के पास भेजते हैं और उसे यह आदेश देते हैं कि वह वायु को अपने मुँह में रखे। इसके फलस्वरूप कई मास पश्चात् हनुमान स्वाहा के मुख से वानर के रूप में प्रकट होते हैं।

---

१. बुल्के, पृष्ठ ६०२।

२. उपर्युक्त पृष्ठ ५८१।

३. वही, पृष्ठ ५८४।

४. वही, पृष्ठ ६२३।

थाई रामजातक नामक ग्रंथ के अनुसार राम सीता की खोज करते समय एक ऐसा फल खा लेते हैं जिससे वे तीन वर्ष तक के लिए वानर रूप धारण कर लेते हैं। फावंगसी या अंजना भी वही फल खा लेती है इस प्रकार वे दोनों वानर और वानरी की अवस्था में हनुमान को उत्पन्न करते हैं।[1] इसके अनुसार लंका में हनुमान तथा अंगद दोनों ही भेजे जाते हैं।

कम्बोज में जिस रामकथा का प्रचार हुआ उसका रूप अंकोरवाट की भीतों पर चित्रित है। इस मंदिर का काल प्रायः ११ या १२ वीं शताब्दी माना जाता है। यहाँ के खेमेर साहित्य के रेआय केर[2] रामकेर्ति नाम के ग्रंथ में रामकथा का वर्णन है। इसकी सब से प्राचीन हस्तलिखित प्रति १७ वीं शताब्दी की है। यहाँ भी हनुमान वायु तथा अंजना के पुत्र हैं। इसमें रामकियेन की भाँति लक्ष्मण से हनुमान के युद्ध की चर्चा है। यहाँ भी राम उनके कुण्डलों को देख लेते हैं। अंजना पहिले ही हनुमान को बता देती है कि 'जो तुम्हारे कुण्डलों को देख सकेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा। राम से मिल कर वे सुग्रीव को संवाद देने जाते हैं।[3] वाली तथा राम के युद्ध के पश्चात् वाली अपने दो पुत्रों को तथा अपनी पत्नी को राम को सौंप देता है और यह भी कहता है कि हनुमान उनकी सेवा के हेतु उपयुक्त व्यक्ति हैं।[4] वाल्मीकि रामायण में सुग्रीव रामकार्य को अपनी विलासिता के मद में भूल जाते हैं। यहाँ रामकेति में (सर्ग ७) महाजम्बू या सम्बुरानू इन्द्र के शाप के कारण वानर रूप को प्राप्त होता है। यह वाली का परम मित्र तथा निकट के वानरों पर शासन करने वाला कहा गया है। सुग्रीव इसी महाजम्बू के कारण राम की सहायता करने से डरता है। इस दशा को देख कर लक्ष्मण महाजम्बू को एक पत्र लिखते हैं और उसमें उससे विष्णु अवतार राम की अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रखते हैं। सुग्रीव तथा हनुमान इस पत्र को महाजम्बू के पास ले जाते हैं परन्तु उसे राम के विष्णु के अवतार होने में संशय बना रहता है। इस पर हनुमान तथा सुग्रीव इसे हरण कर के रात्रि में राम के पास ले आते हैं। राम को देखने पर उसे विश्वास हो जाता है कि वे विष्णु ही हैं और वह अपनी सारी सेना राम को अर्पित करता है। जाम्बवान ज्योतिष द्वारा यह भी पता लगाता है कि सीता ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया है तथा रावण उनसे ४० धनु की दूरी पर रहता है। वह कहता है कि वह स्वयं उनके

---

[1] बुल्के वही, पृष्ठ ६६६।

[2] इसे रामकेर्त्ति भी कहा गया है—बुल्के, वही, पृष्ठ २७४।

[3] वही, पृष्ठ ४६७।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ४८०।

पास जाने में असमथ हैं। राम पूछते हैं कि "सम्बुरान् के कथन की सचाई जाँचे कौन लंका जाने में समर्थ है ?" इस पर जब कोई जाने को उद्यत नहीं होता त हनुमान को बुलाते हैं। हनुमान इस प्रतिबन्ध के साथ लंका जाने को उद्यत हैं कि राम उनके साथ एक पत्तल में भोजन करें। राम उन्हें स्नान कर का आदेश देते हैं। इस पर वे स्नान कर के आते हैं तथा राम के साथ भो करते हैं। इसके पश्चात् वे समुद्र लाँघ कर लंका पहुँचते हैं। लंका में पहुँच सीता के अन्वेषण के समय ये बहुत उत्पात करते हैं। इसमें सेतु बांधने के मछलियों के उत्पात की कथा भी है। जब रावण की शक्ति से लक्ष्मण अचेत जाते हैं तो हनुमान औषधि ले आते हैं परन्तु औषधि के साथ चिकित्सा के रावण के बेलन की भी आवश्यकता है। बेलन की खोज करते समय ये रावण मंदोदरी के बाल साथ साथ बाँध कर मंत्र पढ़ कर एक भीत पर यह लिख छोड़ आते हैं कि जब तक मंदोदरी रावण के सिर पर बायें हाथ से थप्पड़ न मारे कोई भी इस गाँठ को खोल न सकेगा। (सर्ग ९)। इसी प्रकार की कुछ मि जुलती कथा सर्ग ६ में भी मिलती है जब हनुमान सीता के अन्वेषण के हेतु लं जाते हैं। रामकेत्ति में रावण जब राम से युद्ध करते करते यह अनुभव क है कि वह उनको साधारण रीति से जीत नहीं सकता तो वह मंदोदरी के एक पर्वत पर जाकर वहाँ यज्ञ करने लगता है जिससे उसके पास जो विष है उसे अजेय बना दे परन्तु हनुमान वहाँ पहुँच कर मंदोदरी का वस्त्र छीन कर नंगी कर देते हैं इस पर रावण का ध्यान भंग हो जाता है और वह अपनी प्र पूरी नहीं कर पाता तथा विष का पात्र भी हनुमान उलट देते हैं।

उत्तर भाग की कथा में सीता राम द्वारा परित्यक्त होने पर अयोध्या न लौटना चाहतीं वे राम की अन्त्येष्टि पर ही अयोध्या आने की प्रतिज्ञा करती हैं। इ पर राम अपनी मृत्यु का असत्य समाचार सीता के पास हनुमान द्वारा भेजते हैं सीता अयोध्या पहुँचने पर इस समाचार को असत्य पाकर सागर वरुण की सहा से पृथ्वी में प्रवेश कर जाती हैं। इसके पश्चात् वह ईश्वर द्वारा मनाये जाने पर र के पास अयोध्या आती हैं।[1]

लाओस में राम कथा के दो स्वरूप प्रचलित हैं। एक का नाम फालक फाल है और दूसरे का नाम फोम्म चक है। पहिले का अर्थ श्री लक्ष्मण श्री राम और दू का फालक फालाम ब्रह्मजात जो रावण का दूसरा नाम है। पहिली कथा का

---

[1] बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में रामकथा—आज, साप्ताहि ७ मई १९६७ पृ० कालम ३।

साधारण में बहुत प्रचार है। यह कथा लाओस देश की राजधानी लुअंग प्रबंग के मंदिर के भीत पर चित्रित है। यहाँ के राजमहल में इस कथा का प्रतिवर्ष अभिनय भी होता है। इसमें रावण दस सिरों वाला राक्षस नहीं है अपितु एक रूपवान राजकुमार है। इन्द्र उसके आराध्य देव हैं तथा सीता उसकी पुत्री है। इसकी पृष्ठभूमि अयोध्या नहीं अपितु लाओस है। यहीं के नदियों का उनके घाटियों का इसमें वर्णन है।

लाओस का फोम्मचक बौद्धभिक्षुओं की कृति है इसमें राम को गौतम बुद्ध माना गया है, रावण को देवदत्त तथा सीता को यशोधरा। यहाँ जीतवन में एकत्रित भिक्षुओं के समाज को उद्बोधित करते हुए बुद्ध कहते हैं कि 'हमारे कल्प के बहुत पूर्व एक ब्राह्मण तथा उसकी पत्नि ने अगणित नामक स्वर्ग से उतरकर इस भूलोक में जन्म लिया। उन्होंने इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना की। इनके १०१ पुत्र हुए जो इस भूलोक के १०१ नगरों के राजा बने। इनमें से एक राजा का जन्म बहुत वर्षों के पश्चात् हुआ। इसका नाम यज्ञोतथ्य या रामेश्वर दिया गया। इसके दो कुमार हुए एक का नाम दशरथ हुआ, इसको राजगद्दी नहीं मिली इससे इसने एक और नगर की स्थापना की जो गंगा के दक्षिण तट पर था। इसी समय एक ब्राह्मण देव लोक से उतर कर इंद्रप्रस्थ की रानी के गर्भ से उत्पन्न हुए। उसके अंग बहुत छोटे थे और उसका नाम लूपलूल रखा गया। इन्द्र ने उसका पुनः निर्माण करने की इच्छा से थेने नाम के देवता को सुपुर्द किया परन्तु वे कुछ नहीं कर सके तब इन्द्र ने इसे हीरे के साँचे में ढाला। वह सुन्दर तो हुआ परन्तु आँवे से काला होकर निकला। लूपलूल देवलोक से नीचे आकर देवी मल्लिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ। इसका नाम रावणासुर पड़ा। इसके जन्म से ही हाथ में खड्ग तथा धनुष था। रावणासुर ने सब विद्यायें पढ़ने के पश्चात् अपने चाचा दशरथ से कहा कि वे अपनी कन्या शान्तादेवी का विवाह उससे कर दें। दशरथ को शान्ता देवी देनी पड़ी परन्तु उन्होंने देवताओं से प्रार्थना की कि वे उनको ऐसा पुत्र दें जो रावणासुर को जीत सके। इन्द्र ने भावी बुद्ध को पृथ्वी पर भेजा। बुद्ध ने दशरथ की रानी के गर्भ में प्रवेश किया तथा दो भाइयों के रूप में जन्म लिया। इन्होंने बड़े शीघ्र धनुर्विद्या का अभ्यास कर लिया तथा इन्होंने रावणासुर को भी जीत लिया।' फालम में रावण की सीता लड़की है और हनुमान राम के पुत्र हैं। यहाँ भी रावण एक रूपवान राजा है। इस राम जातक का निर्माण प्रायः १६ वीं शताब्दी में होना माना जाता है[1]।

---

१. राम जातक—जरनल श्याम सोसाइटी, भाग ३६, पृष्ठ ३।

हनुमान की कथा फालक फालाम में इस प्रकार है कि 'एक ऋषि ने
का जीवन छोड़ कर एक सुन्दर युवती की मूर्ति बनाई और उसमें जान डाल दी;
उससे विवाह किया। उसका नाम था देवी खेसी। इससे दो लड़के और एक लड़की
लड़की फैंगसी ने एक दिन जंगल में घूमते-घूमते एक फल खा लिया जिससे वह
हो गयी, उसी रूप में उसे राम मिले। ये भी वन्दर के रूप में विचरण कर रहे
दोनों का विवाह हो गया।' जो लड़का उत्पन्न हुआ वह हनुमान हुआ[1]।' सुग्रीव
बाली की कथा भी यहाँ मिलती है परन्तु अन्तर यह है कि यहाँ सुग्रीव बाली की
की आखें निकाल लेता है। बाली को मारने के पश्चात् राम बाली की स्त्री को
आँखें प्रदान करते हैं और उससे विवाह कर के उससे थायोखुआने या ओफा को
करते हैं। जब श्री राम सेना एकत्रित कर के लंका की ओर चलते हैं तो
अपने दोनों पुत्र हनुमान तथा ओफा को सीता के अन्वेषण के हेतु भेजते हैं जो
पार कर के लंका पहुँचते हैं। इन्हें राम अपनी दो अंगूठियाँ देते हैं। मार्ग में हनुमान
उनके भाई एक ऋषि की आज्ञा की अवहेलना करके एक तड़ाग के किनारे
हैं, वहाँ उन्हें दो बड़ी जोंक लग जाती हैं जो उनका रक्त पी लेती हैं।
उन्हें छुड़ा तो देते हैं परन्तु उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। ये दोनों लंका
हैं और मनुष्य रूप धारण कर के अंगूठी सीता को दे देते हैं परन्तु वहाँ ये बड़ा
करते हैं। ये राजा का घोड़ा देवी शान्ता के घोड़े से बाँध देते हैं तथा एक पुरजा
कर छोड़ देते हैं कि जब तक शांता देवी रावणासुर को तीन चपत न मारेगी
खुलेंगे ही नहीं। यह कार्य ये लोग रावणासुर के कर्मचारियों को मंत्रमुग्ध
करते हैं। हनुमान और उनके भाई पुनः वानर रूप धारण कर लेते हैं। चैतन्य
पर रावणासुर अपने सैनिकों को इन दोनों को पकड़ने को छोड़ते हैं। ये कर्मचारी
पकड़ लेते हैं। इनको मारने पर उद्यत होने पर ये कहते हैं कि "हमारे
एक ही उपाय है कि हमारी पूंछों में कपड़ा बाँध कर उस पर तेल डाल कर आग
दी जांय।" सैनिक ऐसा ही करते हैं। इस पर ये रावणासुर के नगर के सब
को जला डालते हैं और पीछे समुद्र में कूद कर राम के पास पहुँच जाते हैं।

समुद्र पर पुल बाँधा जाता है तथा श्रीराम की सेना लंका में प्रवेश करती है
रावणासुर की यक्षों से तथा राम के वानरों से लड़ाई होती है। राम की सेना
सेनापति हनुमान तथा रावणासुर की सेना के सेनापति हैं भुजगेस। रावण की
भागने लगती है। एक दिन ज्योतिषी राम से कहता है कि 'आप पर बहुत
विपत्ति आने वाली है।' इस पर पहरेवालों को सतर्क कर दिया जाता है। फिर

---

[1] उपर्युक्त, अनुवाद-पृष्ठ ३७५।

रावणासुर का भेजा हुआ एक नाग सेना में घुस आता है और श्रीराम को नागपुरी में ले जाता है। हनुमान तथा उसके भाई विभीषण के दो सैनिकों को लेकर नागपुरी में जाते हैं। वहाँ नाग को मार कर राम को लौटा लाते हैं। यह विवरण अहिरावण की कहानी से मिलता हुआ है। रावणासुर के मरने के पश्चात् जब सीता को लेकर राम अपनी नगरी में लौट आते हैं तब श्रीराम की इच्छा होती है कि हनुमान को मनुष्य रूप दिया जाय। वे उनको एक वृक्ष का फल खिलाते हैं और वह एक सुन्दर युवा बन जाता है। इसके पश्चात् यहाँ सीता के निर्वासन की कथा तथा लव कुश के जन्म की कथा मिलती है।[1]

चम्पा में डा० रघुवीर के अनुसार रामकथा का प्रचार छठवीं शताब्दी में, जावा में ९ वीं शताब्दी में, कम्बोडिया में ११ वीं शताब्दी में, तथा थाइलैण्ड में बारहवीं शताब्दी में हुआ।[2] एशिया के साइबेरिया के बुर्यात प्रदेश में कुवलई खाँ के गुरु पण्डित आनन्दध्वज ने जिसका काल ११८२-१२५१ या एर्टेनिसेन साङ् सुब्राशिदि लिखा। इसका संस्कृत नाम सुभाषित रत्न निधि होगा। इसमें रामायण का सारांश मिलता है।[3] सिंहल में जो रामकथा प्राप्त होती है वह कई स्थलों पर आसपास के देशों में प्रचलित रामकथा से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ हनुमान के स्थान पर बाली लंका जाते हैं और सीता को राम के पास पहुँचा देते हैं।

बर्मा में रामकथा का प्रसार कब हुआ यह कहना कठिन है। आधुनिक रामकथा का रूप १७६७ ई० में दिया गया। इस तिथि के आसपास बर्मा के एक राजा ने थाईलैण्ड की राजधानी अयुतिया पर आक्रमण कर दिया था। थाईलैण्ड को जीत कर वह राजा बहुत से कैदी ले आया। इन लोगों से थाई के रामकियेन का रामयागन का अभिनय बर्मा के राजा को दिखाया। इस पर वह बहुत प्रसन्न हुआ। इसके पश्चात् वहाँ भारत की रामलीला की भाँति यामप्वे लीला होने लगी जो आज भी प्रचलित है। इसमें पात्र कीमती चेहरा लगा कर अभिनय करते हैं। अभिनय के दिन उन्हें श्रद्धावश पूजते भी हैं। इन्हीं नाटकों को लेकर यहाँ के यू तो नामक कवि ने रामयागन नामक एक महाकाव्य की रचना प्रायः १८०० ई० में की। इस काव्य की कथा प्रायः रामकियेन पर आधारित है परन्तु इसकी कुछ अपनी मौलिक

---

१. डा० रघुवीर—जवदेश में रामायण कथा—'आज' २३-१०-१९६६, पृष्ठ १४, कालम १-३।

२. उपरोक्त, पृष्ठ १४, कालम १।

३. डा० लोकेशचन्द्र—एशिया के हृदयांचलों में भगवान राम—'धर्मयुग' पृष्ठ ५३।

विशषताएँ भी हैं जैसे सीताहरण के प्रसंग में मारीच के स्थान पर स्वयं जिसका नाम गाम्वी दिया गया है, मृग का रूप धारण कर के राम को दूर जाती है और राम के बाण लगने पर अपना राक्षसी रूप प्रकट करती है। राम की सहायता करने जाने के पूर्व पर्णकुटी के चारों ओर सीता की सुरक्षा के एक रेखा खींच देते हैं, इत्यादि[1]। इसमें हनुमान का चरित्र रामकियेन के ही दिखाया गया हैं।

सिंहल की रामकथा—सिंहल में रामकथा का जो स्वरूप सुरक्षित है उसमें अकेले ही वनवास को जाते हैं तथा उनकी अनुपस्थिति में सीता को रावण ले जाता हैं। यहाँ वाली हनुमान का स्थान लेते हैं। वे लंका का दहन कर के को राम के पास ले आते हैं। इसमें रावण का सीता चित्र वनाती हैं इस उनका परित्याग होता हैं। वाल्मीकि के आश्रम में सीता को एक बालक उत्पन्न था वाल्मीकि द्वारा दो और बालकों की सृष्टि होती है। अन्त में इन तीनों का की सेना के साथ युद्ध होता हैं[2]। यह स्वरूप रामकथा का प्राचीन हो सकता

चीन में प्रायः ईसा की तीसरी शताब्दी में रामकथा का प्रवेश हुआ। जब जातकम् का अनुवाद चीनी भाषा में कांग सेंग हुई नामक चीनी यात्री ने यह चीनी अनुवाद लिये उत् त्सी किंग नामक संग्रह में सुरक्षित हैं। इसके ४७२ ई० में दूसरे कथानक दसरथ कथानकम् का अनुवाद हुआ यह त्सा-पो त्सांग किंग नामक दूसरे संग्रह में उपस्थित हैं। यह १२१ अवदानों का हैं। इन कथाओं में वुद्ध तथा राम में कोई भिन्नता नहीं हैं तथा ये जातकों की पर लिखी हुई हैं। अनामकम् जातकम् में राम सीता वनवास, सीताहरण, वाली युद्ध, सेतुवन्ध, अग्निपरीक्षा की कथायें वाल्मीकि के रामायण की भाँति ही वर्णित हैं। इसमें राम अपने मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुन कर ही वन चले जाते हैं। वाली राम के धनुषसंधान की क्षमता सुन कर ही भाग उसको मारने का अवसर ही नहीं आता। इन रामकथाओं का अनुवाद रघुवीर ने किया हैं।[3]

---

[1] बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में रामकथा—'आज', विशेषांक ७ मई, १९६७, पृष्ठ, १४ कालम ५-६। बुल्के—रामकथा, पृष्ठ२८।

[2] बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में रामकथा—'आज' ३० अप्रैल, १९६७, पृष्ठ १३।

[3] रघुवीर, प्रो० डा० एवं चिकयो यमामोटो—रामायण इन चाइना— इन्टर-नेशनल अकाडमी आफ इण्डियन कलचर—लाहोर, अगस्त १९३८।

अनामक जातकम्—इस कथा में नायक का नाम नहीं है इस कारण इसे अनामक कहा है। एक समय बोधिसत्व एक राजा के रूप में अवतरित हुए वे सदा सत्य की रक्षा करते थे तथा प्रजा का पालन करते थे। इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी। सभी इनके राज्यव्यवस्था की प्रशंसा करते थे।

इनके मामा भी राजा हो गये थे। वे दूसरे देश में राज्य करते थे। वे लालची तथा दुष्ट थे। वे अपनी कठोरता से शक्तिशाली हो गये। बोधिसत्व सब के साथ सहानुभूति तथा उदारता का बर्ताव करते थे। इसके विपरीत उनके मामा पापात्माओं से झूठी अफवाह फैला कर बोधिसत्व को बदनाम किया करते थे। इसने एक सेना इस उद्देश्य से एकत्रित की कि बोधिसत्व के राज्य को अपने अधिकार में कर लिया जाय। बोधिसत्व के मंत्रियों ने मंत्रि परिषद् की बैठक बुलाई और उसमें यह निश्चय किया कि आक्रमण का डट कर सामना किया जाय। उन्होंने सेना के हेतु वीरों का चयन किया तथा उनको पंक्तिबद्ध कर के खड़ा किया। राजा जब इस सेना का निरीक्षण करने गए तो यह विचार कर कि केवल उनके कारण इतने व्यक्तियों की हत्या होगी, रोने लगे। इस विचार से कि यदि वे चले जायें तो यह झगड़ा निपट जायगा वे अपनी रानी को साथ लेकर अपना देश मंत्रियों को सुपुर्द कर के जंगल में चले गए। थोड़े ही समय के पश्चात् उनके मामा ने उनके देश को ले लिया तथा कठोरता से शासन प्रारम्भ किया। उन्होंने कर्तव्यपरायण तथा धर्मात्मा लोगों को मरवा डाला तथा चालाक चापलूसों को बड़े-बड़े पद दिए। फिर जनता को इसने घोर कष्ट देना प्रारम्भ किया। जनता के लोग अपने पुराने राजा की प्रशंसा के गीत गाने लगे।

बोधिसत्व पहाड़ों और जगलों में रहने लगे। समुद्र में एक नाग रहता था, वह बोधिसत्व की रानी पर आसक्त हो गया। उसने एक ऋषि का रूप धारण किया। राजा इस ऋषि से बहुत प्रभावित हुआ और नित्य फल लाकर उसको अर्पित करने लगा। एक दिन वह अवसर पा कर रानी का अपहरण कर के अपने देश में ले जाने लगा। उस देश का मार्ग एक दर्रे से होकर जाता था। वहाँ उसे एक बड़े पक्षी ने रोका। नाग ने बिजली उत्पन्न कर के उस पक्षी को मार डाला तथा रानी को लेकर वह अपने देश में पहुँच गया। राजा जब फल लेकर लौटे तो रानी को वहाँ न पाकर विलाप करने लगे। अब उन्होंने धनुष बाण धारण किए तथा अपनी रानी को खोजते हुए पहाड़ों को पार करते हुए आगे बढ़े। आगे उन्हें एक स्वच्छ नदी मिली। वहाँ एक बड़ा बन्दर मिला। राजा ने उससे पूछा कि तुम क्यों दुःखी हो। उसने कहा कि मैं अपने चाचा के साथ राज्य करता था। मेरे चाचा ने मुझे जबरदस्ती राज्य से निकाल दिया इसी से मैं दुःखी हूँ। बोधिसत्व ने उसकी सहायता करना स्वीकार

कर लिया। दूसरे दिन उस बली को देख कर उस बन्दर का चाचा भाग गया। बन्दर के सब साथी उससे आकर मिल गए। उनको उसने आज्ञा दी कि बोधिस की रानी को खोजा जाय। मार्ग में उन्हें वह पक्षी मिला जिसे नाग ने मारा था, से उन्हें पता लगा कि वह नाग समुद्र के द्वीप में है। बन्दरों के राजा की सेना समुद्र के पास पहुँची तो समुद्र को देख कर वहीं भयभीत हो कर ठहर गयी; तब दे नाम इन्द्र ने छोटे वानर का रूप धारण कर के उस राजा को यह परामर्श दिया यदि सभी वानर एक एक पत्थर समुद्र में डालें तो एक बड़ा पहाड़ बन जायगा समुद्र को पार करना सरल हो जायगा। तब बन्दरों के राजा ने उस बन्दर को सामन्त बनाया और उसी के परामर्श से पुल बनाया जिस पर से सारी सेना तक पहुँच गयी। इस सेना नें द्वीप को घेर लिया। इस पर नाग ने एक जहरी धुंआँ उत्पन्न किया। इससे सब बन्दर तथा राजा बीमार पड़ गए और गिर गये इस पर उसी छोटे बन्दर ने इन सब को दैवी औषधी सुँघाया जिससे सारी सेना चेतना पुनः लौट आयी। इसके पश्चात् नाग ने तूफान, बादल और बिजली उत्प की। इस पर पुनः उसी छोटे बन्दर ने यह परामर्श दिया कि राजा अपना बाण बिज पर चलाये क्योंकि वह बिजली नहीं अपितु नाग है। राजा ने बाण चलाया जिस नाग का हृदय फट गया। उस छोटे बन्दर ने नगर के द्वार का ताला खोल डाला उसमें से रानी को बाहर निकाला। बन्दरों के राजा तथा बोधिसत्व लौट आये। इसी समय राजा के मामा का देहान्त हो गया। उनका कोई उत्तराधिकारी न था इस कारण मत्रियों ने पुराने राजा की पुनः खोज की। जब राजा मिल गए तो उन्हें वे नगर में ले गए। अब राजा को अपने मामा का भी राज्य मिल गया और वे सु से रहने लगे।

इस कथा में इन्द्र का वानर रूप लेने की कथा इस अध्ययन में विशेष महत्त्व रखती है क्योंकि जैसा पहिले कहा गया ऋग्वेद के अनुसार वृषाकपि इन्द्र का मि माना गया है। यदि इस कथा के नायक को राम, नाग को रावण तथा वानर राजा को सुग्रीव मान लिया जाय तो छोटे वानर को हनुमान मानना पड़ेगा। इस प्रका हनुमान को वृषाकपि से जोड़ने का प्रयास बहुत प्राचीन ज्ञात होता है। इस प्रया का एक उदाहरण यह अनामक जातक भी है।

दशरथ कथानकम्—दूसरी कथा दशरथ कथानकम् है। इसमें हनुमान का कोई चरित्र नहीं मिलता। इसके अनुसार उस काल में जब मनुष्यों का जीवन दस हजार वर्ष का होता था, एक राजा राज्य करते थे जिनका नाम था दशरत (दशरथ) वे यमक दरं (जम्बू द्वीप) के राजा थे। इन राजा की पट्टमहिषी से रम (राम) उत्पन्न हुए, उनकी दूसरी रानी से रमन (लक्ष्मण) हुए, तीसरी से वरद (भरत)

तथा चौथी से शत्रुओं को नाश करनेवाले (शत्रुघ्न) उत्पन्न हुए। राम बड़े वलशाली थे तथा वे नारायण के प्रभाव से सम्पन्न थे। उनको सेन (?) तथा रा ( ) की शक्तियां प्राप्त थीं।

राजा अपनी तीसरी रानी को वहुत प्यार करते थे। उन्होंने उसे एक वर दिया था जिसे उसने उनके पास थाती के स्वरूप छोड़ें दिया था। राजा जब वीमार पड़े तो उन्होंने राम को राजा बना दिया। यह कर्म राजधर्म के अनुसार उन्होंने किया था। इस समय यह तीसरी रानी राजा की परिचर्या कर रही थी। वह बड़ी उद्दण्ड हो गयी थी। उसको राम का राज्यतिलक अच्छा नहीं लगा और वह ईर्षा से भर गयी। उसने राजा को अपने वचन का स्मरण दिला कर कहा कि उसके पुत्र को राजगद्दी मिलनी चाहिए।

राजा यह सुन कर स्तम्मित रह गए। वे अपने बड़े लड़के को राजगद्दी से उतारना नहीं चाहते थे और अपने वचन को भी तोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने जीवन के प्रारम्भ से सत्य का पालन किया था। अन्त में उन्होंने राम को गद्दी से उतार दिया। राम के माई रामन ने कहा कि उनको इस प्रकार अपमान को सहन नहीं करना चाहिए। राम ने उन्हें समझाया कि पिता की आज्ञा मानना परम धर्म है। इस माता पर पिता का प्रेम अधिक है इस कारण इसे हमें अपनी माता मानना चाहिए। फिर वरद (भरत) बड़ा आज्ञाकारी तथा सौम्य है। इसके पश्चात् राजा ने अपने पुत्र को अरण्य में भेज दिया। राम अपने माई के साथ पिता की आज्ञा मान कर वन को चले गये।

मरत इस समय अन्यत्र थे। उनको खोज कर मंत्री लोग ले आए परन्तु इसी वीच में राजा का स्वर्गवास हो गया था। जब वे राज्य में पहुँचे तो उन्हें अपनी माता की सब करनी का पता लगा। उन्होंने अपनी माता को बहुत बुरा-भला कहा तथा सेना लेकर अपने भाई राम को खोजने निकल पड़े। राम के छोटे भाई ने जब भरत को सेना सहित आते सुना तो राम से कहा कि आप नित्य भरत की प्रशंसा करते थे; अब वे सेना ले कर हमको मारने आ रहे हैं। इधर भरत ने सेना को पीछे छोड़ कर स्वयं अकेले राम के पास प्रस्थान किया। राम के पूछने पर उन्होंने कहा कि 'मैं सेना अपनी रक्षा के लिए लाया हूँ।' भरत ने राम को राज्य में लौट चलने को वहुत कहा परन्तु उन्होने स्वीकार नहीं किया तब उनके चमड़े के जूते लकर भरत वापस चले गए तथा उसे ही सिंहासन पर रख कर राज्य करने लगे। उनकी वे नित्य पूजा करते थे और उन्हीं से पूछ-पूछ कर राज्यकार्य करते थे। वे नित्य दूतों को राम के पास लौट आने के लिए भेजते थे परन्तु उनके पिता ने उन्हें १२ वर्ष के हेतु वन में भेजा था और अभी समय पूरा नहीं हुआ था। अवधि के पूरी हो जाने पर राम तथा उनके भाई राज्य में लौट आये। अब जब भरत ने उन्हें पुनः राज्य

देना चाहा तो उन्होंने कहा कि राज्य तो पिता ने तुम्हें दिया है तुम्हीं इसका भो करो। अन्त में बहुत कहने सुनने से राम ने राज्य स्वीकार किया। इस राज्य में समय से वर्षा होती थी, किसी को दैहिक, दैविक, भौतिक ताप नहीं व्याप्त होता था। जम्बू द्वीप का राज्य पहिले की अपेक्षा दस गुना समृद्ध हो गया[1]।

यदि अनामकम् जातकम् तथा दशरथ कथानकम् दोनों को मिला दिया जाय तो भारत में प्रचलित रामकथा का कुछ स्वरूप खड़ा हो सकता है। सम्भव है कि ये दोनों कथायें एक में रही हों जिन्हें बौद्धों ने उपदेशात्मक बनाने की दृष्टि से अलग-अलग कर दिया हो। चीन में ये दोनों कथायें दो काल में पहुँचीं जैसा पहिले लिखा जा चुका है। डा० रघुवीर के अनुसार अनामकम् जातकम् का चीन में २५१ ईसवी में तथा दशरथ कथानकम् का २२१ वर्ष पश्चात् ४७२ ईसवी में अनुवाद हुआ था।[2]

जावा में रामकथा प्रायः सातवीं शताब्दी के अंत में पहुँच चुकी थी जैसा कि वहाँ के जोगजुकार्ता या अयोध्याकार्ता में परमबनन या परमब्रह्म के शिव मंदिर के नीचली भीत के पाषाण खण्डों पर उत्कीर्ण फलकों से ज्ञात होता है। यहां की कथा वाल्मीकि के रामायण के आधार पर है। पूर्वी जावा के पमतरन या परमतनप नामक स्थान के शिव मंदिर में भी रामकथा पाषाण फलकों पर अंकित है। यह रामायण काकविन पर आधारित है। प्राचीन साहित्यक रचना प्रायः दसवीं शताब्दी की है जिसमें रामायण को काकविन कहते हैं[3]। इसके लेखक का नाम नहीं मिलता। इस कृति का आधार कदाचित् भट्टिकाव्य था। जावा में एक प्राचीन उत्तर काण्ड मिलता है जिसमें वाल्मीकि के रामायण के उत्तर काण्ड का गद्य में अनुवाद है। इसे योगीश्वर ने तात्कालिक कविभाषा में रचा था (?)। इसमें संस्कृत के रजनी, वंशस्थ, शार्दूल, पुष्पित, मालिनी, शिखरिणी इत्यादि छन्द पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ एक चरित्र रामायण भी है जिसमें १०१ श्लोकों में रामायण के प्रथम छः काण्डों के साथ व्याकरण के उदाहरण भी दिये गए हैं।[4] जावा का आधुनिक काव्य सेरतकाण्ड है इसकी कथा भी वाल्मीकि की कथा से बहुत कुछ मिलती जुलती है। रामायण काकविन में सीता हनुमान को राम के हेतु अपनी चूड़ामणि के साथ एक पत्र भी देती हैं। इसके अतिरिक्त जावा में रामकथा का आधुनिक रूप सेरतकाण्ड तथा रामकेलिंग में मिलता है। सेरतकाण्ड पद्य में है, इसके रचयिता

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ४-६।

२. उपर्युक्त, मुख्य पृष्ठ।

३. डच ओरियण्टल जरनल—भाग ७३, पृष्ठ ९४।

४. रेवरेण्ड फादर बुल्के—रामकथा—पृष्ठ २६५ (दूसरा संस्करण)।

यस दी पुरा हैं। बाली में रामकथा बायांग वोंग नाम से मिलती हैं। ये ही अर्वाचीन रूप हिन्दचीन, श्याम और बर्मा में प्रचलित हैं। इसका कथानक प्राचीन रामायण काकविन से भिन्न है। अर्वाचीन रामकथा मलाया के हिकायत सेरीराम[1], हिकायत महाराज रावण[2], श्रीराम[3] तथा जावा के रामकेलिंग तथा सेरतकाण्ड की रचना प्रायः १६ वीं शताब्दी में हुई। सेरीराम की प्रचलित हस्तलिपि १६३३ की हैं[4] हिकायत सेरीराम में रावण चरित से प्रारम्भ कर के सीतात्याग तथा राम सीता-मिलन तक की कथा है। इसमें भी हनुमान राम के वीर्य उत्पन्न बताये जाते हैं।[5] यहां त्रिजटा शुद्ध आशा और निष्ठा के रूप में प्रदर्शित है। मलाया के राज्य सभा में रामायण पढ़ने और नृत्य में रामकथा को दर्शाने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से है। जावा में आज भी रामायण नृत्य की शिक्षा सोलो नगर में मुख्य रूप से दी जाती है। यहाँ के सरस्वती विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा के साथ हिन्दू संस्कृति की भी शिक्षा दी जाती हैं[6]। इस नृत्य को आज सेन्द्रतरी रामायण नाटक नृत्य कहते हैं। इसमें प्राचीन साहित्य के आधार पर शास्त्रीय संगीत में नयी कल्पनाओं को जोड़ कर नये संगीत का सृजन हुआ हैं। इसके पात्रों का प्रशिक्षण १७ वर्ष की आयु के पश्चात् होता है तथा दो वर्ष के कड़े परिश्रम के पश्चात् ही उन्हें विविध भूमिकाओं में कार्य करने की अनुमति प्राप्त होती हैं। इनके परिधान प्राचीन आकारों के आधार पर कुशल शिल्पी प्रस्तुत करते हैं। पात्रों के आभूषण, वेषभूषा तथा प्रसाधन सभी भारत का स्मरण दिलाते हैं। जावा में वायांग कुलित या चमड़े की बनी पुत्तलिकाओं द्वारा भी रामायण की कला दरसाई जाती है। इन्हें विशिष्ट पद्धति से रंगा जाता है।[7] प्रत्येक पात्र की रंगयोजना निश्चित हैं जैसे रावण का मुख लाल तथा हनुमान का मुख श्वेत। यों भी बाँस की चिकों पर तथा चटाइयों पर रामायण की

---

१. जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी स्ट्रेट्स ब्रांच भाग ७१, दिसम्बर १९१५; जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९४४, पृष्ठ ६६।

२. जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी मलायन ब्रांच, भाग ११।

३. जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी स्ट्रेट्स ब्रांच—१८८६-१८८७।

४. बुल्के—रामकथा पृष्ठ २६८ दूसरा संस्करण।

५. उपर्युक्त, पृष्ठ २७०।

६. उपर्युक्त, पृष्ठ २७०।

७. कमला रत्नम्—इण्डोनेशिया का नवाहिक नृत्य नाट्य इत्यादि—'धर्मयुग', २३-१०-६६, पृष्ठ १४-१५।

कथा चित्रित रहती है। पुरुष पात्रों में इनके यहाँ हनुमान का बड़ा आदर है, इन्हें ये सूक्ष्म पूर्तिः या स्वेतवर्ण आत्मा मानते हैं। ये इन्हें राम की सफलता का का मानते हैं। यहाँ ये धरती पर शीतल जल भरे मेघ खण्ड के समान उतरते हैं त मनुष्य के कल्याण को स्थूल रूप देते हैं। राम से भी अधिक यहाँ इनको महत्व दि गया है। राम जितना चाहते हैं उससे वे कुछ अधिक कर डालते हैं। राम ने उ लंका जलाने को नहीं कहा था परन्तु वे उसे जला कर अपने बल का परिचय राव को दे आते हैं। यहाँ सुग्रीव और बाली हनुमान के मामा बताये गए हैं।[1] रामाय काकविन में सीता अभिज्ञान के रूप में अपनी चूड़ामणि के साथ एक पत्र भी देती है सेरतकाण्ड की भांति सेरी राम के अनुसार भी हनुमान राम के पुत्र हैं तथा ज समय से ही उनके कानों में कुण्डल हैं। इसी समय एक आकाशवाणी का भी वर्ण है जिसमें यह आदेश दिया जाता है कि, 'इसका नाम हनुमान रक्खा जाय। जो इस व्यक्ति का कुण्डल देख सकेगा यही इसका पिता है'। हनुमान से उनकी माता यह रहस्य उस समय प्रकट करती है जब वे १२ वर्ष के हो जाते हैं। उस समय से वे तपस्वी हो कर अपनी माता के पास रहने लगते हैं। कुछ दिन पश्चात् अंजना के पितामह संगपरदान इन्हें बाली के दरबार में भेजते हैं और वह कथा फिर से दोहराते हैं कि उनका वास्तविक पिता ही उनके कुण्डलों को देख सकेगा। बाली के यहाँ जाते हुए मार्ग में इन्हें भूख लगती है और एक पेड़ पर फल खाने को चढ़ जाते हैं पेड़ के नीचे ये देखते हैं कि राम लक्ष्मण की गोद में सिर रखे सोये हुए हैं। लक्ष्मण का ध्यान आकर्षित करने के हेतु ये ऊपर से पत्ते गिराना प्रारम्भ करते हैं। लक्ष्मण इसे सहन नहीं कर सकते और उनसे लड़ने को उद्यत होते हैं। हनुमान इन्हें हरा कर तथा इनके तीन बाणों को छीन कर पुनः पत्तों में जा छिपते हैं। इस पर लक्ष्मण ने राम को जगाया परन्तु लक्ष्मण हनुमान को न देख सके इस कारण उन्होंने पेड़ को ही छोटा हो जाने की प्रार्थना की। पेड़ के छोटे होनपर राम ने सफेद वानररूपी हनमान को देखा और उनके कुण्डलों को देखकर उन्हें अपने पुत्र के रूप में स्वीकार किया इसके पश्चात् उन्हें बाली के यहाँ भेज दिया जो उसका मामा था।

सेरीराम के पातानी पाठ के अनुसार हनुमान राम से युद्ध करते हैं तथा अन्त में राम को पहिचान कर उनके सहायक बन जाते हैं[2]। सेरीराम में बाली आहत होने पर मृत्यु के पूर्व अपने दो पुत्रों को तथा पत्नि को राम को सौंप देता है और यह

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२।

[2] बुल्के—वही, पृष्ठ ४६६-४६७।

भी कहता है कि हनुमान राम की सेवा के लिए उपयुक्त हैं।[1] सेरतकाण्ड तथा सेरीराम में सुग्रीव शम्बुरान् के कारण राम की सहायता करने से डरता है। इस पर लक्ष्मण उसे पत्र लिख कर यह बताते हैं कि राम विष्णु के अवतार हैं और उसे उनकी अधीनता स्वीकार करनी चाहिए। यह शम्बुरान् इन्द्र के शाप से वानर योनि को प्राप्त हुआ था और दूसरे वानरों पर राज्य करता था। हनुमान सुग्रीव के साथ इस पत्र को लेकर उसके पास जाते हैं परन्तु उससे राम के विष्णु अवतार होने में संदेह दूर नहीं होता। इस पर हनुमान तथा सुग्रीव उसे रात्रि में हरण कर के राम के पास लाते हैं। अन्त में वह राम को देख कर अपनी सारी सेना उनकी सेवा में अर्पित करता है। इधर सम्बरान् ज्योतिष द्वारा यह पता लगाते हैं कि सीता ने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया है और रावण उनसे ४० घन् की दूरी पर रहता है परन्तु वह सीता के पास जाने में असमर्थ है। इस कथन की सत्यता जानने के हेतु राम लंका जाने को सभी वानरों को आमंत्रित करते हैं परन्तु कोई तैयार नहीं होता। हनुमान केवल इस शर्त पर जाने को उद्यत होते हैं कि उन्हें राम के साथ एक ही पत्तल में खाने की अनुमति प्रदान हो। इस पर राम उन्हें स्नान कर आने को कहते हैं। वे स्नान कर के राम के साथ एक ही पत्तल में खाते हैं। काकविन के अनुसार जब हनुमान के नेतृत्व में लोग स्वयंप्रभा की गुफा में पहुँचते हैं तो स्वयंप्रभा वानरों को आंख बन्द करने को कहती है क्योंकि वह दानवी है और राक्षसों से मैत्री रखती है (सर्ग ७)। यह ध्वनि रामायण में भी प्राप्त होती है क्योंकि वह कहती है कि वह हेमा की मित्र है जो मय की प्रेयसी थी और जिसके हेतु मय ने उस नगर का निर्माण किया था। मय असुर जाति का था जिसे पीछे दानव भी कहा गया है। यह रावण की स्त्री मंदोदरी का पिता भी था। सेरी राम के अनुसार जहामू ने मरने के पूर्व अपने भाई दसमपाती (संपाती) को राम लक्ष्मण के पास भेज दिया था। सूर्य ने दसमपाती से कहा था कि विष्णु के अवतार राम हैं और उनके पुत्र हनुमान हैं। हनुमान से भेंट करने पर तुम्हारे पंख पुनः जम जायेंगे। इस ग्रंथ के अनुसार कोई दृढ़ आधार न पाने पर हनुमान राम के बाहु पर चढ़ कर समुद्र पार करते हैं। पत्तनी पाठ के अनुसार हनुमान राम के कन्धे को आधार बना कर कूदते हैं। इसी कथा में यह भी मिलता है कि समुद्रलंघन करते समय हनुमान का वीर्य समुद्र में गिर गया इसे मछलियों की रानी ने निगल लिया और गर्भवती हो गयी। इस कथा में हनुमान अपनी छलांग में लंका से दूर एक महर्षि के आश्रम में जा कर उतरते हैं और उनका आतिथ्य स्वीकार कर के उन्हीं के बताये हुए मार्ग से जाकर लंका पहुँचते हैं।[2] लंका में सीता इन्हें राम के नाम एक

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ४८०।
२. उपर्युक्त, पृष्ठ ४९९।

पत्र देती हैं।[1] यहाँ की कथा के अनुसार हनमान एक भैंसा का रूप धर कर लंका में प्रवेश करते हैं[2] और लंका में उपद्रव भी करते हैं। सीता के सामने जाने का वर्णन सेरीराम में इस प्रकार है कि हनुमान एक ब्राह्मण का रूप बना कर अशोक वन में प्रवेश करते हैं। वहाँ एक जलकूप के पास बैठ कर विश्राम करने लगते हैं। वहाँ ४० महिलायें स्वर्ण पात्रों में जल भरने आती हैं। उनसे हनुमान को यह पता लगता है कि ये सीता के स्नान के हेतु जल ले जा रही हैं। ये राम की मुद्रिका उन्हीं के एक घट में डाल देते हैं। सीता मुद्रिका पा कर इन्हें बुलवाती हैं। सीता उनको राम के लिए इत्र की एक जड़ाऊ मंजूषा देती हैं। लंकादहन की कथा में यहाँ यह वर्णन मिलता है कि सीता हनुमान को जब दो आम देती हैं तो इस पर हनुमान पूछते हैं कि ये कहाँ से आये हैं। सीता उन्हें अमराई का मार्ग बता देती हैं और यह भी कह देती हैं कि उस अमराई की रक्षा १०० राक्षस करते हैं।[3] हनुमान वहाँ पहुँच कर छोटे वानर का रूप धारण कर के अमराई में पड़ी पत्तियों और टहनियों को बटोर कर साफ कर देते हैं। इस पर वहाँ के राक्षस प्रसन्न हो जाते हैं। दूसरे दिन जब वे मद्य पी कर मतवाले हो जाते हैं तो हनुमान सब फल खा कर वाटिका को नष्ट कर डालते हैं। प्रातःकाल जब राक्षस हनुमान से पूछते हैं कि यह किसका काम है तो वे चुप रह जाते हैं। इस पर रक्षक उन्हें रावण के पास ले जाते हैं। रावण जब क्रोधित हो कर उन्हें मृत्युदण्ड देने को उद्यत होता है उस समय विभीषण उसे एक भविष्यवाणी का स्मरण दिलाते हैं कि 'एक छोटे वानर की हत्या लंका के हेतु अहितकर होगी'। लंका जलने के पहिले रावण यह आदेश देता है कि हनुमान की पूंछ काट कर फेंक दी जाय परन्तु जब सब हथियार उसे काटने में व्यर्थ सिद्ध होते हैं तो राक्षस हनुमान से पूछते हैं तो वे यह सलाह देते हैं कि उनकी पूंछ में आग लगा दी जाय। जब रावण के चर ऐसा करते हैं तो वे लंका जला डालते हैं। सेरीराम के अनुसार केवल सीता का घर जलने से बच जाता है। जब पूंछ की अग्नि से हनुमान व्याकुल हो जाते हैं तो वे नारद से पूंछ बुझाने का उपाय पूछते हैं। नारद उन्हें उत्तर देते हैं कि कदाचित् वे अपने छोटे कूप को भूल गये। हनुमान ने उनकी बात को समझ कर अपनी पूंछ अपने मुख में रख ली और आग तुरन्त बुझ गयी।[5] इस राम कथा के

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ५१०।

[2] जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी स्ट्रेट्स ब्रांच–१९१०, पृष्ठ २०।

[3] बुल्के—वही पृष्ठ।

[4] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२०;

[5] उपर्युक्त, पृष्ठ ५२२।

अनुसार रावण भस्म हुई लंका को, स्वर्ग से एक महर्षि बुला कर उनसे प्रार्थना कर के जीर्णोद्धार कराता है। राम के पास पहुँचने पर राम हनुमान के लंकादहन की निन्दा करते हैं।[1] सेरीराम की यह कथा कदाचित् आनन्द रामायण के इस वर्णन पर आधारित है जिसके अनुसार राम कार्य कर के लौटते समय वे एक मुनि को देख कर गर्व से बोले कि मैं राम कार्य कर के लौट रहा हूँ मैं पानी पीना चाहता हूँ। मुनि के पास रामप्रदत्त अंगूठी, सीताप्रदत्त चूड़ामणि तथा ब्रह्मपत्र जिसमें ब्रह्मा ने इनके कार्यों का वर्णन किया था रख कर पानी पीने चले जाते हैं। इतने में एक वानर आकर इनकी लाई हुई मुद्रिका मुनि के कमण्डल में छोड़ देता है। जब ये वापस आये तो वे मुनि से पूछते हैं, मुनि कमण्डल की ओर संकेत कर देते हैं। कमण्डल में इन्हें अनेकों अंगूठियाँ दिखाई देती हैं तब मुनि कहते हैं कि जब-जब हनुमान लंका गये तब-तब उन्होंने लंका से लौट कर अपनी मुद्रिका यहीं रख दी और वे सब इसी पात्र में हैं तुम अपनी निकाल लो। हनुमान जब यह जानने के हेतु कि उनके पहिले कितने हनुमान लंका गए अंगूठियों की गणना करने लगते हैं तो उनकी गिनती का अन्त ही नहीं होता इस पर ये गर्वरहित हो जाते हैं।[2] सेरीराम के एक पाठ में यह भी कथा मिलती है कि सेतु बाँधने पर रावण अपने पुत्र गंगामहासुरा को बुलाता है जो गंग महादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह मछलियों को सेतु को नष्ट करने का आदेश देता है। इनके आक्रमण करने पर हनुमान जी अपनी पूंछ हिलाते हैं जिससे जल गदला हो जाता है और मछलियाँ ऊपर आ जाती हैं जिन्हें वानर फँसा कर खा जाते हैं। इसके पश्चात् एक केकड़ा सेतु पर आक्रमण करता है इस पर हनुमान अपनी पूंछ पानी में रख देते हैं यह केकड़ा जब उसे खाना चाहता है तो उसे उठा कर पृथ्वी पर फेंक देते हैं। वह इतना बड़ा है कि उसको खा कर सारी सेना तृप्त हो जाती है। यह कथा हिकायत महाराज रावण में भी मिलती है।[1] सेरीराम के पातानी पाठ में मछलियाँ अपनी रानी की आज्ञा से सेतु को नष्ट करने लगती हैं तो हनुमान उस रानी के पास जाकर उससे सेतु पुनः बनवाते हैं तथा उस रानी के पति की अनुपस्थिति में उससे एक पुत्र भी उत्पन्न करते हैं।

इसी ग्रंथ में यह कथा भी मिलती है कि सागर में एक स्थल पर सेतु वानर नहीं बना पा रहे हैं इस पर राम क्रुद्ध हो कर एक बाण तरकस में से निकालते हैं और उसे चलाने को उद्यत होते हैं। उसी समय सागर में से एक सुन्दरी प्रकट हो कर यह

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ५२४।

२. आनन्द रामायण—१, ९, २८३, २९८, ३१३।

३. उपर्युक्त, पृष्ठ ५५१।

कहती है कि यह वही स्थल हैं। जहाँ से लोग पाताल को जाते हैं। यहाँ का ज अमृत के सदृश है। इसे पीकर आपके सैनिक अमर हो जा सकते हैं। इस पर रा वानरों को आज्ञा देते हैं कि वे इस स्थान का जल पीलें।[1]

सेरीराम के अनुसार राम हनुमान के कन्धे पर सेतु पार करते हैं। इस अवसर प हनुमान सहस्रकन्ध सिंह का रूप धारण करते हैं कि कहीं राम के चरण स्पर्श से से के पत्थर अहिल्या की भांति सुन्दरियों में न परिणत हो जायँ।[2] सेरीराम के पाता पाठ के अनुसार विभीषण को रावण के आदेश से बांध कर समुद्र में फेंक दिया जाता है। परन्तु एक मकर की सहायता से वह बच जाता है, तब हनुमान उसको राम के पास ले आते हैं। समुद्र में सेतु बाँधने के विवरण में नल और हनुमान के कलह का भी विवर मिलता है। नल हनुमान के लाये हुए पत्थरों को बायें हाथ से लेकर समुद्र में डाल्ते हैं। इस पर हनुमान क्रोधित हो कर अपनी पूंछ में बाँध कर सात पहाड़ आकाश में फें देते हैं जिससे अँधेरा हो जाता है, तब राम गिरते हुए पत्थरों को अपने हाथ में लेकर समुद्र में डालते हैं तथा नल को शिष्ट व्यवहार करने का आदेश देते हैं। सेरीराम के पातानी पाठ के अनुसार नल हनुमान के लाये हुए पत्थरों को पैर से समुद्र में डाल देते हैं। इस पर हनुमान तथा नल में विवाद होता है और विभीषण इसका निपटारा कराते हैं। सेरीराम में अंगद के स्थान पर हनुमान ही रावण के पास दूत बन कर जाते हैं परन्तु यह घटना कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् घटती हैं। ये राम का एक पत्र भी ले जाते हैं जिसमें सीता के लौटाने तथा सन्धि का प्रस्ताव है।[3] रावण राम से सन्धि के हेतु इस शर्त पर तैयार होता है कि उसकी बहन शूर्पणखा को विरूप करनेवाले लक्ष्मण को बाँध कर उसके पास भेज दिया जाय। इन्द्रजीत द्वारा नागपाश में बाँधे जाने का वृत्तान्त यहां नितान्त भिन्न है। इन्द्रजीत को एक विशाल सेना के साथ आकाश मार्ग से आते देख कर हनुमान राम को सेना की रक्षा के हेतु गरुड़ महावीर को बुलाने की सलाह देते हैं। गरुड आकर अपने पंख फैला कर सारी सेना को ढक लेते हैं।[3] इन्द्रजीत पत्थर बरसाता रहता है परन्तु किसी को चोट नहीं लगती।[4] इसके अनुसार रात्रि के समय एक मायामय बाण द्वारा इन्द्रजीत विभीषण को छोड़ कर समस्त वानर सेना को निद्रित कर देता है और उसके पश्चात् पास आकर सब का वध करने लगता है परन्तु विभीषण उसे भगा देता है तथा

---

१. उपर्युक्त, पृष्ठ ५५२।

२. वही, पृष्ठ।

३. वही, पृष्ठ ५६१।

४. उपर्युक्त, पृष्ठ ५६३।

सेनापतियों को जगाता है। तब राम ने मलयकीरी से विशल्याकिन औषधि लाने को हनुमान को भेजा।[1] मार्ग में कालनेमि हनुमान को मिलता है जिसे रावण हनुमान का मार्ग रोकने को भेजता है। वह तपस्वी का रूप धारण कर के गंधमादन पर्वत पर हनुमान का अपने आश्रम में स्वागत करता है। सरोवर में बैठते ही एक मकरी उनका पैर पकड़ती है और हनुमान द्वारा मारे जाने पर अपने शाप की बात बताती है तथा कालनेमि का वास्तविक परिचय देती है, इस पर हनुमान उसको मार कर आगे बढ़ते हैं।

सेरीराम में कुम्भकरण की मृत्यु के पश्चात् रावण बीलावीस नामक अपने पुत्र को पाताल से बुलाता है और उसे रामसेना का नाश करने को भेजता है। उसकी दृष्टि ऐसी है कि जिस पर पड़ जाय वही भस्म हो जाय। इस रहस्य को विभीषण के जानने के कारण लोहे का एक बड़ा तवा बनवाया जाता है जिसमें अपना मुंह ही देखा जा सकता है, इस लोहे के दर्पण को हनुमान अपनी पूंछ के सहारे उसके सामने रख देते हैं। इस पर उसकी दृष्टि पड़ने पर उसको अपना ही मुख दिखाई देता है तथा वह भस्म हो जाता है।

यहाँ अहिरावण की कथा इस रूप में मिलती है कि रावण का पुत्र महारायन हनुमान का रूप धारण कर के राम की सेना में प्रवेश कर जाता है तथा राम को मायालेप लगा कर अचेत कर देता है, इस अवस्था में वह इन्हें अपने भवन में ले जाता है। हनुमान राम को खोजते हुए पाताल पहुँचते हैं जहां उनकी भेंट एक राजकुमारी से होती है। वह बताती है कि 'उसके पुत्र के विषय में ज्योतिषियों ने यह बताया था कि महारायन के पश्चात् पाताल का राज्य करेगा। महारायन को जब यह पता लगा तो उसने उसे भी मार डालने का निश्चय किया है।' जब हनुमान राजकुमारी से उसके पुत्र को राजा बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं तब वह उनको छिपकली के रूप में अपने पानी के घड़े में छिपा कर ले जाती है। यहां यह पानी वह अपने लड़के के स्नान के हेतु ले जा रही है। फाटक पर हनुमान का उनके पुत्र हनुमान तूगंज से द्वन्द्व युद्ध होता है। वह अपने पुत्र की सहायता को अस्वीकार कर के महारायन को हरा कर सोये हुए राम को लंका ले जाते हैं। राम तभी जागते हैं जब विभीषण उनके मुख पर से मायालेप धो डालता है। उसी दिन राम महारायन का युद्ध में वध करते हैं।[2] सेरीराम के शैलावेर पाठ में यह कथा अधिक विस्तार से वर्णित है। इसके अनुसार पाताल से महारायन पहिले अपने दो सेनापतियों को भेजता है फिर स्वयम् कीट का रूप धारण कर के हनुमान का

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ५६५।

[2] बुल्के—वही, पृष्ठ ६०१।

शरीर पार कर जाता है। इसके पूर्व वह क्रमशः सुग्रीव, जाम्बवान तथा विभीषण रूप धारण कर के घुसने का असफल प्रयत्न करता है। रात्रि के पिछले पहर में वह राम को उठा कर पथताल के मार्ग से पाताल में ले जाता है। जब हनुमान राम को खोजने पाताल पहुँचते हैं तो जिस राजकुमारी से उनकी भेंट होती है वह अमीर अरब की बहन है जो रावण का मामा है। इसी अमीर अरब ने राजकुमारी के पुत्र अपने मानजे को कैद कर रखा है। हनुमान पक्षी के रूप में राजकुमारी के जलपात्र में छिप जाते हैं तथा अमीर अरब को मार कर उसके भानजे को राजा बनाते हैं। इस सेरीराम की कथा के अनुसार समुद्र पार करते समय उनका वीर्य गिर गया था जिसे मछलियों की रानी ने खा लिया था और वह गर्भवती हो गयी थी। सेरीराम के पातानी पाठ के अनुसार मछलियाँ अपनी रानी की आज्ञा से समुद्र पर बँधा पुल नष्ट करने लगती हैं, इस पर हनुमान उसके पास जाकर उन्हीं से पुल का पुनः निर्माण कराते हैं तथा उसके एक पुत्र उत्पन्न करते हैं। यही कथा हिकायत महाराज रावण में भी मिलती है।[1]

सेरीराम के अनुसार इन्द्रजित के रण के समय इन्द्रजित मायासीता की रावण के आदेशानुसार रचना करता है तथा उनका लंका में ही वध कर के यह समाचार चारों ओर फैला देता है। इस समाचार को सुन कर राम मूर्छित हो जाते हैं। विभीषण राम को पुनः सचेत कर के यह परामर्श देते हैं कि इस समाचार पर तुरन्त विश्वास नहीं करना चाहिए और हनुमान को सीता का कुशल समाचार लाने को भेजते हैं। हनुमान एक पक्षी का या एक और पाठ के अनुसार मधुमक्खी का रूप धारण कर के लंका में प्रवेश कर के सीता के जीवित होने का समाचार ले कर लौट आते हैं। इसी समय हनुमान बहुत से महर्षियों तथा भिक्षुओं को एक मंदिर की ओर जाते देखते हैं और उनकी बातचीत से यह जानकारी प्राप्त कर लेते हैं कि इन्द्रजित मृत राक्षसों को जिलाने के उद्देश्य से यज्ञ कर रहा है। यह समाचार वे ही लंका से आने पर राम को देते हैं तथा लक्ष्मण को ले कर यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं।[2] रावण द्वारा लक्ष्मण के आहत होने पर राम विभीषण से परामर्श कर के हनुमान को औषधि लेने को भेजते हैं। हनुमान अंजनी नामक पर्वत पर से उस औषधि को राम के पास ले आते हैं। इस पर विभीषण कहता है कि औषधि तैयार करने को रावण के पलंग के नीचे पड़े चौके की आवश्यकता है। हनुमान भ्रमर बन कर रावण के महल में प्रवेश कर के उस चौके को रात्रि में

---

[1] वही, पृष्ठ ६०२।

[2] बुल्के वही, पृष्ठ ५७४-५७५।

लाते हैं। वहीं वे रावण और मंदोदरी के केश को एक में बाँध भी आते हैं। चींके के सहारे विभीषण औषधि बनाता है तथा लक्ष्मण पुनः जीवित हो उठते हैं। प्रातःकाल हनुमान रावण के पास पहुँच कर कहते हैं कि जब तक मंदोदरी तुम्हारे मस्तक पर प्रहार नहीं करेगी तब तक यह गाँठ नहीं खुलेगी। इस पर रावण मंदोदरी को ऐसा करने देता है। एक स्त्री द्वारा मारे जाने पर वह अब अजेय नहीं रह जाता। पातानी पाठ के अनुसार हनुमान पिस्सू के रूप में एक दासी के साड़ी पर बैठ कर रावण के महल में प्रवेश करते हैं।[1] रावण के मर्मस्थान के विषय में इस रचना के अनुसार सीता हनुमान को बताती हैं कि रावण के दाहिने कान के नीचे एक छोटा सा सिर है जिसके कटने पर वह मरेगा। हनुमान यह भेद राम को बताते हैं।[2] सीता ही हनुमान को यह बताती हैं कि मंदोदरी के पास रावण का मायावी खड्ग है जिसकी पूजा वह नित्य किया करती है और उसी से वह मरेगा। हनुमान सीता के परामर्श से मंदोदरी के पास जाकर रावण के मृत्यु का झूठा समाचार सुनाते हैं जब वह शोकसंतप्त हो जाती है तो हनुमान चुपके से उस खड्ग को राम के पास लाते हैं।[3]

सेरीराम के अनुसार राम द्वारा पराजित तथा आहत रावण रणभूमि में पड़ा रहता है। सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात् भरत तथा शत्रुघ्न लंका पहुँचते हैं और राम-लक्ष्मण अपने और दोनों भाइयों के साथ लंका में रावण से मिलने जाते हैं। हिकायत महाराज रावण में भी यह माना गया है कि रावण जीवित है तथा कल्प के अन्त में पुनः भगवान के शत्रु के रूप में प्रकट होगा।

सेरीराम के अनुसार हनुमान जन्म के पश्चात् एक दिन वन में फल खोजते हुए उदय होते हुए सूर्य को लाल फल समझ कर आकाश में कूद जाते हैं। जिससे वे जल कर मर जाते हैं और इनकी हड्डियाँ समुद्र में गिर जाती हैं। इन हड्डियों को मछलियाँ एकत्र कर लेती हैं। सूर्य अंजना के पितामह की प्रार्थना स्वीकार कर के इन्हें पुनः जिला देते हैं तथा मायायुद्ध के अनेक मंत्र इनको प्रदान करते हैं।[4]

हिकायत महाराज या रावण

हिकायत के अनुसार गौतम ऋषि अपनी पुत्री अंजनी को १०० वर्ष तक मुंह

---

[1] वही, पृष्ठ ५८१।

[2] बुल्के—वही, पृष्ठ ५८५-५८६।

[3] वही, पृष्ठ ५८६।

[4] वही, पृष्ठ ६६१।

बाये एक सूई की नोक पर समुद्र के बीच में खड़े रहने का शाप देते हैं क्योंकि उन्हों अपनी माता के व्यभिचार की बात अपने पिता को नहीं बतायी थी। राम लक्ष्मण सीता सहित एक दिन वन में घूमते हुए एक स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ दो सरोवर हैं—एक का जल स्वच्छ तथा दूसरे का गदला है। लक्ष्मण को एक ऋषि ने बता दिया था कि स्वच्छ जल में स्नान करने से मनुष्य पशु-पक्षि का रूप धारण कर लेते हैं और गदले जल के सरोवर में स्नान करने से पशु योनि से मनुष्य योनि प्राप्त कर लेते हैं। राम तथा सीता लक्ष्मण की बात न मान कर जल में स्नान करते हैं तथा वानर और वानरी का रूप धारण कर लेते हैं। इसी अवस्था में पेड़ों पर घूमने लगते हैं तथा सीता को राम से गर्भ रह जाता है। बड़ी कठनाई से लक्ष्मण इनको फँसा कर गदले पानी के सरोवर में स्नान कराते हैं तब वे पुनः मनुष्य शरीर प्राप्त कर लेते हैं। फिर राम किसी प्रकार सीता का भ्रूण निकाल देते हैं। पश्च इसे अंजनी के मुँह में रख देते हैं इसके पश्चात् अंजनी से हनुमान का कुण्डल धारण किए हुए जन्म होता है।[1] सेरी राम के एक दूसरे पाठ के अनुसार अंजनी को देख कर राम अनुरक्त हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप उनको वीर्यपात हो जाता है जिसे ये एक पत्ते पर रख कर वायु के द्वारा अंजना के खुले हुए मुख में रखवा देते हैं जिससे हनुमान का जन्म होता है।

तिब्बत में रामकथा प्रायः आठवीं या नवीं शताब्दी में पहुँच चुकी थी क्योंकि कई ऐसी रामकथा की हस्तलिखित प्रतियाँ हैं जो इस काल की ज्ञात होती हैं। इन प्रतियों में कथानक में ही बहुत भेद दृष्टिगोचर होता है परन्तु सभी में कथा रावणचरित से ही प्रारम्भ होती है। दशरथ कैलासवासी ऋषियों से प्रार्थना कर के एक फल प्राप्त करते हैं जिससे उनकी पहिली पत्नी से स्वयं विष्णु अवतार लेते हैं तथा दूसरी से विष्णु के पुत्र। पहिले का नाम 'रामन' और दूसरे का 'लक्षण' रखा जाता है। सीता रावण की पुत्री है जो अशुभ जन्मपत्री के कारण समुद्र में फेंक दी जाती है तथा कृषकों द्वारा लीलावती के नाम से पाली जाती है। रामन के पिता यह निश्चय नहीं कर पाते कि अपने दोनों पुत्रों में किसे राज्य दें रामन स्वयं वन में तपस्या करने चले जाते हैं। कृषकों के अनुरोध पर लीलावती से विवाह करते हैं और वहीं राज्य करने लग जाते हैं। इनकी राजधानी के पास ही अशोक वन है। सीता को रावण अशोक वन की मिट्टी सहित हर ले जाता है।

---

[1] उपर्युक्त, पृष्ठ ६६६।

[2] बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में, रामकथा—'आज' साप्ताहिक अंक—३० अप्रैल, १९६७, पृष्ठ १३, कालम १।

जटायु को रक्तरंजित पत्थर खिला कर मार डाला जाता है। सुग्रीव बाली से लड़ते समय अपनी पूँछ में दर्पण बाँध कर लड़ता है जिसमें अक्स के सहारे राम बाली का वध करते हैं। हनुमान को राम अंगूठी के अतिरिक्त एक पत्र भी देते हैं। विवर में प्रवेश करते समय हनुमान की पूँछ पकड़ कर सब वानर भीतर घुसते हैं। वहाँ की देवी की पुत्री उन्हें मोहित कर देती है जिससे हनुमान को दिशा-भ्रम हो जाता है परन्तु वे आगे बढ़ते जाते हैं। विवर से बाहर निकलने पर संपाती के स्थान पर पदा नामक गीध से उनकी भेंट होती है वह इन्हें अपने पिता अगजम (जटायु) की कथा सुनाता है और कहता है कि वह रावण के हाथ सीता को छुड़ाने के प्रयास में मारा गया था। इस कथा में पदा के भाई संपदा के पंख जलते हैं।[1] रावण राम के युद्ध की कथा इत्यादि गुणभद्र द्वारा रचित उत्तर पुराण से बहुत कुछ मिलती हुई है, उत्तर रामकथा गुणाढ्य के कथासरित्सागर से मिलती है। यहाँ उत्तर रामचरित में लव का जन्म सीतात्याग के पूर्व हो जाता है तथा हनुमान के प्रयास से सीता-राममिलन होता है।

खोतानी रामकथा जो पूर्वी तुर्किस्तान में प्रचलित है बौद्धधर्म से प्रभावित है। प्राय: घटनायें तिब्बती रामायण की भाँति की यहाँ भी हैं। प्रारम्भ में बौद्ध प्रस्तावना जातकों की भाँति दी हुई है, इसके पश्चात् रावण के कुल का वर्णन है। इसमें राम तथा लक्ष्मण के पिता की हत्या परशुराम द्वारा की जाती है जिसका बदला १२ वर्ष पश्चात् राम लेते हैं। राम लक्ष्मण दोनों बनवास को जाते हैं और कृषकों के अनुरोध पर सीता के साथ दोनों विवाह करते हैं। सीता की रक्षा के हेतु लक्ष्मण रेखा खींचते हैं जिसका संकेत तुलसीकृत रामायण में भी है—'रामानुज लघुरेख खचाई। सोउ नहि नाघेउ अस मनुसाई।' बाली और सुग्रीव का युद्ध होता है, बाली आहत होने पर भाग जाता है मारा नहीं जाता। युद्ध में राम के आहत होने पर जीवक चिकित्सा के हेतु बुलाये जाते हैं। राम के द्वारा आहत होने पर दशग्रीव राजकर देना स्वीकार कर लेता है, उसका वध नहीं किया जाता। लोकापवाद और सीता का भूमि में प्रवेश यहाँ भी मिलता है।

वियतनाम में ७ वीं शताब्दी के एक शिलालेख से ऐसा पता चलता है कि वहाँ वाल्मीकि रामायण का प्रचार छठीं शताब्दी के पूर्व ही हो गया था। छठीं शताब्दी के राजा प्रकाशधर्म के काल के एक मंदिर में वाल्मीकि की प्रस्तरमूर्ति है। यहाँ के इस मंदिर के शिलालेख में श्लोकों की उत्पत्ति तथा वाल्मीकि के विष्णु के अवतार

---

[1] मारशेल्ल लालू—ल हिस्तुआर ड राम आं तिब्बेतें—जुरनाल आजियातिक—आक्तोब्र डेसाम्ब्र—१९३६, पृष्ठ ५६०-५६२।

होने की बात अंकित है। वहाँ का प्राचीन रामपरक साहित्य अब सुरक्षित नहीं है। अठारहवीं शताब्दी की रामकथा जो मिलती है उसमें रावण दक्षिण हिन्दचीन का राजा बताया गया है और राम के पिता उत्तर हिन्दचीन के। रावण दशरथ के राज्य पर आक्रमण कर देता है और उन्हें हरा कर सीता को हरण करके ले जाता है।[1]

इस प्रकार रामकथा का जो प्रचार विदेशों में हुआ था उनमें यहाँ की रामकथा का रूप बहुत बदला हुआ मिलता है। यह विकृति तत्तद देशों के जीवन के अनुसार हुई प्रतीत होती है। हनुमान के चरित्र में इसी कारण एकरूपता नहीं पाई जाती परन्तु यह एकरूपता तो भारतीय साहित्य में भी नहीं है जो कालभेद तथा प्रांतभेद के कारण होना स्वाभाविक था। हनुमान का स्वरूप जो जैन ग्रंथों में प्राप्त होता है वह वाल्मीकि रामायण के चरित से भिन्न है। जो चरित्र इनका वाल्मीकि रामायण में मिलता है उससे आनन्द रामायण के चरित्र में अन्तर है।

---

[1] बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में रामकथा—'आज' साप्ताहिक विशेषांक ७ मई, १९६७, पृष्ठ १४, कालम ३-४।

हनुमान की कथा का विस्तार

हनुमान की जन्मकथा

हनुमान के जन्म की कथा वाल्मीकि रामायण में किष्किन्धा काण्ड में उनके समुद्रलंघन के पूर्व जाम्बवन्त इस प्रकार वर्णन करते हैं[1]। "पुंजकस्थली अप्सरा ने अंजना के नाम से इस संसार में जन्म लिया तथा केसरी नाम के वानर की पत्नी हुई। यह अप्सरा रूप की प्रतिमा होने से तीनों लोकों में विख्यात थी। शापवश उसको वानर की आकृति प्राप्त हुई थी परन्तु वह मनमाना रूप धारण कर सकती थी। इसके पिता वानरराज कुंजर थे। एक दिन वह मानवी रूप धारण कर के पर्वत के शिखर पर विचरण कर रही थी। यह रूप-यौवन से परिपूर्ण थी तथा विचित्र मालायें और वस्त्र धारण किए हुए थी। इस विशालाक्षी के वस्त्र पीले रंग के थे जिसमें लाल रंग की किनारी थी। उसकी परस्पर सटी हुई गोल गोल जाँघों को, पीन स्तनों को, पतली कमर को, सुन्दर अंगों को तथा मुख को देख कर पवन कामपीड़ित हो गए। उन्होंने अपनी लम्बी भुजाओं में इसको लपेट लिया तथा इसका आलिंगन कर लिया। अंजना जो उत्तम व्रत को पालन करने वाली थी बोली, 'मेरे एकपतिव्रत को कौन नाश कर रहा है।' पवन देव ने कहा कि 'तुम अपने मन से भय को निकाल दो मैं तुम्हारी हिंसा नहीं कर रहा हूँ। मैंने मन से तुम्हारा समागम किया है मैं तुम्हें एक महान् धैर्यवान, महान तेजवाला, महान बली, पराक्रमशाली, लाँघने और छलाँग मारने में मेरे समान ही पुत्र उत्पन्न होगा।' इस पर अंजना शान्त हो गयी और उसने एक गुफा में तुम्हें जन्म दिया। वाल्यावस्था में एक महावन में सूर्य को उदय होते देख कर तथा उसे कोई फल समझकर उसको लेने के हेतु तुम सहसा आकाश में उछल पड़े। तुम ऊपर उड़ते ही गये। जब तुम सूर्य के पास पहुँच गए तब इन्द्र ने तुम्हारे ऊपर वज्र का प्रहार किया, इस पर तुम पर्वत के अग्र भाग पर गिरे और तुम्हारा बायाँ हनुभंग हो गया इस कारण तुम्हारा नाम हनुमान पड़ गया।[2] तुम्हारे ऊपर प्रहार होने से वायु कुपित हुए। उन्होंने तीनों लोकों में बहना बन्द कर दिया। इस पर सब देवता घबड़ा गए और ब्रह्मा ने तुम्हें वर दिया कि तुम समर में किसी अस्त्र शस्त्र से नहीं मारे जाओगे तथा तुम विक्रमशाली होंगे। इन्द्र ने अपने वज्र से तुम्हें मरा न देख कर यह वर दिया कि तुम्हारी इच्छामृत्यु होगी। इस प्रकार तुम केसरी

---

१. वाल्मीकि रामायण—६६, ८-३०।

२. उपर्युक्त, ६६, २४।

के क्षेत्रज पुत्र हो, तुम्हारा पराक्रम अपार है। मरुत के तुम औरस पुत्र हो, उन्हीं के समान तुम्हारा तेज है। तुम छलाँग मारने में भी उन्हीं के समान हो।" इस क को बुल्के ने प्रक्षिप्त माना है क्योंकि इनके अनुसार आदि रामायण में यह कथा न मिलती।[1] वाल्मीकि रामायण के इस अंश पर आधारित पीछे बहुतसी कल्पना की गयीं। यह सम्भव है कि इनके सूर्य पर धावा करने की बात कपिपूजकों ने अ देवता को सूर्य देवता से अधिक महत्वपूर्ण बनाने के हेतु गढ़ी हो। इन्द्र के वज्र इनका नष्ट न होना भी इसी ओर संकेत करता है। हो सकता है कि यह क ऋग्वेद के वृषाकपि की हो जिसे पीछे चल कर हनुमान से जोड़ दिया गया हो इतना तो अवश्य प्रतीत होता है कि यह कोई अनार्य की कथा है।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में हनुमान के जन्म की कथा की पुनरावृ हुई है। इस कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि राम अगस्त्य मुनि से प्रश्न करते हैं कि "हनुमान इतने बली होने पर भी बाली का वध स्वयं क्यों नहीं क सके।" इस पर अगस्त्य मुनि राम को इनके किष्किन्धाकाण्ड के जन्म की कथा कुछ मिलती हुई कथा सुनाते हैं। परन्तु यहाँ अंजना को शापग्रस्त अप्सरा नहीं बताया गया है और न उसके पर्वत पर जाने की कथा है। इसके अनुसार केसरी सुमेरु पर्वत राजा हैं जो सूर्य के वरदान से सुवर्ण के रंग के हैं वायु उनकी पत्नी अंजना से पुत्र उत्पन्न करते हैं। अंजना प्रसव के पश्चात् फल लेने चली जाती है। इस पर भूख से व्याकुल हो कर हनुमान जवा के फूल के रंग के उदित होते हुए सू को फल समझ कर आकाश में कूद जाते हैं। वायु इनकी सहायता करते हैं संयो से उसी दिन राहु सूर्य को ग्रहण करने जा रहा है। जब वह सूर्य के पास पहुँचता है तो हनुमान इनके ऊपर एक औरबड़ा फल समझकर दौड़ पड़ते हैं इस पर राहु इ के पास भाग कर जाता है और उनसे सब वृत्तान्त कहता है। इस पर इन्द्र ऐरा पर सूर्य की ओर चल देते हैं। इस पर हनुमान इस ऐरावत को बड़ा फल समझ क पर टूट पड़ते हैं। इन्द्र हनुमान को वज्र मार कर गिरा देते हैं। इनकी बाईं ठुड्ड टूट जाती है। वायु अपने आहत पुत्र को उठा कर एक गुफा में प्रवेश करते हैं और सारा विश्व वायुरहित हो जाता है। अन्त में सब ब्रह्मा के पास जाते हैं। ब्रह्मा सब को लेकर वायु के पास आते हैं और अपने स्पर्श से हनुमान को जीवित कर दे हैं। ब्रह्मा जी के कहने पर विविध देवता हनुमान को विविध वर प्रदान करते हैं इन्द्र इनका नाम हनुमान रखते हैं। इसके पश्चात् वायु हनुमान को अंजना के सुपुर्द कर देते हैं और देवताओं के वर की बात बतला देते हैं। बड़े होने पर हनुमान

---

[1] बुल्के—उपर्युक्त, पृष्ठ ४६५ तथा ४९१।

महर्षियों के आश्रम में स्वच्छन्द रूप से विचरण करते हुए अनेक उत्पात करते हैं। इस पर ऋषि लोग उन्हें श्राप देते हैं कि दीर्घकाल तक तुमको अपने बल का ज्ञान न रहेगा। दाक्षिणात्य पाठ में इसके पश्चात् यह विवरण मिलता है कि मुनियों से जब इन्होंने प्रार्थना की तो उन्होंने यह भी कह दिया कि जब तुम्हें कोई स्मरण दिलावेगा तब तुम्हारा बल लौट आयेगा[1]—

यदा ते स्मार्यते कीर्तिस्तदा ते वर्धते बलम्।
अमोघ शापैः शापस्तु दत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा।
न वेत्ता हि बलं सर्वं बाली सन्नरिमर्दन॥ उत्तर–३५,१६।

श्याम के रामकियेन के अनुसार[2] हनुमान एक दिन उमा के उद्यान में उत्पात मचाने लगे थे और उमा उन्हें यह शाप देती हैं कि तुम्हारा आधा बल लुप्त हो जायगा। हनुमान के विनय करने पर उमा ने कहा कि नारायणावतार राम के स्पर्श से तुम्हारा शरीर अपना पूर्व बल प्राप्त कर सकेगा।

ब्रह्मपुराण में अंजन पर्वत के शिखर पर केशरी निवास करते हैं। उनकी दो पत्नियाँ थीं—एक का नाम अंजना और दूसरी का अद्रिका। अंजना का मुख वानरी का था और अद्रिका का मार्जारी का। एक दिन केसरी की अनुपस्थिति में अगस्त्य मुनि पधारे। इन दोनों ने उनका बड़ा सत्कार किया और यह वरदान माँग लिया कि 'पुत्रौ देहि मुनिश्वर सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ।' अगस्त्य के चले जाने पर वायु से अंजना को और निऋति से अद्रिका को पुत्र हुए। वायु से हनुमान तथा निऋति से पिशाचराट। पिशाचराट ने अंजना को और हनुमान ने अद्रिका को गौतम नदी में स्नान कराया जिससे वे शापमुक्त हो गयीं। एक तीर्थ का नाम पैशाच तीर्थ हुआ और दूसरे का हनुमन्त अथवा वृषाकपि पड़ा[3]।

स्कन्दपुराण में पवन ने अपने शिशु के स्वास्थ्यलाभ की प्रार्थना शिव से की और इसके पश्चात् इनसे शिवलिंग का स्पर्श कराया जिससे ये स्वस्थ हो गये। अनन्तर देवताओं के आगमन और वरदान का वर्णन मिलता है।[4]

भविष्य पुराण के अनुसार वज्र से मारे जाने पर भी हनुमान ने सूर्य को हाथ से नहीं छोड़ा। सूर्य का आर्त वचन सुन कर रावण जा पहुँचा तथा हनुमान की पूँछ

---

१. उत्तरकाण्ड—सर्ग—३५-३६ और ३६. २९-३५।
२. रामकियेन—अध्याय ७।
३. ब्रह्मपुराण—अध्याय ८४।
४. स्कन्दपुराण—अवंती खण्ड—चतुरशीतिलिंग माहात्म्य—अध्याय ७९।

खींचने लगा, इस पर हनुमान ने सूर्य को छोड़ दिया और हनुमान रावण से एक वर्ष पर्यन्त युद्ध करते रहे। हनुमान से रावण हारा परन्तु हनुमान उस पर प्रहार करते ही रहे। विश्रवा ऋषि ने आकर रुद्रावतार हनुमान को सन्तुष्ट किया तब उन्होंने रावण को छोड़ दिया।

आनन्द रामायण में इनके जन्म की कथा का जो स्वरूप मिलता है[1] वह ब्रह्म पुराण की कथा का ही रूपान्तर है। इसके अनुसार वायु अपने पुत्र को सूर्य की ओर बढ़ते देख कर सूर्य के प्रचण्ड ताप से उसे बचाने के हेतु दौड़े। उसको रोकने में अपने को असमर्थ पाकर उसको पवन द्वारा ठण्डा करने लगे। सूर्य के पास पहुँचने पर हनुमान ने देखा कि राहु सूर्य को निगल रहा है। यह देख कर हनुमान ने उसे अपनी पूँछ के प्रहार से अचेत कर दिया, तब केतु राहु की सहायता को आया परन्तु उसे भी हनुमान ने परास्त कर दिया। अन्त में ये दोनों ही इन्द्र की शरण में गए। भावार्थ रामायण में भी यही कथा इसी प्रकार दी हुई है।[2] इसी प्रकार की कथा सेरीराम में दी हुई है। भेद इतना है कि वन में फल खोजते हुए हनुमान सूर्य को लाल फल समझ कर उसकी ओर कूद पडे। सूर्य के तेज से वे जल गए और उनकी हड्डियाँ समुद्र में गिरीं। मछलियों ने इन्हें एकत्रित कर लिया और सूर्य ने अंजना के पितामह का अनरोध स्वीकार कर के उन्हें जिलाया और उनको मायायुद्ध के मंत्र दिए। ब्रह्मचक्र के अनुसार एक ऋषि ने तपस्या का जीवन त्याग कर जादू से एक कन्या की सृष्टि की उससे दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। एक पुत्री वानरी के रूप में प्रकट हुई उसने पवन नामक राजा से विवाह किया जिससे हनुमान का जन्म हुआ।

एक कथा में ऐसा विवरण प्राप्त होता है कि हनुमान की माता अंजना पुत्र-प्राप्ति के हेतु शिव की तपस्या कर रही थी। इसी काल में दशरथ ने पुत्रप्राप्ति के हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्नि द्वारा प्राप्त पुरोडास का तीन भाग कर के अपनी तीनों रानियों को दिया। कैकेयी सब से छोटी थी और राजा की प्यारी भी थी परन्तु उसको सब से पीछे पुरोडास मिला। इस पर वह कुछ क्रोध से पुरोडास को देख रही थी कि इतने में एक चील ने झपट्टा मार कर उसके हाथ से इसका कुछ भाग छीन लिया और उस पहाड़ पर जा पहुँची जहाँ अंजना तपस्या कर रही थी, वहीं उससे वह पुरोडास का भाग गिर गया। शिव ने प्रकट होकर अंजना से उस पुरोडास को खाने को कहा। इसी से उसको हनुमान की उत्पत्ति हुई।[3] इस कथा के अनुसार मरुत ने

---

[1] आनन्द रामायण—१, १३, १५८-१६१, १६४-१६८।

[2] भावार्थ रामायण—७, ३५।

[3] बुल्के—वही, पृष्ठ ६६१

केवल उस चील को उस स्थान पर ले जाने को प्रेरित किया जहां अंजना तपस्या कर रही थी।[1]

अध्यात्म रामायण में ब्रह्मा जी के नेत्र से कुछ दिव्य अश्रु निकले जिन्हें वे हाथ में लेकर कुछ चिन्तन कर के पृथ्वी पर डाल देते हैं। उसमें से एक बहुत बड़ा वानर उत्पन्न हो जाता है। वह वहीं रहता है। एक दिन वह फलमूल खाने के ध्येय से जाते हुए वापी को देखता है उसमें अपनी परछाई को देख कर एक दूसरे वानर की कल्पना कर के उसमें कूद पड़ता है। वहाँ किसी को न पाकर जब वह बाहर निकलता है तो अपने को एक सुन्दर स्त्री के रूप में पाता है। उसी समय उधर से इन्द्र का आगमन होता है वे काममोहित हो कर अपना वीर्य छोड़ देते हैं जो उसके बालों पर गिर जाता है जिससे बाली की उत्पत्ति होती है। इसके थोड़े ही देर के पश्चात् सूर्य को वह स्त्री दिखाई देती है वे भी काममोहित होकर उस पर अपना वीर्य गिरा देते हैं जो उसकी ग्रीवा पर गिरता है। इससे सुग्रीव की उत्पत्ति होती है। इन्द्र के द्वारा बाली को एक दिव्य माला प्राप्त होती है और सूर्य सुग्रीव को उसकी सहायता के हेतु हनुमान को देते हैं 'तस्य दत्वा हनूमन्तं सहायार्थं गतो रविः।'[2] इसके पश्चात् ब्रह्मा जी इस ऋक्षराज को किष्किन्धापुरी में रहने के हेतु एक देवदूत के साथ भेज देते हैं। यह पुरी विश्वकर्मा द्वारा निर्मित बताई गयी है।[3] वाल्मीकि रामायण में बाली और सुग्रीव के पिता का नाम ऋक्षराज मिलता है।[4]

जैन पद्मपुराण के अनुसार आदित्यपुर के राजकुमार पवनंजय तथा महेन्द्रपुर की अंजना के संयोग से हनुमान की उत्पत्ति होती है, ये विद्याधर लोग हैं। पवनंजय तथा अंजना के विवाह की कथा का विवरण दिया जा चुका है। पवनंजय अंजना की सखी के मुख से अपनी निन्दा सुन कर अंजना उदासीन हो जाती है। पीछे उसे अनुराग होता है और गुप्त रूप से संभोग करता है। इनकी कन्दरा में उत्पत्ति तथा वहाँ से अंजना के मामा द्वारा इनका हनुमारुह द्वीप में ले जाने का भी विवरण जैन पद्मपुराण में है। इसके अनुसार हनुरुह द्वीप में इनका पालन-पोषण होने

---

[1] पी० टामस—इपिक्स मिथ्स एण्ड लेजेण्ड्स आफ इण्डिया—८ वाँ संस्करण, पृष्ठ ८०-८१।

[2] अध्यात्म रामायण—उत्तरकाण्ड—३ सर्ग, ३–१४।

[3] उपर्युक्त, उत्तरकाण्ड, ३-१५-१८।

[4] वाल्मीकि रामायण—उत्तरकाण्ड—३६, ३७।

से इनका नाम हनुमान पड़ा। यही कथा पउम चरिय[1] में तथा और जैन ग्रंथों मे मिलती है जैसा पहले लिखा जा चुका है।

हनुमान का रुद्रावतार

कई पुराणों में इन्हें रुद्रावतार अथवा रुद्रांश माना गया है। स्कन्द पुराण के अवन्तीखण्ड तथा रेवाखण्ड में इन्हें रुद्रांश कहा गया है[2]। महाभागवत पुराण के अनुसार जब विष्णु रावण को मारने के हेतु उद्यत होते हैं उस समय विष्णु से शिव कहते हैं कि वायु के पुत्र के रूप में मैं तुम्हारी सहायता करूंगा। 'अहं वानररूपेण संभूयं पवनात्मजः। साहाय्यहं ते करिष्यामि[3]।' वृहद्धर्म पुराण में भी भागवत की इस शिवप्रतिज्ञा का उल्लेख है।[4] नारद पुराण[5] और ब्रह्मवैवर्त पुराण[6] में हनुमान को शिव के अंश से उत्पन्न बताया गया है। भविष्य पुराण में हनुमान के पिता केसरी ही माने गए हैं परन्तु रुद्र तथा वायु उनको उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। जब रावण से देवता त्रस्त हो कर शिव की आराधना करतें हैं तो ग्यारह वर्ष पश्चात् यह वरदान मिलता है कि 'रावणविरोध करने के उद्देश्य से शिव अवतार धारण करेंगे।' शिव का रुद्र तेज केसरी के मुख में प्रवेश कर जाता है। कामातुर केसरी अंजना से रमण करते हैं; इतने में वायु भी केशरी के शरीर में प्रवेश कर के उसके साथ रमण करते हैं। दम्पति के बारह वर्ष तक संभोग के पश्चात् अंजना गर्भवती होती है तथा उसे वानरानन पुत्र प्राप्त होता है। अंजना यहाँ गौतम की पुत्री है[7]। शिव पुराण के अनुसार प्रभंजन ने केसरी की पत्नि अंजनी से रुद्रावतांश हनुमान को उत्पन्न किया।[8] शिव महापुराण शत रुद्र संहिता के अनुसार विष्णु को मोहिनी के रूप में देख शिव का वीर्यपतन हुआ जिसे सप्तर्षियों को गौतम पुत्री अंजना के कान में रख दिया और बाद में अंजना हनुमान को जन्म देती है।

---

[1] पउमचरिय—पर्व १५-१८।

[2] स्कन्दपुराण—अवन्तीखण्ड चतुरशीतिलिंग माहात्म्य—अ० ७९, रेवाखण्ड, अ० ८४।

[3] महाभागवत पुराण—अ० ३७।

[4] वृहद्धर्म पुराण—अ० १८।

[5] नारदीय महापुराण पूर्वखण्ड—अध्याय ७९।

[6] ब्रह्मवैवर्त पुराण—कृष्णजन्म खण्ड—अध्याय ६२।

[7] भविष्यपुराण—प्रति सर्ग पर्व, चतुर्थ खण्ड—१३, ३१-३६।

[8] शिव पुराण—शतरुद्र खण्ड—अध्याय ३९-४२।

महानाटक में रावण रुद्रावतार हनुमान द्वारा लंका जलाई जाने पर यह कहता है कि, "मैंने अपने दस सिर चढ़ा कर दस रुद्रों को तो प्रसन्न किया परन्तु हनुमान तो ग्यारहवें रुद्र हैं इनका रुष्ट होना स्वाभाविक है क्योंकि मैंने पंक्ति भेद कर दिया है।[1] कम्ब रामायण तथा तत्वसंग्रह रामायण में भी हनुमान को रुद्रावतार माना गया है।[2] कृत्तिवासीय रामायण में सीता रामाभिषेक के पश्चात् भोजन कराने को बैठाती हैं परन्तु उन्हें तृप्त नहीं कर पातीं इस पर शिव की वन्दना करतीं हैं क्योंकि वे शिव के अवतार हैं।[3] तुलसीकृत रामायण में हनुमान को स्पष्ट रूप से रुद्रावतार तो नहीं कहा गया है परन्तु संकेत इस बात का मिलता है। 'प्रभु पद पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा।'[4] दोहावली में तुलसीदास ने स्पष्ट रूप से हनुमान को रुद्रावतार कहा है[5]। विनयपत्रिका में कई स्थानों पर इन्हें रुद्रावतार कहा है[6]—

जयति रणधीर, रघुवीर हित देवमणि रुद्र अवतार संसारपाता।
विप्र सुरसिद्ध मुनि आशिषाकार वपु, विमलगुणबुद्धि-वारिधिविधाता। २५-३
जयति रुद्राग्रणी, विश्ववन्द्याग्रणी विश्वविख्यात भट चक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी कामजेताग्रणी रामहित रामभक्तानुवर्ती।२७-३

सारलादास के उड़िया महाभारत के आदिपर्व के अनुसार भी हनुमान शिव के अवतार हैं। इसके अनुसार अहिल्या ने अपनी लड़की को शाप दिया कि तुम्हारा लड़का वन्दर होगा। इस पर अंजना ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया और तप करने लगी। उसके शरीर के चारों ओर वल्मीक बन जाने पर पवन देवता उसको सप्ताह में एक बार भोजन देने लगे। उधर शिव पार्वती विभिन्न पशुओं का स्वरूप धारण करके रमण करते थे। वानरी के रूप में रमण करते समय पार्वती शिव के तेज को सहन न कर सकीं। इस तेज का कुछ अंश पवन ने अंजना को दे दिया, उससे वह हनुमान की माता बन गयीं। राम ब्रह्मानन्द कृत तत्वसंग्रह रामायण में इस विवरण का संक्षिप्त रूप प्राप्त होता है। श्याम के रामकियेन में अंजना का नाम

---

१. महानाटक—६, २७।

२. कम्ब रामायण—५, १३, तत्व संग्रह रामायण—६, १२९।

३. कृत्तिवास रामायण—६, १२९।

४. रामचरित मानस—सुन्दरकाण्ड—दोहा ३२ के पश्चात्।

५. दोहावली—१४२, ३।

६. विनयपत्रिका—पदांक—२५, ३; गीता प्रेस—२१वाँ संस्करण, पृष्ठ ४५।

स्वाहा है। वह अपने पिता गौतम से अपनी माता के व्यभिचार की बात प्रकट कर देती है। इस पर उसकी माता उसको शाप देती है कि वह एक पैर पर खड़ी रहे जब तक उसे पुत्र प्रसव न हो। शिव स्वाहा की दयनीय अवस्था पर द्रवित होते हैं और अपनी शक्ति तथा अस्त्रों की शक्ति के साथ पवन को स्वाहा के पास भेजते हैं। पवन उन्हें स्वाहा के मुख में रख देते हैं। फलस्वरूप तीन मास पश्चात् अंजना के गर्भ से हनुमान वानर रूप में उत्पन्न होते हैं।[१]

कथासरित्सागर में गौतम अपनी पुत्री को गर्भवती होने का शाप दे देते हैं क्योंकि उसने अपनी माता का व्यभिचार प्रकट नहीं किया था। एक गुजराती दन्त-कथा के अनुसार अंजना अपने पिता का शाप सुन कर तपस्या करना प्रारम्भ करती है। शिव नारद के द्वारा अंजना को एक मंत्र का उपदेश करते हैं जिससे हनुमान का जन्म होता है। अंजना मंत्र ग्रहण करते समय केशी नामक वानर का ध्यान कर रही थी इस कारण उससे वानर के रूप में हनुमान प्रकट हुए।[२]

राम के पुत्र—हिन्दएशिया में हनुमान की जन्मकथा का स्वरूप बदल जाता है। यहाँ गौतमपुत्री अंजना के श्राप की कथा तो है परन्तु शिव के स्थान पर राम सीता हनुमान को उत्पन्न करते हैं।

हिकायत सेरीराम के अनुसार गौतम ऋषि अपनी पुत्री को १०० वर्ष तक मुँह बाये एक सुई की नोक पर समुद्र में खड़े रहने का शाप देते हैं। अपने वनवास के समय राम सीता वानररूप में रमण करते हैं जिससे सीता गर्भवती हो जाती हैं। अनन्तर राम सीता का भ्रूण निकाल देते हैं जिसे पवन एक पत्ते पर रख कर अंजना के मुँह में रख देते हैं; पीछे अंजना कुण्डलों से युक्त हनुमान को जन्म देती हैं।

श्याम के रामजातक के अनुसार राम सीता की खोज करते समय एक फल खा लेते हैं, अंजना जिसका नाम यहाँ फेयगंसी मिलता है वह भी वहीं फल खाती है और दोनों वानर वानरी के रूप में हनुमान को जन्म देते हैं।[३]

हनुमान की जन्मकथा का सब से प्राचीन रूप वाल्मीकि रामायण में मिलता है चाहे वह प्रक्षिप्त ही क्यों न मान लिया जाय। यों जो कारण उसे प्रक्षिप्त मानने के बताए जाते हैं जैसे १—हनुमानकथा को छोड़ कर केसरी का नाम केवल दो बार

---

१ बुल्के—वही, पृष्ठ ६६४।

२. बुल्के—वही, पृष्ठ ६६३-६६४।

३. बुल्के—वही, पृष्ठ ६६५-६६६।

और वानरों के साथ मिलता है;[1] २—महाभारत में इनका नाम अंजनीसुत या केसरीपुत्र नहीं मिलता। यह प्रमाण संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता। पवन तथा अंजना ये नाम जैन ग्रंथों में भी हनुमान के पिता माता के रूप में मिलते हैं, इससे ऐसा तो अनुमान हो ही सकता है कि यदि यह अंश प्रक्षिप्त है तो वह भी वहुत प्राचीन प्रक्षिप्त है। दूसरे देखना यह आवश्यक है कि कथा का प्रवाह इनकी जन्मकथा से टूटता तो नहीं। किष्किन्धाकाण्ड वाला प्रसंग अपने स्थान पर ठीक वैठता है इस कारण इसको प्रक्षिप्त मानना कुछ उचित नहीं है। महाभारत की रामकथा वहुत संक्षेप में है इस कारण यदि वहाँ केसरी या अंजना का नाम नहीं आता तो कोई आश्चर्य नहीं है।

हनुमान की राम से प्रथम भेंट—रामकथा से सम्बन्धित हनुमान का चरित्र वाल्मीकि रामायण के अनुसार किष्किन्धाकाण्ड के अन्तर्गत सुग्रीव की मैत्री के प्रकरण से प्रारम्भ होता है। इस कथा के अनुसार हनुमान सुग्रीव के साथ वैठे थे जव सुग्रीव राम और लक्ष्मण को देख कर यह सन्देह करते हैं कि कदाचित् इन्हें वाली ने भेजा हो। इस पर हनुमान को सुग्रीव ने इनका भेद लेने को भेजा। ये व्राह्मण के वेष में उपस्थित होते हैं तथा राम लक्ष्मण से उनका सव वृत्तान्त समझकर उन्हें सुग्रीव की सहायता का आश्वासन देते हैं और अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो कर राम लक्ष्मण को अपने कन्धों पर सुग्रीव के पास ले आते हैं और सुग्रीव तथा राम की मित्रता करा देते हैं।[2]

इस कथा के विपरीत अद्भुत रामायण के अनुसार जब हनुमान राम से प्रथम बार मिलते हैं तो राम उनको अपना विराट रूप दिखाते हैं। तब हनुमान को विश्वास होता है कि ये भगवान के अवतार हैं[3]।

भावार्थ रामायण में हनुमान राम की शक्ति की परीक्षा लेने के हेतु राम लक्ष्मण के पास साल वृक्ष ले कर पहुँचते हैं और उनसे वड़े ऊँचे स्वर में पूछते हैं कि तुम कौन हो। राम उन पर वाण चला कर उन्हें परास्त कर देते हैं तव हनुमान वायु की आज्ञा मान कर राम से क्षमायाचना करते हैं।[4]

---

१. बुल्के—वही, पृष्ठ ६५३-६५४।

२. वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धाकाण्ड—१·११।

३. अद्भुत रामायण—सर्ग १०।

४. भावार्थ रामायण—४, १।

बंगाली रामकथा में हनुमान को शिव की वाटिका का द्वारपाल वर्णित किया है। यहाँ लक्ष्मण वाटिका में से फल तोड़ने जाते हैं। हनुमान उनको रोकते हैं। इस पर दोनों में युद्ध होने लगता है। लक्ष्मण के देर होने पर राम भी वहाँ पहुँचते हैं और शिव भी आ जाते हैं, दोनों में युद्ध होता है। युद्ध के अन्त में शिव राम को अपने द्वारपाल हनुमान को समर्पित करते हैं। उसी समय से हनुमान राम के भक्त हो जाते हैं।[1]

सेरीराम के पातानी पाठ में राम से हनुमान के युद्ध का वर्णन है तथा अन्त में वे राम को पहिचान कर उनके भक्त बन जाते हैं।[2] कदाचित् कोई कथा बंगाल में इस प्रकार की प्रचलित थी जो यहाँ से दूर-दूर तक फैली।

श्याम के रामकियेन में राम को एक वृक्ष के नीचे शयन किए हुए वर्णित किया गया है। हनुमान उसी वृक्षपर आसीन हैं। वे वृक्ष की शाखा हिलाते हैं। लक्ष्मण उनको भगाने का प्रयत्न करते हैं परन्तु ये उनका धनुषवाण छीन लेते हैं। विवश होकर लक्ष्मण राम को जगाते हैं। हनुमान राम को देख कर अपनी माता से सुने हुए लक्षणों को स्मरण कर के अपने को राम को समर्पित करते हैं और दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास पहुँचा देते हैं।[3] जैन पद्मपुराण के अनुसार हनुमान की भेंट राम से विट सुग्रीव के मरने के पश्चात् होती है।

वैष्णव पद्मपुराण में जब राम लक्ष्मण की गोद में सिर रख कर विश्राम कर रहे है तो उन्हें एक 'मणि कुंडलं हेम पिंगलं वानरम्' को देखा।[4]

कम्ब रामायण में भी हनुमान के कुण्डलों की चर्चा मिलती है।[5] इसी बीच में यह भी वर्णन मिलता है कि हनुमान ने अपनी प्रथम भेंट में राम को अपना शरीर बढ़ा कर अपनी शक्ति का परिचय दिया था।[6]

रामकीर्ति के वर्णन में हनुमान जो वायु के पुत्र हैं वे सुग्रीव द्वारा भेजे जाते हैं और लक्ष्मण को हराते हैं। राम उनके कुण्डलों को देख लेते हैं, इस पर उन्हें उनकी माता अंजना की कही हुई बात स्मरण आ जाती है कि जो तुम्हारे कुण्डल देख

---

[1] दिनेशचन्द्र सेन—दी बंगाली रामायन्स—पृष्ठ ४७।

[2] रेवरेण्ड फादर बुल्के—रामकथा—पृष्ठ ४६७।

[3] पद्मपुराण—दूसरा खण्ड—४९ अध्याय, पृष्ठ २९९-३०७।

[4] पद्मपुराण—पातालखण्ड ११२, १३५।

[5] कम्ब रामायण—४, २, ३५।

[6] वही—४, २, ३४।

सकेगा वही तुम्हारा पिता है। राम को हनुमान अपना स्वामी मान लेते हैं और सुग्रीव को समाचार देने जाते हैं। रामकियेन में भी यही वृत्तान्त मिलता है[1]।

भावार्थ रामायण के अनुसार अंजना ने हनुमान से कहा था कि जो तुम्हारी लंगोटी देख सकेगा वही तुम्हारा स्वामी होगा। इसके अनुसार हनुमान लंगोटी पहिने हुए उत्पन्न होते हैं[2]।

अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमान राम से प्रथम भेंट के अवसर पर ही उनकी परमेश्वर के रूप में आराधना करते हैं जैसा पहिले लिखा जा चुका है।[3]

गुणभद्र कृत उत्तर पुराण के अनुसार नारद हनुमान और सुग्रीव को साथ-साथ राम के पास भेज देते हैं।

सेरीराम के शैलावेर पाठ के अनुसार राम लक्ष्मण द्वारा लाए हुए पानी को पीने के पश्चात् लक्ष्मण की गोद में मस्तक रख कर चार दिन और रात एक पेड़ के नीचे सोते रहते हैं। सुग्रीव पेड़ पर से लक्ष्मण के इस भ्रातृप्रेम को देख कर रोने लगते हैं। उनके आँसू जव राम के वक्षस्थल पर गिरे तो वे जाग जाते हैं। इस पर राम इन्हें लक्ष्मण के आँसू समझ कर लक्ष्मण से अयोध्या लौट जाने को कहते हैं। लक्ष्मण की प्रार्थना पर उस पेड़ के पत्ते छोटे हो जाते हैं और सुग्रीव दिखाई देने लगते हैं। अनंतर सुग्रीव तथा राम की मैत्री हो जाती है।[4] सेरीराम के वृत्तान्त के अनुसार वाली को जव राम वाण मारते हैं तब वह राम का वाण पकड़ लेता है। राम के अनुरोध पर वह वाण को छोड़ देता है जो उसे आहत कर देता है। राम के निकट आने पर वह राम का हाथ पकड़ लेता है जिससे वह जीवित रह सके। सुग्रीव की निन्दा कर के हनुमान को रामसेवा के लिए उपयुक्त ठहरा कर वाली मर जाता है।[5] यह एक नवीन उक्ति यहाँ दिखाई देती है।

राम के पुत्र—वाल्मीकि रामायण में हनुमान को राम पहिचान के हेतु चिह्न रूप में अपनी नामांकित अंगूठी देते हैं (स्वनामांकोपशोभितं अंगुलीयम्) और कहते हैं कि 'इसे देख कर ही सीता मेरी उद्विग्नता समझ जायगी।' इसे हनुमान लेकर मस्तक पर रखते हैं।[6]

---

१. बुल्के—राम कथा—पृष्ठ ४६७।

२. भावार्थ रामायण—४, १।

३. अध्यात्म रामायण—४, १, १३-१६।

४. बुल्के—वही पृष्ठ ४६८।

५. बुल्के—वही, पृष्ठ ४८०।

६. वाल्मीकि—४, ४४, १२-१५।

गुणभद्र कृत उत्तरपुराण (जो प्राय: ९०० ई० में लिखा गया) तथा रामलिंगामृत[1] में हनुमान को अंगूठी के साथ राम एक पत्र भी देते हैं। जिस समय ये काव्य लिखे गए अर्थात् ९०० ई० के पश्चात् यह प्रथा भारत में थी कि सन्देशवाहक को चिह्न के रूप में कोई परिचित वस्तु दी जाती थी तथा लिखित संदेश अलग से दिया जाता था। यह प्रथा बहुत दिन तक चलती रही तथा मुगलकाल में भी थी।[2]

अभिनन्दन कृत रामचरित में हनुमान को राम एक अंगूठी, सीता का नूपुर तथा उत्तरीय भी देते हैं जो वे सुग्रीव के स्थान पर गिरा गयी थीं इनके अतिरिक्त पहिचान के हेतु उन्हें अपनी वंशावली भी बताते हैं (सर्ग ८)।

आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान को राम अपनी अंगूठी तो देते ही हैं उसके साथ अपना मंत्र भी अर्पित करते हैं तथा सीता के भाल पर तिलक की बात भी बताते हैं जिससे सीता समझ जाय कि हनुमान राम के दूत हैं।[3] इस वर्णन के अनुसार सीता एक वानर के भय से राम से लिपट गयीं और जो तिलक राम ने सीता के गाल पर लगाया था वह उनके वक्षस्थल पर लग गया। कम्ब रामायण में राम सीता के नख-शिख का वर्णन करते हैं[4] तथा भावार्थ रामायण में राम कहते हैं कि सीता के हनु पर मेरा चित्र अंकित है।[5]

बलरामदास कृत उड़िया रामायण में तिलक का वृत्तान्त तथा काक का वृत्तान्त दोनों ही राम इन्हें बताते हैं।[6] रामकियेन में हनुमान राम से मुद्रिका तथा उत्तरीय पाकर यह आपत्ति करते हैं कि इन वस्तुओं से सीता की आशंका उनके प्रति बनी रहेगी क्योंकि ये वस्तुएँ तो शत्रु को भी प्राप्त हो सकती हैं। इस पर राम एक रहस्य प्रकट करते हैं कि "जब वे पहिले पहल मिथिला में प्रवेश कर रहे थे सीता ने छिप कर अपने गवाक्ष से उनको देखा था और दोनों उसी समय प्रेम के बन्धन में बँध गए थे।" (अध्याय २३)

सीता की खोज में बाधायें—जब अंगद इत्यादि के साथ हनुमान जी सीता की खोज करते हुए कानन, गिरिकन्दराओं में सीता को देखते हुए गन्धमादन पर्वत पर पहुँचते हैं तो ये सब प्यास से

---

[1] बुल्के—वही, पृष्ठ ४८७।

[2] मुगलकाल में इसे पंजा कहते थे।

[3] आनन्द रामायण—१, ८, ९३-९७।

[4] कम्ब रामायण—४, १२, ३३-३६।

[5] भावार्थ रामायण—४, १३।

[6] बुल्के—वही पृष्ठ ४८७।

बड़े व्याकुल हो जाते हैं तव उन्हें एक विवर दिखाई देता है। उसमें प्रवेश करने पर एक तपस्विनी दिखाई देती है उससे हनुमान पूछते हैं कि, 'तुम कौन हो'।[1] इस पर वाल्मीकि रामायण के अनुसार वह अपना नाम 'स्वयम्प्रभा' बताती है;[2] महाभारत में इसका नाम प्रभावती मिलता है। नृसिंह पुराण में प्रभा, अग्नि पुराण में सुप्रभा, तथा रामकियेन में पुष्पमाली, वाल्मीकि में इसका सम्वन्ध मयदानव से ज्ञात होता है।[3] अभिनन्द कृत रामचरित में इस गुफा के प्रवेश द्वार पर अंगद दुर्दम नामक राक्षस का वध करते हैं तथा एक वानर सुन्दरी हनुमान से प्रेम प्रस्ताव करती है जिसे वे अस्वीकार करते हैं।[4] रामकियेन में हनुमान पुष्पमाली के साथ क्रीड़ा करते हैं और उसके पश्चात् उसे स्वर्ग भेज देते हैं। रामायण काकबिन के अनुसार समुद्र तट पर पहुँचाकर स्वयंप्रभा वानरों के भुलाने का प्रयत्न करती है और उनसे आँखें वन्द करने को कहती है (सर्ग ७) भट्टि के काव्य में भी यही ध्वनि प्राप्त होती है कि इस विवर से हनुमान समुद्र तट पर सव वानरों को ले जाते हैं।[5] वहां सम्पाती सव को भक्षण करने को उद्यत होता है फिर अंगद से जटायु की मरण की कथा सुन कर उनकी सहायता करने को तत्पर हो जाता है।[6]

समुद्रलंघन

जाम्ववान हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि उनकी वैनतेय ऐसी ही गति है[7] और यहीं हनुमान के जन्म की कथा भी मिलती है।[8] सागर पार करने के हेतु ये अपने शरीर को वढ़ाते हैं।[9] इससे यह सिद्ध होता है कि इन्हें अपने शरीर के वढ़ाने की शक्ति प्राप्त थी। ये समुद्र लांघने का निश्चय करके पर्वत पर चढ़ कर उसे हाथ से दवाते हैं।[10] समुद्र इनकी सहायता करने के हेतु मैनाक पर्वत से कहता है[11]

---

१. वाल्मीकि—किष्किन्धा काण्ड—५०, ८-१८।
२. उपर्युक्त—५०, ४०-४१।
३. उपर्युक्त—५१-१६।
४. बुल्के—राम कथा, पृष्ठ ४८९।
५. वाल्मीकि—किष्किन्धा काण्ड—५१-१०-१३।
६. अभिनन्द रामचरित—सर्ग ११, १२।
७. वही, रामचरित—अध्याय २३।
८. बाल्मीकि-किष्किन्धा काण्ड—अध्याय ५७-५८।
९. उपर्युक्त, किष्किन्धा काण्ड—अध्याय ६६, ८, ३३।
१०. उपर्युक्त, किष्किन्धा काण्ड—अध्याय ६७-२२।
११. उपर्युक्त, सुन्दर काण्ड—१-१०-११।

कि वह समुद्र के बीच में खड़ा होकर इनकी मदद करे। इसको उठते हुए देख कर हनुमान इसे भी विघ्न ही समझते हैं।[1] इसके पश्चात् देवता सुरसा को जो नागों की माता थी उसे विघ्न करने को तथा इनके पराक्रम की परीक्षा लेने को भेजते हैं। यह समुद्र के मध्य में राक्षसी का रूप धारण कर के खड़ी हो जाती है और हनुमान से कहती है कि मैं तुम्हें खाऊँगी। इस पर हनुमान कहते हैं कि तुम अपना मुँह वड़ा करो। सुरसा जैसे-जंसे अपना मुख वढ़ाती है हनुमान भी अपना शरीर वढ़ाते जाते हैं।[2] अन्त में हनुमान अंगुष्ठ मात्र का शरीर धारण कर के उसके मुख में प्रवेश कर वाहर आ जाते हैं।[3] इससे यह ज्ञात होता है कि इन्हें शरीर को वड़ा तथा छोटा दोनों करने की शक्ति थी। इसके पश्चात् इन्हें सिंहिका नाम की राक्षसी मिलती है जो इनकी छाया को पकड़ कर इनकी गति अवरुद्ध कर देती है।[4] इसको मार कर हनुमान आगे वढ़ते हैं। लंका पहुँचने पर ये लंका को सुवर्ण के परकोटे से घिरा हुआ तथा राक्षसों से रक्षित देखते हैं।[5] हनुमान विचार करते हैं कि रावण घोर रिपु है तथा लंका अजेय दुर्ग है[6] यहां विघ्नों का क्रम मैनाक, सुरसा तथा लंका है। अध्यात्म रामायण, आनन्द रामायण, कंव रामायण इत्यादि में क्रम वदल गया है यथा सुरसा, मैनाक तथा सिंहिका।[7] लंकापुरी में राँत्रि में ये प्रवेश करने का निश्चय करते हैं। सूर्य के अस्त होने पर ये अपनी देह को छोटा करते हैं[8] लंका में प्रवेश करने पर लंका नगरी को हनुमान राक्षसी के रूप में देखते हैं। यह हनुमान को लंका में प्रवेश करने से रोकती है। इस पर हनुमान उससे कहते हैं कि "मैं नगर देख कर थोड़ी ही देर में वापस आ जाऊँगा पर वह इन्हें नहीं जाने देती और उन पर प्रहार करती है। इस पर हनुमन उसे एक मुक्का मारते हैं जिससे वह गिर पड़ती है।[9] यहाँ वृषदंशक शब्द का अर्थ कामिल वुल्के ने विडाल किया है।[10] रामचरित मानस में इसका अर्थ मच्छड़

---

[1] सुन्दर काण्ड—१, १०२, १०८।

[2] सुन्दर काण्ड—१-१४६-१४७।

[3] सुन्दर काण्ड—१, १५०-१५२, १५८-१६५।

[4] सुन्दर काण्ड—१, १५९-१६०।

[5] सुन्दर काण्ड—१, १७४-१८८।

[6] सुन्दर काण्ड—२, २०-२८।

[7] वुल्के—रामकथा—पृष्ठ ४९८।

[8] सुन्दर काण्ड—२, ४९।

[9] सुन्दर काण्ड—३, २०-४२।

[10] वुल्के—रामकथा—पृष्ठ ५००।

के समान छोटा किया गया है। 'मसक समान रूप कपि धरी' (५, ३, १)। गुणभद्र कृत उत्तर पुराण में हनुमान भ्रमर का रूप धारण करते हैं (दे० ६८, २३८), पाश्चात्य वृत्तान्त न० ३ और १३। वह्नि पुराण में ये मूपिका का रूप धारण करते हैं।[1] सेरीराम के अनुसार व्राह्मण का रूप धारण करते हैं। विहोरे आदिवासी कथा के अनुसार ये शुक का रूप धारण करते हैं। पंजाव के एक लोकगीत में ये काक का रूप धारण करते हैं।[2] हिन्द एशिया की राम कथा में ये भैंसे का रूप धारण करते हैं[3] पउम चरिय के अनुसार लंका में प्रवेश करते समय वज्रमुख का वध करते हैं और उसके वाद उसकी पुत्री लंका सुन्दरी से युद्ध करते हैं और उस पर आसक्त हो कर उसके साथ विवाह कर लेते हैं। इस कथा के अनुसार हनुमान रावण के मित्र हैं इस कारण उनको किसी छद्मवेश की आवश्यकता नहीं है।[4] वृहद्धर्म पुराण (अध्याय २०) तथा महाभागवत पुराण (अध्याय ३९) के अनुसार हनुमान शिव के अवतार हैं और लंका में देवी निवास करती हैं। लंका पहुंच कर हनुमान उनसे लंका को त्याग देने को कहते हैं। सीता के अपमान के कारण देवी लंका को छोड़ देती है। महाशिव पुराण के अनुसार भी हनुमान शिव के अवतार हैं। अध्यात्म रामायण के अनुसार हनुमान राम के अमोघ वाण की भाँति चलते हैं जिसका अर्थ है कि 'जाय कार्य करे और लौट आवे'। वाल्मीकि रामायण में ये अपना छोटा रूप कर लेते हैं तदहं स्वेन रूपेण रजन्या ह्रस्वतां गतः। लंकामधिपतिव्याभिराघवस्यार्थसिद्धये। सुन्दर—२, ४६। अहं ह्यति तनुश्चैव वानरश्च विशेषतः (सुन्दर ३०, १७)। अध्यात्म रामायण के अनुसार सीता के सामने आते समय हनुमान चटक पक्षि के वरावर छोटे वन्दर का रूप धारण करते हैं। आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान छोटे वालक का रूप धारण कर के सीता के पास जाते हैं। हिकायत महाराज रावण के अनुसार ये एक वृद्धा का रूप धारण कर के सीता के समक्ष पहुँचते हैं। पउम चरिय के अनुसार ये सीता के सामने अपने वास्तविक रूप में जाते हैं। रामचरित मानस के अनुसार हनुमान एक छोटे वन्दर का रूप धारण कर के सीता के पास जाते हैं।[5] वाल्मीकि रामायण में लंका प्रवेश करने पर सीता की खोज ये रावण के प्रासाद

---

१. वन्हि पुराण—पृष्ठ २६६।

२. इण्डियन एण्टिक्वेरीज भाग ३८, पृष्ठ १५०।

३. ज० रा० ए० सो० स्ट्रेट्स ब्रांच—१९१० पृ० २०। बुल्के—वही—पृष्ठ ५०१।

४. पर्व ५२।

५. ५, ३, २०।

में करते हैं तत्पश्चात् ये अशोकवन में जाते हैं। (सुन्दर काण्ड ४ से १५ सर्ग)। लंका में विभीषण से मिलने का वर्णन कई रामायणों में मिलता है।[1] विमलसूरि कृत पउम चरिअ में विभीषण हनुमान का स्वागत करते हैं तथा रावण से सीता को लौटा देने के विषय में बात करने की प्रतिज्ञा करते हैं (पर्व ५३)। गुणभद्रकृत उत्तर पुराण में हनुमान सीता से मिल कर राम के पास लौट आते हैं और पुनः राम द्वारा लंका भेजे जाते हैं। रावण सीता को वापस लौटाने से इन्कार करता है और हनुमान राम के पास वापस जाते हैं। (पर्व ६८, ३९०-४३५)

आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान सीता की खोज करते हुए विभीषण को रामकीर्तन करते हुए देखते हैं और इन्हें रामभक्त समझ कर उनसे मिलते हैं (१, ९, २४)। रामचरित मानस के अनुसार तुलसी के वृक्ष को विभीषण के आंगन में देख कर हनुमान जी उनसे मिलने जाते हैं। उसी समय विभीषण जागते हैं और राम राम स्मरण करने लगते हैं। विभीषण ही हनुमान को बताते हैं कि सीता कहाँ हैं और वहाँ जाने की कौन सी युक्ति है।

लंका में पहुँचने पर हनुमान के कार्य

कई रामायणों में हनुमान लंका में प्रवेश करने के पश्चात् बहुत से उत्पात करते हैं।[2] आनन्द रामायण के अनुसार हनुमान रावण के वस्त्र विभीषण के पलंग पर रख देते हैं (१, ९, ६२-६३)। दक्षिण भारत की एक राम कथा में हनुमान मंदोदरी के बाल पलंग के खम्बे में बाँध देते हैं और उसके आभरण चुरा लेते हैं (पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ पृष्ठ ९६)। राम जातक में हनुमान रावण और मंदोदरी के बाल एक साथ बाँध देते हैं तथा मंत्र पढ़ कर लिख देते हैं कि जब तक मंदोदरी रावण को थप्पड़ न मारे कोई भी बाल की गाँठ नहीं खोल सकेगा। रामकियेन तथा सेरीराम में इस प्रकार के उत्पात का विवरण युद्ध के समय जब हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं तब मिलता है।

बिर्होर आदिवासियों की राम कथा के अनुसार जब हनुमान सीता के पास पहुँचते हैं उस समय सीता ने अपने सारे शरीर में रावण के बलात्कार से बचने के हेतु जादू द्वारा भयंकर फोड़े उत्पन्न कर रखा है।[3] सेरीराम में अग्नि सीता की लंका में रक्षा कर रही है। इस वर्णन के अनुसार एक ज्योतिषी राम से कहता है कि सीता

---

[1] कामिल बुल्के—राम कथा—पृष्ठ ५०३।

[2] उपर्युक्त—पृष्ठ ५०३।

[3] बुल्के—पृष्ठ ५०६।

आत्महत्या करना चाहती है, इस पर हनुमान भेजे जाते हैं। वाल्मीकि में भी सीता के आत्महत्या की चर्चा मिलती है (५, २८, १७)। रामकियेन में सीता आत्महत्या करने लगती हैं और हनुमान ठीक समय पर पहुँच कर फाँसी की गाँठ खोल देते हैं (अध्याय १४)। आश्चर्य चूड़ामणि (अंक ५) में हनुमान के पहुँचने के समय सीता पानी में कूदने को तैयार हैं परन्तु प्रसन्न राघव (६, ४-३५) तथा रामचरित मानस के अनुसार सीता हनुमान के पहुँचने के समय चिता में कूदने की इच्छा त्रिजटा से व्यक्त करती हैं। सिंहल द्वीप की राम कथा में हनुमान सीता को ले कर राम के पास युद्ध के पहिले लौटते हैं (पूर्व वृत्तान्त नं० ६, १०, १५)। युद्ध काण्ड में वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण को त्राण देने के हेतु हनुमान राम से आग्रह करते हैं (१७-१९)।

समुद्र पर सेतु बाँधना

वाल्मीकि रामायण में सेतु बाँधने की कथा वैसी ही है जैसी रामचरित मानस में मिलती है। यहाँ समुद्र के आदेशानुसार नल द्वारा पुल बाँधा जाता है[1]। विर्होर राम कथा में हनुमान अपनी पूँछ बढ़ाते हैं और राम तथा लक्ष्मण उसी पर समुद्र पार करते हैं, राम कियेन के अनुसार सीता की खोज में हनुमान इसी प्रकार अपने साथियों को एक नदी पार उतारते हैं। सेतु के स्थान पर हनुमान की पूँछ का उल्लेख पाश्चात्य वृत्तान्त (नं० १ और १३) में भी मिलता है। कम्बोडिया में तो इस कथा का एक अंकन भी सुरक्षित है[2]।

समुद्र पर सेतु बाँधते समय नल तथा हनुमान के झगड़े का वृत्तान्त कई परवर्ती राम कथाओं में मिलता है। कृत्तिवास के रामायण में झगड़े का कारण यह दिया गया है कि नल हनुमान द्वारा लाए हुए पर्वत को बांयें हाथ से पकड़ते हैं। क्रुद्ध होकर हनुमान एक बार में चार पर्वत लाते हैं इन्हें जब नल नहीं पकड़ सकते तो आपस में झगड़ा होता है और दोनों राम के पास जाते हैं तथा एक दूसरे पर अभियोग लगाते हैं। सेरीराम के पत्तनी पाठ में पेनीकर (नल) हनुमान द्वारा लाए गए पत्थर को समुद्र में हाथ से न फेंक कर पैर से ढकेल देता है इस पर दोनों में झगड़ा होता है। तिब्बती रामायण तथा रामकियेन में भी इस झगड़े का उल्लेख है। पाश्चात्य वृत्तान्त (नं० १४) के अनुसार हनुमान अपने शरीर में जितने बाल थे उतने पत्थर ला कर अकेले ही सेतु बाँधते हैं।

---

[1] वाल्मीकि रामायण—युद्ध काण्ड २२ सर्ग।

[2] बुलितां एकोल फ्रांसेज डु एकस्ट्रीम ओरियां, भाग १२, पृष्ठ ४७।

सेरीराम के अनुसार रावण का पुत्र जो समुद्र की रानी गंगा महादेवी के गर्भ से उत्पन्न था, मछलियों को समुद्र नष्ट करने की आज्ञा देता है। इस पर हनुमान अपनी पूंछ पानी में हिलाते हैं जिससे पानी गदला हो जाता है और मछलियाँ ऊपर आ जाती हैं, तव इन्हें वानर जाल डाल कर फँसा लेते हैं। उसी समय एक केकड़ा हनुमान की पूंछ पकड़ना चाहता है। उसे हनुमान पकड़ कर किनारे पर फेंक देते हैं। यह केकड़ा इतना वड़ा है कि उसे खा कर सारी सेना तृप्त हो जाती है। यही कथा हमें हिकायत महाराज रावण में भी मिलती है। सेरीराम के पत्तनी पाठ के अनुसार मछलियाँ सेतु को अपनी रानी की आज्ञा से नष्ट करती हैं। हनुमान रानी के पास जाकर उससे सेतु पुनः वनवाते हैं तथा उसके पति की अनुपस्थिति में उससे एक पुत्र भी उत्पन्न करते हैं। रामकियेन में रावण अपनी नागकन्या को सेतु नष्ट करने को भेजता है। सुवर्णमच्छा अपनी सेना के साथ सेतु को नष्ट करती है। इस पर हनुमान उसके पास जाते हैं और उससे सेतु पुनः वनवाते हैं तथा उससे एक पुत्र मच्छानु भी उत्पन्न करते हैं। राम जातक में नागकन्यायें सेतु नष्ट करती हैं तथा हनुमान आदि द्वारा लुभाये जाने पर उनके साथ क्रीड़ा करती हैं।[1] आनन्द रामायण इत्यादि में अहिरावण के मारने जाते समय उनको यही पुत्र मिलता है जो उनको हरा देता है इस पर जव हनुमान पूछते हैं कि वह हनुमान का पुत्र कैसे है तो वह वताता है कि हनुमान जव लंका जा रहे थे तव उनका स्वेद समुद्र में गिरा था उसे एक मछली ने खा लिया था। जिससे उसे गर्भ रहा और एक पुत्र की उत्पत्ति हुई[2]—उसी कथा का कदाचित् इस रूप में यहाँ समावेश है।

सेतुवन्ध के समय तथा वाद में वहाँ शिवप्रतिष्ठा के विषय में स्कन्द पुराण के सेतु माहात्म्य तथा कृत्तिवास के रामायण में यह कथा प्राप्त होती है (अध्याय ७ तथा ४४) सेतुवन्ध माहात्म्य में यह विवरण मिलता है कि युद्ध के पश्चात् गंधमादन पर्वत पर जा कर दण्डकारण्य के मुनियों से राम पूछते हैं कि रावण के वध का प्रायश्चित्त कैसे किया जाय। इस पर वे शिवलिंग की स्थापना करने का परामर्श देते हैं। इस पर हनुमान शिवलिंग लाने को कैलास भेजे जाते हैं। वहाँ जा कर उन्हें तपस्या करनी पड़ती है। इसमें समय लग जाने के कारण उनके आने में देर होती है। इस पर राम को मुनि लोग वालू का लिंग स्थापित करने का परामर्श देते हैं। प्रतिष्ठा के पश्चात् पहुँचने पर हनुमान वहुत दुखी होते हैं। तव राम हनुमान को प्रतिष्ठित लिंग को हटाने को आज्ञा देते हैं परन्तु हनुमान इस

---

[1] वुल्के—उपर्युक्त—पृष्ठ ५५१-५५२।

[2] बुल्के—उपर्युक्त—पृष्ठ ५९९।

कार्य में असमर्थ रहते हैं और मूर्छित हो कर गिर पड़ते हैं। इस पर राम उनको सचेत करते हैं और उन्हें उस लिंग के स्थापना का भी आदेश देते हैं। हनुमान उसको बालू के लिंग के उत्तर में स्थापित करते हैं। यही विग्रह आज भी रामेश्वरम् में है ऐसी किम्वदन्ती है। ऐसी ही कथा आनन्द रामायण में भी है परन्तु इसे सेतुवन्ध के पूर्व ही वर्णन किया गया है।[1]

हनुमान का औषधि-पर्वत लाना

हनुमान की हिमालय यात्रा का वर्णन महाभारत के रामोपाख्यान में नहीं मिलता, न आदि रामायण में है। प्रचलित वाल्मीकि रामायण में इन्द्रजीत द्वारा राम तथा लक्ष्मण के शर-पाश में बँध जाने पर सुषेण हनुमान को हिमालय भेजने का प्रस्ताव करते हैं परन्तु गरुड के आ जाने कारण इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती।[2] कुम्भकरण के मृत्यु के पश्चात् इन्द्रजीत द्वारा अदृश्य होकर युद्ध करने पर राम तथा लक्ष्मण दोनों आहत हो जाते हैं। इस पर जाम्बवन्त हनुमान को हिमालय औषधि ले आने को भेजते हैं। तव हनुमान रात को जाकर हिमालय पर्वत से औषधि का पर्वत ले आते हैं और पीछे उसे रख भी आते हैं। इन्द्रजीत वध के पश्चात् रावण लक्ष्मण को शक्ति से आहत करता है इस पर हनुमान पुनः हिमालय जाकर महोदय पर्वत लाते हैं।[3] इस अध्याय के गौड़ीय पाठ में भरत हनुमान संवाद भी मिलता है।[4]

कालनेमि का वृत्तान्त—कालनेमि का वृत्तान्त गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तर दोनों पाठों में मिलता है।[5] यह विवरण अध्यात्म रामायण तेलगू द्विपद रामायण तथा वंगाली, कृत्तिवास-कृत रामायण में भी मिलता है। रामचरित मानस में तो इसका विशद विवरण है।

भरत हनुमान संवाद—भरत हनुमान का संवाद महानाटक अं० १३, कृत्तिवास रामायण, काश्मीरी रामायण (नं० ४५), सूर सागर, गीतावली, राम रहस्य में किया गया है। काश्मीरी रामायण में भरत हनुमान को एक वाण पर रख कर लंका भेजते हैं। पउमचरिय में विशल्या औषधि के स्थान पर विशल्या नाम की कन्या के स्नान-जल का विवरण मिलता है। हनुमान अंगद तथा भामंडल अयोध्या जाकर भरत से सब विवरण वताते हैं और विशल्या के साथ लंका लौटते हैं। विशल्या के चिकित्सा से लक्ष्मण स्वस्थ होकर उससे विवाह कर लेते हैं, (पर्व ६४-६५)।

---

१. आध्यात्म रामायण—१, १०।
२. वाल्मीकि रामायण—युद्ध काण्ड—सर्ग ५०। ३. वही, सर्ग ७४।
४. वही, सर्ग १०१। ५. गौड़ीय रामायण—६, ८२, ९०।

वैद्य

वाल्मीकि रामायण के अनुसार सुषेण एक वानर सेनापति हैं जो वैद्य भी हैं (५०, ९१, १०१)। महानाटक में सुषेण रावण का वैद्य है जो लंका से बुलाया जाता है (अंक १३)। पाश्चात्य वृत्तान्त के अनुसार लंका के एक वैद्य औषधि-पर्वत को लाने का परामर्श देते हैं (नं० १३, पृष्ठ ३७७)। खोतानी रामायण के अनुसार जीवक (बौद्ध वैद्य) को बुलाया जाता है। हिन्द एशिया की राम कथा के अनुसार औषधि तैयार करने के हेतु एक चौके की आवश्यकता है जो रावण के पास है और जिसे उसके पास से चुरा लाया जाता है। सेरीराम के अनुसार उसे हनुमान भ्रमर बन कर रावण के महल से लाते हैं। सेरीराम के पत्तनी पाठ के अनुसार हनुमान पिस्सू के रूप में एक दासी के वस्त्र पर बैठ कर रावण के महल में प्रवेश कर वहाँ रावण और मंदोदरी के बाल एक गाँठ में बाँध कर बेलन लेकर राम सेना के पास लौटते हैं। रामकियेन में हनुमान तीन बार औषधि ले आते हैं। प्रथम बार कुम्भकरण की शक्ति से आहत लक्ष्मण के उपचार के हेतु। इस कथानक के अनुसार औषधि के अतिरिक्त पाँच नदियों के जल की भी आवश्यकता है। इसे भरत के यहाँ से औषधि पर्वत के साथ लाते हैं। इसके पश्चात् इन्द्रजीत द्वारा लक्ष्मण के आहत होने पर औषधि लाते हैं। अंत में रावण द्वारा आहत होने पर औषधि के अतिरिक्त ईश्वर की गाय का गोबर, कालनाग का चौका और रावण के बेलन की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें लाने को हनुमान को भेजना पड़ता है। हनुमान इन्हें लाते हैं और रावण तथा मंदोदरी के बालों को एक गाँठ में बाँध भी आते हैं।

कुम्भकरण का युद्ध

रामकियेन में कुम्भकरण अपने मोक्ख शक्ति नामक भाले की शक्ति को जाग्रत करने के हेतु एक यज्ञ करता है जिसे हनुमान और अंगद भंग करने में सफल होते हैं। महानाटक में हनुमान कुम्भकरण के मस्तक पर ऐसा प्रहार करते हैं कि वह हिमालय पर जाकर गिरता है। उसके पश्चात् हनुमान उसका धड़ पूँछ में लपेट कर आकाश में फेंक देते हैं (अंक ११)। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ही कुम्भकरण को मारते हैं (६, ७६, १५९)। कंबन कृत तामिल रामायण में राम ही कुम्भकरण का मस्तक समुद्र में फेंक देते हैं (६, १५)। रामचरित मानस के अनुसार इसका मस्तक रावण के समक्ष राम के बाणों द्वारा पहुँचाया जाता है।

इन्द्रजीत का युद्ध

रामचरित मानस के अनुसार हनुमान लक्ष्मण को शक्ति लगने पर उठा कर लाते हैं और इन्द्रजीत को भी उसके मरने पर लंका के द्वार पर रख आते हैं।

आनन्द रामायण में हनुमान इन्द्रजीत की बाहू लंका में फेंक देते हैं। इन्द्रजीत की सती स्त्री सुलोचना के पास यह बाहु पहुंच कर लिखने लगती है। उस लेख के अनुसार सुलोचना को यह ज्ञात होता है कि शेष द्वारा मारे जाने से उसकी मुक्ति हो गयी है। उसी से यह भी आदेश मिलता है कि वह राम के पास जाकर उसका मस्तक मांग ले और उसके साथ अग्नि में सती होकर उसके पास पहुंचे। इसी से मिलती-जुलती कथा सेरीराम, जगत राय कृत बंगाली रामायण, राम लिंगामृत तथा पाश्चात्य वृत्तान्त (नं० ८) में मिलती है।

रावण का युद्ध

हनुमान को रावण के यज्ञ के विध्वंस करने को भेजे जाने की कथा वाल्मीकि रामायण के पश्चिमोत्तर पाठ में मिलती है। इसके अनुसार हनुमान इत्यादि उसके ध्यान को भंग करने में असमर्थ रहते हैं। इस पर हनुमान की आज्ञा से अंगद मंदोदरी का केश पकड़ कर उसे बाहर ले आता है जिससे रावण उत्तेजित हो जाता है और अंगद से लड़ने लगता है। रामचरित मानस में हनुमान और रावण के युद्ध का भी वर्णन मिलता है।

रावण के मर्म स्थान के विषय में विविध विवरण विविध रामायणों में मिलता है। विर्होर रामायण के अनुसार रावण का जीव उसके महल में एक मंजूषा में सुरक्षित है। हनुमान और लक्ष्मण दोनों लंका पहुँच कर उसको मुक्त कर देते हैं। स्याम के रामकियेन में भी यह वृत्तान्त मिलता है, इसके अनुसार रावण का जीव गोपुत्र नामक उसके गुरु के यहाँ मंजूषा में वन्द है। उससे हनुमान छल से प्राप्त कर लेते हैं।[1] आनन्द रामायण में एक कथा यह मिलती है कि रावण के वध के बहुत काल पश्चात् राम को अवध में एक आवाज सुनाई देती है। वशिष्ठ इसका भेद खोलते हुए बताते हैं कि रावण का शरीर अभी भी जल रहा है और हनुमान उसकी चिता के हेतु निरन्तर लकड़ी ले जाते हैं। रावण के पापों का अन्त होने पर उसका शरीर भस्मीभूत हो जायगा।[2]

सेरीराम में रावण अपने पुत्र वलविस को पाताल से बुलाकर उसे राम सेना का नाश करने को भेजता है। विभीषण द्वारा इसका प्रतिकार एक वृहत् दर्पण वनवा कर किया जाता है। उस दर्पण को हनुमान अपनी पूंछ से उसके सामने रख

---

[1] बुल्के—वही, पृष्ठ ३९७।

[2] आनन्द रामायण—राज्य काण्ड—सर्ग २०।

देते हैं जिसमें वह अपना मुख देख कर भस्म हो जाता है।[1] रामकियेन में सहस्रतेज नामक राक्षस का विवरण मिलता है जिसकी गदा का यह प्रभाव है कि वह जिसकी ओर कर दी जाय वह मर जाय। हनुमान सूक्ष्म रूप धारण करके उस गदा को प्राप्त कर लेते हैं और उसका सहस्र शीश काट कर उसे निर्जीव कर देते हैं।[2] महिरावण की कथा बहुत सी राम कथाओं में मिलती है परन्तु वाल्मीकि रामायण में नहीं है। जैमिनी भारत के मैरावण चरित में मैरावण रावण का सखा है।[3] यह रावण को आश्वासन देता है कि "मैं राम लक्ष्मण को पाताल ले जाकर दुर्गा को बलि चढ़ा दूँगा।" विभीषण यह भेद खोल देता है। हनुमान सेना की रक्षा करते हैं परन्तु यह राक्षस विभीषण का रूप धारण करके वानरों को माया चूर्ण से सुला देता है और राम लक्ष्मण को एक पेटी में बन्द करके पाताल में ले जाकर भद्रकाली के मंदिर में रख देता है। हनुमान को जब यह ज्ञात होता है तो वे सूक्ष्म रूप धारण करके पाताल पहुँचते हैं। वहाँ द्वारपाल के साथ युद्ध करते हैं और असफल होते हैं, इस पर यह पता लगता है कि द्वारपाल मत्स्यराज नामक उनका पुत्र है। तब पुनः सूक्ष्म रूप धारण करके मत्स्यराज की सहायता से पाताल लोक के भीतर पहुँचते हैं। वहाँ मैरावण को द्वन्द्व युद्ध में परास्त नहीं कर पाते। तब दुर्दण्डी से यह पता चलता है कि मैरावण का जीव राजधानी से ३० योजन दूर पर सात भृंगों में निवास करता है। इस पर हनुमान वहाँ जाकर उनका नाश करते हैं। इसके पश्चात् महिरावण को परास्त कर के राम लक्ष्मण को सुप्त अवस्था में लंका ले आते हैं।

आनन्द रामायण में यह वृत्तान्त भी है कि अश्विनीकुमार शापवश ऐरावण तथा मैरावण के रूप में प्रकट होते हैं। दोनों ही रावण के मित्र बन जाते हैं।[4] ऐरावण तथा मैरावण दोनों हनुमान की बढ़ाई हुई पूँछ की दुर्गम परिधि को पार कर आकाश मार्ग से निद्रामग्न अवस्था में राम तथा लक्ष्मण को ले जाते हैं। हनुमान जब पाताल में राम लक्ष्मण को खोजने जाते हैं तो उन्हें मकरध्वज जो वहाँ का रक्षक है, हरा देता है। पीछे जब मकरध्वज को यह पता लगता है कि ये उसके पिता हैं तो वह राम लक्ष्मण का पता बता देता है। हनुमान कामाक्षा देवी के मंदिर में सूक्ष्म रूप धारण करके प्रवेश करते हैं और देवी वाणी में आदेश देते हैं कि राम लक्ष्मण

---

[1] बुल्के—वही, पृष्ठ ४०२।
[2] रामकियेन—अध्याय ३१।
[3] बुल्के—वही, पृष्ठ ५९९।
[4] बुल्के—रामकथा—पृष्ठ ५९९। आनन्द रामायण—७, सर्ग १७।

को जीवित ही मेरे समक्ष उपस्थित किया जाय। उपस्थित होने पर राम लक्ष्मण ऐरावण और मैरावण को एक सौ बार मार डालते हैं परन्तु वे पुनः जीवित हो जाते हैं। अन्त में ऐरावण को भोगपत्नि हनुमान को इस शर्त पर दोनों की मृत्यु का उपाय प्रकट करने को तैयार हो जाती है कि यदि उसे राम अपनी पत्नि के रूप में स्वीकार करें। हनुमान इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं इस पर प्रतिवन्ध के साथ कि उसका पर्यंक राम के भार से टूट न जाय। तब वह कहती है कि ऐरावण तथा मैरावण के शयनागार में भ्रमर रहते हैं वे ही अमृत लाकर दोनों को पुनर्जीवित कर देते हैं। हनुमान एक को छोड़ कर सब भ्रमरों को मार डालते हैं। यह भ्रमर हनुमान के आदेश पर भोग पत्नि के पलंग की पाटी को खोखला कर देता है। अन्त में राम ऐरावण और मैरावण को मार डालते हैं और ऐरावण की पत्नी को आश्वासन देते हैं कि आगे के युग में वह कन्याकुमारी के रूप में प्रकट होगी और राम की पत्नी बनेगी।[1] इसके पश्चात् हनुमान राम को तथा मकरध्वज लक्ष्मण को लंका पहुँचा देते हैं।[2] तत्वसंग्रह रामायण में भी इसी ओर निर्देश किया गया है।[3] कृत्तिवास ने महिरावण की कथा अधिक विस्तार से लिखी है। इसमें महिरावण रावण का पुत्र है। रावण उसे अपनी माता निकषा के कहने से बुलाता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

अहिरावण का चरित्र भावार्थ रामायण (६, ५१-५४), रामलिंगामृत (सर्ग ८), रामकियेन (अध्याय २७), सेरीराम इत्यादि में भी मिलता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

हनुमान का पुत्र

हनुमान के पुत्र की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न स्थान पर भिन्न-भिन्न वृत्तान्त मिलते हैं परन्तु वाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन नहीं है। जैमिनी भारत गुजराती नर्मकथा कोश के अनुसार लंकादहन के पश्चात् जब हनुमान समुद्र में स्नान करने जाते हैं तब एक मछली अथवा मकरी उनका स्वेद पान कर लेती है जिससे वह गर्भवती हो जाती है। आनन्द रामायण (१, १, ८८) तथा भावार्थ रामायण (५, २०) के अनुसार इस अवसर पर हनुमान का श्लेष्मा एक मकरी खा लेती है, इससे उसे एक पुत्र मकरध्वज उत्पन्न होता है। सेरीराम की कथा के अनुसार

---

[1] आनन्द रामायण—कृष्णावतार में कन्याकुमारी जाम्बवन्ती के रूप में प्रकट होगी (सर्ग ११-१२८)।

[2] बुल्के—वही, पृष्ठ ५९९-६००।

[3] तत्वसंग्रह रामायण—६, ६।

समुद्रलंघन के समय हनुमान का वीर्य गिर जाता है जिसे मछलियों की रानी खा लेती है। सेरीराम के पत्तनी पाठ तथा हिकायत महाराज रावण के अनुसार मछलियाँ अपनी रानी की आज्ञा के अनुसार सेतु को नष्ट करने लगती हैं इस पर हनुमान उस रानी के पास जा कर सेतु की रक्षा करने के हेतु उसे प्रसन्न करके पुत्र उत्पन्न करते हैं। रामकियेन (अध्याय २६) के वर्णन में रावण ने अपनी पुत्री स्वर्ण-मच्छा को पुल नष्ट करने के हेतु भेजा है। हनुमान पुल की रक्षा करते हैं और उससे मच्छानु नामक पुत्र उत्पन्न करते हैं इसमें हनुमान के एक दूसरे पुत्र असुराकद का भी वर्णन है।[1]

हनुमान का चरित्र

हनुमान को वाक्चतुर, पराक्रमी, बुद्धिमान तथा साहसी व्यक्ति के रूप में वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम इनके वाक्चातुर्य का उदाहरण हमें किष्किन्धा काण्ड में मिलता है। जब ये सुग्रीव द्वारा राम और लक्ष्मण के ऋष्य-मूक पर्वत पर आने का कारण समझने के हेतु भेजे जाते हैं। यहाँ राम इनकी वाक्-रचना से प्रसन्न हो कर कहते हैं—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नसामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन वहुधा श्रुतम्।
वहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥

दूसरा उदाहरण इनकी वाक्चतुरता का इनके उस भाषण में मिलता है जब यह जानकी जी के समक्ष पहुँचते हैं। ये विचार करते हैं कि यदि मैं द्विजातियों की भाँति संस्कृत बोलूंगा तो सीता मुझे रावण समझ कर भयभीत हो जायगी। ऐसी दशा में मुझे उस भाषा का प्रयोग करना चाहिये जिसे अयोध्या के आसपास की साधारण जनता बोलती है।'[2]

इनके वचनों को सुनकर जानकी जी को वड़ा विस्मय होता है[3] क्योंकि अयोध्या की जनभाषा को जानना तथा वोलना राक्षसों के हेतु संभव न था।

---

१. बुल्के—वही, पृष्ठ ६०२।
२. उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—३०, १८-१९।
३. उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—३१, १७।

इसी प्रकार का वाक्चातुर्य हनुमान का दशकन्धर से बातचीत के समय में दिखाया गया है।[1] यहाँ ये कहीं दशकन्धर का अपमान नहीं करते और फिर भी अपनी बात कह जाते हैं।

इसी प्रकार विभीषण के राम के पास आने पर राम ने अपने सचिवों से मंत्रणा की कि उसके साथ कैसा व्यवहार हो। इस पर जो हनुमान ने युक्त शब्द कहे वे उनके वाक्चातुर्य के परिचायक हैं। अन्त में इन्हीं की बात राम ने मानी भी। वाल्मीकि ने हनुमान को संस्कार सम्पन्न उत्तम सचिव के रूप में प्रदर्शित किया है।

अथ संस्कारसम्पन्नो हनुमान सचिवोत्तमः।
उवाच वचनं श्लक्ष्णामर्थवन्मधुरं लघु।

पहिले ये राम की प्रशंसा करते हैं—

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम्।
अतिशायमितुं शक्तो वृहस्पतिरपि ब्रुवन्॥

पहिली बात तो इन्होंने यह कही कि इस समय परीक्षा लेना सम्भव नहीं है। दूसरे विभीषण आश्रय देने योग्य हैं कि नहीं यह उसे विना किसी काम में नियुक्त किए हुए जाना नहीं जा सकता। तीसरे उसको सहसा किसी काम में लगा देना दोषपूर्ण होगा। चौथे इस पर गुप्तचर नियुक्त करना भी सम्भव नहीं है क्योंकि यह तो सामने खड़ा है और अपना वृत्तान्त स्पष्ट रूप से बता रहा है। पाँचवें इसका यहाँ आना देश काल के अनुरूप नहीं है ऐसी बात नहीं है यहाँ आने का यही उत्तम काल है और यही उत्तम स्थान है। छठाँ उसने सब बातों पर विचार किया और आपके और रावण के गुण दोषों को समझ कर तथा आपके पराक्रम को देख कर वह यहाँ आया है। उसका यहाँ आना उसकी बुद्धिमत्ता का परिचायक है। सातवें यदि इसकी सब बात यदि अपरिचित पुरुष द्वारा पुछवाई जायगी तो वह संदेह करेगा तथा जो कहीं वह यह समझ लेगा कि जान बूझ कर ये बातें मुझसे पूछी जा रही है तो उसका मन कलुषित हो जायगा। आठवें किसी के मन का भाव समझ लेना सहज नहीं है बीच बीच में स्वर भेद से आप यह निश्चय कर लें कि वह सद्भाव से आया है या असद्भाव से। नवें इसकी बातचीत से इसका दुर्भाव नहीं परिलक्षित होता इसका मुख भी प्रसन्न है। दुष्ट पुरुष कभी स्वस्थ चित्त से निःशंक होकर ऐसे नहीं आ सकता। कोई अपने को कितना भी छिपाये परन्तु भीतर का भाव बाहर निकल ही आता है। दसवें विभीषण का यहाँ आगमन देश और काल के अनुरूप

---

[1] उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—५०, १४-१९; ५१, १-४५।

ही है। आपका उद्योग, रावण का मिथ्याचार, बाली का वध तथा सुग्रीव को राज्याभिषेक इत्यादि समाचारों को सुन कर ही राज्य पाने की इच्छा से यह यहाँ आया है। इन बातों को समझ कर इसका संग्रह करना ही मुझे उचित जान पड़ता है। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ रघुनाथ इस प्रकार राक्षस की सरलता और निर्दोषता के विषय में समझ आप जैसा उचित समझें करें।

सीता ने इनके वाक्चातुर्य की स्वयं प्रशंसा की[1]।

इसी प्रकार जब राम ने उन्हें भरत के पास अपना संवाद देने को और वहाँ का हाल लेने को भेजा तथा यह आदेश दिया कि भरत के मनोभावों को जानने का प्रयत्न करना[2]।

ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येंगितानि च।
तत्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्याभाषितेन च॥

हनुमान अयोध्या की सब दशा देख कर तब भरत जी से राम कथा का वर्णन करते हैं[3]। वे थोड़े से शब्दों में राम के बल, पौरुष इत्यादि सभी का वर्णन करते हैं जिससे वे समझ जायँ कि राम से विरोध ठीक नहीं है तथा उनके मन का भाव भी स्पष्ट हो जाय इसके पश्चात् भरत के कहने पर उन्हें राम का पूरा वृत्तान्त आदि से अन्त तक संक्षेप में कहते हैं।[4] इस वर्णन से भरत जी बहुत ही प्रभावित होते हैं, वे क्रोध नहीं करते, उनके मन में ईर्षा की भावना नहीं जाग उठती और यह सब देख कर हनुमान सन्तुष्ट होते हैं।

इनको वाक्यज्ञ, वाक्यकोविद, वाक्यविशारद, वाक्यविदां श्रेष्ठ, प्रियवादी वाल्मीकि के रामायण में दिखाया गया है।[5] एक स्थान पर इन्हें सर्वशास्त्र विशारद भी कहा गया है[6]।

उत्तरकाण्ड के वर्णन के अनुसार हनुमान सूर्य से व्याकरण पढ़ते हैं।[7]

---

[1] उपर्युक्त—युद्धकाण्ड—११३, २६-२८।
[2] युद्धकाण्ड—१२५, १४-१५।
[3] उपर्युक्त—१२५, ३५-४०।
[4] उपर्युक्त—१२६, ५-५५।
[5] बुल्के—वही, पृष्ठ ६७४।
[6] वाल्मीकि रामायण—४, ६६, २।
[7] उपर्युक्त—उत्तरकाण्ड—३६, ४५-४७।

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं; जगाम ग्रंथं महद्धारयनप्रमेयः।।४५।।
ससूत्रवृत्यर्थं पदं महार्थं ससंग्रहं सिद्धऽयति वै कपीन्द्रः।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव।।४६।।

हनुमान की बुद्धिमत्ता

इनके प्रज्ञासूचक विशेषणों में वाल्मीकि की रामायण में मतिमान्, महामति प्राज्ञ, महाप्राज्ञ, सुमहाप्रज्ञ, मेधावी, बुद्धिमतां वरिष्ठ, धीमान, तत्वविद्, साधु बुद्धि, अचिन्त्य बुद्धि, कार्यविदां वरः कहा गया है।[1] इनके उपनिषद्, दर्शन, तर्क, न्याय इत्यादि विषयक ज्ञान की कथा मिलती है।[2] अद्‌भुत रामायण में राम हनुमान को अपना विष्णु रूप दिखा कर उनको सांख्य योग, भक्ति योग आदि समझाते हैं।[3]

वगाली रामायण में ये ब्राह्मण ज्योतिषी का रूप धारण करके लंका जाते हैं क्योंकि ऐसा माना जाता है कि ज्योतिष की एक शाखा के ये प्रवर्तक हैं। इन्हें गान विद्या की एक शाखा का भी प्रवर्तक माना जाता है।[4] महाभारत के भीम हनुमान संवाद से भी यह ज्ञात होता है कि अप्सराएँ तथा गंधर्व राम का चरित्र नित्य गान के रूप में इनके सामने प्रस्तुत करते थे।[5] यदि ये संगीत नहीं जानते होते तो यह कार्य व्यर्थ होता। तुलसीदास ने अपनी विनय पत्रिका में हनुमान को गान गुनगर्व गंधर्वजेता, सामगायक, सामगानाग्रणी कहा है।[6] इनको वेदवेदान्तवेत्ता भी तुलसीदास ने विनयपत्रिका में कहा है (२३-८)। इनकी बुद्धिमत्ता का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि जब ये सीता के सम्मुख उपस्थित होते हैं तो यह सोचते हैं कि यदि मैं संस्कृत भाषा में सीता को राम का संवाद सुनाऊँगा तो राक्षसी लोग सुन कर राक्षस राज से जाकर निवेदन करेंगी।[7] यदि मैं राक्षसों को मारने में लग जाऊँगा तो मैं पार जा कर राम को संवाद न दे सकूँगा।

---

१. बुल्के—वही—पृष्ठ ६७४।

२. बुल्के—वही—पृष्ठ ६७६।

३. अद्‌भुत रामायण—१०-१५।

४. दिनेशचन्द्र सेन—दी बंगाली रामायण—पृष्ठ ५१।

५. महाभारत—वनपर्व—अध्याय १५० —गीता प्रेस, पृष्ठ १३५३-१३७१।

६. विनय पत्रिका—गीता प्रेस २९-४, २८-५, २७-३।

७. वाल्मीकि रामायण—३०, १८-४०।

कामं हन्तुं समर्थोऽस्मि सहस्राण्यपि राक्षसाम्।
न तु शक्ष्याम्यहं प्राप्तुं परं पारं महोदधेः ॥३४॥

सीता जी से वातचीत करने में मुझे महान दोष दिखाई देता है परन्तु यदि वात नहीं करता तो सीता जी प्राण त्याग देंगी।

एवं दोषो महान्हिस्यान्मम सीताभिभाषणे।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ॥३६॥

इस पर यह विचार कर कि किसी प्रकार कार्य न विगड़े हनुमान जी अपना संवाद देते हैं।[1]

सुग्रीव के कार्यसाधन में राम को हितकर जानकर ही वे सुग्रीव की राम से मैत्री कराते हैं क्योंकि दोनों ही की स्त्रियाँ हर ली गयी हैं, दोनों राज्य से च्युत हैं इस कारण समान अवस्था में हैं। समान लोगों की ही मैत्री सम्भव भी होती है—

ईदृशा बुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥२६॥
सहिराज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च वालिनः।
हृतदारो वने त्रस्तो भ्राता विनिकृतो भृशम् ॥२७॥

जब सुग्रीव विषय में रत होकर संसार को भूल जाते हैं उस समय हनुमान एक हित चाहने वाले मंत्री की भाँति उन्हें राम के कार्य का स्मरण दिलाते हैं। इन्हें यहाँ काल धर्म विशेषज्ञ कहा गया है—'काल धर्म विशेषवित'।[2]

इसमें इन्होंने चारों प्रकार की नीति अपनाई—साम, दाम, दण्ड, भेद।

इसी प्रकार रावण से भी वात करने में इन्होंने संकेत से ही उसकी पराजय का वर्णन किया। अंगद की भाँति स्पष्ट रूप से नहीं क्योंकि रावण अपनी सभा में बैठा है तथा ये वहाँ अकेले हैं।[3]

इसमें भी चारों प्रकार से रावण को हनुमान समझाने का प्रयत्न करते हैं।

शून्य पुराण[4] में इनको निर्माण कार्य का विशेषज्ञ भी कहा गया है। स्वर्ण का घाट वनाने पर इस पुराण के अनुसार बुद्ध इनको पान देते हैं।[5]

---

१. वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धाकाण्ड—१-२७।

२. उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—२९, ६-७।

३. उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—५१, ११।

४. शून्य पुराण—रमई पण्डित—साहित्य परिषद्, कलकत्ता।

५. उपर्युक्त—पृष्ठ ८२; दिनेशचन्द्र सेन—बंगाली रामायण, पृष्ठ ४८ तथा आगे।

रघुनन्दन गोस्वामी की वंगाली रामायण में एक लम्बे अध्याय में राम हनुमान को ज्ञान का उपदेश करते हैं। इसमें हनुमान एक मेधावी जिज्ञासु की भांति विविध प्रश्न भी करते हैं।[1]

हनुमान का पराक्रम

हनुमान को स्थान-स्थान पर महावली, पराक्रमी, महावाहु, भीमविक्रम, वीर्यवान, महातेजा, महावेगा इत्यादि कहा गया है। इनका मारुति नाम ही इस बात का द्योतक है कि इनमें वायु के समान वल तथा ओज है। वालकाण्ड में ही इन्हें वज्र को सहने की शक्ति से सम्पन्न, अप्रमेय वल वाला, साहसी सर्व वानरों में मुख्य कहा है।[2]

मरुतस्यौरसः श्रीमान् हनुमान् नाम वानरः।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमोजवे ॥१६॥
सर्ववानरमुख्येषु वुद्धिमान् वलवानपि।
ते स्रष्टा वहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः॥१७॥
अप्रमेयवला वीरा निष्क्रान्ताः कामरूपिणः।
ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महावलाः॥१८॥

सुग्रीव जो वानरों के राजा थे इनके पराक्रम की प्रशंसा करते हैं।[3] इनको वह वुद्धि पराक्रम से पूर्ण 'देश कालानुवृत्तश्च नयश्च नयपण्डितः' वताते हैं।

इसी बात को सुन कर राम उन्हें अँगूठी देते हैं।[4]

जामवंत इसके पश्चात् इनके वल, वीर्य तथा तेज की प्रशंसा करते हैं।

...वलं वुद्धिश्च तेजश्च सत्वं च हरिपुंगवा।[5]

सीता जी इनके पराक्रम की इस प्रकार प्रशंसा करती हैं[6]—

....

वलं शौर्यश्रुतं सत्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम्।
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यंविनीतत्वं न संशयः॥२८॥

---

१. दिनेशचन्द्र सेन—उपर्युक्त—पृष्ठ ५१।

२. वाल्मीकि रामायण—वालकाण्ड—१७, १६-१७।

३. उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—४४, २-७।

४. उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—४४, १०-१३।

५. उपर्युक्त—किष्किन्धाकाण्ड—६६,३,७ इत्यादि, ६६,२९-३१,३५,३६।

६. उपर्युक्त—युद्धकाण्ड—११३, २७-२८।

अगस्त्य जी ने भी इनके पराक्रम की प्रशंसा की है।[1] तथा राम भी इनके पराक्रम की प्रशंसा करते हैं[2]—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।

आनन्द रामायण के अनुसार सभी वीरों को हनुमान का अवतार माना जाता है।[3] इसी कारण आज भी हनुमान का नाम ले कर पहलवान मल्लयुद्ध करते हैं।

ये ये वीरास्त्वत्र भूम्यां वायुपुत्रांशरूपिणः।[4]

महाभारत के हनुमान भीम संवाद में हनुमान के बल का प्रमाण दिया गया है। भीमसेन मार्ग में सोये हुए हनुमान को जगा कर उनसे मार्ग में से हट जाने को कहते हैं। इस पर हनुमान कहते हैं कि मेरी पूंछ हटा कर आप चले जाइए। यह सुन कर भीम अपने बांये हाथ से पूंछ हटाने हैं। पूंछ टस से मस नहीं होती फिर पूरा-पूरा बल लगा कर भी पूंछ को वे तनिक भी हटा नहीं सकते। अन्त में भीम क्षमा मांगते हैं और हनुमान का परिचय पूछते हैं हनुमान कहते हैं कि—

अहं केशिरणः क्षेत्रे वायुना जगदायुता।
जातः कमलपत्राक्ष हनुमान् नाम वानरः॥

अन्त में भीम की प्रार्थना पर वे उन्हें समुद्र लंघन के समय का अपना रूप दिखाते हैं।[5]

आनन्द रामायण में इनके द्वारा अर्जुन के गर्व निवारण की बात मिलती है। इसमें विष्णुदास रामदास से पूछते हैं कि अर्जुन का कपिध्वज नाम कैसे पड़ा। इस पर रामदास कहते हैं कि 'द्वापर के अन्त में एक दिन धनुषकोटि तीर्थ के पास हनुमान से भेंट होने पर अर्जुन कहने लगे कि सेतु निर्माण का परिश्रम व्यर्थ किया गया। राम जी ने शरसेतु क्यों नहीं बना दिया। हनुमान ने कहा कि मुझ जैसे कपियों के भार से शरसेतु समुद्र में डूब जाता। अर्जुन ने उत्तर दिया कि मैं अभी शरसेतु बना देता हूं यदि वह आपके भार से डूब जाय तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा।[6] इस पर

---

१. उपर्युक्त—युद्धकाण्ड—१२८, ८२।

२. उपर्युक्त—उत्तरकाण्ड—३६-४४ गीता प्रेस।

३. आनन्द रामायण युद्धकाण्ड—१, २६।

४. आनन्द रामायण—८, ७, १२३।

५. महाभारत—३, १४०, २७।

६. आनन्द रामायण—मनोहरकाण्ड, हनुमता शरसेतु भंग—८ वें अध्याय, बुल्के—वही पृष्ठ ६७१।

हनुमान ने यह प्रतिज्ञा की कि यदि उनके भार से शरसेतु नहीं डूबा तो वे अर्जुन की ध्वजा पर बैठ कर उनकी सहायता करेंगे। इस पर अर्जुन ने शतयोजन विस्तीर्ण शरसेतु बना दिया। इस पर हनुमान ने अंगूठे से उसे भग्न कर दिया। यह देखकर अर्जुन चिता में प्रवेश करने की तैयारी करने लगे। इस पर कृष्ण बटु का रूप धारण कर के वहाँ पहुँच कर कहने लगे कि "साक्षी के अभाव में आप दोनों का कार्य व्यर्थ हुआ। मेरे सामने अपना सामर्थ्य प्रदर्शित कीजिए।" अब की बार कृष्ण ने अपना चक्र सेतु के नीचे रख दिया इस कारण हनुमान कुछ न कर सके परन्तु हनुमान समझ गए कि यह बटु भगवान ही हैं। तब बटु ने शरसेतु को तोड़ कर अर्जुन का गर्व दूर किया और तभी हनुमान अर्जुन की ध्वजा पर बैठने को तैयार हो गए। तत्व संग्रह रामायण में भी यही कथा कुछ हेरफेर के साथ मिलती है। अन्तर यह है कि संवाद यहाँ अर्जुन तथा कृष्ण के बीच में होता है और कृष्ण हनुमान जी को बुलाते हैं। हनुमान के चढ़ने पर सेतु टूटने लगता है तब भगवान कच्छप रूप धारण कर के उसे बचाते हैं। इसके पश्चात् हनुमान कृष्ण का अनुरोध स्वीकार कर के महाभारत के अवसर पर अर्जुन की ध्वजा पर विराजमान होते हैं।[1] सरलादास की महाभारत में भी यह कथा मिलती है। बलरामदास कृत उड़िया कर्णदान की कथा आनन्द रामायण से मिलती-जुलती ही है।[2]

जैन पउम चरिय के अनुसार हनुमान को वरुण से युद्ध करने को बुलाया जाता है। ये वरुण से युद्ध करते हुए उनके सौ पुत्रों को कैद कर लेते हैं। इसी में यह भी कथा मिलती है कि ये अपने नाना महेन्द्र को रावण के पास जाते हुए सेना सहित परास्त कर के अपनी माता के साथ किए हुए दुर्व्यवहार का दण्ड भी देते हैं।[3] इन्हें यहां विद्याधर कहा है। हमारे वाराह पुराण में विद्याधरों का स्थान द्रोण पर्वत पर बताया गया है।[4] वह पर्वत किष्किन्धा में ही होना चाहिए।

आनन्द रामायण में यह भी कथा प्राप्त होती है कि ब्राह्मणों को राम रामनाथ पुर का राज्य प्रदान करते हैं तथा हनुमान को उनकी सहायता के हेतु नियुक्त करते हैं। कुछ दिन पश्चात् पाषाण मूर्ति में से प्रकट हो कर एक दुष्ट राजा को ये शूली पर चढ़ाते हैं।[5] आनन्द रामायण के मनोहर काण्ड में यह कथा मिलती है कि 'एक

---

१. तत्व संग्रह रामायण—७, ४।

२. बुल्के—वही—पृष्ठ ६७१।

३. पउम चरिय—पर्व १९, ५०।

४. वाराह पुराण—८०, ४, पृष्ठ ६४।

५. आनन्द रामायण—राज्यकाण्ड—सर्ग १८।

ब्राह्मण की सहायता के हेतु प्रकट होकर हनुमान ने गर्जन किया जिससे सब पुरुष मर गए। उस प्रदेश में केवल स्त्रियाँ ही रह गई इस कारण उसका नाम स्त्री-राज्य पड़ गया।[1] भावार्थ रामायण में हनुमान को स्त्री राज में भेजे जाने की कथा मिलती है।[1]

शाक्त मत के चण्डी काव्य में समुद्र में तूफान उठाने के हेतु हनुमान की सहायता ली जाती है। एक स्थान पर एक कहानी मिलती है कि जिसमें चण्डी की आज्ञा से घनपति सदागर (सौदागर) को लोग समुद्र में फेंक देते हैं। इसी प्रकार मानसार माषण में चक सदागर का जहाज एक रुष्ट हुई नाग देवी हनुमान की सहायता से नष्ट कर देती है। फकीर राम कवि भूषण की 'सत्य प्रियेर कथा' में जो प्रायः १६ वीं शताब्दी का ग्रंथ माना जाता है हनुमान इसी प्रकार का काम करते हुए देखे जाते हैं।[2] तन्त्रसार में शिव जी पार्वती को बताते हैं कि हनुमान की पूजा से कैसे शीघ्र सफलता मिलती है।[3]

हनुमान का सिद्ध रूप

हमारे यहाँ आठ सिद्धियाँ गिनाई गयी हैं—अणिमा, महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा। प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः। इनके अतिरिक्त कामावसायित्तं, दूरश्रवणं, सर्वज्ञत्वं, मनोयायित्वं, वह्निस्तम्भः, जलस्तम्भः, वायुस्तम्भः, क्षुतस्तम्भः, पिपासा स्तम्भः, निद्रास्तम्भ इत्यादि। वाल्मीकि रामायण में समुद्र लंघन के समय[4] तथा सुरसा के परीक्षा लेने के समय ये अपने शरीर को बड़ा करते हैं तथा ये सुरसा के सामने अपना शरीर सूक्ष्म भी करते हैं।[5] यहीं ये समुद्र लंघन के समय अपने को हलका कर लेते हैं[6] तथा सुरसा से यह कहते हैं कि तुम अपना मुख इतना बड़ा कर लो कि मेरा भार सहन कर सकें।[7] दूसरी चार सिद्धियाँ तो इनको प्राप्त थी हीं। वह्नि स्तम्भन का प्रयोग ये लंका

---

[1] आनन्द रामायण—मनोहर काण्ड—सर्ग १२२, भावार्थ रामायण—७, १ बुल्के—वही, पृष्ठ ६७३।

[2] दिनेश चन्द्र सेन—दी बंगाली रामायण—पृ० ५०-५१।

[3] वही—पृष्ठ ५०।

[4] सुन्दरकाण्ड—१. १०-११ तथा ७६; १, १६०-१६५।

[5] सुन्दरकाण्ड—१, १६६-१६७।

[6] सुन्दरकाण्ड—१, ३७।

[7] सुन्दरकाण्ड—१, १६०।

जलाने के समय करते हैं तथा जलस्तम्भन का सिंहका वध के समय। पिपासा स्तम्भन भी इन्होंने समुद्र लंघन के समय किया होगा। निद्रा का स्तम्भन तो इन्होंने उस समय अवश्य किया होगा जब इन्होंने सीता को खोजने के हेतु रात्रि के समय लंका में प्रवेश किया होगा हैं।

चिरंजीवत्व

वाल्मीकि की रामायण के उत्तर काण्ड में राम स्वर्गारोहण के पूर्व हनुमान को चिरंजीवत्व प्रदान करते हैं।[1]

तमेवमुक्त्वा काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥३२
जीविते कृत बुद्धिस्त्वं मा प्रतिज्ञां वृथा कृथा
मत्कथा प्रचरिष्यंति यावल्लोके हरीश्वर ॥३३॥
तावद् रमस्व सुप्रीतः मद्वाक्यमनुपालयन।
एवमुक्तस्तु हनूमान् राघवेण महात्मना ॥३४॥

महाभारत में भीम हनुमान संवाद में भी हमें इसी आशय का श्लोक प्राप्त होता है।[2]

यावद्रामकथा वीरमवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवैयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥

ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत के काल में भी इनकी उपस्थिति लाने के हेतु उपरोक्त अंश रामायण का यहां जोड़ा गया है। इसी प्रकार हनुमान का राम से वर मांगना कि जब तक राम कथा इस संसार में रहे तब तक मेरा शरीर रहे।[3] तथा राम का वर देना इत्यादि रामायण में जोड़ा हुआ ज्ञात होता है।

क्योंकि युद्धकाण्ड के अन्त में ये सब अपने-अपने स्थानों पर चले जाते हैं[4] अब ये पुनः कहाँ से आ जाते हैं ? इनके अयोध्या पुनः आने का कोई वर्णन नहीं मिलता—

प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥८६॥
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धा समुपागमत् ॥८८॥

---

[1] वाल्मीकि रामायण—उत्तरकाण्ड—सर्ग १०८, ३३-३५।

[2] महाभारत—३, १४७, ३७।

[3] वाल्मीकि रामायण—उत्तरकाण्ड –४०, १७, २१-२२।

[4] उपरोक्त—युद्धकाण्ड—१०८, ८१-८९।

सुग्रीवो वानर श्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम्।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत पुरीम्।।

यों इनको इच्छामरण का वरदान इन्द्र से पहिले ही प्राप्त होता है जैसा जाम्ववान किष्किन्धा काण्ड में कहते हैं—[1]

सहस्रनेत्रः प्रीतात्मा ददौ ते वरमुत्तमम्।।२८।।
स्वच्छादतश्च मरणं तव स्यादिति वै प्रभो।
सत्वं केसरिणः पुत्रः क्षेत्रजो भीमविक्रमः।।२९।।

यह भावना आज भी प्रचलित है कि जहाँ राम कथा होती है वहाँ हनुमान अदृश्य रूप से उपस्थित रहते ही हैं इसका प्राचीनतम उल्लेख आनन्द रामायण तथा कृत्तिवासीय रामायण में मिलता है।[2] यों सप्त चिरंजीवियों में इनका नाम भी लिया जाता है तथा शुभ अवसरों पर आज इनकी और ऋषियों के साथ पूजा भी होती. है—

अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमानश्च विभीषणः कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः
(३०४१)

हनुमान का ब्रह्मचर्य

हनुमान का सुन्दर काण्ड में वाल्मीकि ने ब्रह्मचारी होने का संकेत मात्र किया है। जब ये रावण के शयनागार में प्रविष्ट होते हैं तो रावण की सोती हुई स्त्रियों को देख कर सोचने लगते हैं कि कहीं दूसरे की स्त्रियों को सुषुप्त अवस्था में देखने से उनका धर्म ही न लोप हो जाय, पुनः विचार करते हैं कि इनको इस अवस्था में देख कर उनके मन में विकार तो उत्पन्न नहीं हुआ।[3]

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः।
जगाम महतीं शंकां धर्मसाध्वसशंकितः।।३७।।
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम्।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलो पंकरिष्यति।।३८।।

---

[1] उपरोक्त—किष्किन्धाकाण्ड—६६, २८-२९।

[2] बुल्के—वही—पृष्ठ ६७९।

[3] यहां धर्मलोप की बात कही गयी है, परस्त्री को सुषुप्त अवस्था में देखना सब के लिए पाप है केवल ब्रह्मचारी के लिए नहीं।

परन्तु यहाँ परस्त्री के देखने की वात है। इनका स्वयं विवाह हुआ था कि नहीं यह कहीं नहीं कहा गया है। परस्त्री को सुपुप्त अवस्था में देखना प्रत्येक पुरुष के हेतु पाप माना गया है।

युद्ध काण्ड में इन्हें राम का कुशल समाचार सुनाने पर भरत इन्हें गायें, ग्रामयतथा अलंकृत कुलीन कन्यायें देते हैं। यदि ये ब्रह्मचारी थे तो इनको कन्यायों से क्या प्रयोजन था ?

गवांशतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं पुरम्।
सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडश ॥४४॥
हेमवर्णा सुतासोरुः शशि सौम्याननाः स्त्रियः ;
सर्वाभरण सम्पन्नाः सम्पन्नाः कुलजातिभिः ॥४५॥[1]

सवसे प्राचीन उल्लेख इनके ब्रह्मचर्य का स्कन्दपुराण में मिलता है।[2] इसी पुराण में हनुमतेश्वर तीर्थ महात्म्य नामक अध्याय में कहा गया है कि इस तीर्थ का शिवलिंग हनुमान के ब्रह्मचर्य तथा ईश्वर के प्रसाद से कामप्रद है।

पद्मपुराण के रामाश्वमेध वृत्तान्त में हनुमान अपने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से शत्रुघ्न को पुनर्जीवित करते हैं।[3]

पीछे के साहित्य में हनुमान का ब्रह्मचर्य पूर्ण रूप से प्रतिपादित मिलता है। आनन्द रामायण में हनुमान को कुमार ब्रह्मचारी की उपाधि दी गयी है।[4] सारलादास की उड़िया महाभारत के वन पर्व में हनुमान के जन्म की कथा दी हुई है। इसके अनुसार हनुमान अपनी माता से कहते हैं कि "जव तक मुझे वज्र कोपीन नहीं मिलेगी मैं जन्म नहीं लूंगा।' पवन इस वात को शिव को सुनाते हैं और शिव इनके लिए कोपीन देते हैं।[5] भावार्थ रामायण के अनुसार हनुमान कोपीन पहिने हुए ही उत्पन्न हुए थे[6] पद्म पुराण में इन्हें 'सुदृढ़ वद्धमौंजी कौपीनः' भी कहा गया है।[7] तुलसीदास ने विनयपत्रिका में (२९,३) इन्हें 'मन्मथमथन ऊर्ध्वरेता' कहा है।

---

१. वाल्मीकि रामायण---युद्धकाण्ड---१२५, ४४-४५।
२. स्कन्द पुराण---अवन्ती काण्ड रेवा खण्ड---अध्याय ८३।
३. पद्म पुराण---पाताल खण्ड ४५, ३१।
४. आनन्द रामायण---मनोहर काण्ड, सर्ग १३, बुल्के---वही, पृष्ठ६७९।
५. बुल्के---वही, पृष्ठ ६८०।
६. भावार्थ रामायण---७, ३५; ४, १०।
७. पद्म पुराण---पाताल खण्ड---११२, १३५।

यह भावना कदाचित् इनको शिव का अवतार मान लेने पर आयी होगी क्योंकि शिव को मदनारि कहा गया है।

जैन पद्म पुराण तथा पउम चरिय हनुमान की सहस्रों पत्नियों का उल्लेख करते हैं, जिनमें रावण की बहन चन्द्रनखा (सुपर्णखा) की पुत्री अनंग कुसुमा, सुग्रीव की पुत्री पद्मरागा, नलनन्दनी तथा हरिमालिनी प्रधान थीं। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि इन रचनाओं में हनुमान के लंका सुन्दरी के साथ प्रेम क्रीड़ाओं का भी वर्णन है। स्वयम्भू के पउम चरिय में हनुमान की पत्नियों की संख्या ८,०००बताई गयी है।[1] मयरावण चरित्रम् के अनुसार लंका दहन के पश्चात् स्नान करते समय हनुमान के स्वेद को निगल कर एक मत्स्या या मकरी गर्भवती हुई जिससे इन्हें एक पुत्र हुआ वह यहां अपना परिचय यो देता है—'तिमिंडाला हि मन्माता पिता च हनूमान।' इस पर हनुमान कहते हैं 'हनुमान ब्रह्मचारिति विख्यातं भुवनेष्वपि।'[2]

हिन्द एशिया तथा श्याम की राम कथाओं में हनुमान की मछलियों की रानी, रावण की नागकन्या तथा बेजकाया से क्रीड़ा का वर्णन प्राप्त होता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। रामकियेन में स्वयंप्रभा, एक अप्सरा वानरी तथा मंदोदरी के साथ इनके रमण का वृत्तान्त मिलता है। सेरीराम की कथा में विभीषण तथा कीकयी देवी की पुत्री जो लव की द्वितीय पत्नी थी उसके साथ भी इनके रमण की कथा मिलती है।[3]

हनुमान की रामभक्ति

वाल्मीकि ने अपनी रामायण के अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक हनुमान के रामभक्ति का कहीं प्रतिपादन नहीं किया है। किष्किन्धाकाण्ड में राम के समक्ष जब ये उपस्थित होते हैं उस समय वाल्मीकि इनको सुग्रीव का सचिव ही घोषित करते हैं।[4] और ये सुग्रीव के हित-साधन में रत भी हैं।

सीता के समक्ष भी हनुमान जी अपने को सुग्रीव का सचिव ही घोषित करते हैं[5]—

---

[1] पउम चरिउ—२२, १२, १०।

[2] मयरावण चरित्रम्—अ० १०, बुल्के—वही, पृष्ठ ६७९।

[3] बुल्के—वही, पृष्ठ ६८०।

[4] वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धाकाण्ड—३, २०-२१, २६।

[5] उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—३४, ३८।

अहं सुग्रीव सचिवो हनूमान् नाम वानरः।३८

दसग्रीव के समक्ष भी ये अपने को सुग्रीव का दूत ही बताते हैं।[1]

अहं सुग्रीव संदेशादिह प्राप्तस्तवान्तिके।[2]

लंका से वापस आने पर और मधुवन के फल खाने के पश्चात् भी सब वानर यही कहते हैं कि वे सुग्रीव के आधीन हैं।

राम जी को जब हनुमान सीता का संवाद देते हैं तब राम भी यही कहते हैं। हनुमान ने सुग्रीव के सच्चे सेवक का काम भी किया है[1]

मृत्यकार्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत्।
एवं विधाय स्वबलं सदृशं विक्रमस्य च॥

इस समय भी राम हनुमान को भक्ति का कोई वर नहीं प्रदान करते जैसे तुलसीकृत रामचरित मानस में करते हैं।[3] वाल्मीकि रामायण में केवल एक स्थान पर जब ये वानरों को लंका का विवरण सुना रहे हैं वहाँ अपने को राम का दास कहते हैं परन्तु यहाँ भी सुग्रीव की जयजयकार के पश्चात्—[4]

राजा जयति सुग्रीवो राघवेण अभिपालितः।
अहं कोसलराजस्य दासः पवनसम्भवः॥

केवल उत्तरकाण्ड में इनको राम भक्त होने का वरदान दिया जाता है जो अंश स्पष्ट रूप से प्रक्षिप्त ज्ञात होता है। हो सकता है कि सुन्दर काण्ड का यह श्लोक भी प्रक्षिप्त हो। वाल्मीकि में ये कोई वर नहीं मांगते, राम यहाँ केवल प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करते हैं।[5]

मध्यकालीन साहित्य में हनुमान को रामभक्त, उत्साही एवं विश्वस्त राम सेवक के ही रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

शिव महापुराण के शतरुद्र संहिता में हनुमान को राम भक्ति के प्रवर्तक होने का श्रेय भी प्राप्त है।[6]

---

१. उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—५१, २।
२. उपर्युक्त—युद्धकाण्ड—१, ६।
३. तुलसीकृत रामचरित मानस सुन्दरकाण्ड दोहा ३३ के पश्चात्।
४. वाल्मीकि रामायण—५, ५९, १९-२०।
५. वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड—१, १२-१४।
६. शिवमहापुराण—शतरुद्र संहिता—अध्याय २०-३६।

स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः।
स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीताराम सुखप्रदः॥३६॥

भविष्य पुराण में ब्रह्मा इनको राम भक्ति का वर देते हैं—

तस्य भक्तिं च सम्प्राप्य कृतकृत्यो भविष्यति।[1]

श्रीमद्भागवत में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि हनुमान हिमालय में अन्य किन्नरों के साथ भक्ति भाव से राम की उपासना करते रहते हैं।[2]

तत्व संग्रह रामायण में स्वर्गारोहण के अवसर पर राम हनुमान को यह कह कर आशीर्वाद देते हैं कि 'तुम सदा जीवित रहो और इस संसार में राम भक्ति बनाए रक्खो।'[3]

अध्यात्म रामायण में भी रामाभिषेक के अवसर पर हनुमान राम भक्ति का वर मांग लेते हैं।[4]

आनन्द रामायण तथा भावार्थ रामायण में यह वर उन्होंने मांगा ही है तथा इसके अतिरिक्त यह भी कि 'जहां कहीं भी रामचरित का वर्णन होता हो वहां वे उपस्थित रह सकें।'[5]

यत्र यत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा।
तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थे सदैव हि॥

तत्व संग्रह रामायण में सीता का पता लगा कर जब हनुमान राम के पास वापस आते हैं तो राम उनको हृदय से लगा कर यह आशीर्वाद देते हैं कि "जहाँ कहीं मेरे नाम का उच्चारण होगा वहाँ तुम उपस्थित रहोगे। अन्त में तुम ब्रह्मा होकर सृष्टि का सृजन करोगे और उसके उपरान्त मुझ में मिल जाओगे। तुम वास्तव में शिव हो जो काशी में मरनेवालों को मेरा मंत्र देकर तार देते हो।"[6]

---

१. भविष्य पुराण—प्रति सर्ग पर्व ख० ५४, १३, ४६-४७।

२. भागवत महापुराण—५, १९, १-५।

३. तत्व संग्रह रामायण—७, १५।

४. आध्यात्म रामायण—युद्धकाण्ड—१६, १२-१४।

५. आनन्द रामायण—सारकाण्ड—१, १२, १४३, भावार्थ रामायण—६, ८१।

६. तत्व संग्रह रामायण—५, ११।

कृत्तिवास के रामायण में इनकी राम भक्ति का एक उदाहरण यह मिलता है कि जब राम की दी हुई बहुमूल्य मणियों की माला सीता ने राज्याभिषेक के समय इन्हें दी तो इन्होंने इन मणियों को दाँतों से तोड़ना प्रारम्भ कर दिया। अपने इस व्यवहार के विषय में पूछे जाने पर ये यह कहते हैं कि 'मैं देख रहा हूँ कि इन मणियों के भीतर राम नाम अंकित है कि नहीं।" इस पर लक्ष्मण पूछते हैं कि "तुम्हारे शरीर में राम नाम कहाँ अंकित है।" हनुमान इस प्रश्न के उत्तर में अपने नखों से अपने वक्षस्थल को विदीर्ण कर के उसमें राम नाम अंकित दिखा देते हैं।[1] यह कथा इतनी प्रचलित हुई कि इसके आधार पर मूर्तियाँ बन गयीं। इस प्रकार की काशी की एक मूर्ति का वर्णन किया जा चुका है। बंगाल के एक पट पर अंकित इस प्रकार की मूर्ति का चित्र यहाँ उपस्थित किया जा रहा है (फलक ४.६)।

रसिक सम्प्रदाय में हनुमान को मधुर भक्ति का प्रवर्तक तथा आचार्य माना गया है। हनुमत्संहिता में हनुमान राम की प्रधान सखी चारुशीला का रूप धारण कर के अगस्त्य मुनि को भक्ति का उपदेश देते हैं और शिव संहिता तो हनुमान तथा अगस्त्य के संवाद के रूप में ही लिखी गयी है।[2] रामानन्द संप्रदाय में इस मधुर भक्ति का विशेष रूप से प्रतिपादन हुआ है। इसका एक दर्शन भी बन गया है।

हनुमान राम के वाहन रूप में

वाल्मीकि रामायण के कई स्थलों में हनुमान के पीठ पर चढ़ कर रामचन्द्र चलते हैं। एक तो उस समय जब हनुमान जी राम और लक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाते हैं।[3]

जब वानर सेना समुद्र की ओर चलती है उस समय भी राम हनुमान की पीठ पर ही चलते हैं।[4]

समुद्र पार करने के समय भी हनुमान की पीठ पर ही राम जाते हैं।[5] जब दशानन से रामचन्द्र लड़ने जाते हैं तब भी वे हनुमान की पीठ पर ही बैठते हैं। यहाँ हनुमान कहते हैं कि "जैसे विष्णु गरुड़ पर आसीन होते हैं वैसे ही आप मेरे पीठ पर आसीन हों।"[6]

---

[1] कृत्तिवास रामायण—६, १२८।

[2] बुल्के—वही—पृष्ठ ६७६।

[3] वाल्मीकि रामायण—४, ४, ३४-३५। [4] ६, ४, १८।

[5] ६, २२, ८१-८२। [6] उपर्युक्त—६, ५९, १२४-१२६।

जैमिनी कृत महीरावण चरित में हनुमान मैरावण को परास्त कर के राम और लक्ष्मण को अपने कन्धों पर पाताल से लंका ले आते हैं।[१] इसी प्रकार आनन्द रामायण में भी हनुमान राम को और मकरध्वज लक्ष्मण को ऐरावण तथा मैरावण की मृत्यु के पश्चात् लंका पहुँचाते हैं।[२] हनुमान के पाँच मुखों वाली मूर्ति में एक गरुड़ का मुख इनके राम वाहन होने का द्योतक है क्योंकि राम को विष्णु का अवतार माना गया है और विष्णु का वाहन गरुड़ है।

हनुमान का देवत्व

हनुमान के देवत्व के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि कपि पूजन का प्रचार भारत में प्राचीन काल से था जिसका संकेत हमें खोदाइयों में मिलता है सम्भवतः इन्हीं मूर्तियों से इनकी पीछे की मूर्तियां बनी हों। यों वाल्मीकि रामायण में ही मैनाक इनको सम्बोधन कर के कहता हो कि तुम्हारी पूजा से वायु देवता की पूजा हो जाती है—

> पूजितेत्वयि धर्मज्ञे पूजां प्राप्नोति मारुतः।
> तस्मात् त्वं पूजनीयो मे शृणु चाप्यत्र कारणम्॥

(सुन्दरकाण्ड—१, १२१)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें देवत्व का आरोपण वाल्मीकि के काल में प्रारम्भ हो गया था तथा इनकी पूजा होने लगी थी यों सब से प्राचीन मूर्ति हनुमान की विद्याधर के रूप में उदयगिरि के रानी गुम्फा की प्रतीत होती है जो प्रायः ईसा पूर्व पहिली शताब्दी की है यह जैन मूर्ति है यों इसे हनुमान की मूर्ति लोग नहीं मानते। इसके पश्चात् देवगढ़ से प्राप्त हनुमान की मूर्ति को रखा जा सकता है जो गुप्तकालीन है। रानी गुम्फा वाली मूर्ति में भी ये हाथ में एक थाली में कुछ लिए हुए हैं, इनके गले में माला है, मस्तक पर मुकुट तथा कानों में कुण्डल है। स्वतन्त्र रूप से हनुमान की मूर्ति जो प्राप्त हुई है वह ८वीं शताब्दी के पहिले की नहीं है। (फलक ११)। इस कारण हम कह सकते हैं कि हनुमान की पूजा देव रूप में प्रायः ८वीं शताब्दी से आरम्भ हो गयी थी। अग्नि पुराण में भी इनकी मूर्ति का विवरण मिलता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

---

[१] बुल्के—वही—पृष्ठ ५९९।

[२] उपरोक्त—पृष्ठ ५९९-६००, आनन्द रामायण—१, ११, ७३-१३०

स्कन्द पुराण में हनुमान को शिव आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा नाम कल्याणकारी हो 'उपकाराय लोकानां नामानि तव मारुते'। यहाँ हनुमान के वारह नाम मिलते हैं जिससे ऐसा भान होता है कि इस पुराण के निर्माण काल तक इनके नामों को जपने की प्रथा चालू हो गयी थी।[1] नारदीय पुराण में इनके कवच, मंत्र, यन्त्र इत्यादि सभी मिलते हैं।[2]

पीछे चल कर इनके पूजन का विशेष प्रचार हुआ ऐसा प्रतीत होता है कि प्राय: १०वी शताब्दी के पश्चात् इनकी आधुनिक रूप की पूजा का क्रम प्रारम्भ हुआ। आनन्द रामायण में सीता हनुमान को आशीर्वाद देते हुए कहती हैं कि गाँव-गाँव में, नगरों में, वगीचों में पीपल और वट के नीचे विघ्न शांति के हेतु तुम्हारी मूर्ति की पूजा होगी।[3]

आनन्द रामायण में एक हनुमत्कवच भी उद्धृत है जिसे राम ने विभीषण को दिया था और जो भूतों तथा ज्वर से रक्षा करने वाला कहा गया है एक दूसरे स्थल पर गरुड़ राम को कपि पूजन का विधान वताते हैं और यह कहते हैं कि यह पूजा महामारी के समय करनी चाहिये 'जनमारे समुत्पन्ने ग्रामे'।[4] एक और स्थल पर सीता द्वारा हनुमत्पूजा की भी चर्चा मिलती है।[5]

गोमेयां जने यं सा कुंड्यां कृत्वाचर्यं जानकी।
अकरोत्प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वांगुलिमात्रतः॥

लांगूलोपनिषद् में हनूमान के मंत्रों का संग्रह किया गया है। इसमें हनूमान को एकादश रुद्रावतार, श्रीराम सेवक, कुमार ब्रह्मचारी, भूत प्रेत पिशाच उच्चाटक, ज्वर विनाशक, सर्व शूल उन्मूलक कहा गया है। हनूमान की पूजा यहां बांझपन दूर करने के हेतु भी करने का निर्देश है।[6]

जव इनमें देवत्व का आरोप कर दिया गया तव से इनके वाहन के रूप में एक राक्षस की मूर्ति इनके पैर के नीचे वनाई जाने लगी; ग्यारहवें रुद्र माने

---

१. स्कन्द पुराण—अवन्ती खण्ड, रेवाखण्ड ८३, २९।

२. नारदीय महापुराण—वेंकटेश्वर प्रेस—पूर्वार्ध—अध्याय ७४, ७५, ७८, ७९।

३. आनन्द रामायण—१, १२, १४७-१४९।

४. उपरोक्त—मनोहर काण्ड—१३ तथा १६ सर्ग।

५. उपरोक्त—राज्य काण्ड ५, ५।

६. बुल्के—वही, पृष्ठ ६८६।

जाने के कारण यह राक्षस उनकी मूर्तियों में उसी प्रकार अंकित किया जाने लगा जैसे शिव के ताण्डव रूप की मूर्तियों में किया जाता था।

हनुमत् सहस्र नाम स्तोत्र में इनको "गर्भ दोषघ्न पुत्र पौत्रद"[1] नाम से भी स्मरण किया गया है। हनुमान का संकटमोचन रूप तुलसीदास के समय प्रचलित था। काशी में हनूमान की संकटमोचन मूर्ति इनके समय में विद्यमान थी ऐसा लोगों का विश्वास है, इन्होंने अपनी विनय पत्रिका में इस संकटमोचनी मूर्ति को बहुत महत्व दिया है।[2]

अघटित-घटन, सुघट विघटन, ऐसी विरुदावली नहि आनकी।
सुमिरत संकट सोच विमोचन, मूरति मोद-निधान की।

यों विष्णुधर्मोत्तर पुराण, बृहत्संहिता, रूप मंडन इत्यादि में इनकी मूर्ति के निर्माण सम्बन्धी कोई सामग्री नहीं मिलती परन्तु हनुमत्प्रतिष्ठा प्रकरण जो पंचरात्रोक्त है उसमें इनकी मूर्ति के निर्माण के विषय में सामग्री मिलती है तथा हनुमत्प्रतिष्ठा विधि में हनूमान की मूर्ति की स्थापना का प्रकरण प्राप्त होता है जैसा पहले लिखा जा चुका है।

शिव महापुराण में यह मान लिया जाने पर कि ये एकादश रुद्र हैं इनकी पूजा का प्रचार और अधिक बढ़ा होगा और वैष्णवों के अतिरिक्त शैव भी इन्हें अपना देवता मानने लग गये होंगे।

विविध राम कथाओं में बौद्ध जातकों को छोड़ कर एक साधारण समानता दिखाई देती है उसी प्रकार हनुमान की कथा का पारवर्ती साहित्य में जो भी विकास दिखाई देता हैं वह वाल्मीकि की कथा में निहित तत्त्वों के आधार पर ही विकसित प्रतीत होता है। इनका वाक्चातुर्य, इनकी बुद्धिमत्ता, इनका पराक्रम, इनकी अमरता, इनकी राम भक्ति इनका देवत्व इत्यादि सभी वाल्मीकि में परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है।

अभी थोड़े ही दिन पूर्व तक इनके प्रति इतनी श्रद्धा थी कि बंगाल के कई राजे अपने अभिषेक के समय एक पूंछ लगाते थे। यह कथा बंगाल में बहुत प्रचलित है कि संस्कृत के एक विख्यात कवि जो चैतन्य के समकालीन थे वे हनुमान के अवतार थे। लोगों का ऐसा विश्वास था कि इनको पूंछ थी।[3] इनको विशेष रूप से पवन

---

[1] श्री हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र (वेंकटेश्वर प्रेस)—बुल्के वही,

[2] विनय पत्रिका—३०-२।

[3] दिनेशचन्द्र सेन—बंगाली रामायण, पृष्ठ ५२ वैष्णव नन्दनी।

तथा तूफान के संकट से दूर करने वाला देवता माना जाता था इसी कारण कदाचित व्यापारी इनकी विशेष पूजा करते थे और समुद्री जहाजों पर इनकी पूजा करके झण्डा लगाया जाता था जिन पर इनकी मूर्तियां अंकित रहती थीं।

इस अध्ययन से यह पता लगता है कि इनकी पूजा राम कथा से पूर्व इस देश में यक्ष रूप में चालू थी और गांवों में इनके स्थान या धाम बने हुए थे क्योंकि इनको भूत पिशाच का उच्चाटक, ज्वरों का नाश करनेवाला, बांझपन को दूर करनेवाला, संकटों की हरण करनेवाला माना जाता था जैसा लांगूलोपनिषद् के मंत्रों के संग्रह से ज्ञात होता है।[1] ये सब मंत्र तो पीछे के संग्रहीत हैं जैसे हमारे यहां के बहुत से मंत्र हैं परन्तु हो सकता है कि बने पहिले के हों। महादेव की भांति इनको भी जब आर्य धर्म में ले लिया गया होगा[2] तो इनकी अर्चना के मंत्र संस्कार कर के ले लिये गये होंगे। इनके विषय की आश्चर्यजनक घटनायें जैसे समुद्र लंघन, लंका दहन इनकी पूंछ का न जलना, विशल्या नामकी औषधि को पहाड़ सहित लंका लाना इत्यादि सभी इनके यक्षत्व का द्योतक है जो कदाचित किसी दूसरे रूप में जनता में प्रचलित थीं और जिन्हें इस यश को अपनाने के हेतु पीछे चल कर राम कथा में जोड़ दिया गया होगा।

यदि प्रक्षिप्त अंश मान कर इनकी कथा वाल्मीकि रामायण में से निकाल दी जाय तो कथा के प्रवाह में कोई अंतर नहीं आयेगा। सर्वप्रथम ये राम की सुग्रीव से मैत्री कराते हैं। जिसकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती क्योंकि सुग्रीव के पास राम ऋषिमूक पर्वत पर सबरी द्वारा बताये हुए मार्ग से पहुंच ही गये थे। सुग्रीव तथा राम दोनों ही स्त्री के हरण से दुःखी थे दोनों की मित्रता हो जाना स्वाभाविक था। जटायू से राम को यह पता लग ही गया था कि रावण ने सीता का हरण किया तथा उनको लेकर वह दक्षिण की ओर गया है। सुग्रीव रावण के निवास स्थान को जानते थे क्योंकि रावण बाली से लड़ कर हार चुका था। उसके पास कितनी सेना है इसका भी सुग्रीव को ज्ञान था जैसा तारा के कथन से स्पष्ट हो जाता है। हनूमान को सीता की खोज के हेतु भेजने की भी कोई आवश्यकता थी नहीं। इसी प्रकार सुषेण नामक वानर सेनापति सुग्रीव की सेना में था जो वैद्य भी था। वैद्य बिना औषधि के सेना में चले यह भी विश्वास नहीं होता इस कारण हनुमान को हिमालय से चिकित्सा के हेतु विशल्या नामक

---

[1] १. बुल्के—वही, पृष्ठ ६८६

[2] २. महादेव के आर्य धर्म में प्रवेश की सर्व सुन्दर व्याख्या टी० ए० गोपीनाथ राव ने की है। ऐलिमेण्ट्स आफ हिन्दू आईकोनोग्राफी—खण्ड २, भाग १. पृष्ठ ३०-३१।

औषधि लानेकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती। इस प्रकार यदि हनुमान के चरित्र को निकाल दिया जाय तो राम कथा के प्रवाह में कोई अन्तर नहीं पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि वाल्मीकि के काल में एक कथा दक्षिण में प्रचलित थी जिसका नायक रावण था और दूसरी कथा राम की उत्तर भारत में प्रचलित थी जिसमें राम नायक थे। इस राम कथा में खर दूषण के वध तक की कथा थी दक्षिण की रावण कथा स्वतन्त्र थी जिसमें उसमें किष्किन्धा विजय की कथा थी इन दोनों कथाओं को चारण गाया करते थे। वाल्मीकि ने इन दोनों कथाओं को जोड़ दिया। फिर भी इस नये कथानक में आश्चर्यजनक घटना कोई नहीं थी। इस तत्व का समावेश करने के हेतु वाल्मीकि जी को एक ऐसे व्यक्ति के चरित्र की आवश्यकता पड़ी जो जन परिचित हो। ऐसा चरित इनको महावीर नामक यक्ष का मिला। इस चरित्र को जोड़ देने से यह महाकाव्य पूर्ण हो गया। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कहीं हनुमान को वाल्मीकि ने मनुष्य के रूप में दर्शाया है और कहीं कपि के रूप में इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस यक्ष का अर्ध कपि अर्ध मनुष्य रूप पहिले ही से परिकल्पित हो चुका था। रामकथा के रचने का ध्येय जनता में आर्य धर्म का प्रचार ही था इसमें यक्ष पूजा को समाप्त करने का भी एक ध्येय दिखाई देता है।

जब इनकी कथा का समावेश रामकथा में हो गया तो फिर उसी आधार पर विविध देशों के कवियों ने अपनी अपनी कल्पना के सहारे अपने निकटवर्ती बड़े राजाओं के चरित्रों से सामग्री लेकर इनके चरित्र को थोड़ा-थोड़ा परिवर्तित तथा परिवर्धित कर दिया।

हनुमान की मूर्तियाँ और उनका विकास

आनन्द रामायण के अनुसार सीता ने हनुमान को आशीर्वाद देते हुए कहा था[1]—

> ग्रामाराम पतनेषु व्रजखेटकसद्मसु।
> वन दुर्ग पर्वतेषु सर्व देवालयेषु च॥
> नदीषु क्षेत्र तीर्थेषु जलाशये पुरेषु च।
> वाटिकोपवनाश्वत्थवटवृन्दावनादिषु ॥
> त्वन्मूर्ति पूजयिष्यंति मानवो विघ्नशांतये।
> भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्ति स्मरणात्तव॥

यह आशीर्वाद आज सफल हो रहा है। आज हनुमान महादेव के समान समस्त भारत में पूजे जाते हैं। क्या उत्तर क्या दक्षिण भारत में हमें स्थान-स्थान पर शिवलिंग की भांति हनुमान की मूर्ति के दर्शन होते हैं। जैसे किसी समय में भारत में यक्षों की मूर्तियाँ भक्त लोग बनवाते थे[2] उसी प्रकार आज हनुमान की मूर्ति बनवाते हैं। नगर, कस्बे, गांवों में कहीं जाइए इस देवता के दर्शन हो ही जाते हैं। भले ही इनके मंदिर न हों परन्तु पीपल के पेड़ के नीचे इनकी मूर्ति प्रायः दिखाई दे जायगी। कहीं मूर्ति छोटी होगी तो कहीं विशालकाय परन्तु होगी अवश्य। प्रायः उत्तर भारत में इनकी मूर्ति सिंदूर से आच्छादित मिलती है। आज इस देवता का और देवताओं की अपेक्षा अधिक प्रचार है। दक्षिण में भी इनकी आंजनेय नाम से पूजा होती है परन्तु उधर उतनी संख्या में इनके मंदिर विद्यमान नहीं हैं जितने उत्तर भारत में। उत्तर भारत में तो इनके नाम से मोहल्ले जैसे काशी का हनुमान फाटक तथा हनुमान घाट, अयोध्या की हनुमान गढ़ी, राजस्थान का नगर हनुमान गढ़, बद्रीनाथ के पास की हनुमान चट्टी, नेपाल का हनुमान गोडा इत्यादि बसे हुए हैं। पश्चिम बंगाल में यह प्रथा है कि जब कोई नया गांव बसाया जाता है तो सब से प्रथम हनुमान की मूर्ति स्थापित की जाती है क्योंकि इन्हें प्रजनन शक्ति से सम्पन्न, खेत तथा पशुओं का रक्षक समझा जाता है। वहाँ इन्हें पृथ्वी का पति भी माना जाता है।

---

[1] आनन्द रामायण १, १२, १४७-१४९।

[2] कुमारस्वामी—यक्षाज—खण्ड १, पृष्ठ २६।

बहुत से विद्वानों का यह मत है कि राम की मूर्ति के साथ इनकी मूर्ति मध्ययुग से बनने लगी।[1] कुछ विद्वानों का तो ऐसा विश्वास है कि तुलसीदास की रामायण का जब से प्रचार हुआ तब से हनुमान की मूर्ति बनने लगी परन्तु गुप्तकालीन देवगढ़ से प्राप्त पाषाण फलक पर उत्कीर्ण हनुमान की मूर्ति को देख कर (फलक ७ क, ख) अथवा बिहार के चौसा से प्राप्त एक ईंटे पर बनी हुई राम के साथ हनुमान की मूर्ति को देख कर (फलक ८) अथवा सहेत महेत से प्राप्त फलक पर हनुमान की मूर्ति को देख कर (फलक ९) अथवा पट्टडकाल के विरूपाक्ष के मंदिर में बने रामायण की कथा के (फलक १०) पर हनुमान की मूर्ति का दर्शन कर के यह धारणा निर्मूल हो जाती है। हाँ यह सम्भव है कि इनकी मूर्ति गुप्तकाल के पूर्व किसी दूसरे रूप में बनती रही हो जैसे यक्ष के रूप में पीपल के वृक्ष के नीचे मिट्टी का ढूहा बना कर या कपि के रूप में जैसी मूर्तियाँ हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता[2] से लेकर विविध स्थानों की खोदाईयों में केवल गुप्तकालीन स्तरों तक ही मिली हैं (फलक ६) और जैसी मूर्तियाँ भारत के बाहर से प्राप्त हुई हैं या वन मानुष के रूप में हैं जैसी मूर्तियां हमें मोहनजुदाड़ों तथा लोथल से मिली हैं।[3] (फलक २)

ऋग्वेद में हमें वृषाकपि के दर्शन होते हैं जिनकी इन्द्र के स्थान पर पूजा होने लगी थी[4] परन्तु उस प्राचीन काल में इनकी मूर्ति बनती थी या नहीं यह कहना कठिन है। यों मिश्र में प्रायः थोथ देवता की मूर्ति इसी काल के आस-पास बनती थी जिनका मुख हनुमान की भांति कपि का तथा शरीर मनुष्य का था (फलक ३) वृषभ की पूंछ तथा सींग लगाने की प्रथा मनुष्यों में सिंधु घाटी में दिखाई देती है[5] वृषभ और सभ्यताओं की भांति भारत में भी कदाचित शक्ति

---

[1] जे० एन० बैनर्जी—दी डेवलपमण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, ४२१।

[2] माके—फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजोदाड़ो—प्लेट १००-१३; माधो स्वरूप वत्स—एक्सकवेशन्स एट हड़प्पा—प्लेट ७८-३५; एन० सी० मजुमदार—एक्सप्लरेसन्स एक्सप्लोरेशन इन सिंध—मेमायर आर्कआलजिकल सर्वे आफ इण्डिया नं० ४८ प्लेट २१-३; स्टाइन—मेमुआर आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया नं० ३७, प्लेट ७—पी० डब्लू।

[3] माके—उपरोक्त प्लेट ७८-१२; इण्डियन आर्कआलोजी १९५७-५८ प्लेट १८ ए।

[4] के० एस० गेल्डनर—डेर ऋग्वेद, पृष्ठ २७३।

[5] स्टेला क्रामरिश—दी आर्ट आफ इण्डिया थ्रू दी एजेज, पृष्ठ २१७ फिगर १।

का द्योतक समझा जाता था। यहां एक मोहर पर (फलक १ ग) एक आकृति दिखाई देती है जिसमें शरीर मनुष्य का है मुख कपि का तथा पूंछ और सींग वृषभ के हैं। हो सकता है कि वृषाकपि की कुछ ऐसी आकृति रही हो।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि कपि पूजा प्राचीन भारत में ही नहीं प्रचलित थी। जैसा पहिले लिखा जा चुका है कि मिश्र में थोथ देवता की पूजा होती थी जिनका स्वरूप अर्ध मनुष्य और अर्ध कपि का था। इनकी इस प्रकार की विशाल मूर्तियां रामजेज द्वितीय के आसपान के मंदिर से प्राप्त हुई हैं (फलक ३)। ये मूर्तियां पाषाण की हैं और प्रायः १८०० ई० पू० की हैं। इसी प्रकार की कांसे की मूर्तियां वियना के राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं इनमें इन्हें लवादा पहिने हुए प्रदर्शित किया गया है। ये मूर्तियां भी प्रायः इसी काल की हैं। वहुत सम्भव है कि इनकी पूजा पहिले पूर्ण कपि के रूप में होती रही हो क्योंकि मिश्र में वहुत से ऐसे देवताओं की मूर्तियां हैं जो अर्ध पशु तथा अर्ध मनुष्य के रूप में हैं। ये मूर्तियां उन पशुओं के स्वरूप से परिष्कृत होकर बनी हैं जिनकी पूजा मिश्र के आदिवासी किया करते थे क्योंकि इनका विश्वास था कि कष्ट देने वाले पशुओं की पूजा से वे प्रसन्न होकर उनकी रक्षा करते हैं। कपि को मिश्र लोग 'होपी' देवता के अवतार मानते थे जो मनुष्यों की रक्षा करते थे। वेनी हसन के रूनेम होटेप की समाधी से प्राप्त एक चित्र में हम कपियों को अंजीर खाते देखते हैं।[1] जिससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि मिश्र के लोग इनकी रक्षा करते थे। कपियों की ममी भी वनाई जाती थीं जिससे इस धारणा की और भी पुष्टि होती है ऐसी एक ममी आनआरबर, मिशीगन के संग्रहालय में है।

कपि मूर्तियां केवल प्राचीन मिश्र से ही नही अपितु यूनान के निकटवर्ती द्वीप रोड्स से तथा कोरिन्थ से भी प्राप्त हुई हैं। रोड्स की मूर्ति मृण की है तथा ४५० ई० पू० की है इसमें बैठा हुआ कपि अपने दोनों हाथ उठाए हुए है। ये हाथ उसके आँखों के पास हैं।[2] कोरिन्थ से प्राप्त मूर्ति मृणमूर्ति भी बैठी हुई है। इसमें कपि के हाथ नीचे हैं।[3]

कई अलंकृत कपि मूर्तियाँ भारत के पड़ोसी देशों से भी प्राप्त हुई हैं जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि कपि पूजा उधर भी प्रचलित थीं। स्टाइन को योतखान से

---

१. यह चित्र अमेरिका के 'आन आरबर मिशीगन संग्रहालय' में है।
२. ब्रिटिश म्यूजियम—सं० १६३१, रोड्स।
३. ब्रिटिश म्यूजियम—सं० १९३६, कोरिन्थ।

जो कपि मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें एक के गले में तौक है जिस पर उभाड़दार गोल बुन्दे बने हैं। मस्तक पर गोल टोपी है मुख का भाग सांचे में ढाल कर बनाया गया है नीचे का धड़ न होने के कारण यह कहना कठिन है कि यह मूर्ति बैठी हुई थी या खड़ी थी।[1] यहीं से प्राप्त दो और मूर्तियों में कपि को टोपी तथा हँसुली पहिने हुए प्रदर्शित किया गया है[2] ये टोपियां पेशावरी कूल्हे की भांति ऊपर की ओर नुकीली हैं एक में तो सिलाई का भी आभास मिलता है। एक मूर्ति में कपि को लबादा पहिने हुए मस्तक पर टोपी और गले में तौक पहिने हुए दिखाया गया है। इसमें कपि अपने दोनों पैर पीछे मोड़ कर बैठा हुआ है जैसे अभी भी मुसलमान निमाज़ के समय दोजनू होकर बैठते हैं[3] कदाचित् इस प्रकार से बैठने की प्रथा प्राचीन अरब में थी जो पीछे मुसलमानों के समय में भारत में आयी। एक कपि की मूर्ति के मस्तक पर केवल बाल दिखाई देता है टोपी नहीं है परन्तु गले में हार अवश्य है जो रेखाओं से अलंकृत है[4] कपियों की और भी कई मूर्तियां अनलंकृत यहां से प्राप्त हुई हैं। ये प्रायः ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की होनी चाहिए।

इसी प्रकार की कपि मूर्तियां साइलूसिया के प्राचीन नगर से भी प्राप्त हुई हैं यह नगर दजला के किनारे पर बसा हुआ था। इनमें एक मूर्ति में कपि लबादा पहिने हुए बैठा है इसके हाथ घुटनों पर हैं तथा इसके गले में एक मोटी सी माला है।[5] दूसरी मूर्ति पर लेप चढ़ाया गया है इसके गले में भी एक मोटी सी माला है।[6] तीसरी मूर्ति के हाथ में एक मद्गल है तथा सिर पर एक गोल टोपी है।[7] और भी कई मूर्तियां यहां से कपियों की प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां भी प्रायः ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी की होनी चाहिए।

---

१. आरेल स्टाईन—सेर इण्डिया—खं० १, भाग २-३, पृष्ठ १०५; खं० ४, प्लेट ४, वाई ० ओ० ००७।

२. उपरोक्त—प्लेट ४ वाई० ओ० ००३५ ए; वाई ओ ००३५ एफ।

३. उपरोक्त—वाई० ओ० ००३ क्यू।

४. उपरोक्त—वाई० ओ० ००३५ बी।

५. विल्हेलमिना वान इनजेन—फिगरिन्स फ्राम साइलूसिया, अ.न टाइप्रिस—युनिवर्सिटी आफ मिशीगन—अप्रैल १९३९ प्लेट ८०, नं० १५२९।

६. उपरोक्त पृष्ठ ५३१, प्लेट ८०, नं० १५३०।

७. उपरोक्त—पृष्ठ ५३१, प्लेट ८०, नं० १५३७।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन सभ्यताओं में कपि की मूर्तियां बनाई जाती थीं और मिश्र की भांति इनकी पूजा भी होती थी। आज भी कपि पूजा कधि के स्वाभाविक रूप में अफ्रिका के टोगोलाण्ड में प्रचलित है। भारत में भी शाहाबाद के शबर जाति वाले इनकी मिट्टी की मूर्तियां पूजा के हेतु बनाते हैं। ये मूर्तियां अर्ध मनुष्य तथा अर्धकपि के रूप में नहीं अपितु पूर्ण कपि रूप में बनाई जाती हैं। कैयोनजहार के भुइया लोग वीर या महावीर के रूप में कपि पूजा करते हैं। सिंवभूम के भुइया लोग सब कपि को पवनपूत मानते हैं और अपने को भी पवन वंश का कहते हैं ये इनकी पूजा भी करते हैं। पूर्वी बंगाल के मछुओं में भी यही विश्वास प्रचलित है। वे भी कपि को अपना देवता मानते हैं और पूजा करते हैं।[1] बरार के आदिवासियों में भी कपि पूजन प्रचलित है[2] इससे यही संकेत मिलता है कि हनुमान के स्वरूप के निर्धारित होने के पूर्व कपि पूजा कपि के रूप में प्रचलित थी तथा इनकी मिट्टी की मूर्ति बना कर पूजा होती थी। पीछे चल कर हनुमान की मूर्ति ने कपि की मूर्तियों का स्थान ले लिया। इसी कारण इनकी मूर्तियां कपि के रूप में गुप्तकाल के स्तरों तक ही पायी जाती हैं।[3] (फलक ६) और पीछे चल कर अदृश्य हो जाती हैं तथा सम्भवत: इसी कारण हनुमान की मूर्ति की चर्चा केवल अग्निपुराण में है। यों वायु जो इनके पिता कहे गए हैं उनकी मूर्ति का विवरण विष्णुधर्मोत्तर पुराण में मिलता है।[4] परन्तु इस विवरण से हनुमान की मूर्ति का कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता। अग्नि पुराण में इनको एक हाथ में वज्र लिए हुए राक्षस को पद्दलित करते हुए पद्म पर स्थित दिखाने का निर्देश है।[5]

ऐसा प्रतीत होता है कि पहिले इनकी मूर्ति कपि के रूप में बनी पीछे और यक्षों की मूर्तियों की भांति मनुष्य की मूर्ति पर कपि का मस्तक और पूंछ लगा कर

---

[1] इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स—खं० २, डब्लू क्रूक-बंगाल।

[2] उपरोक्त—खण्ड २, बेरार।

[3] मार्शल—एक्सकवेशन्स एट भीटा—ए० एस० आई० ए० आर० १९११-१२, प्लेट २७, नं० ११८ बैठे हुए कपि की मूर्ति, राजघाट तथा मसोन से भी इसी प्रकार की मूर्तियां इन्हीं स्तरों से प्राप्त हुई हैं।

[4] विष्णुधर्मोत्तर पुराण—अध्याय ५८, ५५, १-६।

[5] अग्निपुराण—अध्याय ५१-१६।

इनकी मूर्ति बनाई गयी।[1] जैसी मूर्तियां गणेश की हाथी का मस्तक लगा कर या वाराह विष्णु की वाराह का मस्तक लगा कर बनी इसके पश्चात् कदाचित् वाराह की मूर्ति के आधार पर पर्वतधारी हनुमान की मूर्ति की कल्पना की गयी जैसे वाराह एक हाथ में पृथ्वी देवी को धारण किए हुए हैं उसी भांति इनके एक हाथ में पर्वत दिखाया गया और उसी प्रकार इनको टेढ़ा खड़ा किया गया। इनके पैर के नीचे एक राक्षस या राक्षसी को दिखा कर इसको कुवेर यक्ष से भी जोड़ने का प्रयत्न प्रतीत होता है अथवा यों कहा जाय कि इनके प्राचीन यक्षत्व स्वरूप को सुरक्षित रखने को ऐसा किया गया। पीछे की हाथ जोड़े हुए मूर्तियां भी भारहुत के यक्षों की मूर्तियों के सदृश्य बनायी गयीं।

वाल्मीकि ने इनके नाम मारुति, मरुतात्मजः[2], प्लवगार्षभः[3], अंजीननन्दन, बजरंग, गंधवहात्मज[4], पवनात्मजः, वायुपुत्र, वायुसूनु, वायुसुत, अनिलात्मज, वातात्मजः, मारुत, पवनसुत, अनिलसुत, मारुतवासव, दूतसूनु[5] या वज्रांग इत्यादि नाम अपने महाकाव्य में दिए हैं। तन्त्र के ग्रंथों में इनके कई ध्यान मिलते हैं इन आधारों पर हनुमान की मूर्तियां कई प्रकार की बन सकती हैं परन्तु यहां भी प्रत्येक ध्यान की पूर्व पीठिका इनके रामायण के चरित्र की कोई विशिष्ट घटना से संबंधित ही दिखाई देती है। यों देव मूर्तियों के ध्यान प्रायः शास्त्र पर आधारित नहीं होते, वे तो देवता के उस रूप से सम्बन्धित रहते हैं जिसकी कल्पना उपासक के मन में उठती है। इन विविध मूर्तियों को देख कर कलाविज्ञ उन्हें सात्विक, राजस तथा तामस भावों का मान कर तीन विभागों में विभक्त करते हैं।

तन्त्रशास्त्र में कामना के अनुसार सात्विक, राजस तथा तामस हनुमान की मूर्तियों के बनाने का विधान मिलता है। इन तीनों प्रकार की मूर्तियों की पूजा भी तीन प्रकार से होती है इनकी विधियों में अन्तर है तथा पूजा के द्रव्यों में भी, परन्तु आज वैष्णव धर्म में हनुमान के अन्तर्हित हो जाने के कारण इनकी मूर्तियों का वर्गीकरण करना कठिन हो गया है। अब यह पता ही नहीं लगता कि कौन मूर्ति

---

१. पशु आकृति की यक्षों की मूर्तियाँ कई स्थानों से प्राप्त हुई हैं यथा अश्वमुखी यक्षी जो सांची में दिखाई देती है—स्टेला क्रामरिश-इण्डियन आर्ट थ्रू दी एजेज-प्लेट १४ इत्यादि।

२. वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धा काण्ड, ३-४।

३. उपरोक्त—किष्किन्धा काण्ड, ४-३।

४. उपरोक्त—६, ७४, ६६ और ७३।

५. उपरोक्त—६, ७४, ५८।

तन्त्रों के आधार पर बनी हैं और कौन सी रामायण के साहित्य की पृष्ठभूमि पर यों इनकी विकराल तथा पंचमुखी मूर्तियां तो तन्त्रों के आधार पर ही बनी ज्ञात होती हैं। (फलक ३३, ४४)

आज साधारणतः हनुमान की सात प्रकार की मूर्तियां प्राप्त होती हैं। एक जिसमें हनुमान द्रोण पर्वत को अपने बांये हाथ में धारण किए रहते हैं तथा दक्षिण हाथ में गदा लिए रहते हैं बांयां उठा हुआ पैर एक राक्षस पर स्थित रहता है तथा शरीर बांयी ओर मुड़ा रहता है। इस प्रकार की मूर्ति में ये दौड़ कर जाते हुए दिखाए जाते हैं। इसी प्रकार की मूर्ति के एक दूसरे स्वरूप में इन्हें बायें कर में पर्वत लिए हुए, दक्षिण हाथ में गदा धारण किए हुए दक्षिण उठा हुआ पैर राक्षस के ऊपर तथा दायीं ओर मुड़ा हुआ शरीर दिखाई देता है। दूसरी प्रकार की मूर्ति वह मिलती है जिसमें ये दोनों हाथों से गदा पकड़े हुए समपाद मुद्रा में खड़े दिखाई देते हैं तीसरी प्रकार की मूर्ति में ये बायें हाथ में गदा लिए रहते हैं और दांयां हाथ ऊपर थप्पड़ मारने की या अभय प्रदान करने की मुद्रा में रहता है। चौथे प्रकार की मूर्ति में ये हाथ जोड़े खड़े या बैठे दिखाई देते हैं पांचवें में ये राम लक्ष्मण को कन्धे पर बैठाए हुए एक राक्षस को पद्दलित करते हुए जाते दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार की मूर्ति में इनके दक्षिण कर में गदा तथा बांयें में कमल का फूल दृष्टिगोचर होता है। छठवें में ये दस हाथ वाले और पांच मुख वाले दिखायी देते हैं। इनके दस हाथों में विविध अस्त्र रहते हैं। इस प्रकार की हनुमान की मूर्ति के विविध स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं किसी में इनके चार मुख और चार हाथ दिखाई देते हैं किसी में एक मुख और दस हाथ और किसी में पांच मुख और दस हाथ। सातवें प्रकार की मूर्ति में ये बांयां हाथ अपने वक्षस्थल पर व्याख्यान मुद्रा में रखे हुए दिखाए जाते हैं और दक्षिण कर मस्तक के पास रखे दिखाई देते हैं।

पहिले प्रकार की मूर्ति में जिसे संकटमोचन हनुमान का स्वरूप कहा जा सकता है क्योंकि इन्हें इस विग्रह में लक्ष्मण के संकट को दूर करने के हेतु बूटियों का पहाड़ ले जाते हुए दिखाया जाता है कहीं इनका शरीर दाहिनी ओर मुड़ा हुआ रहता है और कहीं बाईं ओर कहीं इनके दक्षिण पैर के नीचे राक्षस या राक्षसी दिखाई देती है और कहीं बांयें पैर के नीचे, परन्तु इनके दक्षिण कर में गदा तथा बायें में पर्वत अवश्य रहता है। मुख इनका आज की मूर्तियों में बांये या दाहिने ओर मुड़ा रहता है। पैर के नीचे के राक्षस के हाथ में तलवार की भाँति का अस्त्र रहता है। यह भी कहीं सीधा पीठ के बल लेटा हुआ दिखाया जाता है और कहीं पेट के बल। हनुमान की पूंछ ऊपर की ओर उठी रहती है तथा ग्रीवा टेढ़ी रहती

है। इनके इसी प्रकार के एक विग्रह में वाल्मीकि रामायण के गौड़ीय पाठ तथा तुलसीकृत रामचरित मानस की कथा पर आधारित मिलता है इसमें भरत इन पर बिना फल का सायक चलाते हुए दिखाए जाते हैं।[1] इस प्रकार की मूर्ति में इन्हें उड़ते हुए जाते दिखाया जाता है परन्तु इनके पैर के नीचे एक राक्षस रहता है जो कदाचित् कालनेमि ही होना चाहिए जिससे हनुमान की लड़ाई का विवरण रामचरितमानस तथा द्विपद रामायण में मिलता है।[2] भरत जी इसमें हनुमान की मूर्ति के नीचे के पाषाण खण्ड पर बाण चलाते हुए अंकित रहते हैं। ऐसी मूर्ति काशी में बैजनाथ रामचन्द्र पातुरकर के घुघरानी गली के मकान में विद्यमान है[3] गदाधारी हनुमान की मूर्ति में ये उत्तर से दक्षिण की ओर या दक्षिण से उत्तर की ओर जाते दिखाई पड़ते हैं उत्तर से दक्षिण की तो वह घटना है जब ये लक्ष्मण के हेतु विशल्या नाम की औषधि ले आये थे और दक्षिण से उत्तर जाने की घटना वह है जब ये उस द्रोण पर्वत को यथास्थान रखने गए थे। ये दोनों घटनायें वाल्मीकि रामायण में वर्णित हैं जैसा पहिले लिखा जा चुका है[4] पहिले ये औषधि सहित पर्वत ले आये और फिर उसे काम हो जाने पर राम-आज्ञा से यथा स्थान रखने गए।

प्रतिहारी हनुमान की मूर्तियों में हनुमान रावण के वध के पश्चात् सन्तुष्ट रूप धारण किए हुए अपने दोनों हाथों से गदा को उलट कर पकड़े हुए खड़े दिखाई देते हैं। इस प्रकार की मूर्ति के भी कई उपभेद हैं किसी में ये सीधे खड़े हैं और किसी में राक्षस को अपने बायें पैर से कुचल रहे हैं और किसी में इनका दाहिना पैर राक्षस के मस्तक पर है। इस प्रकार के प्रतिहारी हनुमान की मूर्ति वीर आसन में दक्षिण कन्धे पर गदा रखे भी दिखाई देती है। नेपाल के हनुमान गोडा में राज्य प्रासाद के सामने ऐसी ही एक मूर्ति है इसमें हनुमान कंधे पर कुल्हाड़ी की भांति की गदा रखे हुए वीर आसन में बैठे हैं। इसी रूप के एक विग्रह में ये अपना एक हाथ मुंह पर रखे दिखाये जाते हैं जैसा स्वरूप इनका मद्रास संग्रहालय की एक खड़ी मूर्ति में दिखाई देता है। (फलक १४)

---

[1] रामचरित मानस (तुलसीकृत)—लंका काण्ड ५८, "देखा भरत विशाला अति निसिचर मन अनुमानि, बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि।" वाल्मीकि रामायण गौड़ीय पाठ—६, ८२, ९० १३८।

[2] द्विपद रामायण—बुद्धराज—पृष्ठ १०३-१०६।

[3] कालेकर—काशी में हनुमान की कुछ दर्शनीय प्रतिमायें—"आज" २१ अप्रैल, १९५७।

[4] वाल्मीकि रामायण—६, ७३-७४।

असुर संहारक हनुमान में हनुमान का दाहिना हाथ उठा रहता है जैसे किसी को थप्पड़ मारने के लिए उद्यत हों और इनके वांयें हाथ में गदा रहती है। हनुमान द्वारा रावण को थप्पड़ मारे जाने की कथा वाल्मीकि रामायण में मिलती है।[1] हो सकता है यह विग्रह उसी कथा के आधार पर कल्पित किया गया हो। कुछ विद्वान इस उठे हुए हाथ को अभय मुद्रा में मानते हैं परन्तु अभय मुद्रा में हाथ सामने की ओर सीधा रहता है। यहाँ यह तिरछा है। एक इसी प्रकार की मूर्ति काशी के काल भैरव के मंदिर में प्रवेश द्वार के वांई ओर दिखाई देती है। इस मूर्ति में इनका एक पैर एक राक्षस के ऊपर है तथा ये क्रोधपूर्ण मुद्रा में हैं। स्थानीय लोग इसे तमाचा हनुमान कहते हैं। इसे पिशाच मोचन स्वरूप भी कहा जा सकता है यह हनुमान का तामसी रूप हो सकता है। इसी प्रकार की एक मूर्ति आंजनेय स्वामी के मंदिर में जो मद्रास के उत्तरी आरकाट जिले में है वनी हुई है। इसमें इनके वांयें हाथ में गदा के स्थान पर कमल है। (फलक ३४)

रामभक्त हनुमान के विग्रह में ये हाथ जोड़े वैठे या खड़े दिखाये गये हैं। इस विग्रह में ये ध्यानमग्न अवस्था में रहते हैं जैसे ये अपने इष्टदेव के ध्यान में रत हों इस प्रकार की एक प्रतिमा काशी के राम मंदिर में है। यहां ये राम सीता की मूर्ति के समक्ष खड़े हैं। ऐसी ही एक मूर्ति केरल राज्य के कन्याकुमारी के पास सुचिन्द्रम के मंदिर में स्थित है (फलक ३७) तथा श्रीरंगम के राम मंदिर में भी है।

कई मूर्तियों में ये अपने राम भक्त होने का प्रमाण प्रत्यक्ष देते हुए दिखाई देते हैं। इनमें ये अपने वक्षस्थल को चीर कर उसमें वैठे हुए राम लक्ष्मण का दर्शन करा रहे हैं। एक मूर्ति इस प्रकार की काशी के चक्र पुष्करणी तीर्थ के पास एक आले में है दूसरी काशी के मणिकर्णिका घाट को जाते हुए पहिली मोड़ पर वांई ओर है। तीसरी काशी के नरसिंह चवूतरे के पास है यह मूर्ति वड़ी और सुन्दर है। इसमें हनुमान दोनों घुटनों को टेक कर वैठे हैं बगल में गदा लटक रही है और ये दोनों हाथों से अपना वक्षस्थल फाड़ कर उसमें वैठे राम का दर्शन करा रहे हैं। ऐसी ही मूर्ति वंगाल के एक पट चित्र पर भी मिलती है। (फलक ४६)

राम वाहन हनुमान के विग्रह में इन्हें राम लक्ष्मण को कन्धों पर बैठाए हुए दिखाया गया है। इस श्रेणी की मूर्तियों में ये दाहिने हाथ में गदा लिये हुए और वायें में एक कमल लिए रहते हैं पेर के नीचे एक राक्षस को दवाते हुए दिखाये जाते हैं इसमें इनकी पूंछ इनकी बांई ओर निकल कर सिर तक फैली हुई

---

[1] उपरोक्त—६, ५९, ६२।

रहती है। राक्षस के हाथ में तलवार रहती है और वह चित्त लेटा हुआ रहता है। ऐसी मूर्ति काशी के पंचक्रोशी के सड़क पर पागलखाने के पास स्थित है। इसकी कल्पना कृतिवास रामायण में वर्णित महिरावण की कथा पर आधारित ज्ञात होती है। (फलक ४३) इसी प्रकार की एक दूसरी मूर्ति काशी के भोंसला घाट के गंगामहल के नीचे स्थित है। ऐसे ही विग्रह का एक और रूप काशी के ब्रह्मनाल मोहल्ले में स्थित गोयनका विद्यालय की ओर जाते हुए मार्ग पर स्थित एक मंदिर में दिखाई देता है। इसमें राम लक्ष्मण हनुमान जी के बांये हाथ पर वैठे हैं और इनके दाहिने हाथ में गदा है। उठे हुए दाहिने पैर के नीचे राक्षस है।

एक प्रकार की और मूर्ति में हनुमान के एक हाथ में गदा और दूसरे में विकसित कमल रहता है जिसे कुछ लोगों ने पर्वत समझा है। ऐसी एक मूर्ति काशी के विश्वेश्वरगंज में बड़े हनुमान जी की मूर्ति के नाम से विख्यात है। इन मूर्तियों की एक विशेषता यह है कि पूर्ण रूप से पैर के पास ही एक देवी की मूर्ति भी रहती है जो इस विग्रह को महिरावण की कथा से जोड़ देती है। यह कथा पहिले क्षेपक के रूप में तुलसी कृत रामचरितमानस में थी परन्तु इसका आधार कृत्तिवास की रामायण ही जान पड़ता है। यह मूर्ति उसी घटना को स्मरण दिलाती है जव हनुमान महिरावण को मार कर राम लक्ष्मण को पाताल से लाए थे।

एक विग्रह इनकी मूर्ति का कालभैरव के मंदिर में प्रवेश करते समय दाहिनी ओर दिखाई पड़ता है। इसमें हनुमान जी दोनों हाथ जोड़े खड़े हैं और इनके वीच से गदा लटक रही है। पैर के नीचें कोई राक्षस की मूर्ति नहीं है। मुख मुद्रा प्रसन्न है इससे ऐसा ज्ञात होता है कि यह उस घटना से सम्वन्धित है जव ये सीता जी को राम के विजय का संवाद देने राम की आज्ञा से गए। ये अपनी गदा उलटी कर के इसी कारण प्रसन्नवदन से खड़े हैं। यहां इनकी मुख मुद्रा प्रसन्न है जैसा वाल्मीकि ने वर्णन किया है।[१]

विराट स्वरूप के हनुमान की कई प्रकार की मूर्तियाँ दिखाई देती हैं। किसी में इनके पाँच मुख और दस हाथ हैं, किसी में इनके चार मुख और चार हाथ हैं, किसी में एक मुख और चार हाथ हैं तथा किसी में एक मुख और दस हाथ हैं। पंचमुखी हनुमान की एक मूर्ति काशी में राजमंदिर के समीप हनुमान मंदिर में है और दूसरी सोनारपुरा के एक मंदिर में है इनके अतिरिक्त ऐसी ही एक मूर्ति काठमाण्डू के हनुमान गोड़ा में है। इसी प्रकार की एक मूर्ति जोधपुर

---

१. वाल्मीकि रामायण–युद्धकाण्ड––११३ –२१–२४–२९ ।

के किले के पास है। यह प्रायः २० फीट ऊँची है। यह कल्पना कदाचित् इनके ग्यारहवें रुद्र के मानने पर की गयी। शिव पंचमुखी कहे गए हैं इसी पर हनुमान भी पंचमुखी बने। इनके पंच मुखों में एक गरुड़ का, एक सिंह का, एक शूकर का, एक वानर का और एक हयग्रीव का रहता है। इनका गरुड़ का मस्तक इनके तीव्र गति का द्योतक है तथा विष्णु के वाहन होने की ओर संकेत करता है सिंह, शूकर तथा घोड़े के मुख इनके विष्णु के नरसिंह, वाराह तथा हयग्रीव अवतार के अंश से उत्पन्न होने के सूचक हैं। वानर मुख इनका अपना है इनके दस हाथों में दाहिनी ओर के हाथों में ऊपर की ओर से तलवार कमल, पाश, घण्टा और मुद्गल नीचे वांयी ओर के हाथों में गदा, ढाल, बघनखा, पाश तथा कटार रहती है। पूंछ के घुमे हुए आकार में पर्वत रहता है। कहीं-कहीं इनके दक्षिण के पांच हाथों में क्रम से पहाड़, गदा, वृक्ष की शाखा, कमण्डल तथा सर्प रहते हैं और बांयें पांच हाथों में क्रम से कटार, त्रिशूल, वज्र, सर्प तथा अंकुश रहते हैं। पैर के नीचे राक्षस कुचला जाता हुआ दिखाया जाता है। मुख को छोड़ कर और शरीर मनुष्य की भांति रहता है। (फलक ४५)

एक पंचमुखी हनुमान की मूर्ति राजकोट के वाटसन संग्रहालय में है। नग्न होने के कारण यह कहना कठिन है कि वन्दर के अतिरिक्त और इनके कौन-कौन से मुख इस मूर्ति में विद्यमान थे। दक्षिण के दो हाथों में क्रम से पहाड़ तथा धनुष है और बांयें में गदा तथा तीर है। दक्षिण पैर के नीचे राक्षस है। (फलक ३९)

एक मुख तथा चार हाथवाले हनुमान की प्रतिमा तंजौर जिले में ट्रंकुवार के मार्ग के मंदिर में है। यहां चार हाथों में दाहिने ऊपर के हाथ में चक्र तथा बांयें ऊपर के हाथ में शंख है नीचे के दाहिने हाथ में अंकुश तथा बांयें हाथ में पद्म है। (फलक ४१) एक मुख और दस हाथ वाली मूर्ति तंजौर में मायूरम से १५ मील दूर पर अनाथमंगलम नाम के विख्यात मंदिर में दिखाई देती है। इस विग्रह में इनको शिव की भाँति तीन नेत्रों सहित दिखाया गया है। दक्षिण हाथों में क्रम से चक्र, त्रिशूल, पेड़ की डाली, तीर तथा अंकुश हैं। बांयें हाथों में क्रम से शंख, पाश, श्रुवा, धनुष तथा बिल्व फल हैं। (फलक ३९)

उपदेशक हनुमान की मूर्ति काशी के खजुरी मोहाल में, खजुराहों में, जबलपुर के कूदम गांव में, मध्यप्रदेश के नवगाँव धुवेला संग्रहालय में तथा इन्दौर में मिली हैं। इन्दौर की मूर्ति में ये राक्षस राक्षसी को पद्दलित करते हुए दिखाये गए हैं। (फलक २१) इन सब प्रकार की मूर्तियों में इनका मुख वानर का, शरीर मनुष्य का, पूंछ लंगूर के भांति लम्बी तथा वृषभ के भांति लम्बे बालों

सहित दिखाई देती है; इन्हें मुकुट, कुण्डल, ग्रैवेयक, वलय, अनन्त, मेखला से अलंकृत अधो वस्त्र तथा उत्तरीय पहिनें हुए दिखाया गया है। पीछे की काल मूर्तियों में इनके पैर में कड़ें भी दिखाई देते हैं। इनका एक हाथ व्याख्यान मुद्रा में है जो रावण को उपदेश करने की कथा की ओर संकेत कर रहा है जैसा रामायण में वर्णित है।[1]

क्रमिक विकास के अध्ययन में यह कहना कठिन है कि अर्ध मनुष्य तथा अर्ध वानर के रूप में हनुमान की मूर्तियां कब से बनने लगीं। यों नावदा टोली में हमें प्रागैतिहासिक युग के मिट्टी के बर्तन पर आकाश मार्ग से जाते हुए एक कपि की मूर्ति मिली है। इसमें यह दोनों हाथ पैर फैला कर जाते हुए दिखाई देते हैं।[2] (फलक ५) हो सकता है कि यह हनुमान के आकाश मार्ग से समुद्र पार करने की कथा से सम्बन्धित हो।

कपि मूर्तियां सिन्धु घाटी की सभ्यता के केन्द्रों से जैसे पेरिआनो गुण्डई[3], मोहनजुदाड़ो[4], हड़प्पा[5], चान्हुदाड़ो इत्यादि से प्राप्त हुई हैं। इनमें अधिक संख्या में मूर्तियाँ एक प्रकार के मिश्रित द्रव्य चूर्ण से जिसे फायन्स कहा गया है तैयार की हुई हैं, मिट्टी की मूर्तियां बहुत कम हैं। यह मिश्रित द्रव्य चूर्ण प्रायः विशिष्ट चूड़ी, बटन, कान का लटकन, मनके इत्यादि गहनों के बनाने में काम आता था। साधारण वस्तुएं और आभूषण भी पक्की मिट्टी के मिले हैं। इस तथ्य से ऐसा प्रतीत होता है कि कपि की मूर्तियां खिलौनों की भांति व्यवहार करने को नहीं बनाई जाती थी इनका कुछ विशेष महत्व था सम्भवतः ये पूजा के काम में आती रही हों। हड़प्पा में जो कपि की मिट्टी की भी मूर्ति प्राप्त हुई हैं[6] उस पर इतनी कारीगरी खर्च की गयी है कि यह एक विशिष्ट वस्तु बन गयी है (फलक १ ख)। इसमें रेखाओं द्वारा कपि के एक-एक बाल अलग-अलग बनानें का प्रयत्न किया है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि सिन्धु घाटी की

---

[1] १. वाल्मीकि रामायण—सुन्दर काण्ड—५१, १-४४ ।

[2] २. इण्डियन आर्कैआलोजी—१९५७-५८, प्लेट ३४ बी, पृष्ठ ३२।

[3] ३. आरेल स्टाइन—एन आर्कैआलाजिकल टूर—इनवजीरिस्तान एण्ड नार्थ बलुचिस्तान मेमायर नं० ३७ (१९२९) प्लेट ८ पी० डब्लू ७।

[4] ४. जीन मारशल—मोहनजुदाड़ो एण्ड इण्डस सिविलिजेशन—प्लेट ९६ ११; माके—फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजुदाड़ो—प्लेट ८०, २ इत्यादि।

[5] ५. माधो स्वरूप वत्स—एक्सकवेशन्स एट हड़प्पा—प्लेट ७८, ३५, ३६।

[6] ६. उपरोक्त—प्लेट, ७८ ३५।

सभ्यता में कपि पूजा प्रचलित थी तथा कपि की मूर्ति बना कर वृक्ष देवता के प्रतीक के रूप में इनकी पूजा की जाती थी। जिससे उपासक पर आयी हुई विपत्ति को ये निवारण कर दें।[१]

अर्ध कपि और अर्ध मनुष्य की दो खड़ी मूर्तियां मोहनजुदाड़ो तथा लोथल से प्राप्त हुई हैं।[२] (फलक २) यह भी सम्भव है कि इन्हीं को वृषाकपि कहते रहे हों जिनका दर्शन ऋग्वेद में हमें होता है और जिनकी पूजा का संकेत भी हमें ऋग्वेद के दसवें मण्डल के ८६ वें सूक्त में प्राप्त होता है। हो सकता है कि यही हनुमान की मूर्ति का प्रथम स्वरूप हो। यक्षों की भांति इन मूर्तियों में भी पेट निकला हुआ है तथा मुख कपि के सदृश्य है। कुछ इसी प्रकार की कपि मूर्तियां बौद्ध जातकों के चित्रण में भारहुत[३] तथा सांची[४] में मिलती हैं। जातकों के अनुसार बुद्ध ने अपने पूर्व जन्मों में से एक में कपि का शरीर भी धारण किया था। इसी कथा को दर्शाते हुए कई फलक बोधगया, अमरावती, नागार्जुन कोण्ड से भी प्राप्त हुए हैं जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस कथा का बौद्धों द्वारा अपेक्षाकृत अधिक प्रचार किया गया। ऐसा सम्भवतः जनसाधारण की कपि पूजा से विरक्त करने के हेतु ही किया गया होगा जो उस काल में कदाचित् जनता में व्यापक रूप से प्रचलित थी।

यों सबसे प्राचीन हनुमान की मूर्ति विद्याधर के रूप में उदयगिरि की रानी गुफा में एक फलक पर उत्कीर्ण प्रतीत होती है।[५] इनका विद्याधर स्वरूप जैन धारणाओं के आधार पर है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। यह इनके एक हाथ में थाली में फूल, पत्ती इत्यादि हैं और दूसरी बांह पर नाल सहित कमल की कली और फूल लटक रहे हैं। यहां ये मनुष्य रूप में हैं। इनके मस्तक पर मौली है, कानों में कुण्डल, गले में हार, हाथ में वलय हैं। ऊपर के शरीर पर उत्तरीय तथा नीचे के अंग पर धोती है। यहां ये आकाश मार्ग से जाते हुए दिखाये गए हैं कदाचित् उस काल में इनके विशल्या नाम की औषधि लाने की कथा का विशेष

---

[१] वृक्षों की पूजा अथवा वृक्ष में रहने वाले वृक्ष देवता की पूजा प्राचीन सभ्यताओं में बहुत प्रचलित थी।

[२] मार्के—फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजुदाड़ो—प्लेट ७८ १२; इण्डियन आर्केआलोजी—१९५७-५८ प्लेट १ १८ ए।

[३] जिम्मर—दी आर्ट आफ इण्डियन एशिया—प्लेट ३१ बी।

[४] उपर्युक्त—११ ए।

[५] उपर्युक्त—प्लेट ५८ ए।

रूप से प्रचार था जिसको यहां फूल-पत्ती के रूप में दिखाया गया है। इसे ही पीछे जैन पद्म पुराण में विशल्या नाम की राजकुमारी कर दिया गया। इसी पाषाण खण्ड पर बांईं ओर जो कथा अंकित है वह राम की कथा से बहुत कुछ मिलती हुई है। इसमें एक पक्ष युक्त हिरण पर एक आदमी वाण चलाने को उद्यत दिखाया गया है और दूसरा उसके पीछे है तथा एक वृक्ष के बीच में बैठी यक्षिणी उनको रोक रही है। एक ओर एक स्त्री का हरण हो रहा है। हो सकता है कि जैन धारणाओं के अनुसार मारीच के वास्तविक वध की वात उस काल की जैन राम कथा में न रही हो परन्तु यह मृग तो मारीच ही ज्ञात होता है क्योंकि इसे पंख लगे हैं। हो सकता है कि यक्षणी ने इन्हें जीवहत्या से रोक दिया हो। राक्षसों की ओर विद्याधरों को जैन ग्रंथों में आकाशचारी बताया गया है तथा मनुष्यों को भूमिचर। एक राजा के द्वारा एक स्त्री का हरण सीता के हरण से सम्बन्धित ही प्रतीत होता है। इस प्रकार यदि इस कथा को राम कथा माना जाय तो यहां विद्याधर के रूप में उपस्थित हनुमान को ही उत्कीर्ण किए जाने की सम्भावना बहुत अधिक हो जाती है। ये गुफायें जैन मुनियों के रहने के हेतु बनवाई गयी थीं। इस कारण हनुमान का जैन रूप प्रदर्शित करना ही उचित था। इस फलक पर राम कथा ही अंकित ज्ञात होती थी न कि दुष्यन्त की, जैसा सरकारी पुस्तकों में संकेत है[1] क्योंकि कण्व के आश्रम के समीप जब मृग पर राजा दुष्यन्त वाण चला रहे थे तो वे अकेले थे और उनको इस कृत्य से रोकने वाले कण्व आश्रम के ब्रह्मचारी थे यक्षणी नहीं, फिर शकुंतला के हरण का कोई प्रश्न ही नहीं उठा था। यों भी कालिदास का शाकुन्तल नाटक इस गुफा के बनने के पश्चात् लिखा गया तथा महाभारत की शकुन्तला की कथा में आश्रम में मृग पर वाण चलाने का कोई विवरण नहीं है।[2]

यों इस काल के आसपास की मूर्तियां प्रायः कपि आकृति की ही मिलती हैं कदाचित् ये मूर्तियां सिन्धु घाटी की कपि मूर्तियों की परम्परा में है। इनमें कुछ अलंकृत हैं तथा कुछ टोपी तथा वस्त्र पहिने हुए हैं। मौर्य काल की मृण मूर्तियां जो पटना संग्रहालय में प्रदर्शित हैं इनमें दो कपियों की भी है। ये मूर्तियां

---

[1] उदयगिरि खण्डगिरि—डिपार्टमेण्ट आफ आर्केआलोजी, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया पब्लिकेशन्स।

[2] पटना संग्रहालय—बैठी हुई मूर्ति सी६७६५, केवल मस्तक—सी ९३६६।

बड़ी सुन्दर हैं और सांचे में ढाल कर बनाई हुई प्रतीत होती हैं। (फलक ६ अ)। चारसड्डा से प्राप्त एक नर कपि के गले में हंसुली है (फलक ६ क)।[1] इसे व्हीलर ने तीसरी या दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व की बताया है यह मूर्ति खड़ी[2] है दूसरी मूर्ति के गले में एक गोल हंसुली है (फलक ६ ग) तथा तीसरी मूर्ति के गले में दो हार हैं[3] (फलक ६ घ)। प्राय: इन्हीं से मिलती-जुलती कपि मूर्तियां अभी पाकिस्तान में और खोदाइयों में मिली हैं इनमें एक के गले में दो हार हैं जिनमें एक ग्रीवा से सटा हुआ है और दूसरा लटक रहा है यह मूर्ति भी खड़ी है।[4] दूसरी मूर्ति के गले में हार है और कटि में करधनी भी, तीसरी के गले में एक चौड़ा हार है तथा वक्षस्थल पर छन्नवीर के भांति का आभूषण हैं[5] कुषाण काल की अलंकृत मृणमूर्तियां कौशाम्बी से प्राप्त हुई हैं जिनमें एक कपि अपने सिर के बाल कंघी से बनाये हुए हैं और उस पर किरीट पहिने है गले में अलंकृत तौक है जिस पर उभाड़दार काम हैं[6] दूसरी मूर्ति के भी गले में अलंकृत तौक है तथा मस्तक पर किरीट है, तीसरी मूर्ति में कपि एक कोट पहिने हुए हैं, इसके मस्तक पर एक गोल टोपी है। इसका एक हाथ पेट पर है और दूसरा बगल में लटक रहा हैं[7] एक और कौशाम्बी की मृणमूर्ति में कपि के मस्तक पर तीन धारियां हैं तथा उसके ऊपर एक अलंकृत किरीट है जिसके बीच में एक गोल टिकरा है जिस पर उभाड़दार काम है यह राजस्थान की स्त्रियों के बुल्ले के सदृश्य है। कानों में इस कपि के कुण्डल हैं[8] (फलक ६ घ)। राजघाट से भी एक अलंकृत कपि की मूर्ति खोदाई में मिली है। ऐसी ही अलंकृत मूर्तियां भीटा से भी प्राप्त हुई हैं। इनमें एक के मस्तक पर घुंघराले बाल दिखाए गए हैं कानों में कुण्डल हैं तथा बाहुओं पर अंगद है दाहिने हाथ से कपि कुछ खा रहा है और बांयां हाथ नीचे लटक रहा है (फलक ६ च)। यह

---

[1] मारटीमर व्हीलर—चारसड्डा—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस—१९६२, पृष्ठ १११, प्लेट २८-३।

[2] उपरोक्त—प्लेट २८-५ तथा २८-६।

[3] एनशण्ट पाकिस्तान—बुलिटन खं० २—१९६५-६६ यूनिवर्सिटी आफ पेशावर प्लेट ३८-६।

[4] उपर्युक्त—प्लेट ३८-७।

[5] उपर्युक्त—प्लेट ३८-१।

[6] इलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूजियम—नं० के ५२१५।

[7] उपर्युक्त—के १७२५।

[8] उपर्युक्त—के २३६९।

मूर्ति गुप्तकाल की लगती हैं[1] कौशाम्बी से भी इसी काल की कपियों की मृण मूर्ति प्राप्त हुई हैं परन्तु ये अलंकृत नहीं हैं[2] मसोन की हाल की खोदाई में भी गुप्तकाल के प्रारम्भिक स्तरों से एक कपि की बैठी हुई मूर्ति प्राप्त हुई है (फलक ६ छ)। इ मूर्ति में दोनों हाथों से किसी वस्तु को पकड़े हुए कपि उकड़ बैठा है। और दूसरे प्राचीन स्थानों की खोदाइयों से भी कपि की मृणमूर्तियां प्राप्त हुई हैं।[3] इनसे ऐसा पता लगता है कि मौर्य काल से लेकर गुप्तकाल के प्रारम्भिक काल तक कपियों की मृण मूर्तियां भारत में बनती रहीं। जब रामायण का पूरा प्रचार हो गया और हनुमान को संकटहरण मान लिया गया तब कपि के स्थान पर इनकी मूर्ति बना कर पूजा होने लगी। इसमें मुख तथा पूंछ तो वही कपि के रह गए परन्तु शरीर मनुष्य के सदृश्य बन गया।

कपिमूर्तियों के अतिरिक्त जो हनुमान की सबसे प्राचीन मूर्तियां हमें प्राप्त होती हैं वे गुप्त काल की हैं। इस काल की मूर्तियां हमें देवगढ़ से, बस्ती के सहेत महेत से, बिहार के चौसा स्थान से, बीजापुर के पट्टडकाल से प्राप्त हुई हैं। ममलीपुरम से भी एक पाषाण की मूर्ति प्रायः उत्तर गुप्त काल की मिली है।

देवगढ़ से प्राप्त पाषाण फलकों में से एक फलक पर सुग्रीव मदिरा पान करते हुए अंकित हैं ये मस्त हो गए हैं तारा इनके पीछे खड़ी है और हनुमान इनको सच्चे सचिव के रूप में रामकार्य का स्मरण दिला रहे हैं जैसा वाल्मीकि रामायण में वर्णन है[4] इनके मस्तक पर मुकुट कानों में कुण्डल तथा गले में हंसुली है। इस विग्रह में इनकी मुख मुद्रा चिन्तित दिखाई गयी है कदाचित् राम कार्य को सुग्रीव के बिसार देने से ये चिन्तामग्न हैं (फलक ७ छ)।[5] यहीं के एक दूसरे फलक पर ये दोनों हाथों से एक पहाड़ उठाए हुए दिखाये गए हैं जैसे यक्षों को दिखाया जाता था[6] यह पहाड़ द्रोणगिरि ही होना चाहिए (फलक ७ ख)। हनुमान की इस मूर्ति में

---

१. मारशल—एक्सकवेशन्स एट भीटा—ए० एस० आइ० आर—१९११-१२, प्लेट २८-११८।

२. इलाहाबाद म्युनिसिपल म्यूजियम—के २९९७ इत्यादि।

३. जैसे एक मूर्ति जो गुप्तकाल की है लखनऊ के राजकीय संग्रहालय कैसरबाग में है नं० ६७-१२३।

४. वाल्मीकि रामायण—किष्किन्धा काण्ड—२९, ८-२७।

५. माधो स्वरूप वत्स—दी टेम्पुल आफ देवगढ़—आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया मेमायर्स नं० ७० प्लेट १७ सी।

६. जिम्मर—वही प्लेट १९-२१ इत्यादि।

इनकी दृष्टि अन्तरमुखी है ये मस्तक पर मुकुट धारण किये हुए हैं। इनके कानों में कुण्डल हैं गले में हँसुली तथा मणिबन्ध पर वलय है। एक चुना हुआ उत्तरीय इनके दोनों कंधों से लटक रहा है। यहां ये कार्यरत दिखाई दे रहे हैं।[1] यह इनका संकट-मोचन स्वरूप है तथा वाल्मीकि रामायण की उस कथा से सम्बन्धित है जब इन्द्रजीत द्वारा चलाए हुए ब्रह्मास्त्र से राम लक्ष्मण सहित सारी सेना आहत हो जाती है और वे मृत संजीवनी तथा विशल्या इत्यादि औषधि लेने जाते हैं तथा औषधियों के अदृश्य हो जाने पर पर्वत को ही उठा लाते हैं।[2]

पटना के राजकीय संग्रहालय में एक गुप्त काल की ईंट है इसके ऊपर भी राम कथा उत्कीर्ण है। यह ईंट बिहार के चौसा स्थान से प्राप्त हुई है।[3] इस दृश्य में सबसे आगे राम हैं उनके बांई ओर सुग्रीव हैं इनके बगल में अंगद हैं। सुग्रीव के पीछे हनुमान हैं और उनके पीछे मुकुटधारी विभीषण तथा जाम्बवन्त (फलक ८)। राम के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिन्ह है इनकी मूर्ति ग्रीवा से टूटी हुई है, गले में ग्रैवेयक तथा एकावली है, बाहु पर केयूर मणिबन्ध पर वलय तथा पैरों में कड़े हैं कमर में एक तलवार खुसी हुई है। लक्ष्मण के मस्तक पर चूड़ामणि है, गले में एकावली तथा हाथ में दो धनुष हैं। हनुमान के शरीर पर कोई आभूषण दृष्टि-गोचर नहीं हो रहा है। इनका दाहिना कर वक्षस्थल पर है और बांया कटि मुद्रा में है। कदाचित् ये कुछ मंत्रणा दे रहे हैं। यह दृश्य सम्भवतः समुद्र पर पुल बांधने के पूर्व का है, जब राम अपना धनुष बाण छोड़ कर सागर से मार्ग मांग रहे थे।[4] इस मूर्ति में हनुमान का गले से ऊपर का भाग कपि का है और शरीर मनुष्य का। हाथ का पंजा वानरों के ऐसा दिखाई देता है। आंखें गोल-गोल हैं और थूथन बाहर निकला हुआ है।

श्रावस्ती (सहेत महेत) से भी कुछ फलक ऐसे प्राप्त हुए हैं जिन पर रामायण के दृश्य अंकित हैं, उनमें दो फलक हनुमान से सम्बन्धित हैं[5] एक फलक पर हनुमान

---

[1] उपरोक्त—प्लेट १७ ई।

[2] वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड—७४, २६-६८।

[3] परमेश्वरी लाल गुप्त—पटना म्यूजियम काटलाग आफ एण्टीक्विटीज़, पटना म्युजियम, पटना १९६५, पृष्ठ २९१-६, प्लेट ४८ आर्के ६५२८।

[4] वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड २१, १-२१।

[5] जे० पी एच० फोगल—एक्सकवेशन्स एट सहेत महेत—आर्कें आलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया आन्युअल रिपोर्ट—१९०७-०८, १९११-१२, प्लेट १७ नीचे के भाग में दाहिनी ओर (१९११-१२ की रिपोर्ट)।

को एक राक्षस का बध करते हुए दिखाया गया है। (फलक ९) यह राक्षस हाथ में तलवार लिए हुए हनुमान के ऊपर वार कर रहा है, हनुमान का एक पैर उसकी जांघ पर है और ये अपने दोनों हाथों से एक पेड़ की शाखा उठा कर उस पर प्रहार कर रहे हैं। इनके कानों में कुण्डल, गले में एकावली तथा हाथों में वलय हैं। ये जांघिआ पहिने हुए हैं और उत्तरीय को पेट के ऊपर से बांधे हुए हैं इनका शरीर मनुष्यों के ऐसा है परन्तु मुख मस्तक कान इत्यादि कपि के हैं इनकी पूंछ भी दिखाई गयी है। यह दृश्य कदाचित् अशोक वन में अक्षयकुमार के वध के समय का है क्योंकि राक्षस इसमें ग्रैवेयक तथा वलय इत्यादि पहिने हुए दिखाया गया है तथा इसके हाथ में खंग है। "स तं परित्यज्य महारथो रथं सकार्मुकः खंगवरः खमुत्पतन्"।[1] इसी प्रकार का एक और फलक है उसमें भी प्रायः यही दृश्य है[2] जो कदाचित् निकुम्भ के वध का दृश्य हो।[3] यह फलक टूटा हुआ है इस कारण निर्णय पूर्वक कुछ कहना कठिन है।

वीजापुर जिले में स्थित पट्टडकाल के वीरूपाक्ष मंदिर के सभा मण्डप के एक खम्भे पर भी राम कथा अंकित है इसमें ऊपर की ओर तो शिव ताण्डव का दृश्य है। इसके नीचे सूपर्णखा के विरूप करने की कहानी अंकित है इसके नीचे राम से खरदूषण का युद्ध है और उससे नीचे मायामृग रूपी मारीच का वध है सबसे नीचे बांयी ओर सीताहरण दिखाया गया है और दाहिनी ओर सीता को हनुमान संदेश देते हुए प्रदर्शित हैं। हनुमान इसमें मुकुट पहिने हुए हैं, कुण्डल तथा हार धारण किए हुए हैं नीचे के अंग में धोती पहिने हुए हैं। हाथ में ये छाते की भांति की गदा लिए हुए हैं। पहिले ये सीता को राम की अंगूठी दे रहे हैं और दूसरे में सीता से विदा ले रहे हैं (फलक १०)।[4] इस दृष्य को देखकर वाल्मीकि रामायण की कथा का स्मरण हो आता है—[5]

"वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामांकितस्येदं पश्य देव्यंगुलीयकम्॥"

---

[1] वाल्मीकि रामायण—सुन्दर काण्ड ४७, ३३।

[2] फोगल—उपरोक्त—पृष्ठ ९६ (१९११-१२)।

[3] वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड ७८, १-२५।

[4] चित्र आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया की कृपा से प्राप्त नं० ९७५।१९६१।

[5] वाल्मीकि रामायण—सुन्दर काण्ड—३६-२। इस चित्र का सर्वाधिकार आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के पास है।

विदा के समय सीता इनको अपनी चूड़ामणि देती हैं—ततो वस्त्रगतं दिव्यं चूड़ामणिं शुभम्।. . .सीता हनुमते ददौ।[1] एक चित्र हमें मल्लिकार्जुन के मंदिर में मिलता है जिसमें कुछ कपि फल खाते हुए दिखाई देते हैं[2] यह अंकन उस घटना का स्मरण दिलाता है जब अंगद सहित हनुमान तथा उनके साथियों ने मधुवन में सीता की खोज में सफल होकर आने पर फल खाये थे।[3] यह मंदिर प्राय: ७४५ ई० में बना हुआ माना जाता है। पट्टडकाल के मल्लिकार्जुन मंदिर में भी एक फलक पर अशोक वाटिका का दृश्य अंकित है वांयी ओर से हनुमान सीता को पहिले पेड़ पर से देखते हैं और पीछे नीचे उतर कर अंगूठी देते हैं फिर राक्षसों से इनकी लड़ाई होती है और उसके पश्चात् इन्हें राक्षस राक्षसी वांध कर रावण के पास ले जाते हुए दिखाए गए हैं।

अभी हाल में विहार के भागलपुर जिले के अन्तर्गत अण्टिचक की खोदाई से बी० पी० सिन्हा तथा जी० पी० सिंह को ५७ मृण फलक प्राप्त हुए हैं जो कदाचित् किसी मंदिर में लगे हुए थे उनमें एक मृण फलक पर उनकी आख्या के अनुसार महावीर हनुमान का अंकन है[4] यह फलक भी गुप्तकाल का ही है। इस फलक पर हनुमान एक हाथ में गदा लिए हुए हैं और दूसरे में पहाड़। यह पहाड़पुर की मूर्तियों से मिलती-जुलती है। दक्षिण भारत की प्राचीन हनुमान की मूर्तियों में एक राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में है।[5] यह एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। यह मूर्ति महावलीपुरम या मल्लीपुरम से प्राप्त हुई थी। पल्लव सम्राटों के समय महावलीपुरम वड़ा व्यस्त वन्दरगाह था। यहां समुद्र के किनारे बना हुआ शिव का मंदिर अपने काल की कला का अच्छा उदाहरण है इसी प्रकार यहां पहाड़ को काट कर जो पाँच रथ बनाये गये हैं अथवा जो चट्टानों पर गंगा अवतरण इत्यादि के दृश्य हैं वे सभी भारतीय कला की अद्वितीय निधियां हैं। ये मन्दिर सम्राट सिंह विष्णु के काल से नरसिंह वर्मन द्वितीय

---

[1] उपरोक्त—३९, ६९-७१; ४०; १-५४, ४१, १-२४।

[2] स्टेला क्रामरिश—दी आर्ट आफ इण्डिया थ्रू दी एजेज—प्लेट ७१।

[3] वाल्मीकि रामायण—सुन्दरकाण्ड—६१, ७-२४; ६२, १-१२।

[4] इण्डियन आर्केआलोजी—१९६४-६५, पृष्ठ १९, अभाग्यवश अभी तक इस मूर्ति का छायाचित्र प्राप्त नहीं हुआ। अब सिन्हा साहब का विचार है कि इस फलक पर हनुमान नहीं अपितु वाराह की मूर्ति है।

[5] राष्ट्रीय संग्रहालय नम्बर ५९।१५३।१४२ डा० वी० एन० शर्मा की कृपा से।

के काल तक बनते रहे। ऐसा अनुमान है कि आदिवाराह का मंदिर सिंह विष्णु के राज्यकाल की कीर्ति है। ये वैष्णव थे[1] प्रस्तुत मूर्ति इन्हीं के समय अथवा महेन्द्र वर्मन प्रथम के समय की प्रतीत होती है। इनका काल प्रायः सातवीं शताब्दी होना चाहिये क्योंकि सिंह विष्णु का काल प्रायः ५७५ से ६०० ई० रखा जाता है तथा महेन्द्र वर्मन का ६०० से ६३० ई०।[2]

इस मूर्ति में हनुमान के दक्षिण कर में एक गदा के स्थान पर एक नाल सहित कमल की कली है। बांयां हाथ ऊपर थप्पड़ मारने की मुद्रा में उठा हुआ है। दाहिना पैर आगे बढ़ा हुआ है और बांयां पीछे है। यहां ये दौड़े हुये जाते दिखाये गये हैं। इनकी पूंछ पीछे की ओर से होती हुई मस्तक के ऊपर दिखाई गयी है। इनके लम्बे कान कन्धों पर लटक रहे हैं ऐसे लम्बे कान महाबलीपुरम की ओर मूर्तियों में भी दिखाई देते हैं जैसे महिषमन्डप के विष्णु अनन्त शयन की मूर्ति के नीचे अंकित उपासक की मूर्ति में हैं।[3] इनका मुंह बाहर निकला हुआ है तथा मस्तक के पीछे जटा का जूड़ा दिखाया गया है। गले में इनके ग्रैवेयक तथा लम्बा हार, बाहु पर केयूर हैं। पैर में नूपुर भी दिखाई देते हैं। ऊपर का उत्तरीय गोल लपेटा हुआ कन्धों से होता हुआ पैरों तक आया है। अधोवस्त्र नीवीबन्ध से बंधा है। इनकी दृष्टि सामने की ओर है तथा क्रूर दिखाई देती है जैसे किसी को मारने को उद्यत हों। यों कमल लिये हुये हनुमान की मूर्ति दक्षिण में बहुत मिलती है परन्तु इस प्रकार का विग्रह नहीं के बराबर है। (फलक ११)

दक्षिण भारत के केरल प्रदेश के कोचीन से प्राप्त एक हनुमान की मूर्ति दिल्ली के संग्रहालय में है।[4] यह मूर्ति प्रायः ११ वीं शताब्दी की होनी चाहिए। इस मूर्ति में हनुमान का दाहिना कर उठाये हुए थप्पड़ मारने की मुद्रा में है तथा बांयां कर जांघ पर दिखाया गया है। दांयें कर में नाल सहित कमल की कली है। पूंछ बांई ओर से निकल कर मस्तक के ऊपर तक गयी है। यहां इन्हें बांयां पैर आगे बढ़ाये हुए जाते दिखाया गया है दाहिना पैर पीछे है। मस्तक पर इनके एक टोपी की भांति का मुकुट है। कानों में गोल कुण्डल हैं, गले में

---

१. बलराम श्रीवास्तव—इक्षिण भारत का इतिहास—चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६८, पृष्ठ ६९।

२. वही—पृष्ठ ७०।

३. जिम्मर—इण्डियन इन्डोनेशियन आर्ट—प्लेट २८६-२८७।

४. श्री बी० एन० शर्मा की कृपा से प्राप्त। मूर्ति का प्राप्त स्थान ठीक ज्ञात नहीं है।

हार है तथा बाहुओं के मूल पर से होता हुआ एक और अलंकृत हार है। हाथों में वलय तथा पैरों में कड़े हैं कटि पर एक अलंकृत कमरवन्द है जिसका आगे का छोर दोनों पैरों के वीच में लटक रहा है। अधो वस्त्र के स्थान पर जांघिया दिखाई देती है। मुख सामने की ओर है तथा दृष्टि अधोमुखी है। इस मूर्ति का कटि भाग बहुत पतला वनाया गया है। कमल की कली की नाल लम्बी है और तीन स्थानों से टेढ़ी है, पूंछ जांघिया में से छेद कर के निकाली गई है मूर्ति यों बड़ी शक्तिशाली है (फलक २३)।

जावा के परमवनम चण्डी लोरो जोंगरांग में राम कथा अंकित मिलती है। यहां के फलक ईसा की ९वीं शताब्दी के माने जाते हैं। इसमें एक स्थान पर सुग्रीव के राजगद्दी का दृश्य उत्कीर्ण है। यहां हनुमान सुग्रीव के मुख्य मंत्री के रूप में दिखाए गए हैं। इसमें ग्रीवा के ऊपर का भाग इनका कपि का है और शरीर मनुष्य का। ये पल्थी मारे हुए धोती पहिने वैठे हैं। इनकी पूंछ पीछें की ओर है दोनों हाथों को एक दूसरे से वांधे हुए कुछ आगे की ओर झुके हुए हैं जैसे सुग्रीव को कुछ सलाह दे रहे हों। सुग्रीव के पीछे उनकी स्त्री तारा बैठी है।[1] (फलक १२) जावा की राम कथा में हनुमान को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। जावा के परमवनम के शिव मंदिर के फलकों में एक फलक पर राम लक्ष्मण से सुग्रीव की मित्रता का दृश्य अंकित है इसमें राम लक्ष्मण के दाहिने ओर सुग्रीव छत्र लगाए खड़े हैं वांई ओर हनुमान मनुष्यों की भांति पलथी मारे वैठे हैं। पहिले फलक की भांति यहां भी इनका मुख व शरीर वानर का है इसके विपरीत सुग्रीव का मनुष्यों की भांति का अंकित किया गया है। हनुमान की पूंछ पीछे से आकर पैर के नीचे से निकल कर आयी है। दोनों हाथ वांधे हुए ये कुछ आगे झुके हुए परामर्श-सा कर रहे हैं।[2] राम के वगल का पेड़ ऋष्यमूक पर्वत का स्मरण दिला रहा है (फलक १३)।

यहीं के एक दूसरे फलक पर अशोक वन में वैठी सीता अंकित है इनके पीछे त्रिजटा नामक राक्षसी है[3] जिसे जावा की कथा में बड़ा महत्व दिया गया है सीता के समक्ष उनके दक्षिण की ओर हनुमान पलथी मार कर वैठे हैं। सीता के पीछे पाषाण खण्ड तथा वृक्ष अशोक वन का स्मरण दिला रहे हैं। हनुमान के पीछे भी एक पेड़ अंकित है तथा उसके नीचे कुछ फल रखे हैं। हनुमान का वांया हाथ यहां उनके वक्षस्थल पर है और दक्षिण हाथ से वे सीता को कुछ वता रहे हैं जो सूचि मुद्रा में है

---

१. जिम्मर—दी आर्ट आफ इण्डियन एशिया—प्लेट नं० ४९६-४९७ डी।

२. वूथ लिंगम्—दी स्टोरी आफ राम प्लेट २४।

३. वाल्मीकि रामायण—सुन्दर काण्ड—३०-१।

इनका मुंह खुला हुआ है कदाचित् यहां ये राम का संदेश देने के पश्चात् सीता से अशोक वन के फल खाने की आज्ञा मांग रहे हैं। यहां भी इनका शरीर मस्तक और मुख तो वन्दर का दिखाई देता है परन्तु हाथ और पैर मनुष्यों के सदृश है। शरीर पर लंगूर की भांति के रोये भी दिखाई दे रहे हैं।[1] पूंछ इनकी पहिले फलक की भांति पीछे से होती हुई पैर के नीचे से आगे तक फैली हुई है (फलक १४)।

प्राय: नवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की एक कांसे की हनुमान की मूर्ति मद्रास के राजकीय संग्रहालय में है यह मूर्ति मद्रास के टेन्नेवेली के शरभादेवी के मंदिर की है यहीं से राम सीता और लक्ष्मण की कांसे की मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं इन्हें चोलकाल का कहा जाता है। इसमें हनुमान का दाहिने कर की उंगलियों के अग्रभाग मुख पर तथा बांयां हाथ पेड़ू पर है इसकी इस मुद्रा को बानर्जी ने तक्षशिला के होपोक्रेटिस देवता की मुद्रा तथा मथुरा के ऋषिश्रृंग की मुद्रा के समान बताया है।[2] इसी सन्दर्भ में उन्होंने वासुदेव शरण अग्रवाल के जनरल आफ ओरियण्टल सोसाइटी के एक लेख का भी संकेत किया है। जिसमें उन्होंने कुमार सम्भव के अधोलिखित पंक्तियों का उद्धरण दिया है—"लतागृह द्वार गतोथ नन्दी वामे प्रकोष्ठार्पितहेमवेतर:। मुखार्पितेकांगुलि संज्ञयैव म। चापलायेति गणान् व्यनैषीत्।"[3] परन्तु यहां की इस मूर्ति की मुद्रा में तथा तक्षशिला की होपोक्रेटिस की मूर्ति में या मथुरा के ऋषिश्रृंग की मूर्ति में या खजुराहो के विष्णु की मूर्ति में अन्तर है। वहाँ तर्जनी अंगुली मुख के सामने है और यहां दक्षिण कर की चारों अंगुलियों के अग्रभाग मुख पर हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये मुख पर रखे हुए हाथ से विस्मय व्यक्त कर रहे हैं।[4] यह विस्मय हस्तमुद्रा है। कदाचित् यहां राम को रावण की मृत्यु के पश्चात् सीता पर दोषारोपण करते सुन कर हनुमान आश्चर्य चकित हो रहे हैं।[5] इस मूर्ति में हनुमान का मस्तक आगे की ओर झुका हुआ है यों यह मूर्ति समपाद मुद्रा में खड़ी है, शरीर मनुष्य का है तथा मुख वन्दर का। इस मूर्ति में इनके सिर पर एक चिपटी टोपी के सदृश्य मुकुट है जिसके किनारे पर पत्तियों के आकार की वेल लगी है, वुद्ध के समान लटके कानों में घट के आकार

---

[1] वूथ लिंगम्—उपरोक्त—प्लेट २८।

[2] जे० एन० बनर्जी—डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ० २६१।

[3] कालिदास—कुमार सम्भव—३-४१।

[4] जे० एन० बनर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ २६० यह प्लेट फिगर ४ का दूसरा रूप है।

[5] वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड—सर्ग ११५-११६।

के कुण्डल हैं ग्रीवा पर इनके ग्रैवेयक तथा हार है वक्षस्थल की नीचे कायबन्ध है बाहू पर कड़े के समान के अंगद हैं तथा मणिबन्ध पर तीन-तीन वलय हैं। हाथ की अंगुलियों में तथा अंगूठों में अंगूठियां हैं पैरों में झालर है ये नीचे के अंग में जांघों तक का एक अधोवस्त्र पहिने हुए हैं।[1] यह चिदाम्बरम की शिव ताण्डव की मूर्ति की भांति तंजोर में ढली हुई बताई जाती है (फलक १५)। इस मूर्ति की ऊंचाई ६० सेण्टीमीटर हैं।

इसी प्रकार की एक और मूर्ति रामेश्वरम् से प्राप्त हुई थी वह भी इसी मुद्रा में है। हो सकता है कि वह इस मूर्ति की प्रतिकृति हो।[2]

चालुक्य भीम प्रथम के बनवाये हुए भीमेश्वर के मंदिर के पास जो आन्ध्र प्रदेश के पूर्वी गोदावरी जिले में द्राक्षाराम में स्थित है भीमवरम नामक स्थान के पास एक विष्णु मंदिर में जो माण्डव्य नारायण के नाम से विख्यात है कई फलक ऐसे हैं जिन पर राम तथा कृष्ण की कथायें अंकित हैं। शिवराम मूर्ति का अनुमान है कि इसी प्रकार के और बहुत से फलक थे जो अब नष्ट हो चुके हैं। जो बच रहे हैं उनमें एक पर नारायण की मूर्ति उत्कीर्ण है और दूसरे पर राम लक्ष्मण तथा हनुमान हैं। हनुमान यहां एक वृक्ष पर आसीन हैं।[3] यह दृश्य कदाचित् किसी लोक कथा पर आधारित है। सेरी राम नामक जावा की रामायण में वर्णित कथा के आधार पर अंजना के पितामह ने हनुमान को बाली के दरबार में भेजा। जब वे वहां जा रहे थे तो मार्ग में इनको भूख लगी और वे एक पेड़ पर चढ़ कर फल खाने लगे। पेड़ के नीचे लक्ष्मण की गोद में राम को सिर रख कर सोते देखा। लक्ष्मण का ध्यान आकर्षित करने को उन पर उन्होंने पत्ते और फल फेंकना प्रारम्भ किया फिर उनको हरा कर पेड़ पर चढ़ गए और पत्तों में छिप गए। इस पर लक्ष्मण ने राम को जगाया तथा प्रार्थना कर के पेड़ को छोटा कर दिया तब हनमान दिखाई पड़ने लगे।[4] परन्तु इस फलक में राम और लक्ष्मण बैठे दिखाए गए हैं, सेरी कथा के अनुसार राम लक्ष्मण की गोद में सो नहीं रहे हैं। इसमें भी हनुमान बाहू पर अंगद पहिने हुए दिखाए गए हैं इनकी मूर्ति का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया है। इस कारण यह कहना कठिन है कि इनके और अंगों में कौन-कौन से आभूषण थे।

---

[1] चिन्तामणिकार—ब्रांज स्कल्पचर्स—प्लेट २९।

[2] टी० ए० जी० राव—हिन्दू आइकोनोग्राफी—खं० १, प्लेट ५४।

[3] शिवराम मूर्ति—अर्ली ईस्टर्न चालुक्यन स्कल्पचर्स—बुलटिन मद्रास गवर्नमेंट म्यूजियम—प्लेट ९।

[4] बुल्के—राम कथा—पृष्ठ ४६६-४६७।

मथुरा से प्राप्त हनुमान की एक मूर्ति जिसका संकेत कुमार स्वामी ने किया है अति भंग मुद्रा में है। यह खण्डित है इसका मस्तक नहीं है परन्तु बड़ी शक्तिशाली है तथा उदयगिरि की वाराह मूर्ति से किसी भांति भी कम प्रभावशाली नहीं दिखाई देती।[2] इसमें हनुमान का बांया हाथ वक्षस्थल पर है दूसरा हाथ ऊपर उठा हुआ था जो टूट गया है। हो सकता है कि यह मस्तक के पास रहा हो। बांयां पैर एक स्त्री के पीठ पर है जो कदाचित् राक्षसी रूपिणी लंका है इसके बाल खुले हुए हैं। वाल्मीकि रामायण में लंका कहती है[3]—

अहं हि नगरी लंका स्वमेव प्लवंगम।. . . . .॥३०॥
सा तां स्त्रीरूपविकृतां दृष्ट्वा वानर पुंगवः॥३१॥
ततः कृत्वा महानादं सा वै लंका भयावहम्।
तलेन वानरश्रेष्ठं ताडयामास वेगिता॥३८॥
. . . . .ततस्संवर्तयामास वामहस्तस्य सोऽगुंलीः।
मुष्टिनाऽभिजघानैनां हनुमान्क्रोध मूर्च्छितः॥४०॥
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलांगी निशाचरी॥४१॥
पपात सहसा भूमौ विकृतानन दर्शना॥४२॥
. . . .
अहं तु नगरी लंका स्वमेव प्लवंगम्॥४५॥
निर्जिताहं त्वया वीर विक्रमेण महाबली॥४६॥

इस राक्षसी रूपी लंका को जीत कर हनमान ने रावण की नगरी में प्रवेश किया[4]—

स विजित्य पुरीं लंकां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम्।
विक्रमेण महातेजा हनुमान कपिसतमः॥
अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे।

हनुमान के मूर्ति का मस्तक टूटा होने से यह कहना कठिन है कि इनके सिर पर मुकुट था या नहीं। यों ऊपर का अंग नग्न है परन्तु गले में ग्रैवेयक है। बांयें हाथ की भुजा पर अंगद तथा मणिबन्ध पर वलय है। कटि पर कमरबन्द है जिसमें कटार खुसी हुई है। शरीर के अधोभाग में धोती है मोतियों से गुथा हुआ यज्ञो-

---

१. कुमार स्वामी—इण्डियन एण्ड इडोनेशियन आर्ट—पृ० ८५-८६।
२. जे० एन० बनर्जी—डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी प्लेट २५।
३. वाल्मीकि रामायण—सुन्दर काण्ड—३, ३०-४६।
४. उपरोक्त—सुन्दर काण्ड ४-१।

पवीत दाहिने कन्धे से होता हुआ घुटनों के नीचे तक आया है।[1] जैसा कुछ-कुछ हम वाराह मूर्ति में देखते हैं या देवगढ़ के शेषशयन मूर्ति में देखते हैं।[2] पैरों में इनके पायजेब हैं। यह भी उसी प्रकार से है जैसे देवगढ़ से प्राप्त गज उद्धार के फलक में विष्णु के पैरों में है।[3] दाहिना पैर शरीर से तिरछा प्रत्यालीढ़ पाद में है। जैसे वेग से जाते हुए मनुष्य का होता है। यह त्रिभंग मूर्ति हनुमान की व्याख्यान मुद्रा में ज्ञात होती है।[4] इस मूर्ति का निर्माण काल प्रायः ९ वीं शती होना चाहिए। (फलक १६)

एक स्थानक मूर्ति हनुमान की मथुरा के राजकीय संग्रहालय में है इसमें हनुमान समभंग मुद्रा में खड़े हैं। यह मूर्ति प्रायः १० वीं शताब्दी के प्रारम्भ की है। इनका बांयां चरण उठा हुआ एक राक्षसी के पीठ पर है, दूसरा पैर शरीर के सीध में है। बांयां हाथ व्याख्यान मुद्रा में है तथा दाहिना टूटा हुआ है, कदाचित् यह सिर पर था जैसा हमें खजुराहो की मूर्ति में दिखाई देता है। इस मूर्ति में हनुमान के मस्तक पर मुकुट है कानों में कुण्डल, गले में चूहादन्ती तौक तथा हार बाहू पर अंगद तथा कटि में कटिबन्ध है। इस कटिबन्ध में एक छुरा खुसा हुआ है नीचे के अंग में अधोवस्त्र है ऊपर के शरीर पर एक गोल लपेटा हुआ दुपट्टा है जो दक्षिण कन्धे पर से होता हुआ घुटनों के नीचे तक आता है। अधोभाग में धोती है जो जांघों तक ही है। पूंछ अपेक्षाकृत छोटी है तथा पीछे की ओर निकली हुई है। इस मूर्ति में हनुमान की अधोदृष्टि है।[5] (फलक १७)

इसी के आसपास के काल की एक मूर्ति काशी के खजुरी मोहल्ले में है। यह मूर्ति लाल पत्थर की है इसमें भी हनुमान का दाहिना पैर सीधा है बांयां खण्डित है। यह त्रिभंग मुद्रा में है हाथ दोनों खण्डित हैं बायें पैर के नीचे की राक्षसी का शरीर कुछ साबूत है वह घुटनों के बल हनुमान की ओर मुख किये हुए पड़ी है। इसमें भी हनुमान के मस्तक पर मुकुट है कानों में कुण्डल तथा गले में ग्रैवेयक है।

---

[1] गुणभद्र—उत्तर पुराण—खण्ड २, पृष्ठ २९७-९८, २८२ "मुक्तायज्ञोपवीतकः"।

[2] जे० एन० बनर्जी—उपरोक्त—प्लेट २२-२।

[3] उपरोक्त—प्लेट २७-१।

[4] आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट—१९२३-२४ प्लेट ३५, पृष्ठ १०१।

[5] मथुरा राजकीय संग्रहालय—नं० ००डी २ एफ ४—डा० नी० पू० जोशी, संग्रहालयाध्यक्ष की कृपा से प्राप्त।

वक्षस्थल पर एक कमल का आकार दिखाई देता है जो कदाचित् पीपल के पत्तो के आकार का हार का लटकन हो या व्याख्यान मुद्रा में हाथ का अवशेष, कमर में एक मेखला है जिससे लटकती हुई तोरण की भांति की लड़ियां जंघों पर है इस मेखला में एक छुरा खुसा है। उत्तरीय घुटने के नीचे गोल माला के रूप में लटक रही है। दक्षिण हाथ कदाचित् ऊपर उठा हुआ मस्तक पर था और बायां वक्षस्थल पर। पूंछ इनकी पीछे से हो करके इनके बायीं ओर कान के सीध में थी। मुंह सामने की ओर है तथा दृष्टि अधोमुखी है। (फलक १८)

कुछ इसी से मिलती जुलती मूर्त्ति खजुराहो की है हनुमान की इस खड़ी मूर्ति की पूजा होती है तथा आज यह एक १९वीं शताब्दी के बने मंदिर में स्थापित है परन्तु मूर्ति प्राचीन है इसमें भी हनुमान का बांया पैर उठा हुआ है, इनके पैर के नीचे एक राक्षस और एक राक्षसी है। दाहिना पैर सीधा है। बांयां हाथ वक्षस्थल पर व्याख्यान मुद्रा में है। और दाहिना मस्तक पर। धड़ कुछ बांई ओर मुड़ा हुआ है परन्तु मुख सामने है। इसमें हनुमान जी के सिर पर जटा मुकुट है मस्तक के दोनों ओर लटें लटक रही हैं कानों में कुण्डल हैं बाहू पर अंगद है तथा मणिबन्धों पर दोहरे वलय हैं गले में चूहादन्ती तौक है।[१] सिन्दूर पुता होने से वक्षस्थल के आभूषण दिखाई नहीं देते कटि पर मेखला होनी चाहिये तथा उसमें दाहिनी ओर छुरा परन्तु सिन्धूर के कारण ये सब अदृश्य हो गये हैं। गोल किया हुआ उत्तरीय दक्षिण बाहू पर से होता हुआ घुटने पर आया है। नीचे के अधोवस्त्र के आगे का भाग पैरों के बीच से लटक रहा है। पूंछ इनकी शरीर के पीछे से निकल कर मस्तक के बांई ओर तक फैली हुई है। पैर की झालर भी सिधूर के कारण छिपी हुई है। इसे प्रवक्ता हनुमान की मूर्ति कह सकते हैं। पैर के नीचे की राक्षसी तो लंका होनी चाहिये।[२] तथा राक्षस अक्षयकुमार[३] इन दोनों को इन्होंने परास्त किया था जैसा पहिले लिखा जा चुका है। इनके दक्षिण बाहू के सहारे मुद्गल की भांति की गदा लटक रही है। यह मूर्ति भी प्रायः १०वीं शताब्दी की होनी चाहिये।[४] जैसा इसके लेख की लिपि से ज्ञात होता है।[५]

---

१. जे० एन० बैनर्जी—उपरोक्त—पृ० २५४, प्लेट ३ फिगर २।

२. वाल्मीकि रामायण—सुन्दरकाण्ड—३, २१-५१; ४, १।

३. उपर्युक्त—सुन्दरकाण्ड—४७, ३३।

४. जे० एन० बैनर्जी—डवलपेमण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी—पृष्ठ ४२१।

५. प्रो० के० डी० वाजपेयी, सागर विश्वविद्यालय तथा श्री आर० ए० अवस्थी की कृपा से प्राप्त चित्र।

खजुराहो के पार्श्वनाथ के मंदिर में राम सीता के साथ हनुमान की मूर्ति है। इसमें राम को चतुर्भुज दिखाया है यों मध्ययुग की मूर्तियों में राम को द्विभुज दिखाया गया है। यहां राम अपनी दो भुजाओं से एक तीर लिये हुए हैं तथा नीचे के दक्षिण कर से हनुमान के हाथ को पकड़े हुए हैं। राम की अपेक्षा हनुमान की बहुत छोटी प्रतिमा है यह प्रायः राम के घुटने तक ऊंची है। इसमें हनुमान मुकुट तथा कुण्डल धारण किए हुए हैं बांयां हाथ राम के हाथ में है और दाहिना वरद मुद्रा में है। इनकी पूंछ पीछे लटक रही है। इसी प्रकार की एक मूर्ति हनुमान की इसी मंदिर के एक फलक पर सीता के समक्ष खड़ी दिखाई देती है।

खजुराहो की इन मूर्तियों पर एक साथ विवेचन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में हनुमान को राम का पार्षद तो समझा ही जाता था परन्तु इनकी अपनी अलग से पूजा भी होने लगी थी।

बिहार के सिंहभूमि जिले के अन्तर्गत वेनी सागर से हनुमान की एक बड़ी सुन्दर मूर्ति प्रायः दसवीं शताब्दी की प्राप्त हुई है।[1] इसमें हनुमान अपना दक्षिण पैर राक्षस के सिर पर तथा बांयां पैर उसके पैर पर रखे हुए हैं। यह राक्षस दाहिनी करवट दक्षिण हाथ पर अपने मस्तक को टेके हुए लेटा है। इसके ठीक ऊपर एक देवी की बैठी हुई मूर्ति है हनुमान अपना बांयां हाथ वक्षस्थल पर रखे हुए हैं अपने हार को पकड़े हैं दाहिना हाथ कोहिनी पर से टूटा हुआ है कदाचित इस हाथ में गदा थी क्योंकि इनका यह हाथ इनके मस्तक की ओर जाता हुआ नहीं दिखाई देता। गदा का पीछे का भाग फलक पर अभी भी रह गया है। पूंछ इनके पीछे से बाईं ओर को निकल कर ऊपर जाकर चकरदार हो गयी है। मस्तक पर इनके उत्तर के मंदिरों के शिखर की भांति का मुकुट है कानों में गोल कुण्डल हैं गले में दो हार हैं बाहुओं पर अंगद तथा मणिवन्ध पर वलय है। मोतियों से गुंथा हुआ यज्ञोपवीत बायें कन्धे से होता हुआ दाहिने जांघ से दाहिने कन्धे पर गया है। कटि में चार लड़ी की मेखला है तथा पैर में झालर है। एक डोरी भी बायें कन्धे से लटक रही है। पैरों के बीच में कदाचित् लंका देवी है और पैरों के नीचे कालनेमि राक्षस है (फलक १९)।

मध्यप्रदेश के पाठन स्थान में एक विशालकाय हनुमान की भव्य मूर्ति है[2] इस मूर्ति में हनुमान का बांयां पैर उठा हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि ये कहीं जाने

---

[1] १. आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया की कृपा से प्राप्त।

[2] २. अमेरिकन अकाडमी, बनारस नं० ०३०८ श्री प्रमोदचन्द्र की कृपा से छायाचित्र प्राप्त।

की मुद्रा में हैं। इनका वानर मुख शरीर के अनुपात से बड़ा है। इनका वांयां कर व्याख्यान मुद्रा में है। दाहिना कर टूटा हुआ है परन्तु बहुत सम्भव है कि यह उठा हुआ रहा हो जैसे तमाचा हनुमान की और मूर्तियों में दिखाई देता है। इनके पैर के नीचे कदाचित एक राक्षस और एक राक्षसी थी जो अब टूट जाने के कारण अलग हो गयी है। इनकी ग्रीवा बाईं ओर को मुड़ी हुई है। दृष्टि इनकी अधोमुखी तथा मुख मुद्रा शांत है, आधे दांत दिखाई दे रहे हैं। मस्तक पर का मुकुट टूटा हुआ है गले में दो ग्रैवेयक हैं इन पर का काम घिस जाने से स्पष्ट नहीं दिखाई देता। एक मोटा जनेऊ की भांति का गोल लपेटा हुआ उत्तरीय बांये कन्धे से होता हुआ वक्षस्थल पर से नीचे आया है कमर में कमरबन्द तथा अलंकृत झालरदार मेखला है इसमें दाहिनी ओर एक छुरा खुसा हुआ है। नीचे अधोवस्त्र है चरण के जो भाग बगल में रखे हुए शिलाखण्ड पर दिखाई देते हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पैर में मोटी सांकल थी। शरीर कुछ दाहिने ओर मुड़ा हुआ है। यह मूर्ति १०वीं शताब्दी की ज्ञात होती है (फलक २०)।

मध्यप्रदेश के गुना जिले के इन्दौर स्थान में इसी से मिलती जुलती एक और मूर्ति हनुमान की है इसमें ये एक राक्षस और राक्षसी को पद्दलित करते हुए दिखाये गये हैं ये दोनों राक्षस और राक्षसी एक पंक्ति में इनके बायें पैर के नीचे हैं। इनके मस्तक पर मुकुट के स्थान पर अलंकृत केश हैं पीठ तथा कन्धों तक लटकती हुई लटें हैं तथा मस्तक बांयी ओर मुड़ा है इनकी दृष्टि सामने की ओर क्रोधपूर्ण है मुख खुला हुआ है। बांयां कर व्याख्यान मुद्रा में है तथा दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ है परन्तु टूट जाने के कारण यह कहना कठिन है कि इस हाथ में क्या था। दाहिना पैर सीधा है और बांयां पैर उठा हुआ राक्षस के मस्तक पर है। कानों के कुण्डल ग्रैवेयक पर लटक रहे हैं। गले में ग्रैवेयक और हार है। जनेऊ की भांति का गोल लपेटा हुआ उत्तरीय बायें कन्धे से लटकता दाहिनी जांघ तक फैला हुआ है। बाहुओं में अंगद थे दक्षिण बाहू का अंगद तो अभी है। कटि में कमरबन्द तथा झालरदार मेखला है और दाहिनी ओर छुरा खुसा हुआ है घुटनों तक लटकता हुआ अधोवस्त्र है जिसका एक भाग दक्षिण पैर के पास लटक रहा है। पैर में सांकल तथा कड़े हैं पैर के नीचे की राक्षसी का दाहिना पैर घुटने पर मुड़ा हुआ है बांयां पीछे की ओर है बांयां हाथ उठा हुआ है जैसे किसी आक्रमण का प्रतिकार कर रही हो। बायें हाथ में मुद्गल के समान अस्त्र है इसका केश-विन्यास बड़ा सुन्दर है घुंघराले बालों का जुड़ा एक पट्टे से बंधा हुआ है कानों में कुण्डल तथा ग्रीवा में ग्रैवेयक है इसकी मुखाकृति सुन्दर है परन्तु पसलियों की हड्डियां अलग-अलग दिखाई दे रही हैं।

राक्षस का बांयां पैर सामने की ओर और दाहिना पैर पीछे की ओर फैला हुआ है शरीर बांयें ओर है और ग्रीवा से मस्तक दाहिनी ओर मुड़ा हुआ है तथा कन्धे पर झुका है इसकी दृष्टि नीचे की ओर है इसके दाहिने हाथ में छोटी सी तलवार है और बांयें हाथ में ढाल है जिस पर चन्द्रमा तथा एक फूल की आकृति दिखाई देती है। राक्षस का शरीर घिस गया है इस कारण अलंकार स्पष्ट नहीं दिखाई देते परन्तु इसके मस्तक के घुंघराले वाल दोनों ओर फैले हुए हैं गले में ग्रैवेयक का आभास प्राप्त होता है दक्षिण बाहू का अंगद तथा मणिबन्ध का वलय अभी सुरक्षित हैं। कटि में कमरबन्द तथा मेखला दिखाई दे रही है। राक्षस के मुख पर की मूंछों के आभास भी मिलते हैं (फलक २१)।[1]

प्रायः ११ वीं शताब्दी की एक मूर्ति मध्य भारत के जिला जबलपुर के कूदन गांव में है।[2] इसमें भी हनुमान आभंग मुद्रा में खड़े हैं उनका बांयां हाथ व्याख्यान मुद्रा में है तथा दांयां हाथ मस्तक पर उलटा है। मस्तक पर मुकुट है कानों में कन्धों तक लटकते हुए कुण्डल, बाहू पर केयूर और हाथ में वलय है। गले में कंठे के अतिरिक्त दो हार हैं तथा कटि में झालरदार करधनी है। नीचे के भाग में अधोवस्त्र हैं जो घुटनों तक लटक रहा है बांयां पैर सीधा आगे की ओर बढ़ा हुआ है बांयें जंघे पर कमर से छूरा लटक रहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि यहां कोई मंदिर था जो टूट गया क्योंकि इसी मूर्ति के साथ गणेश, विष्णु तथा यक्ष की मूर्तियां मिली हैं। हनुमान की इस मूर्ति में दृष्टि अधोमुखी है तथा मुख मुद्रा प्रसन्न दिखाई देती है नीचे का अंग खंडित है (फलक २२)।

प्रायः ११ वीं शताब्दी की एक मूर्ति काशी के पंचक्रोशी सड़क पर खण्डवा में कर्दमेश्वर महादेव के मंदिर के पास है यह मूर्ति स्थानक हनुमान की आभंग पाद में बांयी ओर झुकी हुई है। बांयां पैर राक्षसी के पीठ पर रखते हुए ये प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़े हैं। बांयें हाथ में डण्डे के समान कोई अस्त्र है तथा दाहिना हाथ कनपटी पर है। सिर पर जटा है। पूंछ इनकी दाहिनी ओर से निकल कर मस्तक के पीछे से होती हुई बांई ओर चक्राकार हो गयी है दाहिनी ओर कमर से गदा लटक रही। कानों में इनके कुण्डल तथा गले में ग्रैवेयक हैं जिससे एक पत्ते के ऐसा लटकन लटक रहा है इसके नीचे एक हार है बाहू पर अंगद तथा मणिबन्धों पर वलय है। कमर में एक झालरदार कमरबन्द है जिससे एक कटार खुसी हुई

---

[1] अमेरिकन अकाडमी—नं० ८२८७ श्री प्रमोदचन्द्र की कृपा से प्राप्त।

[2] के० डी० बाजपेयी की कृपा से प्राप्त चित्र।

है। गोल किया हुआ उत्तरीय दक्षिण बाहू पर से होता हुआ घुटने के
वांयें कन्धे पर गया है। शरीर के अधोभाग में धोती है। वांयें पैर के
की राक्षसी घुटनों के बल औंधी पड़ी है। हनुमान कीदृष्टि अधोमुखी है,
मुख प्रसन्न है। इनके पादपीठ पर कुछ आकृतियां बनी हैं। (फलक
राक्षसी प्रायः नग्न है गले में माला है घुटने के बल मस्तक नीचे किये हुए

प्रायः इसी युग की एक मूर्ति हनुमान की मध्यप्रदेश के नौगांव जिले के
के राजकीय संग्रहालय में हैं[1] यह अतिभंग पाद में है। इनका वांयां हाथ
मुद्रा में है और दाहिना हाथ खुला हुआ मस्तक के ऊपर है जैसे किसी को
मारने को उद्यत हों पूंछ इनकी भी खण्डवा के हनुमान की पूंछ की भांति
ओर से मस्तक के पीछे होते हुए वांयी ओर चक्राकार हो गयी है। ऊपर
उत्तरीय दक्षिण बाहू पर से होता हुआ दक्षिण जानु के ऊपर से वांयें कन्धे
है। मस्तक के ऊपर, बालों के जूड़े के अतिरिक्त और कुछ नहीं है कानों में
गले में ग्रैवेयक और हार, बाहू पर गोल कड़े की भांति का अंगद तथा
पर कड़े हैं कमर में कमरबन्द है जिसमें एक चौड़ी कटार खुसी हुई है।
अंग में धोती है (फलक २५)।

कम्बोडिया के बाण्टे श्री के मंदिर के कई फलकों पर राम कथा
एक फलक पर वाली और सुग्रीव का युद्ध उत्कीर्ण है। इसमें वाली और
मल्लयुद्ध कर रहे हैं राम वाली पर बाण चला रहे हैं। लक्ष्मण इनके
हैं। हनुमान सुग्रीव के पीछे एक पेड़ लेकर खड़े हैं। इस मूर्ति में इनके
एक शमला के भांति का चिपटा मुकुट है। कानों में कुण्डल और गले में
है। अधोभाग में ये धोती पहिने दिखाये गये हैं। ये यहां अपने पीछे के
को इस युद्ध में भाग लेने से निषेध कर रहे हैं। (फलक २६)।

कम्बोडिया के बाण्टेश्री के बौद्ध मंदिर के बाहर हनुमान की एक मूर्ति
यहां इनको द्वारपाल के रूप में प्रदर्शित किया गया है जैसे जैन मंदिरों में
को अंकित किया जाता है। यहां ये वीरासन में बैठे हैं इनका वांयां हाथ
पर है तथा दाहिना दाहिने घुटने पर। इनके सिर पर शमला की भांति
है कानों में कुण्डल तथा नीचे के अंग में अधोवस्त्र है। दृष्टि अधोमुखी है।

---

१. डाइरेक्टर, स्टेट म्युजियम धुबेला की कृपा से प्राप्त, म्युजियम
९०६५।

२. जिम्मर—दी आर्ट आफ इण्डियन एशिया—प्लेट ५३०।

३. जिम्मर—उपरोक्त—प्लेट ५२६-५२७

विग्रह कम्बोडिया की तद्विषयक धारणाओं से सम्बन्धित है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। (फलक २७)।

विहार प्रदेश के भागलपुर जिले के मंदार पहाड़ी से एक मूर्ति हनुमान की प्राप्त हुई है।[1] यह मूर्ति इतनी घिस गयी है इसका छायाचित्र लेना असम्भव हो गया। इसमें हनुमान समभंग में आलीढ़ मुद्रा में दिखाये गये हैं इनके दाहिने हाथ में गदा है और वांयें में पर्वत है। इनका दक्षिण पैर एक पहाड़ी पर है और वांया पीछे मुड़ा हुआ है इसके नीचे भी एक पाषाण खण्ड है ये दौड़े हुए जाते दिखाये गये हैं। इनके मस्तक पर जटा मुकुट का, कानों में कुण्डलों का तया मणिवन्ध पर वलय का आभास होता है। इनका उत्तरीय वांयी ओर पीछे उड़ता हुआ दिखाई देता है। नीचे के अधोवस्त्र का अगला भाग भी वांयें पैर की ओर जा रहा है। गोल माला वांयें कन्धे पर से होती हुई वांयें जांघ पर आयी है।

एक हनुमान की मूर्ति उज्जैन के राजकीय संग्रहालय में है। इसका ऊपर का भाग नहीं है केवल हनुमान के दो पैर दृष्टिगोचर होते हैं। इनका वांया पैर एक स्त्री के मस्तक पर है और दूसरा पैर सीधा है। इनकी धोती के आगे का भाग नीचे पैर तक लटक रहा है यहां धोती पैर के कड़े के ऊपर तक आयी है। पैरों में कड़े हैं। लंका वाँयाँ पैर उठाये हुए और दाहिना मोड़े हुए है। यह एक हाथ पृथ्वी पर टेके हुए सुखासन में वैठी है। यह अपना मस्तक वक्षस्थल के सहारे घुटने पर टिकाये हुए हैं[2]। लंका यहां हनुमान द्वारा विजित प्रदर्शित की गयी है। (फलक २८)।

प्रायः १२वीं शताब्दी की एक हनुमान की मूर्ति प्राचीन गोआ के पुरातत्व संग्रहालय में है। इस मूर्ति का अधोभाग टूटा हुआ है परन्तु वांयें पैर के भंग से ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़े हैं। इनका वांयां हाथ कटि पर है और दाहिना तमाचा मारने की मुद्रा में उठा हुआ है। इनकी पूंछ दाहिने हाथ के वगल से होती हुई मस्तक के ऊपर से वांई ओर गयी है जो अन्त में पहुंच कर गोलाकार हो जाती है। इनके मस्तक पर दक्षिण के मंदिरों के शिखर के आकार का मुकुट है जो सीढ़ीनुमा वना है। कान इनके अनुपात में वहुत वड़े दिखाई देते हैं जिससे ऐसा अनुमान होता है कि ये 'कान' नाम का आभूषण धारण किये हुए हैं जो पूरे कान को ढके रहता है गले पर एक कण्ठा और उसके नीचे ये हार पहिने

---

१. आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया की कृपा से प्राप्त।

२. अन्नुअल आडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ दी आर्केआलाजिकल डिपार्टमेण्ट ग्वालियर स्टेट १९३४-३५ (१९३८) प्लेट ७ सी।

हुए है मणिबन्धों पर वलय तथा भुजाओं पर अंगद हैं। कटि में कमरवन्द तथा मेखला है, मेखला की दो झालरें दोनों जंघों पर लटक रही हैं ये धोती पहिने हुए हैं।[1] (फलक २९)। गोआ कदम्ब राजाओं के आधीन था और इस शैली का पूर्ण उत्कर्ष देगम्वे के श्री कमला नारायण के मंदिर में दिखाई देता है। यह मंदिर कदम्ब कुल के राजा शिवच्छित की रानी कमला देवी की आज्ञा से बना था जैसा यहां के एक लेख से पता लगता है सम्भवतः यह मूर्ति उसी मंदिर की है। इसी शैली की एक और मूर्ति हनुमान की लक्ष्मीनारायण के मूर्ति के सामने गरुड़ के साथ खड़ी है। यह मंदिर के दूसरे भाग में है।[2]

मध्यप्रदेश के नवगांव के घुवेला राजकीय संग्रहालय में एक और मूर्ति हनुमान की है जिसका नीचे का भाग टूटा हुआ है। इसमें ये वाम पैर उठाये हुए तथा दाहिना पीछे किये हुए समभंग में प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़े हैं, इनका बांयां हाथ व्याख्यान मुद्रा में है तथा दाहिना मस्तक पर है पूंछ इनकी दाहिनी ओर से होती हुई मस्तक के पीछे से कान के बांयें ओर तक फैली है। इसके अंत का भाग वृषभ की पूंछ की भांति का है। इनके मस्तक पर मुकुट, कानों में कुण्डल, हाथों में कड़े तथा वाहुओं पर अनन्त हैं। नीचे के अंक में कमरवन्द है जिसमें कदाचित कटार खुसी हुई थी जो अव प्रायः अदृश्य हो गयी है। अधोवस्त्र के आगे का पल्ला सामने की ओर गोल किया हुआ लटक रहा है। इनके दक्षिण बाहू के नीचे एक योनी के आकार का मोखा बना हुआ है कदाचित् यह भोग के लड्डू रखने को बनाया गया होगा। इसी मार्ग से लड्डू डाल दिया जाता रहा होगा जो पीछे रखे हुए पात्र में पहुंच जाता रहा होगा।[3] (फलक ३८) यह मूर्ति १३वीं शताब्दी की ज्ञात होती है। एक और मूर्ति इसी संग्रहालय में है जिसमें हनुमान के एक हाथ में पहाड़ तथा दूसरे में कमल के सदृश्य की गदा लिये हुए हैं। (फलक ३१)

मध्यप्रदेश के मण्डसौर जिले के मानपुर में स्थित क्षत्री संग्रहालय में दो मूर्तियां हनुमान की हैं[4] ये प्रायः १५वीं शताब्दी की हैं तथा रामपुरा तथा सुजानपुरा से प्राप्त हुई थीं। इसमें एक मूर्ति में (फलक ३२) इनकी पूंछ बांयीं ओर से बांयें कन्धे के ऊपर तक सर्पाकार फैली हुई है। ये गुजराती पगड़ी की भांति का मुकुट है

---

[1] आर्केआलाजिकल म्युजियम—ओल्ड गोआ—नं० १५।

[2] ज्वार्ज, एम० मोरास—दी कदम्ब कुल (१९३१), पृष्ठ ३१२-३१३।

[3] घुबेला राजकीय संग्रहालय—नं० ९०५९।

[4] संग्रहाध्यक्ष क्षेत्रीय म्युजियम मानपुर, जिला मन्दसौर, मध्यप्रदेश की कृपा से प्राप्त।

मस्तक के ऊपर सिंह का मुख है वांईं ओर सिर पर घोड़े का और बगल में वृषभ के सदृश्य वाराह मुख है। इनके दाहिने हाथ में गदा है जिसके ऊपर का भाग मनुष्य की खोपड़ी के सदृश्य है तथा बाँयें में धनुष के समान का कोई अस्त्र है। मस्तक के ऊपर मुकुट नहीं है, कानों के कुण्डल ग्रीवा तक लटके दिखाई देते हैं। हाथ में वलय है तथा कटि में धोती के ऊपर कमरबन्द है उसमें कटार खुसी होने का आभास प्राप्त होता है। पैरों में झालर भी है। अधोभाग में धोती है जिसके आगे का पल्ला सामने लटक रहा है। बांयें पैर के नीचे लंका राक्षसी दाहिने करवट पड़ी है। दाहिना पैर कुछ उठा हुआ है जैसे कहीं जाते हुए मनुष्य का होता है। यह मूर्ति समभंग में प्रत्यालीढ़ पाद में है। दृष्टि सन्मुख है। यह योद्धा हनुमान का विग्रह दिखाई देता है।

उपरोक्त मूर्ति के बाद के काल की एक पंचमुखी हनुमान की मूर्ति गर्दे जी को भावनगर राज्य से १९३४ ई० में प्राप्त हुई थी। यह मूर्ति तलाजा के स्मशान पर थी।[1] इस मूर्ति के चार मुख दिखाई देते हैं पीछे का पांचवां मुख नहीं स्पष्ट है। इनके दाहिने ओर गरुड़ का मुख है तथा बांई ओर सिंह का। बीच में कपि मुख है और लम्बी टोपी के ऊपर घोड़े का मुख है। वाराह मुख स्पष्ट नहीं है। इस मूर्ति में इनके चार हाथ हैं। ऊपर के दक्षिण कर में जो पृथ्वी पर टूटा पड़ा है पर्वत है। नीचे के दक्षिण कर में धनुष है बांयें ऊपर के हाथ में गदा है जिसका ऊपर का भाग टूटा हुआ है तथा नीचे का हाथ जंघे पर है। दाहिने पैर के नीचे राक्षसी है हाथ जोड़े दाहिने करवट पड़ी है। यह लहंगा पहिने हुए है। हनुमान का बांया कर पृथ्वी पर टूटा पड़ा है। इनकी पूंछ पीछे की ओर से घूमती हुई मस्तक को छूती हुई इनके पाषाण पीठ पर अंकित है। पूंछ के अन्त के भाग में जो बाल दिखाये गये हैं वे वृषभ की पूंछ के समान हैं। मस्तक पर कोण के आकार का मुकुट है, कानों में कुण्डल हैं जो ग्रीवा पर लटकते दिखाई देते हैं। ग्रीवा पर तौक और वक्षस्थल पर हार है। वक्षस्थल के नीचे एक कायबन्ध है बांयें कन्धे पर से होता हुआ यज्ञोपवीत वक्षस्थल पर अंकित है। हाथों में वलय तथा पैरों में कड़े हैं नीचे के अंग में धोती है (फलक २४) यह ध्यान तत्व निधि के वर्णन से कुछ मिलता जुलता हुआ है। इस वर्णन के अनुसार पंचमुखी १५ नेत्रोंवाले हनुमान करोड़ों सूर्य की भांति चमकते हुए भयंकर दिखाई देते हैं। इनका कपि मुख चमकता हुआ दिखाई

---

[1] ए० एस० गर्दे—ए रेअर इमेज आफ हनुमान, इज इट पंचमुख आंजनेय—न्यू इण्डियन आण्टिक्वेरी सं० २, १९३९-४०, पृष्ठ ११३-११४, चित्र वाटसन म्यूजियम, राजकोट के सक्रेटरी की कृपा से प्राप्त।

देता है इनका दक्षिण मुख नरसिंह के मुख की भांति अद्भुत है। इनके शरीर का तेज असहनीय है यह भय को दूर करता है। इनका वाम मुख गरुड़ की भांति चमक रहा है। इनमें पाताल में भी प्रवेश करने की शक्ति है, ये जहर और भूतों को नाश करने में समर्थ हैं इनका पीछे का मुख शूकर का है जो काला है और जल रहा है। इसमें से अग्नि निकल रही है ये सर्व विजेता हैं तथा सब ज्वरों को नाश करने में समर्थ हैं। मस्तक पर इनके अश्वमुख हैं जो बड़ा भयानक है तथा राक्षसों को नाश करनेवाला है। ये अपने हाथों में तलवार, त्रिशूल, खट्वांग, पाश, अंकुश, गदा, पर्वत, वृक्ष तथा खोपड़ी लिये हुए हैं। इन्हें सब देवता प्रणाम करते हैं। इनके शरीर की आभा स्वर्ण के सदृश्य है।"[१] इस वर्णन से उपरोक्त मूर्ति में कुछ अन्तर है जैसे यहां चार ही हाथ हैं और आयुधों में भी अन्तर है। एक और चित्र पंचमुखी हनुमान का डा० एच० डब्लू० ब्रामजिलियम ने अपनी पुस्तक में दिया है (फलक ४४) इसमें इनके पांचों मुख एक साथ दिखाये गये हैं शूकर तथा सिंह मुख इनके दक्षिण की ओर हैं तथा गरुड़ और अश्वमुख बांई ओर है। इनके दस हाथ दिखाये गये हैं जिनमें दक्षिण के पांच हाथों में क्रम से तलवार, कमल, पाश, घंटा तथा मुद्गल है बांयें पांच हाथों में गदा, ढाल, बघनखा, सर्प, कटार इत्यादि हैं। पूंछ से पर्वत बंधा हुआ है जो दक्षिण ओर है। इनके पांचों सिरों पर पांच मुकुट हैं मस्तकों पर रामानुजी टीका है इस मूर्ति के बीच के कपि मुख के दक्षिण कान में कुण्डल हैं। गले में इनके टीक और तीन हार हैं तथा पैरों में कड़े भी हैं। कन्धों से लटकता हुआ उत्तरीय सांप की केंचुली के समान है कमर में कमरवन्द है जिसका एक पल्ला आगे की ओर पैरों के बीच में लटक रहा है। इसी में एक छूरा खुसा हुआ है। ये यहां पहाड़ों पर जाते हुए दिखाये गये हैं। यहां ये अतिभंग प्रत्यालीढ़ मुद्रा में हैं। दक्षिण पैर पीछे और बांया आगे है। इनके पंचमुखों में शूकर, नरसिंह के तो विष्णु ने अवतार लिये ही थे, हय का कलंकी अवतार अभी होने वाला है। गरुड़ को भी पुराणों में विष्णु का ही अवतार माना है।

मद्रास के उत्तरी आरकाट के अनन्ताल गांव में एक दुर्ग था उसके अवशेप के पास दो मंदिर हैं उनमें से एक मंदिर हनुमान का है इसका नाम यहां आंजनेय स्वामी

---

१. तत्वनिधि का उद्धरण दिया जा चुका है।

२. डा० ए० ब० डब्लू० ब्रामजिलियस—डाइ हिन्दूस पान्थिओं गाल गालरी—ई० जे० ब्रिल , लाइडेन १९३७ टाफेल (प्लेट) १३ हनुमान।

हैं इन्हीं के नाम से यह मंदिर विख्यात है प्राय: १५५० ई० का बना हुआ है मंदिर के चारों ओर ईंट की दीवाल है। यह मूर्ति सम्पूर्ण है तथा समभंग में प्रत्यालीढ़ पाद में स्थित है। यह प्राय: ८ फीट ऊँची तथा अढ़ाई फुट चौड़ी है। इसमें हनुमान का दाहिना हाथ उठा हुआ है जैसे किसी को तमाचा मारने को उद्योत हों और बांयें हाथ में कमल का फूल नाल सहित है। पूंछ इनकी दाहिनी ओर से निकल कर मस्तक के ऊपर से होती हुई बांई ओर पाषाण पीठ पर फैली हुई है। पूंछ लंगूर की पूंछ की भांति बाल रहित है। मस्तक पर कुछ नहीं है कानों में बड़े बड़े कुण्डल हैं जो कन्धे तक हैं। गले में ग्रैवेयक हैं इसके नीचे बांयें कन्धे से होते हुए जनेऊ की भांति एक मोती की लड़ी है। पेट पर कायबन्ध है बाहू पर अंगद है और मणिबन्ध पर वलय है; एक बड़ा सा अलंकृत यज्ञोपवीत बांयें कन्धे पर से होता हुआ बांयें ओर दाहिने पैर की पिण्डलियों तक आया है कमर में कमरबन्द है इसमें एक छोटी सी छुरी खुसी हुई है। पैर में इनके कड़े और झालर है। शिलापट्ट पर बांई ओर शंख तथा दाहिनी ओर चक्र बना है। इनकी पूंछ से एक घण्टी बन्धी हुई है जो बांयें कान के कुण्डल पर लटक रही है। अधोभाग में इनके जांघिया है तथा एक दुपट्टा है जिसका पल्ला नीचे पैरों के बीच से लटक रहा है। यह विजयानगरम् शैली की कला कृति है परन्तु इनके हाथ में उल्टा कमल प्राचीन पल्लवकाल का प्रतीक है। पाषाणखण्ड पर बाहर की पट्टी तथा मस्तक पर का सिंह पल्लव कला का नमूना है परन्तु हाथ, पैर और कमर के ऊपर के आभूषण पीछे के काल के सदृश्य लगते हैं। (फलक ३५)।

मैसूर हम्पी के मंदिर में जो तुंगभद्रा के किनारे पर है विजयानगर काल की एक हनुमान की मूर्ति है इस विग्रह में ये समुद्र लांघने को उद्यत दिखाये गये हैं। यह विग्रह अतिभंग प्रत्यालीढ़ पाद में है। हनुमान हाथ जोड़े हुए बांया पैर आगे और दाहिना पैर पीछे किये हुए हैं यहां इनकी पूंछ इनके सिर पर से होती हुई इनके मुख के सामने आ गयी है। गले से ऊपर का भाग कपि का तथा और शरीर मनुष्य का है। पूंछ लम्बी लंगूर के सदृश्य है। इनके कानों में कुण्डल हैं बाहू पर अंगद और मणिबन्ध पर वलय है गले में हार और वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत है। अंगुलियों में अंगूठियां हैं कमर में कमरबन्द है पैर में कड़े हैं नीचे अधोवस्त्र है जिसका आगे का पल्ला दोनों पैरों के बीच में लटक रहा है। पूंछ के अग्रभाग के ऊपर चक्र बना है। दृष्टि इनकी सामने की ओर है देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि अब ये

---

१. एम० अरोकिय स्वामी—दी पल्लव नायक्स आफ कोतम्पेट—जनरल आफ दी एशियाटिक सोसाइटी ख० ५ न० १, २–१९६३ प्लेट ३।

कूद ही जायंगे। मुख पर वड़ी दृढ़ता दिखाई देती है। यह विजयानगर कला का एक उत्कृष्ट प्रतीक हैं[1] मूर्ति प्रायः १५वीं या १६वीं शताब्दी की है। (फलक ३६)

विजयानगर के राज्यसिंहासन के चवूतरे के चारों ओर कुछ फलक बने हैं जिन पर राम चरित्र अंकित हैं। इन चित्रों में एक फलक है जिस पर कुछ कपि फल खाते हुए दिखाये गए हैं।[2] यह उसी कथा का चित्रण है जव हनुमान ने अंगद इत्यादि के साथ मधुबन के फल खाए थे। यह चित्रण प्रायः १६वीं शताब्दी का है (फलक ३७)। प्रायः इसी युग के चित्र कोचीन के माटनचेरी में डच लोगों के वनवाए हुए राज्य प्रासाद में हैं जिसे उन्होंने कोचीन के महाराजा को अर्पित किया था। इनमें कुछ राम कथा के चित्र बने हुए हैं। इन चित्रों में उत्तरी कमरों में वने चित्रों में हनुमान भी अंकित हैं। यहां इनका शरीर श्वेत तथा चेहरा लाल वनाया गया है। इसमें ये समुद्र को लाँघते हुए, सुरसा के मुख में जाते हुए सीता को राम की अंगूठी देते हुए दिखाये गये हैं।

त्रिवेन्द्रम के पद्मनाभम् के मंदिर के भीतर फाटक के पास ही हनुमान की काले पत्थर की एक वड़ी मूर्ति है जिसमें हनुमान के वांयें हाथ में कमल है और दक्षिण हाथ उठा हुआ है जैसा उत्तरी आरकाट के मंदिर से मिली मूर्ति में है। यह मूर्ति आभूषणों से आच्छादित है। इसकी विशेषता यह है कि इस मूर्ति के मुख और ग्रीवा पर नित्य ताजा मक्खन लगाया जाता है और वह दूसरे दिन उतार लिया जाता है। दिन भर यह मक्खन जैसे का तैसा वना रहता है।

दक्षिण में कन्याकुमारी के पास सुचिन्द्रम के मंदिर में भी इनकी एक विशालकाय मूर्ति है। यह काले चिकने पत्थर की है तथा सोलह फुट चार इंच ऊँची है। इसमें ये समपाद मुद्रा में हाथ जोड़े खड़े हैं परन्तु कमर से शरीर का अंग दिखाया गया है। इनके सिर पर मंदिरों के शिखर की भांति का मुकुट है जिससे दो झालरें दोनों ओर लटक रही हैं। कानों में वड़े-वड़े कुण्डल हैं। गले में ग्रैवेयक, हाथ तथा कन्धों पर पट्टे हैं। वाहू पर केयूर के भाँति का एक विस्तृत आभूषण है; मणिवन्ध पर भी अलंकृत वलय तथा पट्टे हैं और अंगुलियों में अंगूठियां हैं। एक जनेऊ भी है जो पेट पर से होता हुआ जाता दिखाई देता है कटि में कई कमरवन्द तथा करधनियाँ हैं। वीच की एक करधनी से एक टिकड़ा लटक रहा है जिस पर राम सीता की युगल जोड़ी की आकृति दिखाई देती है। ऊपर के अंग पर केवल एक उत्तरीय है और नीचे के अंग में

---

[1] एम० बूर्थलिंगम्—दी स्टोरी आफ राम—प्लेट २३।

[2] जिम्मर—वही, प्लेट ४४२।

धोती है, पैरों में नूपुर हैं (फलक ३८)। इस मूर्ति में इनकी दृष्टि ऊपर की ओर है जैसे ये भगवान को देख रहे हों। मुख मुद्रा प्रसन्न है। मस्तक तथा नाक पर रामानुजी टीका लगाया जाता है।

इसी प्रकार की एक और मूर्ति द्वारपाल के रूप में सुचीन्द्रम के राम सीता के मंदिर के द्वार के उत्तर की ओर स्थित है। इसमें भी ये हाथ जोड़े हुए समपाद में खड़े हैं। यह दूसरी मूर्ति पहिली वाली मूर्ति से बहुत छोटी है। परन्तु आभूषणों से पहिली मूर्ति की भाँति ही लदी हुई है। इस मंदिर का बनना चोल राजा के राज्यकाल से प्रारम्भ हो गया था जैसा यहाँ के एक लेख से पता लगता है।[1] इनका राज्यकाल प्रायः ९वीं शताब्दी माना जाता है परन्तु यह मूर्तियां सोलहवीं शताब्दी की ज्ञात होती हैं। इस मंदिर से कन्याकुमारी के मंदिर से सम्बन्ध अवश्य है। प्रायः इसी काल की एक मूर्ति हनुमान की श्रीरंगम् के मंदिर के अंतर्गत राम के मंदिर में स्थित है। यह भी काले पाषाण खण्ड की है। यह भी सुचीन्द्रम के मंदिर की मूर्ति की भाँति समपाद मुद्रा में राम सीता की मूर्तियों से कुछ हट कर बांयीं ओर हाथ जोड़े हुए खड़ी है। इस मूर्ति पर उतने आभूषण नहीं हैं जितने सुचीन्द्रम के हनुमान पर हैं। यहां इनके मस्तक पर रामानुजी तिलक अंकित किया जाता है।

रामेश्वरम् के मंदिर में भी प्रायः इसी काल की एक मूर्ति है। इस विग्रह में ये एक हाथ में गदा लिए हुए तथा दूसरे में पर्वत लिए हुए दिखाई पड़ रहे हैं। सिन्दूर से आच्छादित होने के कारण इस मूर्ति के आभूषण इत्यादि नहीं दिखाई देते। विजयानगर काल की कला के प्रतीक मद्रास के विष्णुकांची के मंदिर में भी हनुमान का विग्रह दिखाई देता है। यहां नाट्यमण्डप के खम्बों पर राम कथा अंकित है इसमें हनुमान को गदा लिए हुए समुद्र लांघते हुए, सीता को अंगूठी देते हुए दिखाया गया है। प्रायः इसी प्रकार की मूर्ति हमें आंध्र के तृप्तीवाला के मंदिर के नाट्यमण्डप के खम्बों पर भी दिखाई देती है।

मद्रास के सालेम जिले में नमकाल स्थान में एक हनुमान की बड़ी विशालकाय मूर्ति है। यह काले पाषाण की है। इस विग्रह में ये हाथ जोड़े हुए समपाद मुद्रा में खड़े हैं। यह मूर्ति पत्थर की बनी है और प्रायः १८ फीट ऊँची है इस मूर्ति का मुकुट मंदिरों के शिखर के समान ऊँचा नहीं है अपितु गोल टोपी के भाँति का है और उसके ऊपर एक सर्प का आकार बना है उससे दो झालरें लटक रही हैं। इनके कानों में लम्बे कुण्डल हैं। ग्रीवा पर ग्रैवेयक तथा हार

---

[1] उपरोक्त—पृष्ठ २६।

हैं, कन्धों पर पत्ते हैं तथा बाहुओं में अंगद और मणिबन्धों पर वलय है। कटि में करधनी इत्यादि है परन्तु धोती से ढकी होने के कारण दिखाई नहीं देती। पैरों में नूपुर है। पूजा में होने के कारण इनको माला पहिनाई गयी है और रामानुजी तिलक लगाया गया है। कमर में धोती इनके ऊपर से पहिनाई गयी है तथा कन्धों पर उतरीय डाला गया है। यह मूर्ति भी सुचिन्द्रम की मूर्ति के समकालीन होनी चाहिए (फलक ३९)।[1]

हनुमान की एक कांसे की त्रिनेत्र दस भुजा की मूर्ति अनाथमंगलम गांव में है। यह गांव मद्रास के तन्जौर जिले के मायूरम स्थान से प्रायः १५ मील पर त्रंकुवार जाने वाली सड़क पर है। यह मूर्ति चार फीट ऊँची है। इस मूर्ति में हनुमान समपाद में खड़े हैं। इनके मस्तक पर शिव के समान तीसरा नेत्र है। इनके दायें हाथों में क्रम से चक्र, त्रिशूल, पेड़ की डाल, तीर और सर्प है। बांये हाथों में शंख, पाश, श्रुवा, धनुष और फल है। इस प्रकार इनको त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अवतार कल्पित किया गया है। इनके मस्तक पर लम्बी टोपी के सदृश्य मुकुट, कानों में कन्धों तक लटकते हुए कुण्डल, बाहुओं पर अंगद तथा मणिबन्ध पर वलय, गले में तौक, कटि में करधनी तथा पैरों में कड़े और झालर है। ऊपर के अंग में आगे से खुला हुआ कोट है जैसा कदाचित् उस काल के सैनिक सेनापति पहिनते थे। नीचे के अंग में जांघिया है जो कमरबन्द से बन्धी हुई है जिसके दोनों छोर कमर के दोनों ओर लटक रहे हैं। यह मूर्ति कमलासन पर स्थित है। आज कांसे की इस प्रकार की दस हाथों वाली बढ़िया मूर्ति का निर्माण करना कठिन है। आज तो इस प्रकार की मूर्ति में हाथ अलग से और शरीर रंग से बना कर दोनों को टांके से जोड़ देते हैं परन्तु तीन चार सौ वर्ष पूर्व पूजा की मूर्ति आसन सहित एक सांचे में ढाली जाती थी और जोड़ी हुई मूर्ति की पूजा निषिद्ध समझी जाती थी। इस मूर्ति में दृष्टि सामने की ओर है और मुख के निचले भाग को छोड़कर सिर से पैर तक सारी मनुष्य आकृति है। यह मूर्ति भी प्रायः १६वीं शताब्दी की होनी चाहिए। इस मूर्ति के सुगठित शरीर से शौर्य टपका पड़ रहा है। मुख मुद्रा गंभीर है तथा दृष्टि सामने की ओर है (फलक ४०)।

तंजौर के इसी गांव में एक और कांसे की हनुमान की मूर्ति थोड़ी दूर पर है इसमें विष्णु की भाँति हनुमान के चार हाथ हैं। यह भी समपाद में कमलासन पर स्थित है। इसमें हनुमान के मस्तक पर मंदिर के शिखर के भाँति का

---

[1] श्री एन० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त।

लम्बा मुकुट है जो ऊपर से चिपटा है तथा उसके ऊपर एक पूर्णघट है। कानों पर मकर की पीठ के समान के कांटे कन्धों तक लटक रहे हैं, कानों के नीचे के भाग में घंटों के समान के कुण्डल हैं। गले में ग्रैवेयक और हार है, वक्षस्थल पर जनेऊ है, बाहुओं पर अंगद और मणिवन्धों पर वलय हैं। अंगुलियों में अंगूठियां हैं, कमर में झालरदार करधनी है, पैरों में कड़े और झालर हैं। इस मूर्ति में इनका ऊपर का शरीर नग्न है, नीचे के अंग में जांघिया है। कमरवन्द से जांघिया वन्धा हुई है इस कमरवन्द के दोनों छोर पैरों तक लटके हुए हैं। इनके चारों हाथों में क्रम से दक्षिण करों में चक्र और सर्प है वाम में शंख और पद्म है। यह यहां विष्णु के पार्षद या विष्णु के अवतार के रूप में कल्पित किए गए हैं (फलक ४१)।[1]

इसी मायूरम तालुके से १० मील दूर पर स्थित तिरुकोरागुक नामक गांव में हनुमान का एक प्राचीन मंदिर है। स्थानीय किम्वदन्तियों के आधार पर यह वही स्थान है जहां हनुमान ने राम की पूजा की थी यहां भी एक कांसे की हनुमान की मूर्ति है यह मूर्ति भी प्रायः १७वीं शताव्दी की है। इस विग्रह में भी हनुमान सुचिन्द्रम की मूर्ति की भाँति हाथ जोड़े हुए समपाद में खड़े हैं। इनके मस्तक पर कोण के आकार का मुकुट है कानों में मकराकार कुण्डल है जो कन्धों पर लटक रहे हैं। गले में मोतियों के हार, पट्ठों पर पत्ते, वाहुओं पर मोतियों के अंगद और मणिवन्धों पर कंगन हैं। कमर में एक कमरपेटी है तथा कमरवन्द है। इस कमरवन्द के दोनों छोर जांघों के दोनों ओर लटक रहे हैं और एक छोर पैरों के वीच में भी है इन छोरों पर काम वना हुआ है। पैरों में ये कड़े पहिने हुए हैं। ऊपर के अंग का उत्तरीय शरीर के पीछे है उसके दोनों छोर दोनों वाहुओं पर सर्पाकार होकर लटक रहे हैं नीचे के अंग में चारखाने के काम से अलंकृत जांघिया है जिस पर मोती का काम है। ये कमलासन पर स्थित हैं इनकी मुखमुद्रा भयंकर हैं। मुंह खुला हुआ और दांत वाहर निकले हुए हैं (फलक ४२)।[2]

हनुमान की मूर्तियाँ होयसला कला की मैसूर के सोमनाथपुर के मंदिर में तथा हेलविड के मंदिरों पर अंकित हैं ये प्रायः १७वीं शताब्दी की हैं। इन दोनों स्थानों पर मंदिर के चारों ओर भागवत तथा रामकथा अंकित हैं। रामकथा के सन्दर्भ में हनुमान के भी दर्शन होते हैं। सोमनाथपुरम में और दृश्यों के

---

[1] श्री एन०, रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त।

[2] श्री एन० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त।

अतिरिक्त हनुजान के कन्धे पर राम बैठे हुए राक्षसों से लड़ रहे हैं जैसा वर्ण वाल्मीकि की रामायण से मिलता है। इनको सर्वाभरण भूषित दिखाया गया है इन मंदिरों की मूर्तियाँ प्रायः १६वीं १७वीं शताब्दी की हैं। हनुमान का दर्शन मैसूर के राज्य प्रासाद के अन्तर्गत वाराह मंदिर के चबूतरे पर भी होता है। यहाँ इनके एक हाथ में कमल है और दूसरा हाथ ऊपर उठा हुआ है और थप्पड़ मारने की मुद्रा में है। इसी प्रकार की मूर्ति मैसूर के चामुण्डा देवी के मंदिर में भी है इस पर अव चांदी का पत्थर चढ़ा दिया गया है।

गोलकुण्डा के किले में जाते हुए एक रामदास की गुफा है इसमें भी हनुमान की कई मूर्तियाँ गुफा की भीत पर चट्टान पर खुदी हुई हैं। ऐसा कहा जाता है कि रामदास को जव तानाशाह ने यहाँ वन्दी कर के रखा था तव वे हनुमान की नित्य प्रार्थना करते थे जिससे उनकी मुक्ति हुई थी। हनुमान यहाँ कई मुद्राओं में अंकित हैं यह प्रायः १७वीं शताब्द की मूर्ति है।

एक हनुमान की मूर्ति नागपुर के केन्द्रीय संग्रहालय में है यह प्रायः १८वीं शताब्दी की है।[1] इसमें हनुमान को दाहिने ओर जाते हुए दिखाया गया है इनके दाहिने हाथ में गदा है और वांयां हाथ ऊपर उठा हुआ है कदाचित् इसमें पहाड़ था जो अव स्पष्ट दिखाई नहीं देता है। गदा के ऊपर का आकार हथौड़ी के सदृश्य है। इनकी पूंछ वांयीं ओर से होती हुई मस्तक के पीछे से दक्षिण की ओर आयी है मस्तक पर की टोपी अंग्रेजों की भाँति की टोपी (सोला हार) के सदृश्य है। ऊपर शरीर पर एक अंगरखा है जो घुटनों के नीचे तक आया है इसके ऊपर कमर में एक कमरवन्द है जिसके दोनों छोर आगे लटक रहे हैं। नीचे के अंग में पायजामा है पैरों में जूता है। आभूषणों में केवल हाथ के कड़े हैं दृष्टि इनकी अपने दक्षिण की ओर है तथा मुखमुद्रा गंभीर है (फलक ४३)।

पश्चिमी वंगाल के कई मंदिरों पर रामायण के दृश्य अंकित हैं। ये मंदिर प्राचीन भारतीय परम्परा में ईंटों के बने हुए थे जिस परम्परा में भीतर गांव, विलखार तथा मुल्तान के सूर्य मंदिर बने थे[2] इन मंदिरों के वाहरी भाग के फलकों पर राम तथा कृष्ण के चित्र अंकित हैं। ये फलक मिट्टी के बना कर पका लिए गए हैं। राम का चरित्र यहाँ कृत्तिवास की रामायण के आधार पर

---

[1] नागपुर सेण्ट्रल म्यूजियम—नं० ए २८—नागपुर केन्द्रीय संग्रहालयाध्यक्ष की कृपा से प्राप्त।

[2] कांनंघम —आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट—१८७५-७६ कलकत्ता १८८०, पृष्ठ ४२।

अंकित दिखाई देता है। पश्चिम बंगाल के लक्ष्मी जनार्दन के मंदिर द्वार पर एक फलक है इसमें रावण को दस मस्तकों और वीस हाथ के साथ घोड़े पर अंकित किया गया है तथा इसे अंगद और हनुमान पाषाण खण्डों से मारते हुए दिखाया गया है। इनके पीछे राम और लक्ष्मण तीर और कमान से लड़ते हुए दिखाए गए हैं। इस फलक में हनुमान के वांये हाथ में पाषाण खण्ड तथा दाहिने हाथ में गदा है। इनकी इस गदा का आकार मुद्गल के सदृश है। हनुमान के ऊपर के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है नीचे ये जांघिया पहिने हुए हैं।[1]

कमरपाड़ा के मंदिर पर जो हुगली जिले में हैं हनुमान को शिव के साथ दर्शाया गया है।[2] इनको शिव का अवतार पुराणों में तथा साहित्य में माना गया है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।[3] इसी प्रकार मुर्शिदावाद के वारानगर के चार वंगला मंदिर के द्वार पर अंकित एक फलक पर हनुमान पुष्पक विमान के आगे भरत को सूचना देने को जाते हुए दिखाए गए हैं। ये आकाश मार्ग से जा रहे हैं और भरत के यहां पहुँच कर हाथ जोड़ कर द्वारपाल से सन्देश कहला रहे हैं।[4] दूसरी ओर इसी मंदिर के और फलक पर राम को हनुमान अपने कंधे पर लिए हुए हैं और राम धनुष वाण से लड़ रहे हैं जैसा वाल्मीकि रामायण में वर्णन है[5]—

> अथैनमनुसंक्रम्य हनुमान्वाक्यमब्रवीत्।
> "मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि ॥१२५॥
> विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणाम् ॥"
> ....॥१२६॥

---

[1] ओ० सी० गांगाली, ए० गोस्वामी—इण्डियन टेराकोटा आर्ट, रूपा एण्ड कं०, ५ बंकिम चाटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता १२, १९५९ चित्र १६।

[2] उपरोक्त—चित्र २६।

[3] स्कन्द पुराण—अवन्ती खण्ड चतुरशीतिलिंगमहात्म्य अध्याय ७९, महाभागवत पुराण अध्याय ३७—अहं वानररूपेण संभूय पवनात्मजः साहाय्यं ते करिष्यामि—नारद पुराण, पूर्वखण्ड अ० ७९, ब्रह्मवैवर्त पुराण—कृष्णजन्म खण्ड अध्याय ६२, महानाटक ६, २७, कृत्तिवासीय रामायण ६, १२९ इत्यादि।

[4] उपरोक्त—चित्र ३३।

[5] वाल्मीकि रामायण—युद्धकाण्ड ५९-१२५-१२७ गीता प्रेस संस्करण।

अथारुरोह सहसा हनुमन्तं महाकपिम् ।
रथस्थं रावणं संख्ये ददर्श मनुजाधिपः ।।१२७।।

हनुमान इस फलक पर घुटनों तक की धोती पहिने हैं और इनके गले में एक गोल लपेटा हुआ दुपट्टा है। इनको यहां दाढ़ी भी दिखायी गयी है। नाक इनकी गरुड़ की भाँति है। गले में ग्रैवेयक है। इनके दोनों हाथ राम के दोनों जंघों पर हैं इनमें वलय है।[1]

वीरभूम के सुरुल मंदिर के द्वार पर के फलक में सब से ऊपर हनुमान को अशोक वाटिका के रक्षकों से लड़ते हुए दिखाया गया है। इस फलक में हनुमान की काया विशाल है। इनके एक हाथ में पाषाण खण्ड है और दूसरे में गदा है। ये इस पाषाण खण्ड फेंकने को हाथ में उठाए हुए हैं। इनके शरीर पर घुटनों तक की धोती है; गले में गोल लपेटा हुआ उत्तरीय तथा ग्रेवैयक है। हाथों में वलय है। यहीं के एक दूसरे चित्र में हनुमान दशग्रीव के दरबार में दिखाए गए हैं और सब से नीचे के चित्र में एक राक्षसी अशोकवन में बैठी सीता को डरा रही हैं और हनुमान पेड़ पर बैठे हैं। सुरुल के मंदिर के द्वार पर एक और फलक है जिसमें नीचे की ओर राम, लक्ष्मण और सीता के वनवास का दृश्य अंकित है और उसके ऊपर राम के राजगद्दी का दृश्य अंकित है। इसमें राम और सीता सिंहासन पर आसीन हैं इनके पीछे भरत तथा शत्रुघ्न चवँर लिए हुए हैं राम के पैर के पास हनुमान हैं। सामने लक्ष्मण हैं जिनके पीछे जाम्बवान, सुग्रीव, विभीषण और अंगद क्रम से हैं। इस विग्रह में हनुमान केवल एक कौपीन पहिने दिखाए गए हैं। ये हाथ जोड़े हुए हैं और इनकी गदा हाथ के बीच से लटक रही है। इस प्रकार के प्राचीन विग्रहों के विषय में पहिले लिखा जा चुका है। इनके कानों में कुण्डल हैं, बाहु पर अंगद तथा मणिबन्ध पर वलय हैं।[2]

ये मंदिर प्रायः १८वीं शताब्दी के बने हुए प्रतीत होते हैं जैसा इन फलकों पर बने स्त्री और पुरुषों की वेशभूषा से पता चलता है। कई फलकों पर पुरुष की १८वीं शताब्दी का बंगाल का अंगरखा, लम्बा दुपट्टा तथा शमला पहिने दिखाया गया है।[3] इसी युग के बाकेनगर मुर्शिदाबाद

---

१. ओ० सी० गांगोली—उपर्युक्त चित्र ४७।

२. उपर्युक्त—प्लेट ४९।

३. उपर्युक्त— श्रीधर मंदिर व कुड़ा—प्लेट २०, लक्ष्मी जनार्दन मंदिर, वीरभम प्लेट १६।

के काली मंदिर के फलक पर सिपाही वन्दूक लिए हुए भी दिखाई पड़ते हैं।[1]

एक मूर्ति प्रायः १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की काशी के पंचकोशी सड़क पर पागलखाने के पास के मंदिर में है। (फलक ४४) इस मूर्ति में हनुमान अपनी दोनों कन्धों पर राम और लक्ष्मण को बैठाए हुए आलीढ़ मुद्रा में समभंग पाद में जाते हुए दिखाए गए हैं। इनके दक्षिण हाथ में गदा है और वांये में कमल। इनके दक्षिण पैर के नीचे एक राक्षस चित पड़ा है उसके एक हाथ में तलवार है। इसकी ग्रीवा दाहिनी ओर मुड़ी हुई है। हनुमान की पूंछ वांई ओर से होती हुई मुकुट के पास घूमी है। ये उत्तरीय तथा जांघिया धारण किए हुए हैं। इनके मस्तक पर अवध के नवाबों के ऐसा मुकुट है, दाहिने कान में कुण्डल है, गले में १८वीं शताब्दी में प्रचलित गोप है तथा वक्षस्थल पर हार है। हाथ में उसी युग के प्रचलित वाजूवन्द तथा मणिवन्धों पर कड़े हैं। कमर पर एक दुपट्टा वन्धा है जिसके दोनों छोर कटि के दोनों ओर लटक रहे हैं कटि पर एक चौड़ी करधनी है। जांघिये के नारे के फुन्ने दोनों पैरों के बीच में लटक रहे हैं। कमर पर के दूसरे दुपट्टे का एक छोर पीछे भी लटक रहा है। पैरों में कड़े तथा गोलदानों की झालरें हैं। इनका दाहिना पैर राक्षस के ऊपर है जो चित लेटा है तथा अपनी तलवार से इनके पैर को अपने ऊपर गिरने से बचा रहा है। उसका मस्तक दाहिनी ओर मुड़ा हुआ है। हनुमान की दृष्टि सामने की ओर है। सम्भवतः इस विग्रह में ये महिरावण को मार कर पाताल से राम और लक्ष्मण को ले कर लंका जाते हुए प्रदर्शित किए गए हैं। यह कथा आनन्द रामायण में मिलती है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।[2] यही कथा प्रक्षिप्त रूप में पहिले मानस में भी थी। फलक ४५ पर का पंचमुखी हनुमान का चित्र व्रमजिलियस ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है इसका विवरण पहिले दिया जा चुका है।

एक पहाड़ी शैली के चित्र में जो प्रायः १९वीं शताब्दी का है हनुमान को हाथ में पताका लिए हुए देवी के आगे-आगे हम चलते देखते हैं कदाचित् यह बृहद्धर्म पुराण तथा महाभागवत पुराण की उस कथा का चित्रण है जिसमें यह

---

[1] उपरोक्त—प्लेट २५ चारबंगला मंदिर (उत्तर) बारानगर मुर्शिदाबाद—प्लेट १६।

[2] आनन्द रामायण—सं० गोपाल नरायन, मुम्बई संस्करण युद्धकाण्ड सर्ग ११।

वर्णन मिलता है कि देवी लंका में रहती थी और इनके वहां रहते हुए रावण का हारना असम्मव था इस पर हनुमान ने लंका पहुँच कर देवी से प्रार्थना की कि वे लंका छोड़ दें क्योंकि रावण ने सीता का हरण किया था। इस पर देवी लंका छोड़ कर चली जाती है।[1] इस चित्र में देवी सिंह पर आरूढ़ है इनके आठों हाथों में अस्त्र है इनके पीछे गणेश जी अपने हाथ में कमल और माला लिए चले आ रहे हैं। हनुमान इस चित्र में देवी तथा गणेश के भाँति तीन कंगूरों वाला मुकुट पहिने हैं जैसा वसोली के चित्रों में दिखाई देता है। गले में इनके टीक और हार है वाहू पर वाजूवन्द तथा मणिबन्ध पर कड़े हैं। इनका मुख तथा पैर वन्दरों के ऐसे हैं, परन्तु और शरीर मनुष्यों की भाँति का है। इनकी लम्बी पूंछ पीछे की ओर मस्तक से भी ऊँची फैली हुई है। शरीर पर एक दुपट्टा तथा एक जांघिया है (फलक ४६)।

कालीघाट के पटचित्रों पर भी हनुमान का विग्रह मिलता है इसी प्रकार के एक चित्र में हम इन्हें वक्षस्थल को चीर कर उसमें बैठे हुए राम सीता को दिखाते हुए पाते हैं। इसमें इनका मुख और शरीर वानर का है परन्तु हाथ और पैर मनुष्य के भाँति के दिखाए गए हैं इनके शरीर पर एक मोती की माला है जो गले में लिपट कर वक्षस्थल के दोनों ओर लटक रही है। बाहुओं पर वाजूवन्द है परन्तु न तो मस्तक पर मुकुट है और न पैर हाथ में कड़े हैं (फलक ४७)।

बीसवीं शताब्दी के हनुमान के एक चित्र में इनके ऊपर के सारे शरीर में राम नाम अंकित है इनके एक हाथ में मुद्गल की भाँति की गदा है तथा दूसरे हाथ में पर्वत। इस चित्र की विशेषता यह है कि इनके मुख से निकली किरणों के चारों ओर हनुमान का मंत्र अंकित है तथा इनके वक्षस्थल की टिकड़ी पर इनका यंत्र है।[2] इस यंत्र में पहिली पंक्ति में १, ८, ४५ और ५० के अंक हैं दूसरी में ४७, ४८, ३ और ६ के अंक हैं तीसरी पंक्ति में ७, २, ५१, ४४ है चौथी में ४३, ४५, ५, ४ है। मंत्र है "हौं स्फ्रें ख्फ्रें हस्त्रौं स्फ्रें हसौं हनुमते नमः।" यह मंत्र इनको सिद्ध करने का है जैसा तंत्रों से पता लगता है। अयोध्या में आज भी कुछ लोग अपने सारे शरीर में राम राम गोदने से गोदवा लेते हैं। तांत्रिक पूजा में इनका उपरोक्त मंत्र जपा जाता है तथा इनके यंत्र की पूजा होती है।

---

१. बुल्के—राम कथा—पृष्ठ ५०२, बृहद्धर्म पुराण—अध्याय २०, महाभागवत पुराण—अध्याय २–९।

२. यह चित्र भी लाल जी शर्मा के संग्रह में है।

जावा में जो छायाचित्र के द्वारा रामकथा प्रदर्शित की जाती है उसके लिए लकड़ी की मूर्तियाँ बनती हैं। इसी कथा को दिखाने के हेतु हनुमान के जो नमूने बनते थे उनमें एक लकड़ी की मूर्ति पटना के राजकीय संग्रहालय में है (फलक ४८)। चमड़े की आकृतियाँ काट कर राम कथा कपड़े के पट पर छाया द्वारा दर्शन की प्रथा कम्बोडिया में है इस कथा के लिए जिस प्रकार की मूर्ति हनुमान की बनाई जाती है उसका चित्र फलक ४९ क पर है जिस प्रकार का चेहरा लगा कर थाईलाण्ड में हनुमान का अभिनय पात्र लोग करते हैं उसका चित्र (फलक ४९ ख) पर है। जावा, थाईलाण्ड, कम्बोडिया और लाओस में हनुमान का बड़ा आदर है तथा इनकी कथा का बहुत प्रचार है जैसा पहिले लिखा जा चुका है।

इस प्रकार हनुमान की मूर्ति सम्भवतः पहिले वृक्ष देवता से सम्बन्धित कपि के रूप में बनी पीछे चल कर इनकी मूर्ति का स्वरूप यक्षों की भाँति मनुष्य का बना कर उस पर कपि का मस्तक जोड़ा गया। वृष के समान शक्ति का द्योतक बनाने के हेतु इनकी पूंछ वृष की भाँति लम्बी बनाई गयी तथा वृष के भाँति के पूँछ के बाल बनाये गये। यों भी वृष की पूजा कई प्राचीन सभ्यताओं में प्रचलित थी। हो सकता है कि उनसे जोड़ने के हेतु ऐसा किया गया हो। इनके पीछे के विविध रूप रामायण की कथा के प्रचार के फलस्वरूप उसी में वर्णित ध्यानों पर बने। पंचमुखी हनुमान का स्वरूप इनके रुद्रावतार मान लिए जाने पर बना प्रतीत होता है। इनकी मूर्तियों का सात्विक, राजस और तामस स्वरूप इनकी तांत्रिक पूजा के फलस्वरूप निर्धारित हुआ। यों इनका कपि स्वरूप प्राचीन जादू टोने से संबंधित था। पीछे चल कर जब तन्त्र का दर्शन बना तो इसका रूप परिष्कृत हुआ इनका स्वरूप भी बदला और इनका व्याधि नाशक स्वरूप बना। इसका भयंकर होना स्वाभाविक था। इनकी इस स्वरूप में साधना भी तामसिक ही होती थी।

●●●

भारतीय सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति

पाषाण, पकी मिट्टी तथा कांस्य मूर्तियों के अतिरिक्त हनुमान की मूर्ति भारतीय सिक्कों पर भी मिलती है, परन्तु ये मूर्तियाँ मध्यकालीन सिक्कों पर ही हैं प्राचीन सिक्कों पर हनुमान का दर्शन नहीं होता। सर्वप्रथम इनका स्वरूप रतनपुर के कालचूरियों के ताम्बें के सिक्कों पर दिखाई देता है। इन सिक्कों में कमलराज या कलिंगराज के सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति का अंकन है। इन सिक्कों के पीछे के भाग में हनुमान को दौड़ते जाते हुए दिखाया गया है इनके वांयें हाथ में पर्वत है।[1] दूसरी ओर राजदेव अंकित हैं इसे लल्लन जी गोपाल ने कलिंग राजदेव या कमलराजदेव पढ़ा है (फलक ५० क)। कनिंघम ने दो ताम्बे के सिक्के जो ब्रिटिश म्युजियम में हैं उन्हें प्रकाशित किया है इन पर भी हनुमान की आकृति अंकित हैं। ये सिक्के जाजल्लदेव प्रथम के हैं जो कदाचित् कलिंगराज देव की मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठे (फलक ५० ख)। इनके पश्चात् श्रीमद् पृथ्वीदेव के ताम्बे के सिक्कों पर पीछे हनुमान अंकित मिलते हैं। इन सिक्कों में कुछ पर चार हाथ वाले हनुमान हैं इस प्रकार की मूर्ति में इनके ऊपर के वांयें हाथ में गदा है और ऊपर के दक्षिण कर में पर्वत, नीचे के दोनों हाथों से ये दो राक्षसों को मार रहे हैं। वांयें ओर के राक्षस को अपने पद से कुचल भी रहे हैं। कुछ सिक्कों पर हनुमान दक्षिण की ओर हैं और एक परिचारक इनके वांई ओर है तथा कुछ पर हनुमान वांई ओर हैं और उनके दाहिनी ओर एक परिचारक है इन सिक्कों में हनुमान अपने वांयें पैर से एक राक्षस को कुचल रहे हैं।[2] (फलक ५० ग)। इसी प्रकार कालचूरियों के सिक्कों पर चार प्रकार की हनुमान की मूर्तियों का दर्शन होता है।[3]

---

१. लल्लन जी गोपाल—अर्ली मेडीवल क्वायन टाईप्स आफ नार्दन इण्डिया—न्युमिसमेटिक नोट्स एण्ड मोनोग्राफ्स नं० १२—न्युमिसमेटिक सोसाइटी, वाराणसी १९६६, पृष्ठ ४९; जे० एन० एस० आई० १९५६ अंक १८ प्लेट ८, १७, पृष्ठ १११-११२।

२. कन्निंघम—सी० एम० आई०—पृष्ठ ७३; लल्लन जी गोपाल प्लेट ९-१२।

३. लल्लन जी गोपाल—उपरोक्त—पृष्ठ ५१, प्लेट १०—१, २, ३।

सम्भवतः चन्देल राजाओं ने कलचूरियों के सिक्कों की नकल कर के अपने सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति अंकित की।[1] इन सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति कमलराज देव के सिक्कों की मूर्ति से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। कुछ विद्वानों का मत है कि यह हनुमान की मूर्ति नहीं है। परन्तु अव बहुत से सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति उनकी पूंछ के साथ मिल जाने पर यह मत कुछ जंचता नहीं फिर इन सिक्कों को आज तक बुन्देलखण्ड में हनुमन्तैय्या के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह भी इस बात का प्रमाण है कि इन सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति बनी है कोई सैनिक की नहीं। हल्लेलक्षण वरमूम देव वरमन के ताम्वे के सिक्कों पर हनुमान को एक गोल तोरण के नीचे अंकित किया गया है।[2] जय वरमन ने भी इसी प्रकार की हनुमान की मूर्ति अपने कुछ सिक्कों पर अंकित की है (फलक ५० छ) परन्तु कुछ सिक्कों पर आकाश में उड़ कर जाते हुए हनुमान की मूर्ति अंकित है।[3] पृथ्वी वरमन के सिक्कों पर हनुमान की पुनः गोल मेहराव के नीचे मूर्ति बनी हुई है[4] (फलक ५० ङ)। इसी प्रकार की मूर्ति चन्देलों के राजा मदन वरमन के भी सिक्कों पर है।[5] इन सिक्कों के दूसरी ओर राजाओं के नाम हैं। चन्देलों के सिक्के छोटे होने के कारण हनुमान के आभूषण इत्यादि का स्पष्ट रूप से दर्शन नहीं होता।

इसी प्रकार हांगल के कदम्ब राजाओं के सिक्कों पर भी हनुमान अंकित हैं। इन राजाओं के हनुमान पारिवारिक देवता थे तथा इनकी मूर्ति ये अपने झण्डों पर भी अंकित करते थे जैसा उनके एक अभिलेख से पता लगता है।[6] कदम्ब राजाओं का घराना बड़ा प्राचीन था। प्रायः ५वीं शताब्दी से जब गुप्त सम्राट उत्तर भारत में राज्य कर रहे थे इनका नाम मिलने लग जाता है। इनको कुन्तल राज कहा जाता था तथा इनका गुप्त राजाओं से वैवाहिक सम्वन्ध भी हो गया था जैसा उस काल के एक अभिलेख से ज्ञात होता है।[7] पुलकसेन

---

१. उपरोक्त—पृष्ठ ४९।

२. लल्लन जी गोपाल—उपरोक्त—पृष्ठ ७५ प्लेट १०·८।

३. उपरोक्त—प्लेट १० न० ९, १०।

४. उपरोक्त—प्लेट १० न० ११।

५. उपरोक्त—प्लेट १० न० १४।

६. ज्याजं एम० मोरेस—द कदम्ब कुल—बी० एक्स, फुटना एण्ड संस, बम्बई १९३१, पृष्ठ ३८५।

७. उपरोक्त—पृष्ठ २२।

द्वितीय द्वारा पराजित होने पर कदम्बों का प्रायः २५० वर्ष तक कोई इतिहास नहीं मिलता (६०७-१००० ई० तक)। चट्टदेव के समय में कदम्बों का राज्य पुनः स्थापित हुआ। प्रायः यह घटना १०२० ई० के आस-पास की होनी चाहिए। इन्हें हांगल कदम्ब कहते थे। एक लेख के अनुसार जो १०३७ ई० का है राजगुरुदेव को कदम्ब राज्य का स्थापित करनेवाला कहा गया है।[1] हनुमान की मूर्ति से सुशोभित एक सिक्का हांगल के कमदम्बों का एम० जी० दीक्षित ने प्रकाशित किया है।[2] यह सुवर्ण का है इसकी तौल १२० ग्रेन और वृत.८२" है। इसमें हनुमान आकाश में उड़ते हुए दिखाए गए हैं। इनके दक्षिण कर में एक लम्बी सी गदा है। (फलक ५०अ) इस सिक्के पर इनकी मूर्ति के चारों ओर घेरे में चार सिंह अपनी ग्रीवा के पीछे की ओर मुड़ कर बैठे दिखाए गए हैं। इन सिंहों के बीच में दो बार श्री अंकित है अंकुश तथा सु और ग भी इसी घेरे में है। इस सिक्के का पीछे का भाग बिल्कुल सादा है। ऐसे ही दो सिक्के इलियट द्वारा प्रकाशित किए गए थे इन पर के हनुमान की मूर्ति विविध भावों में अंकित है।[3] मूर्ति में नीचे 'नकर' शब्द कन्नड़ भाषा में है। इस प्रकार की मूर्ति में हनुमान बैठे हुए दिखाए गए हैं इनके मस्तक पर एक मुकुट है कदाचित् यह नकर शब्द बंकापुर के नकरेश्वर की ओर संकेत करता हो। इसी प्रकार का एक सिक्का बेलगांव से प्राप्त हुआ था जो 'इंडियन हिस्टारिक इन्स्टीट्यूट' में है। इसमें हनुमान की मूर्ति इलियट द्वारा प्रकाशित सिक्के से बड़ी है तथा 'नकर' शब्द छोटा है।[4] इन सिक्कों के पीछे की ओर पत्रों के मुट्ठों का आकार है।

कलकत्ते के भारतीय संग्रहालय में एक सिक्का है जिसे कल्याणी के पश्चिमी चालुक्यों का कहा जाता है।[5] इस सिक्के पर हनुमान को आकाश में उड़ते हुए दिखाया गया है। इनका मुख दक्षिण की ओर है तथा दक्षिण हाथ उठा हुआ है जैसे पर्वत धारण किए हुए हनुमान की मूर्तियों में रहता है। शरीर के पीछे की ओर इनकी लांगूल है। बांया पैर बांई ओर बढ़ा हुआ है। मूर्ति के चारों

---

[1] उपरोक्त—पृष्ठ १०४

[2] एम० जी० दीक्षित—सम गोल्ड क्वायन्स आफ दी कदम्ब डाइनेस्टी—जे० एन० एस० आई० खण्ड ११-२ दिसम्बर १९४९, पृष्ठ ९१-९२।

[3] डब्लू इलियट—क्वायन्स आफ सदर्न इण्डिया—प्लेट नं० ७८।

[4] मोरेस—कदम्ब कुल—पृष्ठ ३८५।

[5] सम्भव है कि यह भी सिक्का कदम्बों का हो।

ओर एक घेरे में चार बार 'ह' शब्द अंकित हैं और चार बार सूर्य अंकित किया गया है। पीछे की ओर यह सिक्का सादा है। यह सिक्का कटोरी की भाँति गढ्ढेदार है। इसकी तौल ५३.५ ग्रेन हैं[1] इस प्रकार के सिक्कों को पद्म टंका कहा जाता था[2] (फलक ५० झ)।

हनुमान की मूर्ति विजय नगर के राजाओं के सिक्कों पर भी मिलती है। सर्वप्रथम हरिहर प्रथम ने अपने सुवर्ण तथा ताम्बे के सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति अंकित की। यह संगम कुल के थे। ये सिक्के हनुमन्तई वाराह कहे जाते थे (फलक ५० च)। इसी प्रकार के सिक्के इसी कुल के द्वितीय राजा वुक्का प्रथम ने चलाए (फलक ५० ज)। कदाचित् हनुमान की मूर्ति इन राजाओं ने अपने सिक्कों पर इस कारण अंकित की कि इनका सम्बन्ध किष्किन्धा से था जहाँ का राजा सुग्रीव था,[3] तथा जहाँ हनुमान का वहुत प्रचार था कदाचित् इसका यह भी कारण हो सकता हैं कि महाराज हरिहर का सम्बन्ध प्राचीन कदम्व कुलवाले राजाओं से था जिनकी ध्वजा पर हनुमान की मूर्ति रहती थी जैसा पहिले लिखा जा चुका हैं। इन सिक्कों पर लेख कन्नड़ अक्षरों में हैं।[4] तथा हनुमान की दक्षिण की ओर मुख किए हुए जाते दिखाया गया है। दक्षिण कर इनका थप्पड़ मारने की मुद्रा में हैं। वांये में कदाचित् कमल है वांयां पैर उठा हुआ है तथा दक्षिण पद वांई ओर मुड़ा हैं मस्तक पर मुकुट है।[5] इसी प्रकार विजयानगर की तीसरे कुल के वेंकटराय प्रथम के कुछ सिक्कों पर हनुमान की मूर्ति है।[6] ये राजा आरवीडु कुल के थे तथा वैष्णव थे इनके कुल देवता वेंकटेश थे।

लंका के पराक्रम वाहू, विजयवाहू, रानी लीलावती, साहसमल, धर्माशोक देव, भुवनेक वाहू के सिक्कों पर एक ओर तो राजा की आकृति वनी हुई है। इनमें इनके कमरवन्द के छोर पैरों के दोनों ओर लटक रहा हैं वांयां हाथ उठा हुआ

---

१. विंसेण्ट स्मिथ—काटलाग आफ क्वायन्स इन दी इण्डियन म्युजियम पृष्ठ ३१४।

२. उपरोक्त—पृष्ठ ३११।

३. विजयानगर सिक्सटेन्टेनरी कमेमोरेशन वाल्यूम—धारवार १९३६, पृष्ठ १०९।

४. उपरोक्त—पृष्ठ १११।

५. उपरोक्त—पृष्ठ १०४ के सामने, प्लेट १०६, नं० ६।

६. उपरोक्त—पृष्ठ १०८ तथा १११।

है जिसमें एक फूल है तथा दाहिने कर के नीचे एक वृक्ष की डाल है इस कर में जहाज के लंगड़ की भाँति का आयुध है जिसके चार दांतें हैं। दूसरी ओर एक कपि की आकृति है जिनका बांयां हाथ उठा हुआ है जैसा हनुमान का रहता है दक्षिण कर के नीचे राजा का नाम है। पराक्रमवाहू के सिक्कों पर श्री पराक्रमवाहू लिखा है। इसी प्रकार विजयवाहू के सिक्कों पर श्री विजयवाहू लिखा है, लीलावती के सिक्कों पर भी अंकित मिलता है (फलक ५० ज)। साहसमल के सिक्कों पर "श्री साहसमल्ल" धर्माशोक के सिक्कों पर "श्री धर्माशोकदेव" तथा भुवनेकवाहू के सिक्कों पर "श्री भुवनेकवाहू" है। अक्षर नागरी के हैं। विंशेण्ट स्मिथ के अनुसार इन राजाओं ने चोल सिक्कों की नकल की।[1] इन सिक्कों पर सिक्कों के वनने की तिथि अंकित नहीं है फिर भी ऐसा समझा जाता है कि प्रायः ११७५ ई० में जब पराक्रमवाहू के सेनापतियों ने चोल राज्य पर आक्रमण किया उसी समय से इस प्रकार के सिक्के लंका में भी गढ़े जाने लगे।

कपि की आकृति जो इन सिक्कों पर मिलती है उसमें हनुमान के उठे हुए बांयें कर पर पहाड़ के ऐसी कोई वस्तु है। दक्षिण कर में दाँतदार आरे ऐसा आयुध है जो कदाचित् पेड़ की डाल का रूप हो। इस मूर्ति में इन्हें दोनों पैर फैलाए हुए उकड़ू वैठा हुआ दिखाया गया है। इनके शरीर के नीचे एक सर्प के ऐसी आकृति है। राजाओं के नाम इनके बांयें कर के नीचे अंकित हैं। इन सिक्कों पर इनका मुख और शरीर दूसरी ओर की राजा की आकृति से मिलता-जुलता ही है। राजा खड़े हैं और ये बैठे हुए हैं। इससे ऐसा भाव होता है कि इनको देवत्व का प्रतिपादन किया गया हो। नीचे की सर्पाकृति इनको रुद्र से जोड़ने का प्रयत्न दिखाई देता है।[2]

इसी प्रकार के ताम्बे के कुछ सिक्के अभी हाल में राजस्थान से मिले हैं जिनके दोनों ओर हनुमान की मूर्ति वनी है। यह कहना कठिन है कि ये किस राजा के सिक्के हैं। सम्भव है कि ये पृथ्वीदेव के सिक्के हों।[3]

---

[1] विंशेण्ट स्मिथ—काटलाग आफ क्वान्स इन दी इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता, पृष्ठ ३२७।

[2] उपरोक्त—प्लेट ३१ नं० १-८

[3] बालचन्द जैन—धनपुर होर्ड आफ कालचूरी क्वायन्स—जे० एन० एस० आई०—१८-१, १९५६, पृष्ठ ११२।

इस अध्ययन से यह पता लगता है कि मध्ययुग से हनुमान की रक्षक के रूप में उपासना होने लगी थी और उनकी मूर्तियाँ सिक्कों पर भी अंकित की जाने लगी थी। इनके संकटमोचन या संकटहरन स्वरूप ने लोगों को कदाचित् बहुत प्रभावित किया था।

कपि पूजन

सब से प्राचीन प्रमाण कपि पूजा का हमें मिश्र में मिलता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। यहाँ थोथ देवता कपि के रूप में पूजे जाते थे। इनका मस्तक हनुमान की भाँति कपि का था और शरीर मनुष्य का। वहाँ हनुमान की भाँति इनको भी वैयाकरण, लिपि का जन्मदाता तथा ज्ञान का सागर माना जाता था। इनको यूनानी अपने हरिमस देवता के समकक्ष मानते थे। इनका मंदिर अमरना के सामने पश्चिमी किनारे पर खनुनु स्थान पर था जो प्राचीन हरमोपोलिस के विविध धार्मिक कृत्यों का केन्द्र था। यहां पर रामजेज द्वितीय ने थोथ देवता का एक पाषाण का मंदिर भी बनवाया था जिसे अभी जर्मन लोगों ने खोद कर निकाला है।[1] इनकी मूर्तियां रामजेज द्वितीय के बनवाए हुए अबुसिनवेल के मंदिरों में भी मिली हैं। यह स्थान नुबिया में है यहां भूरे पत्थरों के पहाड़ों को जो नील नदी के किनारे पर हैं काट कर ये मंदिर बनाए गए हैं। अब ये मंदिर असवान बांध बनने के कारण अपने स्थान से हटाये जा रहे हैं। यहां की दो मूर्तियों में थोथ देवता अपने दोनों हाथ ऊंचा किए गए सूर्योपस्थान की मुद्रा में उकड़ू बैठे हुए हैं।[2] मिश्र के लोग कपि मात्र को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे क्योंकि थोथ देवता का मस्तक कपि का था।[3] थोथ देवता की दो लबादा पहिने हुए काँसे की छोटी मूर्तियाँ वियना के केन्द्रीय संग्रहालय में हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि इनकी पूजा जनता में बहुत प्रचलित थी।

थोथ देवता के पूजा की पद्धति जो कुछ थोड़ा-बहुत संकेत हमें प्राप्त होता है उससे यह पता लगता है कि इनके अपने मंदिर बने हुए थे इनमें पूजा के हेतु

---

१. सिविल आलड्रेड—दी इजिपशियन्स—टेम्स एण्ड हडसन—१९६३, पृष्ठ ४३।

२. लाइफ इण्टरनाशनल—खं० ३९ नं० १०, नवम्बर १५, १९६५, पृष्ठ २८।

३. अमेरिका के आन आरबर नगर में मिशिगन विश्वविद्यालय के संग्रहालय में बेनी हसन से प्राप्त एक भीत चित्र में हम पकी अंजीर खाते हुए देखते हैं जिससे ऐसा अनुमान होता है कि मिश्र में इनको कोई कष्ट नहीं देता था।

उनका पुजारी थे। पुजारी के अतिरिक्त किसी दूसरे व्यक्ति का मंदिर के गर्भ में प्रवेश निषिद्ध था। पुजारी भी मंदिर में प्रवेश के पूर्व अपने को पूर्ण रूप से शुद्ध कर के ही सेवा में जा सकता था। यह नहीं कहा जा सकता कि वह भारतीयों की भाँति पूर्ण रूप से स्नान कर के मंदिर में प्रवेश करता था अथवा केवल कपड़े बदल कर। सर्वप्रथम वह देवता के द्वार के बाहर से ही देवता को धूप अर्पित करता था। इसके पश्चात् वह मंदिर के द्वार पर लगी मोहर को तोड़ता था जो रात्रि के समय देवता को शयन कराने के उपरान्त लगा दी जाती थी। इसके पश्चात् वह गर्भगृह का ताला खोलता था। ताला खोलने पर वह देवता के समक्ष खड़ा होकर देवता की प्रार्थना करता था। तदुपरान्त वह देवता को स्नान करा के नये वस्त्र पहिनाता था। पुराने वस्त्र धुलने को चले जाते थे। इसके पश्चात् वह देवता को भोग लगाता था। यह भोग देवता के समक्ष रखी हुई अग्नि में आहुति के रूप में अर्पण किया जाता है। तब पुजारी देवता के समक्ष से बिना मुड़े हुए गर्भ गृह के बाहर आता था जिसमें उसकी पीठ देवता के समक्ष न पड़ जाय। गर्भ गृह के द्वार को पुनः बन्द कर के उस पर ताला चढ़ाता था और मोहर करता था। यह पूजा की विधि प्रातःकाल तथा सन्ध्या को दोनों समय पालन की जाती थी।[1] हेरोडोटस ने लिखा है कि देवताओं की नैमित्तिक पूजा त्योहारों को होती थी। प्रत्येक देवता के अलग-अलग दिन नियत थे। उस दिन इनकी शोभा यात्रा निकलती थी जिसे देखने को सारे नागरिक उमड़ पड़ते थे।[2] इन पर्वों पर लोग लीला भी रचाते थे जिसमें देवता से सम्बन्धित विशिष्ट घटनायें पात्रों द्वारा प्रदर्शित की जाती थीं जैसे हमारे यहाँ आश्विन में राम लीला में राम का या नृसिंह चतुदर्शी को प्रह्लाद का या वामन द्वादशी को वामन का चरित्र दिखाया जाता है। इन लीलाओं में अलग-अलग काम के हेतु अलग-अलग श्रेणियों के लोग काम करते थे जैसे पीछे चल कर बाइबिल से सम्बन्धित घटनायें 'पेजेण्ट' के रूप में योरप के मध्ययुग में या हमारे यहां की रामलीला की भाँति प्रदर्शित की जाती थीं। यह तथ्य एडफू के एक लेख में मिलता है। आज भी अफ्रिका के टोगोलाण्ड में कपि पूजा प्रचलित है तथा वहाँ बन्दरों को प्रतिदिन अपने भोजन का कुछ भाग लोग निकाल कर देते हैं।[3]

---

[1] पी० मोंते—ला वीय कोतेदियन्न आ इजिप्त ओ तांडे रांमवेज—पारी १९४६, पृष्ठ २०९ के आधार पर।

[2] हेरोडोटस—हिस्ट्री—२.६०।

[3] इनसाइक्लोपिडिया ऑफ रिलिजिन एण्ड एथिकस खं० १, एन० डब्लू टामस—अनिमल्स (१९०८)।

मिश्र के अतिरिक्त और कई प्राचीन सभ्यताओं से कपि मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। प्राचीन सुमेर के उत्तरी भाग में खाफाजे से लाजवर्द तथा चांदी की कपि मूर्तियों के प्राप्त होने[1] से ऐसा अनुमान किया जाता है कि सभ्यता के इस प्राचीन केन्द्र सुमेर में भी कपि पूजा होती थी। यहां देवताओं की पूजा पद्धति मिश्र की पूजा पद्धति से कुछ भिन्न थी। यहां भी देवताओं के अलग-अलग मंदिर बनते थे। इनकी पूजा के हेतु पुजारियों की अपनी एक श्रेणी थी। देवताओं की पूजा के एक-एक कृत्य के हेतु अलग-अलग पुजारी नियुक्त थे। देवता को प्रतिदिन तेल लेपन होता था, स्नान कराया जाता था, वस्त्र धारण कराया जाता था तथा भोग लगाया जाता था। भोग के हेतु एक ऊंची चौकी बनी रहती थी उसी पर भोग रख दिया जाता था। सन्ध्या के समय देवताओं के समक्ष गाना बजाना भी होता था जिसके हेतु अलग से गानेवालियां नियुक्त थीं जैसे भारत में देवदासियां। खाफाजे से कुछ कम प्राचीन कपि मूर्तियाँ बाबुल में भी मिली हैं।[2] जिससे इस धारणा की पुष्टि होती है कि सभ्यता के इस केन्द्र में भी कपि पूजा प्रचलित थी। ईरान के प्राचीन सूसा स्थान से एक कपि की पाषाण की मूर्ति प्राप्त हुई है।[3] तथा एक सुवर्ण की बालों की कटिया के मस्तक पर भी एक कपि की आकृति दिखाई देती हैं[4] इनसे यह अनुमान होता है कि प्राचीन ईरान में भी कपि पूजा प्रचलित थी परन्तु लेखों के अभाव में यह कहना कठिन है कि यहां पूजन विधि क्या थी। पीछे के काल की पकी मिट्टी की बनी कई कपि मूर्तियाँ टाइग्रिस नदी के किनारे के प्राचीन सेल्यूसिया नगर से प्राप्त हुई इसमें किसी के मस्तक पर टोपी है तो कोई बनादा तथा माला पहिने हुए हैं तो किसी के मुद्गल है, कोई के गले में केवल माला है तो कोई हंस पर सवार है और हाथ में डण्डा लिए हुए है इत्यादि। इन मूर्तियों पर एक प्रकार का चमकदार लेप लगा है।[5] इन्हें देख कर यह प्रतीत होता है कि ये मूर्तियां भी पूजा के हेतु बनाई गयी थीं तथा यहां कपि पूजा ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक चलती रही।

---

[1] एच० फ्रांकफोर्ट—इराक एक्सकवेशन्स, बुलिटन ऑफ अंरियण्टल इन्स्टिट्यूट, शिकागो—१९३२-३३, पृष्ठ ७१, फिगर ६१।

[2] एक्सकवेशन्स अयेट बाबिलान—पृष्ठ २३४।

[3] मेमुआर डेलेगांसियों आं पेर्स—टोम १३, प्लेट ३९, फिगर ५, ७।

[4] अण्टिक्वेरीज जनरल खं० ८, प्लेट ५६, फिगर २।

[5] विल्हेल्मिना वान इन्जेन—फिगरिम्स फ्रांम सिल्यूसिया आन टाइग्रिस—आन आरबर यनिवर्सिटी आफ मिशिगन १९३९—पृष्ठ ३३० ३१, प्लेट ७०—१५२८-१५३१ इत्यादि।

इसी प्रकार भारत में भी प्राचीन सिन्धु घाटी की सभ्यता के केन्द्र मोहनजुदाड़ो और हड़प्पा से 'फायन्स', 'विट्रियस पेस्ट तथा मिट्टी की बनी कई कपि मूर्तियां प्राप्त हुई हैं[1] जिनसे कपि पूजन की सम्भावना का अनुमान होता है। सिन्धु घाटी की लिपि अभी तक नहीं पढ़ी जा सकी इस कारण इस विषय में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है। यों बालों में लगाने की एक यहाँ की कटिया के मस्तक पर तीन बन्दर एक दूसरे को पकड़ कर बैठे हुए हैं[2] जिससे यह अनुमान होता है कि इनको श्रद्धा से देखा जाता था (फलक १क) अन्यथा मस्तक पर के आभूषण में इन्हें स्थान नहीं दिया जाता। यों ऐसा अनुमान होता है कि भारत में कपि पूजा वृक्ष पूजा के फलस्वरूप प्रारम्भ हुई। यह वृक्ष के नीचे एक पाषाण खण्ड रख कर की जाती थी[3] जिसका स्वरूप प्राय: वैसा ही रहता था जैसा बोधी वृक्ष के नीचे रखे हुए पाषाण का भारहुत में दिखाई देता है। इसी पर वृक्ष देवता को भोग अर्पित किया जाता था। मनुष्य अपनी सभ्यता के प्रारम्भिक काल में कदाचित् वृक्ष की ही पूजा करता रहा होगा क्योंकि इससे इसे खाने के हेतु फल, कपड़े के लिए पत्तियाँ तथा छाल, अस्त्र के लिए पेड़ की डाल मिलती थी। पीछे चल कर उसने वृक्षों में एक देवता की कल्पना कर ली होगी क्योंकि इसे ऐसा अनुभव हुआ होगा कि एक वर्ष तो वृक्ष अच्छा फल देता है और दूसरे वर्ष कम। इससे उसके अवैज्ञानिक मस्तिष्क ने यह कल्पना की होगी कि जब वृक्ष देवता प्रसन्न होते हैं तो पूरा-पूरा फल देते हैं और जब अप्रसन्न तब फल देते हैं या देते ही नहीं। इसी धारणा को लेकर उसने वृक्ष देवता की पूजा प्रारम्भ की होगी। वृक्ष पूजा का एक दृश्य हम खण्डगिरि की गुफा नं० ३ में देखते हैं। हमें इसमें कुछ उपासक वृक्ष की पूजा करते हुए दिखाए गए हैं।[4] इसके बहुत पूर्व के काल के वृक्ष देवता की पूजा का दृश्य मोहनजुदाड़ो की एक मोहर पर अंकित है इसमें एक उपासक जो कदाचित् पुजारी है हाथ

---

[1] माके—फरदर एक्सकवेशेन्स अयेट मोहनजदाड़ो—प्लेट ७८-४, प्लेट ८०-१, ३; माधो स्वरूप वत्स—इक्सकवेशेन्स अयेट हड़प्पा—प्लेट ७८-३५ इत्यादि।

[2] माके—फरदर एक्सकवेशेन्स—प्लेट १००-१३।

[3] अलेकजाण्डर कन्निघम—दी स्तूप आफ भमारहुत—प्लेट १४, प्रसन्नजित पिलर—इनरफेस।

[4] उदयगिरि खण्डगिरि—डिपार्टमेण्ट आफ आर्केआलाजी, नई दिल्ली, पृष्ठ १३।

जोड़े देवता के सम्मुख बैठा है उसके पीछे बलि-पशु है नीचे की ओर सात भक्त लोग खड़े हैं।[1] यह पूजा बौद्ध काल तक भी प्रचलित थी। इस युग में भी वृक्षों में रहने वाले देवता तथा वृक्षों पर मडराने वाले देवता की पूजा जनता में प्रचलित थी जैसा राइस डेविड्स ने लिखा है[2] इस देवता को, जिसे निब्बत्त देवता बौद्ध साहित्य में कहा है, उपासक पुत्र, पौत्र, ख्याति तथा धन की याचना करते थे और अपने भविष्य के विषय में जिज्ञासा करते थे[3] जनसाधारण को ऐसा विश्वास था कि जो इन पूजा के वृक्षों को हानि पहुँचाता है उसको दुःख प्राप्त होता है। कुछ इसी प्रकार की धारणा हमें महाभारत में भी प्राप्त होती है जहाँ यह कहा गया है कि चैत्य वृक्ष के पत्तों को भी नहीं तोड़ना चाहिए।[4] एक जातक में तो हम वृक्ष देवता से एक उपासक को दो व्यापारियों के आपसी झगड़े को सुलझाने की प्रार्थना करते पाते हैं।[5] वृहत् संहिता के काल तक वृक्ष देवता की प्राचीन पूजा की ध्वनि प्राप्त होती है जैसा हमें वराहमिहिर के (अध्याय ५८) में देवता की काष्ट की मूर्ति बनाने के हेतु वृक्ष को काटने के पूर्व वृक्ष देवता की अर्चना से पता लगता है।[6]

अर्चार्थम् मुखस्य त्वम् देवस्य परिकल्पितः।
नमस्ते वृक्षपूजेयम् विधिवत् सम्प्रगृह्यताम्॥१८॥

वृक्ष देवता की पूजा का जो स्वरूप हमें जातकों में तथा जैन ग्रंथों में मिलता है उसके अनुसार इन पर सुगन्धित द्रव्य जैसे चन्दन से थापा लगाया जाता था, फूल माला चढ़ाई जाती थी धूप अर्पित की जाती थी वृक्ष के चारों ओर दीपक जलाये जाते थे वृक्ष की परिक्रमा की जाती थी तथा वृक्ष के नीचे बली दी जाती थी।

---

१. जे० एन० बानर्जी—डवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी प्लेट ७ फिगर "बी"।

२. राइस डेविड्हं—बुद्धिस्ट इण्डिया—पृष्ठ २२७।

३. रतिलाल मेहता—प्री बुद्धिष्ट इण्डिया—पृष्ठ ३२६।

४. महाभारत—शांति पर्व—६९-४२, "चैत्यानाम् सर्वथा त्याज्यपि पत्रस्य पातनम्।"

५. ई० बी० कोवेल—जातक खं० १, पृष्ठ २५९, ४०४-४०५।

६. इसी प्रकार का मंत्र भविष्य पुराण के प्रतिमा विधान नामक १३१ अध्याय में तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण ३-८९ में भी मिलता है।

गन्धपंच अंगुलिकानि दत्वा मूल गंध धूपेहि पूजेत्वादीपाम जलेत्वा सुखम् भुयति वत्वा रूक्खपदक्खिनाम कत्वा पक्कमती।

(जातक नं० ३, पृष्ठ २३, ४, पृष्ठ ३१५)

दुम्मेद जातक में वृक्ष देवता के उपासक को जिन्हें 'देवता मंगलक' कहा है एक वट वृक्ष के नीचे मुर्गे, सुअर तथा बकरे के रक्त तथा मांस की वली देते देखते हैं।[1] वृक्ष देवता को तुष्ट करने के हेतु नर वली का विवरण एक दूसरे जातक में मिलता है[2] वृक्ष देवता का दर्शन हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता से ले कर अमरावती तक होता है।[3] ब्रह्म पुराण में हम पीपल वृक्ष को पिप्पलादि ऋषि को उनके वाल्यकाल में पालते देखते हैं।[4]

पिप्पलै पलितो यस्मात्पिप्पलादः स वालकः।११०-८१

वृक्ष देवता की पूजा आज भी भारत में होती है परन्तु इसे आज वहुत से स्थानों में वीर पूजा की संज्ञा दे दी गयी हैं और इसे यक्ष पूजा से जोड़ दिया गया है इसे जच्छ की या जच्छणी की जात भी कहते हैं इसमें वृक्ष पर थापा लगा कर वीर का आवाहन करते हैं जल से अर्घ देते हैं गंधाक्षत से पूजा की जाती है। लाल वस्त्र, सिन्दूर, ऐपन (हल्दी और चावल का घोल) माला, फूल, चढ़ाया जाता है। धूप दीप जलाए जाते हैं मिष्ठान्न तथा फल का भोग लगाया जाता है। पान का बीड़ा रक्खा जाता है तथा मुर्गे इत्यादि की वली दी जाती हैं। इसके पश्चात् नृत्य और संगीत होता है। वृक्ष देवता का दर्शन हमें भारतीय कला में सिन्धु घाटी की सभ्यता से लेकर उदयगिरि तथा अमरावती तक होता है।

यह सम्भव है कि वृक्ष देवता की पूजा के पश्चात् उपासकों के हटने पर वृक्षों पर रहने वाले वन्दर मिष्ठान्न, फल इत्यादि को खाते रहे हों जिसे देख कर उपासकों का यह अनुमान करना स्वाभाविक था कि वृक्ष देवता इस रूप में दर्शन देते हैं। इसी से सम्भव है कि कपि पूजा वृक्ष पूजा के साथ होने लगी हो। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि इन कपि पूजकों का अपना अलग पंथ चल पड़ा था जैसा पहिले लिखा जा चुका है परन्तु यह पंथ वृक्ष पूजा से पीछे

---

[1] उपरोक्त—खं० १, पृष्ठ २५९।

[2] उपरोक्त—खं० २, पृष्ठ १५७ तथा आगे।

[3] जे० न० बानर्जी—डवलपमेण्ट इत्यादि—प्लेट ८ फिग ५, उदयगिरि खण्डगिरि हारग्रीक्स—ए० एस० आइ० ए० आर० १९२१-२२, प्लेट २४, सी प्लेट ८, १।

[4] ब्रह्म पुराण—११० अध्याय ८१-८४।

चला होगा क्योंकि वृक्ष पूजा मनुष्य के उस प्राथमिक जीवन से सम्बन्धित ज्ञात होती है जब वह आखेट कर के अपना जीवन निर्वाह करता था और वृक्ष उसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे परन्तु पंथों की उत्पत्ति मनुष्य के सामूहिक जीवन से सम्बन्धित है इस कारण पंथ तो बाद में ही चले होंगे।

पहिले कदाचित वृक्ष देवता की जिन्हें यक्ष कहते थे पूजा प्रारम्भ हुई। यक्षों की पशु के रूप में पीछे कल्पना हुई. इसके पश्चात् इसे वीर पूजा से या विशिष्ट मत व्यक्ति की पूजा से जोड़ा गया। सम्भवतः यक्षों का प्राथमिक स्वरूप पशुओं का मान लिया गया जैसा इनके नामों से संकेत प्राप्त होता है।[1] भारहुत के अजकाल यखो कदाचित पहिले अज के रूप में, सुचिलोम यखो स्याही के रूप में, महाभारत का मच्छयक्ष[2] मत्स्य के रूप ले, साँची की अश्वमुखी यक्षिणी[3] अश्व के रूप में, अमरावती के हाथी के मुख यक्ष हाथी के रूप में[4], जैनों का गो मुख यक्ष वृषभ के रूप में पूजे जाते थे।[5] सम्भव है कि भारहुत का कुपिरो यखो जिसे कुवेर यक्ष कहा गया है कपिरो यक्ष हो जिसकी कपि के रूप में पहिले पूजा होती हो। पशु पूजा का संकेत आर० जी० भण्डारकर द्वारा प्रकाशित निद्देश के एक उद्धरण में भी प्राप्त होता है जिसमें कौआ, कुत्ता, घोड़े, हाथी इत्यादि के पूजन और देवताओं के पूजकों के साथ गिनाये गये हैं। पीछे चलकर यक्ष पूजा को कदाचित वीर पूजन से जोड़ा गया। इन यक्ष देवताओं का पहिले मस्तक पशु का तथा शरीर मनुष्य का बनाया गया फिर इनका स्वरूप विशाल काय मनुष्य का दिया गया जैसा मिश्र में हुआ। परन्तु यक्षों का सम्बन्ध वृक्ष देवता से नहीं छूटा। पीछे भी इन्हें वृक्षों में रहनेवाला या वृक्षों पर मंडरानेवाला कहा गया।[7] अमरावती से प्राप्त एक पाषाण खण्ड पर बड़ी-बड़ी आंखों वाले एक यक्ष की मूर्ति उत्कीर्ण है इस पाषाण खण्ड के लेख

---

१. जे० न० बानर्जी—उपर्युक्त पृष्ठ ३४९।

२. महाभारत—३, ८२; ९, ५२, २०८।

३. स्टेला क्रामरिश्रा—इण्डियन आर्ट थ्रू दी एँजेज प्लेट १४।

४. कुमार स्वामी—यक्षाज खण्ड १, पृष्ठ ७, प्लेट २३, फिगर १, वरजेल—अमरावती स्कल्पचर्स इत्यादि, प्लेट ३३-१।

४. जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त पृष्ठ ५६२।

५. उपरोक्त—पृष्ठ ३४२।

६. आर० जी० भण्डारकर—वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनयर रिलीजस सिसटम्स, पृष्ठ ३।

७. राइस डेविड्स—बुद्धिस्ट—इण्डियन पृष्ठ—२७२।

के अनुसार इस यक्ष का नाम चन्द्रमुख तथा जिस पेड़ में वह निवास करता था उसका नाम वकुल बताया गया है।[1] यह लेख प्रायः दूसरी या पहिली शताब्दी ईसा पूर्व का है। यह मूर्ति एक मंदिर में स्थापित दिखाई गयी है जो पेड़ के भीतर बना है। इसी के समकालीन भारहुत भी यक्षों की मूर्तियों के साथ वृक्ष उत्कीर्ण है। यहां विरुद्धक यक्ष पहाड़ पर खड़े दिखाये गये हैं इस पहाड़ के दोनों ओर वृक्ष उत्कीर्ण हैं। गंगिनो यक्ष का दाहिना चरण एक वृक्ष के ऊपर है[2] भारतीय कला में प्रायः यक्षिणियों की मूर्तियां वृक्ष की डाल को पकड़े हुए दिखायी गई हैं। महाभारत के अनुसार राजगृह के मुंजवट में यक्षणी का निवास बताया गया है जिसकी दूर दूर तक ख्याति थी[3] जैन अन्तगड दसाओं के अनुसार मोगरा पानि यक्ष की काष्ट की मूर्ति राजगृह नगर के वाहर एक वृक्ष के नीचे स्थापित थी[4] कुमार स्वामी तथा जे० एन० वानर्जी का भी यह मत है कि यक्षों की मूर्तियां प्रायः घने पत्तों के वृक्षों के नीचे ही स्थापित की जाती थी और यही उनके मंदिर थे[5] परखम यक्ष इत्यादि की मूर्ति के पीछे कोई पाषाण खण्ड नहीं है जिससे भी यही सिद्ध होता है कि इन्हें पेड़ के सामने खड़ा करते थे। प्राचीन भारतीय मुद्राओं तथा मोहरों पर बने वेस्टिका (रेलिंग) सहित वृक्ष भी कदाचित यक्षों के ही द्योतक हैं[6] ब्रह्मपुराण में एक यक्षिणी को पिप्पला अर्थात् पीपल में रहनेवाली कहा है—विश्ववासो स्वसा नाम्ना पिप्पला गुरुहासनी (अध्याय १३२-३) दूसरे स्थान पर इसी पुराण में समा नाम की यक्षिणी अशोक के पेड़ के सहारे अशोक की शाखा पकड़े वर्णित है—

> मृगीरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी।
> दिव्य रूपं समास्थाय चाशोक तरु संविधौ।

---

१. शिवराम मूर्ति—अमरावती स्कल्पचर्स—पृष्ठ ८२, यखो चदमुखो वकु (ल) निवासी; जे० एन० बानर्जी—वही—प्लेट १३-२।

२. जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ ३४२।

३. महाभारत—३, ८३, २३, ३, ८४-८५।

४. जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ २११।

५. उपरोक्त—पृष्ठ ३४१; कुमार स्वामी—यक्षाज खण्ड १, पृष्ठ १८।

६. जे० एन० बानर्जी—वही—पृष्ठ ४, १४८ वृक्ष चैत्य; एन० जे० मजुमदार—एक्सकवेशन्स एट नन्दन गढ़—ए० एस० आई० ए० आर० १९३ ६-३०, पृष्ठ ४९। प्लेट २४-६।

तच्छाखालम्बित करा दिव्य गन्धानुलेपना।
दिव्य रूपं वरा तन्वीं कृत कार्यं समातदा:

(ब्रह्म० १०८–३७-३८)

आज भी भारत की बहुत सी आदिवासियों की जातियों का ऐसा विश्वास है कि यक्ष वृक्षों में निवास करते हैं। मध्य प्रदेश के बैगा लोगों में जो मण्डला जिले में रहते हैं यह विश्वास है कि उनके 'बूढ़ा देव' सज वृक्ष में रहते हैं। बस्तर राज्य के मन्त्रा लोगों के 'माटी देव' प्रत्येक गांव में अलग-अलग वृक्षों में निवास करते हैं। भुजिया लोग जो रायपुर जिले में रहते हैं वे वृक्ष में रहनेवाले यक्ष को मुर्गा चढ़ाते हैं। खैरवार लोग जो बिलासपुर, सरगुजा तथा विंध्य पर्वतों पर रहते हैं एक भैंसा प्रत्येक तीन मास पर एक बगीचे में अपने यक्ष को चढ़ाते हैं। इसी प्रकार मध्य प्रदेश के निहल लोग झखण्डी नामक यक्ष की चैत्र में पूजा करते हैं।[1] आज भी मथुरा के आसपास जख्ख तथा जख्खिनी की जात निकलती है, यह पूजा प्रायः वृक्षों के नीचे होती है। काशी में लहुरावीर अर्थात छोटा यक्ष, ड्योढ़िया-वीर अर्थात ड्योढ़ा बड़ा यक्ष, बड़ा देव अर्थात् बड़ा यक्ष के चौरे वृक्षों के नीचे बने हुए हैं। इसी प्रकार के भारत के और भी नगरों में यक्षों के स्थान बने हुए हैं जो वृक्षों के नीचे हैं और जहां ग्रामीण स्त्रियां यक्ष पूजा करती हैं।

इस प्रश्न पर इस प्रकार विचार करने से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में वृक्ष पूजन, पशु पूजन तथा वीर या विशिष्ट मृत व्यक्तियों की पूजा तीनों प्रचलित थीं। पशु पूजा मनुष्य ने अपने जीवन के उस काल में प्रारम्भ की जब वह आखेट करके उदर पोषण करता था। उसका ऐसा विश्वास था कि यदि पशुओं की पूजा की जाय तो उनकी संख्या बढ़ेगी। इसी धारणा से प्रेरित होकर वह इन पशुओं के चित्र अपने रहनेवाली गुफाओं की भीतों पर बनाता था। इस पशु पूजा से कपि पूजा को जोड़ना कठिन है क्योंकि इनके चित्र भीतों पर कहीं नहीं मिले हैं और इनका मांस भी मनुष्य को कभी रुचिकर नहीं हुआ। मनुष्यों की भांति इनका शरीर होने से आज भी इनका मांस उपयोग में नहीं लाया जाता। सहज भीरु होने के कारण मनुष्य इनसे डरता भी नहीं था जिससे इनका आखेट करता। यों ये मनुष्य के जंगली जीवन में सहायक अवश्य रहे होंगे क्योंकि वानरों की यह प्रवृत्ति है कि किसी हिंसक पशु को दूर से आता हुआ देख कर चीं चीं करने लगते हैं। इस कारण कपि पूजा तो वृक्ष पूजा से ही जोड़ी जा सकती

---

[1] ट्राइब्स आफ मध्यप्रदेश—डिपार्टमेण्ट आफ ट्राइबल वेल्फेयर—गवर्नमेण्ट आफ मध्य प्रदेश, भोपाल १९६४, पृष्ठ ७, १४, २२, २३, ४१, ५९, ६३ ।

है। ऐसा सम्भव है कि पहिले वृक्ष देवता की पूजा से कपि पूजा प्रारम्भ हुई और जब पशु मस्तक वाले यक्षों को इस वृक्ष देवता से सम्बन्धित कर दिया गया तो कपि के सिर वाले पुष्ट शरीरवाले महावीर हनुमान का पूजन यक्ष के रूप में प्रारम्भ हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि इनका सबसे प्राचीन नाम महावीर या इनकी आकृति को देखकर आर्यों ने इनका नाम वृषाकपि दिया, आदिवासी इन्हें आज मण्डी कहते थे पीछे चलकर इनका नाम हनुमान दिया गया।

पशु रूपी देवताओं की पूजा सभी प्राचीन धर्मों में दिखाई देती है जैसे मिस्र, सुमेर, बाबुल, चीन भारत इत्यादि। आज भी हम देखते हैं कि भारत में शीतला देवी की पूजा में मिट्टी के घोड़े चढ़ाये जाते हैं तथा कार्तिक कृष्ण अष्टमी के दिन जिसे हम अहोई अष्टमी कहते हैं सिहाओ का पूजन उत्तर भारत में वैश्य परिवारों में होता है जो कदाचित् प्राचीन पशु पूजा से सम्बन्धित है। पीछे चल कर प्राचीन मिश्र की भांति हमारे यहां के कई देवताओं के मुख या शरीर पशुओं के बनाये गये। हमारे यहां के गणेश हाथी के मुख के हैं, गरुड़ का मुख तथा हाथ मनुष्य का और शरीर पक्षी का है।[1] शेषनाग का ऊपर का आधा धड़ मनुष्य का तथा आधा नाग का है।[2] वाराह का मस्तक और मुंह सूअर का तथा शरीर मनुष्य का है। नरसिंह का मस्तक, मुख तथा हाथ के पंजे सिंह के हैं, मत्स्य भगवान का ऊपर का धड़ मनुष्य का तथा नीचे का मत्स्य का तथा कूर्म देवता का भी ऊपर का भाग मनुष्य का तथा नीचे का धड़ कूर्म का है।[3]

इस प्रकार भारतीय आदिवासियों ने कपि पूजन से कपि के रूप में यक्ष की पूजा करना प्रारम्भ किया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हनुमान में वे सभी गुण उपस्थित थे, जो यक्षों में प्रतिपादित किये जाते थे। इनका मुख बन्दर का है शरीर मनुष्य के समान तथा पूंछ वृषभ की भांति लम्बी है तथा अन्त में लम्बे बाल हैं जैसा कुछ रूप यक्षों का ऊपर वर्णन किया गया है। वैश्रवण की भांति[4] इनके हाथ में

---

[1] चन्द्रगुप्त के चाँदी के सिक्कों पर—जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त प्लेट १०-४।

[2] जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ ३४९, शिल्परत्न—टी० ए० जी राओएलिमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी—नागानाम् वक्ष्यते रूपम् नाभेऊर्ध्वम् नराकृतिः सर्पाकारम् अधोभ्याम् द्विजित्वास्ते विद्यातव्याः खड्गचर्मकरैर्युताः।

[3] वृन्दावन भट्टाचार्य्य—इण्डियन इमेजेज—प्लेट ८, फिग ३, १, २।

[4] मय संग्रह के आधार पर हेमाद्रि के चतुर्वर्ग चिन्तामणि खं० २,

भी गदा है तथा वैश्रवण के ही भांति इनके पैर के नीचे राक्षस अंकित किया जाता है उत्तर भारत में यक्षों की मूर्तियां प्रायः सिंधूर से रंगी हुई मिली हैं जो कदाचित इनके वृक्ष देवता के स्वरूप में पूजन का द्योतक हैं क्योंकि वृक्ष पूजा में वलि पशु का रक्त वृक्षों पर चढ़ाया जाता था। इसी प्रकार हनुमान को भी सिन्धूर से रंगते हैं। यक्षों की भांति[1] हनुमान की मूर्तियों में भी इन्हें कुण्डल तथा ग्रैवेयक से अलंकृत दिखाया जाता है। यक्षों को हम उत्तरीय ओढ़े देखते हैं जैसे हनुमान को। इसी प्रकार हनुमान के पिता वायु को भी विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इन्हें अपने दोनों हाथों से उत्तरीय पकड़े हुए बनाने का विधान है[2] यक्षों को अथर्ववेद में इतरेजनाः कहा है परन्तु अथर्ववेद की पैप्पलाद शाखा में इन्हें पुन्यजनाः कहा है[3] वैदिक यक्ष शब्द यक्ख से वना है जिसका अर्थ होता है शीघ्रता से जानेवाला, पाली में यक्ख वह है जिसके अर्थ या जिसे तुष्ट करने के हेतु अथवा शांत करने को वली दी जाती है।[4] कदाचित् वृषाकपि को वली दी जानेवाली वात यक्ष पूजन से ही सम्वन्वित हो। हनुमान भी वड़े शीघ्रगामी थे इस प्रकार भी इनको यक्ष गाना जा सकता है। कुमार स्वामी का यह विचार है कि यक्ष शब्द अनार्य है इसी प्रकार हनुमान शब्द भी अनार्य है जो कदाचित आणमण्डी शब्द से वना है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। हमारे यहां हिन्दू धर्म के व्यान्तर देवताओं की श्रेणी में यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, विद्याधर इत्यादि आते हैं परन्तु जैन व्यान्तर देवताओं में पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम् पुरुष महोराग (नाग) और गन्धर्वों का वर्णन है। जैनों ने हनुमान को यक्ष नहीं माना है परन्तु इन्हें विद्याधर कहा है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। इससे भी यह ज्ञात होता है कि इन्हें व्यान्तर देवताओं में माना जाता था चाहे इन्हें विद्याधर ही कहा गया हो। रुद्र से महा परिषदों में यक्षों का भी नाम आता है और यहीं रुद्र के कई ऐसे परिषदों का भी वर्णन है जिनके मुख पशुओं के समान वताये गये हैं।[5] इससे क्या यह सम्भव नहीं है कि हनुमान की गणना भी यक्षों में थी। इन्हें शिव का अवतार तो पीछे के

व्रतखण्ड—खं० १, पृष्ठ १३८, तुण्डिला द्विभुजाकार्य्यानिधि हस्ताः मदोत्कटाः। गदी वैश्रवणः......।

[1] जे० एन० बनर्जी—उपर्युक्त—पृष्ठ १५१, ३५८।

[2] विष्णु धर्मोत्तर पुराण—५८, ५५, १-६।

[3] जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ ३३७।

[4] राइस डेविड्स—तथा स्टेड—पालीइंगलिश डिक्सनरी—यक्ख।

[5] जे० एन० बानर्जी—उपरोक्त—पृष्ठ ३५६।

साहित्य में माना गया है जो इस ओर संकेत तो करता ही है। यों यक्षों को उत्पन्न करने की शक्ति सम्पन्न माना जाता है और हनुमान से भी पुत्र प्राप्ति की प्रार्थना की जाती है। यक्षों की भांति[1] हनुमान में भी रूप बदलने की शक्ति का प्रतिपादन वाल्मीकि ने किया है तथा आश्चर्यचकित करनेवाली घटनायें जैसे समुद्र लंघन, औषधि के पर्वत को लाना बिल्कुल यक्ष कथाओं की भांति ज्ञात होती हैं। यक्षों को रामायण में अमर माना है "यक्षत्व अमरत्वम् च'[2] और इसी प्रकार हनुमान को भी अमर होने का रामायण में वरदान प्राप्त होता है जैसा पहिले लिखा जा चुका है। वीर शब्द यक्षों का द्योतक माना गया है और हनुमान का नाम महावीर है यह भी इनके यक्ष होने के पक्ष में है इनकी पूजा भी दो प्रकार से होती है एक मूर्त रूप में और दूसरे मिट्टी का ढूहा बना कर जैसे यक्षों की।[3]

यक्ष पूजन का स्वरूप प्रायः वही रहा होगा जो आज भी है। इन्हें सर्वप्रथम जल चढ़ाया जाता है उसके पश्चात् लाल वस्त्र तब सुगन्धित चन्दन और पुष्पमाला इसके पश्चात् धूप दीप और नैवेद्य अर्पित होता है। नैवेद्य में बली दी जाती है तथा मदिरा चढ़ाई जाती है। पान का बीड़ा रक्खा जाता है तथा झण्डी चढ़ाई जाती है। इनको प्रसन्न करने के हेतु गाना बजाना होता है। हनुमान की यक्ष रूप में पूजा इसी प्रकार होती है परन्तु इन्हें वैष्णवी रूप में बली नहीं दी जाती न मदिरा अर्पित होती है। जैन ग्रंथों में भी यक्ष पूजन का कुछ ऐसा ही विधान मिलता है।[4]

कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि कपि पूजक आदिवासियों की एक जाति विशेष थी जो अपने मुकुट पर वानर चिन्ह धारण करती थी तथा पूंछ भी लगाती थी जैसे आसाम की अपेलनी जाति है जिसमें पुरुष पूंछ धारण करते हैं। जैनों में वानर वंश की कल्पना भी कुछ इसी प्रकार की ज्ञात होती है पीछे की हनुमान की कथा इसी प्रकार के किसी आदि जाति के विशिष्ट देवता की कथा ज्ञात होती है। इस जाति के लोग वनचर होने के कारण वानर कहे गये। ये स्ट्रोलाइड या नीग्रो जाति के थे और जिनकी आकृति को देख कर वानरों का

---

१. ब्रह्म पुराण—अध्याय १०८-३७।
२. वाल्मीकि रामायण—३, ११, ९४।
३. वासुदेव शरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक धर्म—ज्ञानोदय ट्रस्ट, हमदाबाद १९६४, पृष्ठ १३३।
४. यू० पी० शाह—जैन आइकोनोग्राफी-पृष्ठ ६८।

भ्रम होता था इनमें आर्य संस्कृति का प्रवेश हो चुका था परन्तु इनके आयुध वही प्राचीन वृक्ष तथा पाषाण ही थे।[1]

---

[1] वी० आर० ए० दिक्षितार—साउथ इण्डिया इन दी रामायण—प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रान्जाक्सन्स आफ दी सेविन्थ आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेंस, दिसम्बर १९३३, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा, १९३५, २५१।

भारत के आदिवासियों में कपि पूजन

भारत के आदिवासियों में ऐसी कई जातियां हैं जो अपने को वानर वंश का ही मानती हैं। तिब्बत के निवासी यह विश्वास करते हैं कि वे वानरों से उत्पन्न हैं।[1] कदाचित् जो चोटी यहाँ के स्त्री पुरुष रखते हैं वह इसी प्राचीन परम्परा से पूंछ के स्थान पर धारण की जाती है। इसी प्रकार मद्रास के वनजारे अपने को सुग्रीव का वंशज बताते हैं तथा कहते हैं कि ये सुग्रीव वे ही वानरराज थे जिन्होंने राम की सहायता की थी,[2] कुछ कन्नड़ भाषाभाषी स्थानिक राजा वाली से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं[3] महाराष्ट्र की कुछ जंगली जातियों में हनुमान की पूजा होती है इन्हें यहां मारुति कहा जाता है। महाराष्ट्र के कृषकों में ये शक्तिशाली देवता माने जाते हैं[4] यह पूजा इनके कपिरूप के कारण होती है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में वरही जाति में पांचोपीर, देवी, दूलह देव, विदहा देव[5] के साथ महावीर की भी पूजा होती है आश्विन के मास में इनकी विशेष पूजा होती है और इन्हें हलुआ, मालपूआ, चना और लड्डू भोग लगाया जाता है।[6] इसी प्रकार उत्तर प्रदेश के दक्षिण मिर्जापुर के वारी जातिवाले हरडीह देवी और हरदौल लाला की पूजा के साथ महावीर की भी पूजा करते हैं।[7] महावीर को ये मुरैठा, (साफा) लंगोटी अर्पित करते हैं और रोट तथा मिठाई भोग लगाते हैं।[8] केवल वे वारी जो दूसरों का जूठा नहीं खाते वे ही महावीर की पूजा के

---

१. दिनेशचन्द्र सेन——बंगाली रामायण, पृष्ठ ४३।

२. डब्लू क्रुक——दी ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज एण्ड औध खण्ड १, कलकत्ता——१८९६, पृष्ठ १५७।

३. डी० डी० कोशाम्बी——मिथ एण्ड रिअल्टी, पृष्ठ ११।

४. उपरोक्त——पृष्ठ ९०, १४३।

५. पांचोवीर से मुसलिम काल में पाँचों पीर हो गया। ये सब यक्ष तथा यक्षिणी हैं जिनकी पूजा भारत में बहुत प्राचीन काल से होती आती है।

६. डब्लू क्रुक——उपरोक्त, पृष्ठ १९३।

७. डब्लू क्रुक——उपरोक्त, पृष्ठ २०३।

८. उपरोक्त——पृष्ठ २१५।

अधिकारी समझे जाते हैं। इनकी पूजा श्रावण तथा आश्विन में होती है। वार-वार चोरों की एक जाति मिर्जापुर में पहिले रहती थी। ये लोग जो चुरा कर लाते थे उसे अपने वनिये के यहां जिसे ये सहुआ कहते थे रख देते थे यही इनका बँटवारा करता था इसमें से सवा फीशत महावीर के हेतु सवा फी शत वाला पीर या बालावीर और सवा फी शत देवी जी के हेतु पहिले ही निकाल कर तव बँटवारा होता था इससे यह पता लगता है कि ये भी महावीर के भक्त थे।

मध्यप्रदेश की आदिवासियों की कमर जाति में और देवताओं के साथ महावीर की पूजा बहुत प्रचलित है। इनके यहां माता, कुरदेव, महादेव की भी पूजा होती है। यह जाति अभी भी रायपुर जिले के धमतरी तहसील के अन्तर्गत सुअरगढ़, वगरी तथा सिहावा में निवास करती है ये लोग कुछ खेती करते हैं परन्तु अधिक संख्या में आखेट करके, मछली मार कर तथा दौरी बना कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनकी जनसंख्या सन् १९६४ में प्रायः ११७९५ थी।[1] हनुमान जी की ही भांति राजा पन्था की मध्यप्रदेश के भील लोग पूजा करते हैं। भीलो का विश्वास है कि ये अद्वितीय वीर हैं और जादू के महान ज्ञाता हैं। इनकी जनसंख्या १२,२४,५६५ के आसपास १९६४ में पायी गयी थी।[2]

आदिवासी विर्होर जाति की रामकथा में राम से हनुमान के मिलन का प्रसंग वड़े विचित्र ढंग से दिया है इस कथा के अनुसार जब राम तथा लक्ष्मण सीताहरण के पश्चात् सीता को वन में खोज रहे हैं उस समय हनुमान अपनी माता के गर्भ में हैं। वहीं से राम को पहिचान कर वे चिल्ला पड़ते हैं, "दादा ठहरिये मैं आपके साथ चलना चाहता हूँ" और तुरन्त ही वे जन्म लेते हैं तथा राम और लक्ष्मण के साथ चल देते हैं।[3]

विर्होर रामकथा में समुद्र लंघन के समय राम द्वारा चलाये हुए बाण पर समुद्र के मध्य में विश्राम करते हैं। इसी रामकथा में हनुमान सुग्गे का रूप धारण करके लंका में प्रवेश करते हैं। इन लोगों के विवरण के अनुसार सीता अपने को रावण के बलात्कार से बचाने के हेतु जादू से अपने सारे शरीर में भयंकर फोड़े उत्पन्न कर लेती हैं। हनुमान इन्हें इसी अवस्था में देखते हैं। समुद्र पार उतरने

---

[1] दी ट्राइब्स ऑफ मध्यप्रदेश—डिपार्टमेण्ट ऑफ ट्राइवल वेलफेयर गवर्नमेण्ट आफ मध्यप्रदेश, भोपाल १९६४, पृष्ठ ३८, ये ठाकुर देव तथा महादेव की भी पूजा करते हैं।

[2] उपरोक्त—पृष्ठ १५-१७।

[3] बुल्के—रामकथा—पृष्ठ ४६८।

के समय हनुमान अपनी पूंछ बढ़ाते हैं तथा राम और लक्ष्मण उसी पर समुद्र पार करते हैं।[1] इस कथा में कुम्भकरण द्वारा लक्ष्मण के आहत होने का विस्तृत वर्णन मिलता है।[2] तथा रावण की मृत्यु के पश्चात् तब कुम्भकरण का वध होता है।[3] यहीं यह भी कथा मिलती है कि रावण का जीव उसके महल में एक मंजूषा में बन्द है उसे हनुमान तथा लक्ष्मण जाकर मुक्त कर देते हैं।[4]

संथाल लोगों में जो रामकथा प्रचलित है उसमें भी हनुमान का स्वरूप हमारे समक्ष एक दूसरे रूप में उपस्थित होता है। इनकी राम से प्रथम भेंट के विषय में यहां यह कथा मिलती है कि ये तरबूजों की रक्षा कर रहे थे उसी समय लक्ष्मण वहां पहुँच गये वे वहाँ से एक तरबूज लेना चाह रहे थे जिस कारण लक्ष्मण तथा हनुमान में युद्ध हुआ। अन्त में हनुमान राम तथा लक्ष्मण दोनों को तरबूज खिलाया हैं।[5] राम तथा हनुमान के युद्ध की चर्चा भावार्थ रामायण में भी आयी है परन्तु इसका रूप कुछ दूसरा है।[6] संथाल रामकथा में समुद्र लंघन के समय राम एक बाण चलाते हैं उसी पर हनुमान समुद्र के पार जाते हैं लंका दहन के पश्चात् हनुमान सीता के कहने पर अपने मुख से अपनी पूंछ बुझा लेते हैं जिससे इनका मुंह जल जाता है। इस पर ये सीता से बड़े दुःखी होकर कहते हैं कि उनके जाति वाले उनकी हँसी उड़ायेंगे इस पर सीता कहती हैं कि सभी वानर कृष्णमुख हो जायेंगे।

उरांव नामक आदिवासियों में जो अपने को रावण का वंशज घोषित करते हैं लंका दहन के विषय में जो कथा प्रचलित है वह इस प्रकार है कि रावण ने हनुमान की पूंछ में बांधने के हेतु प्रजा के सब कपड़े ले लिये थे इस कारण आज भी उसके वंशजों के पास तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता।[7]

असुर नामक आदिवासियों की जाती में भी लंका दहन की कथा प्रचलित है। इसके अनुसार "असुर वीर अपनी पत्नी के साथ लोहा गला रहा था। हनुमान

---

१. बुल्के—राम कथा—पृष्ठ ५४६

२. वही—पृष्ठ ५७१

३. वही—पृष्ठ ५७२

४. वही—पृष्ठ ५८६

५. वही—पृष्ठ ४६६।

६. भावार्थ रामायण—४, १।

७ आर० वी० रसेल—ट्राइबस एण्ड कास्ट्स ऑफ सेण्ट्रल प्राविंसेज ऑफ इण्डिया—लन्दन १९१६ भाग ४, पृष्ठ ३२०।

ने पास आकर उस लाल लोहे को खाना चाहा। इस पर उसने इन्हें भगाने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु जब ये न माने तो इनकी पूंछ में छिपाकर कपास बांध दिया और उसकी पत्नी ने उस पर तेल डाल दिया तथा आग लगा दी इस पर उन्होंने बहुत उछल कूद किया और लंका पहुँच कर उसे भस्म कर डाला। पीछे चल कर किसी पेड़ से रगड़ कर उन्होंने अपनी पूंछ बुझा ली।[1]

मैथिल लोकगीत में हनुमान का समावेश राम कथा के साथ ही हुआ है। एक गीत इस प्रकार है[2]—

प्रथम मास अषाढ़ हे सखि राम अजहुं न आवहीं।
लषण के संग विकल है सखि सिया अति दुख पावहीं।
मातु कोशिला करत आरती सावन मोहि न भावती।
कैकेयी गुण गायव है सखि जिय अति समुझावहीं।
भादँव हे सखि रइनि भयावन लछमन धनुष चढ़ावहीं
दामिन दमके मेघ बरसे राम दरस देखावहीं।
आसिन में सियाहरण हे सखि राम अति दुख पावहीं।
अंजनिसुत हनुमान हे सखि प्रीत बहुत लगावहीं।
कार्तिक के असनान हे सखि तीर्थव्रत न भावहीं।
विकल देखि सुग्रीव हे सखि प्रीत से उर लावहीं।
अगहन में सिया बक हे सखि लंकपुर में छावहीं।
उतर निशाचर घोर हे सखि वानर भालु डरावहीं।

....

बइशाख में हनुमान हे सखि लंकगढ़ झहरावहीं।
जारि लंका भस्म कैलन्हि राज विभीषण पावहीं।
जेठ में सिया भेंट हे सखि राम अति सुख पावहीं।

इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कपि पूजा आज भी भारत में किसी न किसी रूप में प्रचलित है। काल के प्रभाव से अब हनुमान ने कपि का स्थान ले लिया है परन्तु अभी भी आदिवासियों की देवी की भांति इनको सिंदूर से आच्छादित किया जाता है। सिंदूर लगाना उस प्राचीन प्रथा का प्रतीक है जिसके अनुसार यक्ष यक्षिणियों की पूजा के पश्चात् बली देकर पशु रक्त से मूर्ति

---

[1] वही—पृष्ठ ५४६।

[2] रामइकबाल सिंह राकेश—मैथिली लोकगीत—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९९ पृष्ठ ३९५।

को नहला दिया जाता था। जैसा पहिले लिखा जा चुका है। आज भी नैपाल में हनुमान को भैंसे की बली दी जाती है।

हनुमान की मूर्ति की प्रतिष्ठा तथा पूजा के हेतु निर्धारित पद्धतियों में एक सरस्वती भवन के एक हस्तलिखित ग्रंथ में प्राप्त होती है।[1]

इसी सम्वन्ध का एक दूसरा हस्तलिखित ग्रंथ भी सरस्वती भवन में है। इसका नाम हनुमत्प्रतिष्ठा विधि है, यह वैष्णव पंचरात्र पद्धति का ग्रथ है।[2]

आज हनुमान की साधारण वैष्णवी पूजा में जो उत्तर भारत में होती है जल से स्नान कराया जाता है सिन्दूर लगाया जाता है, वस्त्र पहिनाया जाता है जिसमें प्रायः कोपीन तथा उत्तरीय रहता है, फूल माला चढ़ाई जाती है, धूप दीप अर्पित की जाती है, भोग में वेसन का लड्डू तथा फल रहता है। पान-सुपाड़ी इनके समक्ष रखा जाता है कपूर से आरती की जाती है तथा इनकी स्तुति की जाती हैं।

दक्षिण के कुछ मदिरों में हनुमान की काली पत्थर की मूर्ति वनाई जाती है जैसे सुचिन्द्र की हनुमान की मूर्ति तथा त्रिवान्दरम की मूर्ति। त्रिवान्दरम की मूर्ति के मुख और ग्रीवा पर प्रतिदिन मक्खन का लेप किया जाता है। यहां आश्चर्य की वात यह है कि गरमी में भी यह मक्खन पिघलता नहीं, दिन भर लगा रहता है। सुचिन्द्रम की मूर्ति के मस्तक पर रामानुजी टीका लगाया जाता है इसी प्रकार मद्रास के जिला सालेम नामक्कल के हनुमान के मस्तक पर भी ऐसा ही टीका लगाया जाता है। दक्षिण में इनको पीताम्वर तथा लम्वा उत्तरीय धारण कराया जाता है। इनकी अर्चना के मंत्र भी उत्तर भारत के मंत्रों से संस्कृत में होते हुए भी अलग हैं।

प्रायः आज इनकी पूजा राम के अनन्य भक्त के रूप में, वाल ब्रह्मचारी, अमित शक्ति-सम्पन्न, संकट मोचन, वांछित फलों के दाता के रूपों में की जाती है। इनकी तान्त्रिक पूजा की पद्धति अलग है जिसका कुछ विवरण दिया जा चुका है। यह पूजा अति उग्र समझी जाती है और प्रायः आजकल इसका प्रचार कम है। लांगूलोपनिषद् में कुछ तांत्रिक मत्रों का संग्रह है जिससे इनकी अर्चना होती

---

[1] हनुमत्प्रतिष्ठा प्रकारः (पंचरात्रोक्तः)—हस्तलिखित सरस्वती भवन नं० ४३०५७।३२५७ लिपि—देवनागरी—आकार ८४, परिशिष्ट ग।

[2] हनुमत्प्रतिष्ठाविधिः—सरस्वती भवन—३९९६२।१८६८—आकार ८, ३, २, लिपि—देवनागरी, परिशिष्ट ग।

है। इन मत्रों में इनको एकादश रुद्रावतार, कुमार ब्रह्मचारि, भूत-प्रेत-पिशाचों का उच्चाटक. सर्व ज्वरों का विनाशक तथा सर्व शूलों का उन्मूलक माना है। इन शूलों में एक बांझपन है जिसको दूर करने को भी तान्त्रिक प्रयोग किये जाते हैं।[१] तुलसीदास जी ने भी इन्हें विनय पत्रिका में संकट विमोचन मूरति मोद-निघान की कहा है।[२] इनकी तांत्रिक पूजा पद्धति प्राचीन यक्ष पूजा की भांति ही है तथा उसी का विकास प्रतीत होती है। यह भी विचारने की बात है कि उनका संकट मोचन स्वरूप पहिले यक्षों के संकट हरण स्वरूप से बिलकुल मिलता हुआ है। तांत्रिक पूजा जो आज उनकी नैपाल के हनुमान गोडा में होती है उसमें इन्हें सुगन्धित फूलों की मालायें चढ़ाई जाती हैं इनके समक्ष धूप दिया जाता है तथा दीप प्रज्वलित किया जाता है। मांस मदिरा का भोग लगता है तथा मुद्रा दिखाई जाती है। इनका यंत्र सामने रख कर उस पर पूजा होती है तथा इनका मंत्र 'हौं हंस्फ्रे, स्फ्रें हस्रौं हस्खे हौं हनुमते नमः जपा जाता है। इनके मंत्र की पहिली पंक्ति में १, ८, ४५, ५० अंक दूसरी में ४७, ४८, ३, ६ तीसरी में ७, २, ५१, ४४ अंक रहते हैं नेपाल की मूर्ति पंचमुखी है।

---

[१] बुल्के—रामकथा पृष्ठ ६८६।

[२] तुलसीदास—विनय पत्रिका—३०-४।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि भारत में भी मिस्र की भांति बहुत प्राचीन काल से कपि पूजा होती थी परन्तु यहां इसका प्रारम्भ सम्भवतः वृक्ष पूजा से हुआ। यह वृक्ष पूजा प्रायः किसी वृक्ष के नीचे की जाती थी।[1] वृक्षों के नीचे एक पाषाण खण्ड रख दिया जाता था[2] उसी पर उपासक लोग भोग चढ़ाते थे फूल माला इत्यादि तो वृक्ष पर ही चढ़ाई जाती थी। ये वृक्ष प्रायः न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष तथा अशोक ही होते थे। इन वृक्षों पर रहनेवाले कपि इस भोग को उपासकों के हटने के पश्चात् खाते रहे होंगे। इससे वृक्ष पूजकों के मन में इस भावना का जागना कि वृक्ष देवता कपि के रूप में प्रकट होते हैं और फिर अदृश्य हो जाते हैं स्वाभाविक था। इनकी स्वतन्त्र रूप से पूजा इनमें देवत्व की स्थापना करके की जाने लगी होगी। कदाचित् इन्हीं वृक्ष देवता को पीछे चल कर यक्ष कहा जाने लगा होगा[3] जैसा कपि पूजन अध्याय में बताने का प्रयत्न किया गया है। यक्ष पूजा सुगन्धित द्रव्य, मद्य, मिष्ठान्न इत्यादि से की जाती थी तथा इनको प्रसन्न करने के हेतु नृत्य तथा गान होता था।[4] यह जन विश्वास था कि यक्ष इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं जब उनकी जैसी इच्छा हुई उसी रूप में ये दर्शन देते हैं। इस सामर्थ्य का आरोप कपियों में भी इनका यह रूप देने के पश्चात् किया गया होगा जिस कारण से हनुमान तथा अंजना को कामरूपिणी कहा गया है। जनता का भी यह विश्वास था कि यक्ष पूजा से सब मनोकामनायें पूर्ण होती हैं तथा ये सारे संकटों का निवारण कर सकते हैं और कहीं से कहीं जा सकते हैं। ये शक्तियां भी इनमें आरोपित की गयी होंगी। हनुमान की पूजा मूर्त रूप के अतिरिक्त यक्ष रूप में आज भी होती है जैसा अग्रवाल जी ने

---

[1] फरगूसन—ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप—पृष्ठ २४४—कुमारस्वामी—यक्षाज खण्ड १, पृष्ठ २।

[2] आचारंग सूत्र—सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरीज खंड २२, पृष्ठ २०१; यू० पी० शाह—स्टडीज इन जैन आर्ट—पृष्ठ ७३।

[3] कुमार स्वामी—यक्षाज—खण्ड २, पृष्ठ १३।

[4] बृहत् कथा श्लोक संग्रह—१३, ३-५; मोतीचन्द्र—चतुर्भाणी भूमिका, पृष्ठ ८४।

लिखा है[1] यक्ष शब्द ही यक्ख से बना है जिसका अर्थ होता है शीघ्रगामी जैसा हनुमान को माना गया है।

कपि पूजन का संकेत हमें ऋग्वेद में वृषाकपि के संदर्भ में मिलता है जिनकी पूजा इन्द्र की पूजा से अधिक होने लगी थी[2] इस काल में एक यक्ष पूजा ही ऐसी थी जो भारतीय जनता में प्रचलित होने के कारण आर्यों को अपनानी पड़ी होगी। ऐसा अनुमान होता है कि यक्ष पूजा आर्यों के आने के पूर्व ही भारत में प्रचलित थी। यक्षों का रूप अर्ध मनुष्य अर्ध पशु के रूप में कल्पित किया गया होगा जैसा कुछ रूप हमें मोहनजुदाड़ो के मुहरों पर मिलता है।[3] कदाचित् कुछ यही रूप वृषाकपि का रहा होगा। पीछे भी अमरावती में एक यक्ष को हम गजमुख का[4] सांची में एक यक्षिणी को अश्वमुख का कल्पित देखते हैं। मोहनजुदाड़ो और लोथल में हमें अर्धकपि अर्ध मनुष्य की मूर्तियाँ मिलती भी हैं (फलक २)।

वाल्मीकि के समय में भी सम्भवतः यक्ष रूप में कपि पूजा होती थी। राम की कथा जो वाल्मीकि के समय में चारण गाया करते थे। उसमें सम्भवतः राम की सहायता दक्षिण के कुछ आदिवासियों ने की थी जब रावण की कथा इसमें जोड़ी गयी तो वाल्मीकि जी को एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता पड़ी होगी जो अपने कार्यों से श्रोताओं को आश्चर्यचकित कर दे। इन्हें कपि यक्ष की प्रचलित कथा मिल गयी होगी जो संकट हरन था और जो दूर दूर तक जा कर मनोवांछित चीज ला सकता था। इस कथा को लेकर इन्होंने राम की कथा से जोड़ दिया होगा। इस कपि का इन्होंने प्रचलित आज मण्डी नाम को हनुमान नाम में परिष्कृत कर लिया। यों देखा जाय तो हनुमान की कथा यदि रामायण से निकाल दी जाय तो रामायण की कथा के प्रवाह में कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि राम को जटायू से यह ज्ञात हो गया था कि रावण सीता को हर कर ले गया है और सुग्रीव को रावण के रहने के स्थान का पता था सुग्रीव से मैत्री हो जाने पर राम को लंका पहुंचना भी कुछ कठिन नहीं था। वाली को मारने के पश्चात् तथा सुग्रीव की सेना की सहायता

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोकधर्म—पृष्ठ १३२।

२. ऋग्वेद—१०-८६ सूक्त।

३. स्टेला क्रामरिश—दी आर्ट आफ इण्डिया थ्रू दी एजेज, पृष्ठ २७१, फिगर १।

४. कुमार स्वामी—यक्षाज—खण्ड १, पृष्ठ ७।

५. जे० एन० बानर्जी—डवलपमेण्ट इत्यादि, पृष्ठ ३५२; स्टेला क्रामरिश—उपरोक्त—प्लेट १४।

प्राप्त करने पर राम के लिये और सब कार्य सरल हो गये थे। हनुमान को सीता को खोलने के लिये भेजने का कोई प्रयोजन दृष्टिगोचर नहीं होता। फिर नल वानर सेना के सेनापति थे न कि हनुमान। इस प्रकार देखा जाय तो हनुमान की कथा प्रक्षिप्त ही ज्ञात होती है। इस दृष्टि से पढ़ने पर तो ऐसा प्रतीत होता है कि यक्ष पूजकों को अपने धर्म में आत्मसात करने के हेतु इस आणमण्डी नामक यक्ष को राम के सहायक के रूप में रामायण में दर्शाया गया जिससे आदिवासी लोग राम को अपने यक्ष से अधिक प्रभावशाली समझें और राम की ओर आकर्षित हों। कपि यक्ष की मूर्तियां भी हमें सिन्धु घाटी की सभ्यता में दिखाई देती हैं।[1] हो सकता है कि इनका अलग पंथ रहा हो और उसे अपने धर्म में ले लेने के हेतु ही राम की कथा में इनकी कथा जोड़ी गयी हो।

यों राम को आदर्श आर्य राजा के रूप में वाल्मीकि ने प्रदर्शित किया है। परन्तु ये जीवन के प्रारम्भ से राक्षसों का विरोध करते हैं। विश्वामित्र के आश्रम में इनके जाने का मुख्य कारण तो विश्वामित्र को सतानेवाले राक्षसों को मारना था। इनकी दक्षिण यात्रा का भी प्रयोजन यही प्रतीत होता है। वहां भी ये आर्यों की संस्कृति के प्रसार में बाधक लोगों को मारते हैं। दक्षिण के आदिवासियों को आर्य संस्कृति से प्रभावित करने तथा इन्हें अपनी संस्कृति में मिलाने के हेतु पहिले ऋषिलोग आर्यावर्त से दक्षिण की ओर जाते हैं और अपने आश्रम बनाते हैं जैसे विश्वामित्र, भारद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि, सरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, मातंग इत्यादि। ये नाम हमें वाल्मीकि के रामायण में मिलते हैं। इनके प्रचार का प्रभाव कुछ आदिवासियों पर तो पड़ता है और वे आर्य संस्कृति को अपना लेते हैं परन्तु कुछ इनका विरोध करते हैं इस पर ये क्षत्री राजाओं को अपनी सहायता के हेतु बुलाते हैं ठीक जैसा अंग्रेजों के समय हुआ था। उनके पादड़ी पहिले जनता में घुसते हैं और ईसाई धर्म का प्रचार करते हैं जब उनका विरोध होता है तो वे अंग्रेज शासकों को अपनी सहायता को बुलाते हैं। ऐसी ही स्थिति का दृश्य हमारे समक्ष रामायण में आ जाता है। आर्यों ने दक्षिण भारत के विजय का कार्य कब प्रारम्भ किया यह कहना कठिन है परन्तु वाल्मीकि के काल तक तो यह हो ही चुका था। यों वाल्मीकि की रामायण का संकलन काल ईसा की पहिली शताब्दी के लगभग रखा जाता है। परन्तु दक्षिण भारत की विजय का कार्य मौर्यों के पूर्व हो चुका था। राम तथा रावण की प्राचीन कथायें जनता में प्रचलित

---

[1] माके—फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजुदाड़ो—खण्ड २, प्लेट ७८, १२; लोयल—इण्डियन आर्केआलोजी—१९५७-५८, प्लेट १८ ए।

थीं जिन्हें उत्तर तथा दक्षिण के चारण गाया करते थे उन्हें अपना कर उस पर वाल्मीकि ने अपना भवन निर्माण किया ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि वाल्मीकि जी रामायण के प्रारम्भ में ही नारद जी से प्रश्न करते हैं कि आप किसी ऐसे राजा का चरित्र बताइये जो आदर्श रहा हो।[1]

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्य दृढ़व्रतः।[2] इत्यादि

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके काल तक यह कथा लिपिबद्ध नहीं हुई थी परन्तु प्रचलित अवश्य थी।

राम के काल में वे आदिवासी कौन थे जो आर्य संस्कृति के विरोधी थे यह एक प्रश्न उठता है। प्राचीनतम भारत में शरदचन्द्र राय के अनुसार निगरो जाति से मिलती हुई जाति के लोग निवास करते थे ये लोग अण्डमान द्वीप के मिनकोपिस, मलाया के सीमांग तथा फिलीपिन्स के एयटास जाति के लोगों के भाई बन्धु थे। इनके बाल घुंघराले, नाक चिपटी, ओठ मोटे, माथा सकरा, सिर लम्बा, कद नाटा था। इनसे मिलते जुलते लोग ट्रावनकोर पहाड़ियों पर रहनेवाले कदर तथा उरुलस लोग हैं[2] इनके पश्चात् एक जाति के लोग उत्तर पश्चिम से आये जिन्हें प्रोटो अस्ट्रालाइड कहा जा सकता है। ये ताम्बे के अस्त्र इत्यादि बनाने में बड़े दक्ष थे। इनकी बस्तियों के चिन्ह स्थान स्थान पर मिले हैं। इनके मकानों के अवशेष छोटा नागपुर में हैं जिन्हें असुरगढ़ लोग पुकारते हैं उनकी ईंटें १७" १०" ३" माप की है इनके मकानों में जले हुए चावल मिले हैं जिससे ऐसा अनुमान होता है कि ये धान की खेती करते थे।[3] ये अपनी समाधियां किसी पहाड़ी झरने के पास बनाते थे। प्रत्येक समाधि के ऊपर एक बड़ा सा पत्थर १२' ७½' ६' का रख देते थे जो चारों ओर के चार छोटे पत्थरों पर आधारित रहता था। इसी प्रकार की बहुत सी समाधियां छोटा नागपुर, रांची तथा चुनार के जंगल महाल में मिली हैं। कुछ समाधियों के पास असुर पोखर के नाम से विख्यात तड़ाग भी मिलते हैं।[4] इनकी बस्तियों में इनके बनाये हुए ताम्बे के अस्त्र, ताम्बे के आभूषण, ताम्बे की मनुष्य आकृतियां, मिट्टी की मूर्तियां, मिट्टी के बरतन प्राप्त

---

१. १, २-५।

२. शरतचन्द्र राय बहादुर—प्रेसिडेंशल एडरेस—अंथा पालेजिकल सेकशन—सेविन्थ ओरियण्टल कान्फरेन्स १९३३, पृष्ठ १९८।

३. उपरोक्त—पृष्ठ २११।

४. उपरोक्त—पृष्ठ २०९।

हुए हैं। अभी हाल की कालवेंगन की खोदाई में ताम्बे की कुल्हाड़ियां, ताम्बे के भाले तथा ताम्बे की मनुष्य आकृति हड़प्पा के आस पास के काल के स्तर से प्राप्त हुए हैं[1] जिससे स्पष्ट है कि ये अस्त्र उस जाति के हैं जो सिन्धु घाटी की सभ्यता में बसने वालों के पूर्व भारत में विद्यमान थी।[2] इसी प्रकार के अस्त्र हरिद्वार के बहादुराबाद से प्राप्त हुए हैं। फरुक्काबाद से भी तेरह ताम्बे की तलवारें तथा एक मनुष्य आकृति मिली है।[3] तथा इसी प्रकार की कुल्हाड़ियां बनारस के चन्दौली तहसील के एक गांव से मिली हैं छोटा नागपुर के हजारीबाग तहसील के पचम्बा स्थान से भी ताम्बे की आधी बनी हुई कुल्हाड़ियां मिली हैं तथा बंगाल के मिदनापुर जिले के झली बनी परगने के सिलदा स्थान से भी इसी प्रकार ताम्बे का एक परशु मिला है।[4] मध्य प्रदेश के बालघाट जिले के गंगेरिया स्थान से तो ४२४ ताम्बे के अस्त्र तथा १०२ चांदी की तस्तरियां मिली हैं।[5] इसी प्रसंग में यह भी ज्ञातव्य है कि आसाम के असुर राजाओं के नाम सर एडवर्ड गेटी ने अपने आसाम के इतिहास में महिरंग देव, हाटक असुर, सम्भ असुर, नरट असुर इत्यादि दिये हैं।[6]

हमारे साहित्य में स्थान स्थान पर असुरों के बनाये हुए नगरों, राज्यप्रासादों का उल्लेख मिलता है जिसमें मय असुर तो प्रधान ही हैं। वाल्मीकि रामायण में भी वानर जब सीता की खोज में निकले तो उन्हें एक गुफा दिखाई देती है जिसमें स्वयम्प्रभा नाम की स्त्री तपस्या कर रही है उस गुफा के कनकमय भवनों का भी निर्माण मय असुर द्वारा बताया गया है। पीछे चल कर इन्द्रप्रस्थ की राज्यसभा भी मय असुर की ही बनवाई हुई कही गयी है।[7] हो सकता है कि मय असुर के वंशज भी अपने को मय असुर कहते हों।

मुण्डा आदिवासियों में यह जनश्रुति भी प्रसिद्ध है कि मुण्डा लोगों के देवताओं

---

१. स्टेट्समान—दिल्ली—१ अगस्त १९६४, पृष्ठ ५ चित्र।

२. शरतचन्द्र राय—उपरोक्त पृष्ठ २१०।

३. भारत कला भवन में सुरक्षित है।

४. जे० कागिन ब्राऊन—काटेलाग ऑफ प्री हिस्टारिक आण्टिक्वेटीज इन दी इण्डियन म्युजियम—(१९१७), पृष्ठ १४१-१५१।

५. शरतचन्द्र राय—उपरोक्त—पृष्ठ २११।

६. उपरोक्त—४, ५१, ११।

७. महाभारत—सभाक्रिया पर्व—३, १८-३२।

ने असुरों का नाश किया।[1] ऐसा सम्भव है कि भारत में पश्चिम से असुरों ने आकर यहां के निवासी लोगों को पराजित करके इनके स्थानों पर अधिकार कर के अपने नगर बनाये हों। इन आदिवासी लोगों में कुछ लोग तो इन असुरों के दास होकर रह गये होंगे और कुछ दूसरे स्थानों को भाग गये होंगे। इन्हीं नेगोराईड लोगों को कदाचित पीछे कपि जाति की संज्ञा दी गयी। असुरों के पश्चात् जो लोग सिन्धु घाटी में आये जिन्हें प्रोटो सुमेरियन की संज्ञा दी गयी ये नेगोराईड नहीं थे। इनके बाल सीधे तथा कद लम्बे थे इनके शवों को देखने से ऐसा ज्ञात होता है कि इनकी खोपड़ी लम्बी पीछे की ओर निकली हुई थी, ठुड्डी छोटी तथा नाक चिपटी थी। इन लोगों के आने पर कुछ असुर तो इनमें मिल गये होंगे और कुछ सिन्धु घाटी के पूर्व और दक्षिण की ओर चले गये होंगे जहां इन्होंने अपने नगर बसाये होंगे। प्रोटो सुमेरियन लोगों की सभ्यता के अवशेष अब केवल सिन्धु घाटी तक ही सीमित नहीं हैं अपितु सौराष्ट्र के लोथल, रंगपुर इत्यादि पूर्वी पंजाब के रोपड़, उत्तर प्रदेश के मेरठ, राजस्थान के कालीबेंगन स्थानों से मिल चुके हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे जैसे असुर भारत में आगे बढ़े वैसे वैसे इन्होंने अपने नगर बसाये इन नगरों पर पीछे चल कर प्रोटो सुमेरियन लोगों ने अधिकार किया। जो असुर इनके साथ रह गये उन्होंने इनसे अपने विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लिये जिसकी झलक हमें मय की कन्या मंदोदरी और रावण के विवाह से मिलती है।[2] असुर लोग ताम्बे के अस्त्र तथा और वस्तुएं बनाते थे। ये प्रोटो सुमेरियन लोग कांसे के हथियार बनाना जानते थे इन्होंने कांसे के हथियार इत्यादि बनाये जो ताम्बे से अधिक सुदृढ़ बने और इन पर धार भी चोखी चढ़ी। इन्होंने अपने मिट्टी के बर्तनों पर चमकदार लेप लगाये तथा सेलखली के पत्थर को पीस कर उसे गरम करके बहुत सी वस्तुएं बनाई। एक प्रकार का सीसा भी इन्होंने बनाया। असुर जब अपने स्थानों से हटे तो उन्होंने नेगोराईड लोगों को पहाड़ों पर निवास करने को विवश किया होगा।

प्रायः ईसा पूर्व १५०० के लगभग ऋग्वेदी आर्यों का प्रवेश सिन्धु घाटी में हुआ। ये चौड़े मस्तकवाले, ऊंची तथा लम्बी नाकवाले और गौरवर्ण के लोग सम्भवतः रूस के जार्जिया, की ओर से[3] ईराक तथा ईरान होते हुए भारत में आये।

---

[1] शरतचन्द्र राय—उपरोक्त—पृष्ठ २१३।

[2] वाल्मीकि रामायण—७, १२, ३-१७।

[3] जैसा कि हाल में हुई रूसियों द्वारा खोदाई से पता लगा है—सोवियत लाण्ड—मई १९६५।

र्गों में इन्हें विविध जत्थों (दलों) का सामना करना पड़ा जिनकी भिन्न भिन्न संस्कृतियां थी और जो भिन्न भिन्न भाषा बोलते थे।[1] जब आर्य भारत पहुँचे तब भी इनको स्यु लोगों से लड़ाई लड़नी पड़ी जैसा ऋग्वेद में लिखा है[2] हो सकता है कि इन्हीं स्युओं को पीछे चल कर राक्षस की संज्ञा दी गयी हो। ये अपने पुरों की रक्षा रते थे इस कारण इन्हें राक्षस कहना अनुचित नहीं था 'रक्षति इति राक्षसः'। न्हीं की एक शाखा कदाचित् मुण्डा नाम से आज विख्यात है .इनको आर्यों ने र्व और दक्षिण की ओर भगाया इनके नगरों को भी इन्होंने जलाया जिसके माण हमें नाल तथा हड़प्पा में प्राप्त होते हैं। इन प्रोटो सुमेरियन लोगों के रथों के पहियों में तिल्ली नहीं थी और ये अपने रथों में गदहे जोतते थे। आर्य इसके परीत तम्बुओं में रहते थे ओर तिल्लोदार पहिये के रथों पर चलते थे इनके थों में घोड़े जुते रहते थे जिनसे इनके रथ शीघ्रगामी होते थे। कदाचित् ये हे के अस्त्र बनाते थे जिनके प्रहार को सहने की शक्ति प्राचीन नगरों में हनेवाले प्रोटो सुमेरियनों में नहीं थी। इनके लोहे की तलवार कड़ी से कड़ी स्तु को काटने में समर्थ थी उसी प्रकार इनके लोहे के फल से विभूषित तीर भी ड़े पैने थे। कुछ दिन तक ये पंजाब में ही रहे। परन्तु यह तो घुमक्कड़ जाति थी इस कारण यह नये नये स्थान खोजती ही रहती थी। यह भी सम्भव है कि एक के बाद दूसरे जत्थे आर्यों के आये हों जिन्होंने पहिले जत्थों को आगे बढ़ने को विवश किया हो। इनके आगे बढ़ने के प्रमाण इनके बनाये हुए अस्त्रों से ही हमें मिलते हैं जैसे अतरन जी खेड़ा से प्राप्त लोहे के अस्त्रों से ज्ञात होता है।[3] बहुतसे टो सुमेरियन लोग तो आर्यों में मिल गये तथा इनकी संस्कृति उन्होंने अपना ली और उनकी दासता स्वीकार कर ली। यह तो हुआ परन्तु उनकी संस्कृति का भी आर्यों पर प्रभाव पड़ा और इन्हें भी उनके दैवी देवता लेने पड़े। कुछ प्रोटोसुमेरियन भाग कर दूसरे स्थानों को चले गये और अपनी संस्कृति की रक्षा करने लगे।

जब आर्य भारत में जम गये तो इन्होंने अपनी संस्कृति का प्रसार प्रारम्भ किया इस कार्य के हेतु सर्वप्रथम ब्राह्मण लोग दक्षिण और पूर्व की ओर गये। जब राक्षसों और असुरों ने देखा कि आर्य इस प्रकार सारे भारत पर अपना आधिपत्य

---

[1] शरदचन्द्र राय—प्रेसिडेंशल एडरेस—अंथ्रापालेजिकल सेकशन—वेन्थ इण्डियन ओरियण्टल कान्फरेन्स—१९३३, पृष्ठ २१८।

[2] उपररोक्त—पृष्ठ २३१।

[3] अतरजजी खेड़ा—नेशनल हेराल्ड—लखनऊ ११ अगस्त १९६४, पृष्ठ ७।

जमाने का प्रयास कर रहे हैं तो उन्होंने इन ब्राह्मणों का विरोध किया क्योंकि इनके अपने देवता थे, अपने जीवन के नियम थे अपनी संस्कृति थी जो आर्यों की संस्कृति से भिन्न थी। जब इन ब्राह्मणों का विरोध हुआ तो उन्होंने समर्थ क्षत्रिय राजाओं को अपनी रक्षा को बुलाया।

ऐसा ज्ञात होता है कि निग्रोराईड लोगों को जिन्हें असुरों ने अपने स्थानों से हटाया था वे पाषाणयुग की सभ्यता में ही रह गये थे उनको असुरों ने धातु के अस्त्रों को बनाना नहीं बताया। ये पीछे भी पाषाण के अस्त्र ही व्यवहार करते रहे। जैसी कुल्हाडियां ब्रूसफूट को दक्षिण से मिली थी वैसी अब बहुत से दूसरे स्थानों से भी मिल चुकी हैं। पीछे चल कर आर्य ऋषियों को कदाचित यही जाति ऐसी मिली जिस पर इनका प्रभाव शीघ्र पड़ा जैसे अंग्रेज पादड़ियों का हमारे यहां के निम्न वर्ग की गरीब जातियों पर पड़ा था। यह निगरो जाति आर्य ब्राह्मणों के उपदेशों के कारण ही आर्यों की भांति रहने का प्रयत्न करने लगी होगी। इन ब्राह्मणों को आर्य ऋषि कहने लग गए थे क्योंकि इन्होंने संसार त्याग कर के आर्य संस्कृति के प्रचार के हेतु अपना जीवन उत्सर्ग किया था। इस जाति के आर्य संस्कृति के अपनाने के प्रमाण हमें वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में मिलते हैं।[1] परन्तु ये ऋषि लोग कदाचित् अस्त्रों के विशेषज्ञ नहीं थे इस कारण ये इस विषय में नीगरो लोगों को कुछ नहीं सिखा सके। इन नीगरों लोगों ने अपनी रक्षा के हेतु अपनी सेना तो बनाई परन्तु ये राक्षसों से अपने पाषाण के अस्त्रों के कारण लड़ नहीं पाते थे इसी कारण इन्हें क्षत्रिय राजाओं की आवश्यकता पड़ी। ये प्रायः गुफाओं में रहते थे। ये लोग विन्ध्य; कैमूर पर्वतों की शृंखला, महानदी की पहाड़ियों पर तथा सतपुड़ा के पहाड़ों के नीचे रहते थे। इन्हें कदाचित् वनचर या वानर की संज्ञा दी गयी।

जैसा परजिटर ने लिखा है तामिल के आणमण्डी शब्द से जो पुल्लिंग बन्दर का द्योतक है हनुमन्त शब्द बना है। इसी शब्द से कदाचित् अन्दमन शब्द भी बना है जो कदाचित् एण्डमन द्वीप का प्राचीन नाम है जैसे तामिल शब्द इल्ल लंकई से संस्कृत का लंका शब्द बना है।[2] यदि यह माना जाय कि अण्डमैन द्वीप का नाम

---

[1] वाल्मीकि रामायण—सर्ग २५-२६ वाली का दाहकर्म तथा प्रेत संस्कार, सुग्रीव का अभिषेक सर्ग २७ लक्ष्मण का सुग्रीव के नगर में प्रवेश सर्ग ३३ इत्यादि।

[2] के० पी० रत्नम—एनशेण्ट सिलोन एण्ड तामिल—२६वीं इण्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ़ ओरियण्टलिस्ट, न्यू दिल्ली, पृष्ठ २।

आणमण्डी से बना है तो यह जैन ग्रंथ पउम चरिउ के अनुसार हनुरुह हो सकता है जहां इसी ग्रंथ के अनुसार हनुमान का पालन-पोषण हुआ था जैसा पहिले लिखा जा चुका है। यहां अभी भी कुछ आदिवासी रह गए हैं जिनकी संख्या इस समय १३१५ है। ये आदिवासी प्रायः १९११ तक नग्न रहते थे। ये नाटे कद के पांच फीट से कम ऊंचे थे। ये १९११ तक पाषाण के अस्त्र तथा वलैनादी (बूमरांग) का व्यवहार करते थे। ये अच्छे नाविक तथा गोताखोर होते थे। एक विशिष्ट वर्ग के आदिवासी जो आज भी यहां रहते हैं उनका नाम ओंजेज है। इनकी जनसंख्या १९५७ में प्रायः ६०० कूती जाती थी। इस जाति की स्त्रियों के नितम्ब शरीर से इतने पीछे निकले रहते हैं कि उन पर चढ़ कर लड़के माँ के कन्धे पर पहुंच जाते हैं। इनका रंग नीला लिए हुए काला रहता है।[1] इनसे आज के द्रविड़ों से तो कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता। हो सकता है कि इस जाति के लोग जो भारत में निवास करते थे इन्हीं को देख कर आर्यों ने इन्हें वानर की संज्ञा दी हो।

वीर सावरकर ने जो एण्डमन द्वीप में अंग्रेजों के राज्यकाल में निर्वासित कर दिए गए थे लिखा है कि "मैंने इस टापू के नाम की व्युत्पत्ति हनुमान से की जाति हुई सुनी है परन्तु यह द्वीप अण्डाकार है इस कारण इसका नाम एण्डमन पड़ा होगा।"[2] ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हें तामिल भाषा का ज्ञान न होने से ही इन्होंने ऐसा लिखा है अन्यथा यह शब्द तो आणमण्डी से बना ज्ञात होता है। इसी पुस्तक में आगे चल कर उन्होंने लिखा है कि निकोबार से लाये हुए एक कैदी की रीढ़ की हड्डी साधारण आदमियों की हड्डी से दो तीन इंच लम्बी दिखाई दी। यह बात जेल के एक डाक्टर ने उन्हें दिखाई थी इस पूंछ पर बाल नहीं थे यदि उसे कुर्सी पर बैठाया जाय तो वह बैठ नहीं सकता था इसके मुंह और ठुड्डी की रचना भी बन्दरों के ऐसी थी परन्तु इसकी वाणी बहुत परिष्कृत थी।[3] निकोबार द्वीपसमूह एण्डमन द्वीप समूह के दक्षिण में है। इस द्वीप का नाम पहिले नक्कवरण था जैसा टानजोर के एक शिलालेख से ज्ञात होता है। यहां अभी भी शोम्पेन नाम के आदिवासी निवास करते हैं।[4] इन्हीं आदिवासियों की बस्तियां भारत में भी थी और कदाचित्

---

[1] दी एण्डमन एण्ड निकोबार आइलाण्ड्स—दी पब्लिकेशन डिविजन, मिनिस्ट्री आफ इन्फारमेशन एण्ड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया, न्यू देल्ही, जुलाई १९५७, पृष्ठ ५२।१-५.

[2] स्वातंत्र्य वीर सावरकर—माझी जन्म टेप—परन्दरे पुराणिक आणि मण्डली, माधव बाग, बम्बई, दूसरा संस्करण, पृष्ठ ५४, सं० २००३।

[3] वीर सावरकर—माझी जन्मटेप—पृष्ठ ५९।

[4] दी लीडर—फरवरी ६, १९६६, पृष्ठ ३-४ (मागजीन सेकशन)।

इन्हें ही देख कर आर्यों ने इन्हें वानर की संज्ञा दी हो क्योंकि इनकी रीढ़ की हड्डी पूंछ की भांति लम्बी थी और इनके मुख भी बन्दरों के से थे। इन्हीं आदिवासियों ने राम की कदाचित् सहायता की थी वे पहिले कपि पूजक रहे हों तथा सम्भव है। इन्हीं के देवता महावीर यक्ष रहे हों जिनका नाम हनुमान दिया गया है।[1]

हनुमान के आधुनिक स्वरूप में उनका मुख वानर का बनाया जाता है, शरीर मनुष्य का तथा लांगूल लम्बी पुच्छ सहित वृषभ की भांति थी। इनका मुख प्राचीन कपि पूजन का प्रतीक है शरीर तथा इनकी गदा इनके आदिवासी होने का प्रमाण देते हैं इनकी वृष के समान पूंछ इनको शक्ति का द्योतक बताती है क्योंकि प्राचीन सभ्यताओं में वृषभ की शक्ति का प्रतीक मान कर पूजा होती थी। इनको एक हाथ में पहाड़ लिये हुए उड़ते जाते हुए जो दिखाया जाता है वह इनके यक्ष रूप का द्योतक है। यों इनकी पूजा मूर्ति के अतिरिक्त एक कोण के आकार का मिट्टी का ढूहा चबूतरे पर बना कर भी होती है जैसी और यक्षों की पूजा की जाती है।

इनके हाथ की गदा के कई स्वरूप प्राप्त होते हैं। नैपाल में इनकी मूर्तियों में जो गदा दिखाई जाती है वह प्रायः कुल्हाड़ी के आकार की है जैसी प्राचीन पाषाण काल का मनुष्य व्यवहार करता था और जैसी स्थान स्थान पर मिली हैं। उत्तर भारत में गदाओं का ऊपरी भाग प्रायः गोल है। किसी किसी मूर्ति में इनकी गदा मुद्गल की भांति की भी दिखाई जाती है।

इनके और स्वरूप जैसे राम लक्ष्मण को कन्धे पर लिये हुए या एक हाथ वक्षस्थल पर रखे हुए और दूसरा मस्तक पर रखे हुए इत्यादि राम कथा के विस्तार के फलस्वरूप कल्पित किये गये प्रतीत होते हैं। इनका हाथ जोड़े हुए तथा वीर आसन में बैठे हुए स्वरूप इनको राम का भक्त प्रदर्शित करने की इच्छा से कल्पित ज्ञात होता है। इसी प्रकार इनका पंचमुखी स्वरूप इनको रुद्रावतार मानने पर निर्माण किया गया होगा जैसे शिव के पंचमुखी लिंग बनाये गये। चार हाथों वाला स्वरूप इनको विष्णु का अवतार मान कर बनाया गया जैसा इनके हाथ के आयुधों को देखने से ज्ञात होता है। दस हाथ वाले हनुमान त्रिदेव रूप के प्रतीक ज्ञात होते हैं। क्योंकि इनके हाथ में ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों के आयुध हैं। कालान्तर में इस प्रकार इनके देवत्व का विकास हुआ।

पशु तथा पक्षी मस्तकवाले देवता भारत में भी कदाचित उन्हीं प्राचीन आधारों पर कल्पित किये गये जैसे मिस्र, बाबुल, चीन तथा और दूसरे प्राचीन देशों

---

[1] अपने जैसी आकृति अपने देवता की आकृति बनाना नितान्त स्वाभाविक है। यों हो सकता है कि ये पहिले कपि पूजक रहे हों और पीछे चल कर इन्होंने अपने ऐसी सपने देवता की भी मूर्ति बनाई हो।

हैं। अपने प्रारम्भिक काल में मनुष्य जिन पशुओं से डरता था उनकी वह पूजा करता था। उनको वह अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु अर्पण करता था। पीछे चल कर जब वह इन पशुओं के सांनिध्य से हटा या उन पर इसने विजय पा ली, तो उसने अपने वातावरण के अनुसार दूसरे देवता बनाये परन्तु वह अपने उन प्राचीन देवताओं को भूल नहीं सका। इस कारण उसने अपने देवताओं के शरीर तो नये देवता के सदृश बनाये परन्तु मुख उनका वही प्राचीन पशु का ही रहने दिया। जब मूर्तियां बिल्कुल मनुष्य के रूप में बनने लगी तब भी वह उन प्राचीन पशु देवताओं को भूल न सका। उन पशु पक्षियों को वह देवता के वाहनों के रूप में दिखाने लगा जैसे महादेव का वाहन वृषभ बनाया गया, विष्णु का गरुड, अग्नि का मेढ़ा, कार्तिकेय का मोर, ब्रह्मा का हंस इत्यादि। देव मूर्तियों के विकास का यही क्रम हमें मिश्र में दिखाई देता है और यही भारत में। यहां भी मिश्र की भांति हाथी के मस्तकवाले गणेश की, वाराह के मुखवाले वाराह की, कपि के मस्तकवाले हनुमान की कल्पना की गयी।

इस प्रकार पहिले हनुमान की कपि के रूप में पूजा होती होगी जब लोग जंगलों से हट कर नगरों में आये तो इनकी पूजा के हेतु कपि की मृण्मूर्ति बनी। फिर इनकी अर्ध कपि और अर्ध मनुष्य के रूप में मूर्तियाँ निर्मित हुई। फिर इनका मस्तक तो कपि का रह गया और शरीर पूर्ण मनुष्य के आकार का बन गया। गुप्त काल की मूर्तियों में इनका मुख ही केवल कपि का है, शरीर तो पूरा मनुष्य का ही है। इनके मस्तक पर राजाओं के सदृश मुकुट हैं; कानों में कुण्डल, गले में हार तथा हाथ में वलय हैं। (फलक ६) आगे चल कर यही रूप इनका रूढ़ हो गया। यह इनके मूर्ति के विकास का क्रम ज्ञात होता है।

इस प्रकार इनके आधुनिक स्वरूप में हमें इनका यक्ष तथा भारत के आदिवासियों के पशु देवता दोनों का सम्मिश्रण स्पष्ट दिखाई देता है। इनके नामों में भी हमें मारुति महावीर, बजरंग बली यक्षों से सम्बन्धित मिलते हैं और हनुमन्त आदिवासियों से। वाल्मीकि की रामायण में इनका कपि स्वरूप तथा इनके व्याकरण और संस्कृत भाषा का ज्ञान भी एक ओर इनको आदिवासी घोषित करता है तथा दूसरी ओर यक्ष। यों यक्षों की आकृति की एक विशेषता गणेश के सांदि का बड़ा उदर इनकी मूर्तियों में नहीं दिखाया गया है परन्तु इनके पैर के नीचे मनुष्य की आकृति का राक्षस को दिखा कर इनका सम्बन्ध कुवेर से जोड़ दिया गया जिनके पैर के नीचे भी मनुष्य की आकृति दिखाई गयी है और जिन्हें नरवाहन की संज्ञा भी साहित्य में दी गई है। हनुमान के देवत्व तथा मूर्ति का विकास इस प्रकार भारत में क्रमशः हुआ है।

परिशिष्ट 'क'

श्रीहनुमन्मन्त्रवितरणम् (सुदर्शनचक्रराजसंहितायाम्)

(वा० सं० वि० वि० सरस्वती भवन पुस्तकालय पाण्डुलिपि सं० २५५५१ की प्रतिलिपि)

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

अथ पूजाविधानार्थं यंत्रं तत्कथ्यतेऽधुना ।
पट्कोणवसुयंत्रं च चतुरस्त्रं च वाह्यतः ॥
वीजयुक्तिलिखेत्सम्यक् नामलेख्यं हनूमतः ।
षट्कोणेषु षंडंगानि वीजयुक्तानि संलिखेत् ।
बीजमंत्रं च कोणाग्रे लिखेत्सम्यक् पुनस्तथा ।
अंजनीपुत्राय तथा ततो वै रुद्रमूर्त्तये ।
तथा वायुसुतायेति जानकीजीवनाय च ।
रामदूताय ब्रह्मास्त्रनिवारणाय तत्परं ।
षट्कोणस्यांतरालेषु संलेख्यं नामषट्ककं ।
वसुपत्रे च वीजानि नामानि च समालिखेत् ।
सुग्रीवायांगदायाथसुखेनाय ततः परं ।
नलाय चाथनीलाय तथा जांबवतेपरं ।
प्रहस्ताय सुवेषायादलमध्येषु संलिखेत् ।
रामभक्तो महातेजाः कपिराजो महावलः ।
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः ।
दक्षिणा·······भास्वरश्च सर्वविघ्ननिवारकः ।
दलान्तरेषु लेख्यानि नामान्यष्टौ च यत्नतः ।
लोकपालांसायुधां······चतुरस्त्रे च संलिखेत् ।
रक्षोघ्नाय द्विषघ्नाय रिपुघ्नाय तथैव च ।
व्याधिघ्नाय ज्वरघ्नाय भूतघ्नाय ततः परं ।
कृत्याग्रहवलघ्नाय कुलिशघ्नाय शेषतः
सर्पव्याघ्र-महाचौरभयघ्नाय चिदात्मने ।

ब्रह्मग्रह महाराजकोपघ्नाय निरंतरं ।
रामप्रियाय रुद्राय रामभक्तिरतायच ।
भक्तप्रियाय जगति दुर्भिक्षार्त्तिनिवारणे ।
पार्थाय संगरानंत शक्ति-विक्रमवर्द्धिने ।
इत्येतद्दिक्षु संलेख्यं स्तुत्याख्यां नामसंघकं ।
एवं यंत्रवरे सम्यक् पूजा कार्या प्रयत्नतः ।
अप्राप्यं वांछितं सम्यक् प्रापयत्येव निश्चितं ।
अधुना प्रतिमायंत्रं कथ्यते तन्निशामय ।
कपीश्वरस्य रूपं च समालेख्यं प्रयत्नतः ।
वस्त्रे वाकागले वाथमश्या वालक्तकेन वा ।
हिंगुलेनाथवान्यैश्च द्रव्यैः सम्यक् सुशोभनं ।
तत्रैव क्रमयोगेन साध्यनामाक्षराणि च ।
प्रथमं हृदये लेख्यं द्वितीयं मस्तके तथा ।
तृतीयं दक्षिणेवाहौ भुजे वामे चतुर्थकं ।
पंचमं च तथा षष्ठं पाण्योर्दक्षिणसव्ययोः ।
वदरे सप्तमे चैव दक्षोरौवाष्टमं मतं ।
वामोरौ नवमंचैव दशमं पक्षपत्तले ।
एकादशं समालेख्यं वामपादे तलं तथा ।
एवंक्रमेण संलेख्यं वर्णानां च समूहकं ।
वश्ये द्वेषे स्तंभने च मारणे मोहने तथा ।
आकर्षणे वंधमुक्तो विजये च विशेषतः ।
द्वादशाक्षर-विद्यायास्तदक्षरयुतं लिखेत् ।
मंत्राद्यं वीजषट्कं च चतुर्थ्यंतं नमोंतकं ।
तन्नामकथिता विद्या द्वादशाक्षरवर्णिका ।
वश मानय संलेख्यं वश्येवाम्रेडितांन्वितं ।
विद्वेषणायाम्रेडितं विद्विषे समुदीरितं ।
आम्रेडितं स्तंभयेति स्तंभने समुदीरितं ।
आम्रेडितं मारयेति मारणे समुदाहृतं ।
आम्रडितं मोहयेति मोहनेतं समुदाहृतं ।
आम्रेडितं मोक्षयेति मोक्षणे समुदीरितं ।
एवंविधं तु संलेख्यं प्रतिमा यंत्रमुत्तमं ।
साध्याकृतिं वस्त्रमयीं कृत्वा पूर्ववदुत्तमां ।
रक्तांजनेन संप्रोक्ष्य समद्रं कृत्वा प्रयत्नतः ।
क्षीरेण नवनीतेन दध्ना वान्येन केनचित् ।

प्राणानां स्थापनं कृत्वा रोचणोच्चाटनं कृतं ।
नामोद्देशेन च रिपोः पीडयेदाकृतिं तु तं ।
तद्रस्य पानं वै कारयेन्मृत्युहेतवे ।
अथवाग्नौ क्षिपेत्तां तु चैत्ये मारणहेतवे ।
एवं कृत्वा रिपोः सत्यं मृत्युर्भवति नान्यथा ।
प्राणप्रतिष्ठापूर्वं तु संपूज्य निक्षिपेद् भुवि ।
साध्यस्य द्वारदेशे तु निखन्याच्च महामतिः ।
अथवा भूतले लेख्यं प्रतिभायंत्रमुत्तमं ।
तत्रेमं श्लोकसंदर्भं साध्यनामं लिखेद् ध्रुवम् ।
संमार्ज्यपुनरालेख्यं तथैव च पुनः पुनः ।
एवमष्टोत्तरशतं लेखनावृत्तिरिष्यते ।
वृत्तिः संमार्जनस्यापि तावत्येव विधीयते ।
यद्यत्कार्यं समासाद्य तथा पल्लवयोजना ।
कार्यस्य पूरिका एता ज्ञातव्या मंत्रणा ध्रुवं ।
अथयंत्रंप्रवादि। द्वेषकारक ।
कार्यमंजकेति पदं क्रूरप्रकृतिकं पदं ।
प्रवृद्धकोपावेशिक हंतुवै तत्पदं तथा ।
कामुकादीनितिपदं दूरस्थेति पदां ततः ।
समीपस्थान्भूतभविष्यद्वर्तमानांतथोच्चारयेत् ।
पुंस्त्रीन् पुंस्काश्चातुर्वर्ण्यान् क्षणेन सत्वरं ।
हनद्विधा दहद्विधा संहारय द्विधावद ।
मोहयेति द्विधा वाच्यंमदयेत्ति द्विधा ततः ।
हिंसयेति पुनश्चोक्त्वां मार्ज्जारमूषकेति च ।
वत्सद्यः प्राणैश्च ततो विनियोजय द्विधोच्चरेत् ।
विध्वंसय द्विधा म्रिति द्विधा)
(मूकयपौनरुक्त्याजारयेति वंधयेति द्विधा ततः ।
जृंभयेति द्विधाचोक्त पातयेति द्विधा वद ।
ततो ममपदं चोक्त्वा परस्य) च पदे ततः ।
पादतलाक्रमितांकुरुद्वंद्वंतोवंद दासीभूतान्संपादयद्विधा ।
हाच त्रिमोच्चरेत् क्रोंवंत्रिधायंयेत्रत्रिधाकव-
चास्त्राग्निवल्लभा ।
वर्णानां द्विशतं प्रोक्तं पंचषष्ट्युत्तरं मनौ ।

विद्वेष वैरिदुष्टानां क्रूरबुद्धि विनाशने ।
मंत्रोयं गदितः सत्यं गुरुभिः मंत्रिपारगैः ।
विशिष्टत्वे-कलौ सत्यं प्रत्ययायाल्पबुद्धयो ।
महारुद्रावतास्य जगत्प्राणात्मजस्य च ।
मनुं विद्धि वरिष्ठं च सर्वसिद्धिप्रदं नृणां ।
वारिमंत्राद्यभिमंत्र्य प्रविकिरेत्सर्वत्र च सुसाधकः ।
तल्लंघनाद्भवंत्येव सर्वदुष्टास्तु सेवकाः ।
एकादशोक्तबीजानि प्रथमं समुदीरयेत् ।
नमो हनुमतेचोक्ता त्रैलोक्याक्रमणेति च ।
पराक्रमेति श्रीरामभक्तः ममपरस्य च ।
सर्वशत्रून् सर्ववर्ण-संभवानितिवै वद ।
पुंस्त्रीनपुंसकान् भूतभविष्यद्वर्तमा इति ।
नानदूरस्थ समीपस्थान् नाना इति ततो वद ।
नामधेयांस्ततो नाना संकेरेति च जातिजान् ।
कलत्र--पुत्रमित्रेति भृत्यबन्धुसुहृत्ततः ।
समेतान्प्रभुशक्तीति सहितानि ततः परं ।
धनधान्यादि-संपत्तियुतान् राज्ञः परंतप ।
राजसेवन् मंत्रिपदं सचिवेति स ततः ।
आत्यंतेकं क्षणेनेति त्वरयैतद्दिनावधि ।
नानापायैरितिपदेन्ततो मारय युग्मकं ।
शस्त्रैछेदय युग्मं च अग्निनाज्वालय द्विधा ।
दाहयेति द्विधावाच्यं अक्षय्येति ततो वद ।
कुर्मरदस्मादाक्रमणेन शिलातलं ।
आत्राटय द्विधावाच्यं घातयेति द्विधा वद ।
वधयुग्मं भूतसंघः सहभक्षय युग्मकं ।
क्रुद्धयेत् सेति नखैर्विदारय द्विधा वद ।
देहांशादस्मादिति तत उच्चाटय द्विधा वद ।
पिशाचवद् भ्रंशयेति द्विधा भ्रामयेति द्विधा ।
भयातुर संज्ञाश्च सद्यः कुरु युगं वद ।
भस्मीभूतान् द्विधावाच्यमुद्धूय पुनर्वद ।
भक्तजन-वत्सलेति सीता शोकापहारक ।
सर्वत्र मांतथैन च रक्ष युग्मं च ह्रात्रयं ।

क्रोधत्रयं द्येत्रयं कवचास्त्राग्निवल्लभः ।
एकचत्वारिंशदुत्तराण्यपित्रिशतान्य च ।
वर्णानांगणनाज्ञेया दुष्टारिद्वेषणं तथा ।
उच्चाटय मृत्युपैशाच्यं करणीयं मनुध्रुवं ।
सप्रत्ययः समर्थश्च कलौ भक्तेप्सितार्थकृत् ।
श्रद्धया नियमेनाथ सस्मृतो जपितः खलु ।
कार्यं साधयते नूनं सत्यं वतान्यथा ।
हनुमद्वीर्यसामर्थ्याद् दुर्ज्जयो मंत्रविद् भवेत् ।
आदावेकादशोक्तानि बीजानि समुदीरयेत् ।
पुनर्वेदादि मंत्रोक्तान्नमो हनुमते ततः ।
प्रकटेति तश्चोक्त्वा पराक्रम पदं ततः ।
आक्रांत पदमेतत्तु दिङ्मंडल पदं ततः ।
यशोवितानेति पदं धवलीकृत वै वद ।
जगत्त्रितयवज्रेति देहज्वलदितीरयेत् ।
अग्निसूर्यकोटिसमप्रभतनस्तनूरुह ।
रुद्रावतारतो लंका पुरीदहन वै ।
उदधिलंघन ततो दशग्रीवशिरस्ततः ।
कृतांतक सीताश्वासन ततो वायुसुतेति च ।
अंजनीगर्भसंभूत श्रीरामेतिपदं ततः ।
लक्ष्मणानंदरेति कपिसैन्यपदं वद ।
प्राकारसुग्रीवपदं सख्यकारणवैततः ।
वालिनिर्वहणपदं कारणेति ततो वद ।
द्रोणपर्वतोत्पाटन ततो वदेत्परं पदं ।
अशोकवन चेतत्तु विदारण पदं ततः ।
अक्षयकुमारकेति छेदनेति ततो वद ।
वनरक्षाकरपदं समूह इति चोत्तर ।
विभजनब्रह्मास्त्रेति ब्रह्मशक्ति पदं वद ।
असनेति लक्ष्मणेति शक्तिभेद-निवारण ।
शल्यविशल्यौषधीति समानयनवैततः ।
बालोदितभानु पदं मंडलय समेति च ।
मेघनादं होमपदं-विध्वंसन ततः परां ।
इन्द्रजिद्वधकारण सीता रक्षक-वैपदं ।

ततश्च राक्षसीसंघ विदारण पदं ततः ।
कुंभकर्णाय वधेति परायण पदं वद ।
श्रीरामभक्तितत्पर समुद्रेति ततः पदं ।
व्योमद्रुमलंघनेति महासामर्थ्यं वै पदं ।
महातेजः पुंजपदं विराजमान वै पदं ।
स्वामिवचनेति पदं संपादितोऽर्जुनेति च ।
संयोग सहायेति च कुमारेति पदं ततः ।
ब्रह्मचारिन्निति पदं गंभीरेति पदं ततः ।
शब्दोदय दक्षिणाशा मार्तण्डमेरु पदं ।
पर्वतपीठिकार्चन सक्तेति पदं ततः ।
मंत्रागमाचार्यं पदं ममसर्वग्रहेति च ।
विनाशनं सर्वपदं ज्वरोच्चाटन सर्वं वै ।
विषनाशन सर्वापत्तिनिवारणेति च ।
सर्वदुष्टानि पदं निवर्हणपदं ततः ।
सर्पव्याघ्रादि भयेति निवारण पदं ततः ।
सर्वशत्रुछेदनेति पदं ममपरस्य च ।
ततस्त्रिभुवनेपुंस्त्रीनपुंसकात्मकं पदं ।
ततः सर्वजीवजातं वशयेति द्वयं वदेत् ।
ममाज्ञाकारकं चैव संपादय द्विधा वद ।
ततोनानानामधेयान् सर्वराज्ञः पदं वद ।
ततः सपरिवारांश्च वदेति ममसेवकान् ।
कुरुयुग्मं सर्वपदं शस्त्रास्त्रेति विषाणि च ।
विध्वंसय द्विरुच्चार्यं मायां पूर्ववदुच्चरेत् ।
हा त्रिधा च समुच्चार्यं तद्वहेहि त्रिधोच्चर ।
पूर्वोदितं पवकूटं वेश्वरीत्येन वोच्चरं ।
सर्वशत्रूहनद्वंद्वपरवलानि ततः परं ।
परसैन्यानि क्षोभय द्विधा मम पदं ततः ।
ततः सर्वकार्यघातं साधयेति द्विधा वद ।
सर्वदुष्टदुर्जनेति मुखानि कीलय द्विधा ।
घेत्रियोच्चरहारं त्रिधा क्रोधं त्रिधा ततः ।
त्रिधाचास्त्रवहिन्नाथय संयुतोयं मनुःस्मृतः ।
मंत्रेवर्णाः समाख्याताः द्विनवत्युत्तराः खलु ।

पंचशतानि सत्यं हि मंत्रविद्भिः पुरातनै ।
सर्वकार्यार्थसंसिद्ध्यै प्रोक्तोयं हनुमन्मनुः ।
द्वादशाक्षरविद्याया विवृतिः क्रियतेऽधुना ।
शिवमिंद्र स्वराक्रान्तं बिंदुमत्कुरु वादिमं ।
पूर्वोदितं पंचकूटं बीजषट्कं ततो वद ।
हनुमांश्चचतुर्थ्यायं योज्योनतिः पुरःसरम् ।
द्वादशार्णा महाविद्या यस्यकस्यापि मा वद ।
रहस्यं ते मया ख्यातं वाल्मीकि मुनिनोदितं ।
ऋष्यादिकं सर्वमेव पूर्वमेव निवेदितं ।
एकमेव हि सर्वेषां सत्यं सत्यं च नान्यथा ।
विशेषोत्रिषडंगानि षट्कष्टैः कुरु राघव ।
करांगुलिषु विन्यासः कार्यमित्थं शुभो मतः ।
मंत्र पदैरष्टभिश्च देहांगेषु संमतः ।
मूर्द्धिनभालैर्मुखे स्त्रांते नाभापूर्व्वोस्तु जंघयोः ।
पादयोश्चैव कर्त्तव्यो ध्यानं पूर्वोदितं कुरु ।
मुद्राः पूर्वोदिताः कार्याः सर्व्वमेव हि पूर्ववत् ।
वानरीचास्यिमुद्रान्या तां शृणुष्व वदाम्यहं ।
करौ संपुटितौ कृत्वा समश्लिष्टांगुली स्फुटं ।
प्रलोपितौ च अंगुष्ठावंतगर्भ स्थितौ कुरु ।
हृदयोपरिविन्यस्तौ मुकुलाकृति संयुतौ ।
स्वामिपाद स्थिता दृष्टि मुंद्रांपर्यंत्रास्थिता ।
प्रोक्तोयं वानरीमुद्रा चैतन्मंत्रजपे स्थिता ।
इत्थं सर्वं निगदितं हनुमन्मंत्रगह्वरं ।
श्रद्धया परया भक्त्या सेवितोखिल सिद्धिदः ।
इतिश्रीसुदर्शनराजचक्रराजसंहितायांहनुमन्मंत्रविवरणेमंत्रोद्धाराख्यः प्रथमःपटलः ।

ततोस्तंसमारभ्य यावन्सूर्योदयो भवेत् ।
तावन्मंत्रं जपेद्रात्रौ कार्यमुद्दिश्य मंत्रवित् ।
पुरश्चर्यास्य मंत्रस्य प्रोक्ता चार्कसहस्रका ।
भौमस्थनासने पूजा कार्या हनुमतो ध्रुवं ।
प्रियंगवो व्रीहयोथ हव्याज्यक्षीर संयुताः ।
कदली मातुलुंगाम्र :फलै हुनेत् ।

दशांशेन ततो ब्रह्मचारिणो भोजयेद् ध्रुव ।
द्वाविंशति च संख्याकान् हनुमत्प्रीतये सुधां ।
अष्टोत्तरं शतनामं छेत्रयेद् भस्मवारि च ।
ग्रहदोषे विषेचैव मार्जयेत्पातयेत्तनुं ।
हनुमत्प्रतिभा कार्या ततो भूतांकुशस्य च ।
पूर्वोत्तरगतेनैव मूलेनांगुष्ट नामतः ।
सर्वावियव संपन्नावित्तप्राशस्त्य कारिणी ।
प्राणसंस्थापनं तस्यां कृत्वावै मारुते ध्रुवं ।
सिंदूरचर्चितां कृत्वा तथाभ्यवेपि चारकैः ।
मंत्रितानेन मंत्रेण ततस्तां द्वारसाधके ।
खनित्वा निक्षिपेद् भूमौ गृहस्याभिमुखं निशि ।
भूतजा विषजा बाधा ग्रहजा कूटमन्त्रजा ।
वेटकादिभवावापि व्याधिज्वरविघातजा ।
चोराग्निबाधा च तथा नभवेतद् गृहेरिजा ।
तद्गृहं नंदते सर्वसमृद्ध्या संयुतं तदा ।
रात्रौरात्रौ जपेन्मंत्रं षट्शतं त्रिशतं तथा ।
दशवासरपर्यन्तं राजशत्रुभयं हरेत् ।
अभिचारज्वरे भूतज्वरं च भस्मना तनुं ।
मंत्रितेनाम सावाथ ताडयेद् घोषपूर्वकं ।
त्रिदिनाज्वर मुक्तिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
औषधेरसमंत्रं दशवारं जपेद्बुधः ।
तेनाभिमंत्रितं दत्तं सर्वं सफलतां व्रजेत्। ।
शस्त्रधाराग्र संस्थस्तंभेशतशवारं जपेद् बुधः ।
तेनाभिमंत्रिते तोयं भस्मतस्य प्रदापयेत् ।
भस्मना चर्चितं देहं पयश्च प्रदद्यां स-
श्नस्तज्ञोभवेतस्य सत्यं सत्यंन्नसंशयः ।
शस्त्रक्षतेषु लूतासु रक्तग्रन्थादिसम्भवे ।
भस्मना पयसा तत्र त्रिवारंचाभिमन्त्रयेत् ।
न व्यथा न च पूयंस्यात् संशोषयति सव्रणं ।
सप्तवासरपर्यन्तं विद्वेषोच्चाटने तपः ।
सूर्यास्ते च समारभ्य कारयेत्सुबुधोत्तमः ।
अरुणोदयपर्यन्तं भस्मकीलामिमन्त्रितं ।

तद्वारे पूरितं गेहे रोपितं वापि तत्क्षणात् ।
ततस्तस्योदनं स्यात्परिवार युतस्य च ।
पुत्रादिभिः सर्वलोकैः पौरेर्जनपदैः सह ।
विद्विष्यतेप्राणघातं सत्यं सत्यं वचो मम ।
भस्माभिमंत्रितं यस्य देहेंचन्दन मिश्रितम् ।
चर्चितम्पेयखाद्यादि योजितं यत्र दापितम् ।
स वश्यो जायते नूनं प्राणैरपि धनैरपि ।
दासतां याति देवोपि मनुष्येषु च का कथा ।
क्रूरसत्वानि सर्वाणि वशयेदमुना खलु ।
प्रकारेणमहावीराः ज्वलनाः शान्तितामियात् ।
दिव्यस्थाने च कर्त्तव्यं निःशक्तिश्च हुताशनः ।
भवत्येव न संदेहो लोहतैलेषु संस्थिता ।
मारणे क्रुद्धचित्तेन रात्रौ श्मशानभूतले ।
रिपोः प्रतिकृतिङ्कृत्वा भस्मना वा मृदा तथा ।
पूर्ववत्प्राणसंस्थां च कृत्वा मंत्रेण मन्त्रवित् ।
प्रतिमाहृदि तन्नाम लेख्यञ्चैव प्रयत्नतः ।
शस्त्रभेदं प्रतिमन्त्रोच्चारंकुर्य्याद्विधा पुनः ।
छिन्धि भिन्धि मारयेति तन्नामान्ते समुच्चरेत् ।
एवं सप्तदिनान् कुर्वन्दन्तैरोष्ठम् प्रपीड्य च ।
कृत्वा प्रपीडनं पाणितलयो दृंढमात्मनः ।
होमः कार्यस्तत्र चाथ राजिकालवंकुणैः सह ।
उन्मत्त फलपुष्पैश्च श्लेष्मांतक विभांतकैः ।
विषरोमनखैर्वापि काककौशिकगृद्धकैः ।
पक्षैः कटुकतैलाक्तै भंवेच्चन्द्राकृतौ हुनेत् ।
स्थंडिले मुक्तकेशस्तु स्तकार्यामुद्रयाम् बुधः ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पल्लवोच्चारणं कुरु ।
त्रिशतावृत्तिहोमेन सप्तवासर मध्यतः ।
शत्रुमृत्युमवाप्नोति रुद्रेणापि सुरक्षितं ।
दिनत्रयं रात्रिभागे श्मशानेषटशं जपेत् ।
प्रेतमुत्थापयेत्सत्यं वेतालः किंकरो भवेत् ।
शुभाशुभं च वदति मन्त्रिणा सहनिश्चयात् ।
भाषान्ददाति सत्यं च कारयिष्यति करिष्यति ।

भस्माम्बुममन्त्रितं रात्रौ सहस्रावृत्तिकं खलु ।
दिनत्रयं ततश्चैव तत् क्षिपेत्प्रतिमासु च ।
यासु कासु च स्थूलासु लघुष्वपि विशेषतः ।
मन्त्रप्रभावात्तत्तच्च तन्नूनभवत्येव न संशयः ।
मन्त्रेणानेन सिद्धेन यदसाध्यञ्च साधयेत् ।
वश्ये भये विवादे च शस्त्रे सङ्ग्रामसंकटे ।
द्यूते दिव्ये स्तम्भने च विद्वेषे मारणे तथा ।
मृतकोत्थापने चै·············चालने ध्रुवं ।
विषे व्याधौ ज्वरे भूते ग्रहे कृत्यादिमोचने ।
क्षतेग्रन्थौ महारण्ये दुर्गे व्याघ्रे च दन्तिनि ।
क्रूरसत्वेषु सर्वेषु शस्त्रबन्धे विमोक्षणे ।
बन्धमोक्षे मारणे मोहे शान्तौ नियोजयेत् ।
मन्त्रमेनं हनुमतो नानाकार्यं प्रसाधनम् ।
बन्धमुक्तौ जपेन्मन्त्रं रात्रौरात्रौ च निर्भयः ।
निखित्वा प्रतिमाम्भूमौ मारुतेरस्खलन्नरः ।
स्वनामाक्षरसंघं तु द्वितीयान्तं समालिखेत् ।
मंत्रस्यान्ते तथा मां च विमोचय विमोचय ।
मार्जयेद्वामहस्तेन तथैव च लिखेत् पुनः ।
एवमष्टाधिकशतः लेखयेत् मार्जयेन्नरः ।
एवं कुर्यान्निबद्धो यः शृंखलाभिर्दृढो नरः ।
महापराधसंयुक्तोऽनर्थकारी तु प्राणहा ।
सप्त-दिन-मध्येतु बन्धनान्मुच्यते सुखं ।
हनुमान् ध्वंसयत्याशु ह्याय संमोक्षयेन्नरः ।
न तं दण्डयितुं शक्तो राजानो रिपवोजनाः ।
हवनान्यपि सन्त्येव दशांशेन निबोध तत् ।
स्तंभने च न कामावा न्यग्रोधस्य फलानि च ।
हरिद्रा च तथा प्रोक्ता तालकः सल्लकी फलं ।
शल्मली - कुसुमान्याहुर्मधुत्रय - समन्वितं ।
उच्चाटे गदितास्तत्र श्लेक्ष्मांतक विभीतकाः ।
वश्यार्थं सर्षपाद्राक्षा मधुकानि च गुग्गुलः ।
विद्वेषे करवीराणां पत्राणि समिधः स्तथा ।
श्लेष्मांतकविभीतानां समिधौ जीरकन्तथा ।

मरीचं रामठंचैव कटुतैलसमन्वितं ।
ज्वरे तापे च शूले च गण्डमाला भगन्दरे ।
दूर्वागुडूचीखण्डानि साज्यं क्षीरदर्वीनि च ।
शूले त्वेरण्डसमिघः कुवेराक्षी तथैव च ।
निर्गुण्डीसमिधश्चैव तिलतैलसमन्विताः ।
लक्ष्मीप्राप्तौ सराजानि विल्वपत्राणि चैव हि ।
समिधस्तस्य होतव्या मधुत्रयसमन्विताः ।
पंचखाद्यं नारिकेलमिक्षवः कदलीफलं ।
सर्वसन्तोषकृद्धोमो मधुत्रयसमन्वितः ।
सुखसौभाग्यसंपत्ति साधकं हवनं शृणु ।
कर्पूरं केसरं नाभीरोचनं चन्दनं तथा ।
तजपत्रं वारणं च लवङ्गैलागुरुं तथा ।
मांसी नखं जातिपत्रं तत्फलं लोहवाणकं ।
साज्यान्येतानि सर्वत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः ।
पुष्पैः सुगन्धिभिर्वासः प्राप्यते चोत्तमोत्तमः ।
द्रोहे च मारणे चैव विषं च राजिका तथा ।
काककौशिकगृध्राणां पक्षाश्च विजया तथा ।
गृहधूमकराश्चैव लवणं कटुतैलकं ।
पादपांशु तथा राजी लवणं कर्षणे स्मृतं ।
उन्मत्तफलपुष्पाणि समिधो मोहने स्मृताः ।
धान्यैः संप्राप्यते धान्यैमन्नेनान्न समृद्धयः ।
तिलाज्यक्षीरदधिभिः महिषीगोसमृद्धयः ।
एवं नानाप्रयोगाश्च साधयेन्मंत्रवित्तमः ।
पुरश्चर्या जपेनैव हनुमन्तं समर्च्चयेत् ॥
इतिश्री सुदर्शनचक्रराजसंहितायां हनुमन्मन्त्रविवरणे
हनुमन्मन्त्रप्रयोगसाधनाख्यो द्वितीयः पटलः ॥

॥ शुभमस्तु ॥

परिशिष्ट 'ख'

अगस्त्य संहिता

(पाण्डुलिपि सं० २५११४)

स्मारितः सम्यगेवाहं त्वया श्रद्धावता मुने ।
आञ्जनेयमनुर्लोकिमुक्तिमुक्त्येकसाधनः ॥
प्रकाशितः शङ्करेण लोकानां हितमिच्छता ।
भूतप्रेतपिशाचादि डाकिनीयक्षराक्षसाः ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा च प्रपलायन्ते मंत्रानुष्ठानतत्परम् ।
ऋषिरीश्वर एव स्यादनुष्टुप्छन्द उच्यते ॥ ७ ॥
हनुमान्देवता प्रोक्तोऽहं वीजं शक्तिरंतजौ ।
कीलकं ह्रात्रयं प्रोक्तं वेधकं तु हंसौ पुनः ॥ ८ ॥
हनुमत्प्रीणनं चैव फलमाद्यमुदीरितम् ।
सर्वेक्षितानां दातृत्वमस्यैवास्ति न चान्यतः ॥ ९ ॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमो भगवते पदम् ।
ङेन्तं प्रकटसंयुक्तं पराक्रमपदं ततः ॥ १० ॥
तथाक्रान्तपदोपेतं दिङ्मण्डलमुदीरयेत् ।
यशोवितानधवलीकृतजगत्त्रियतयाय च ॥ ११ ॥
वज्रदेहेति चोक्त्वा रुद्रावतारपदं तथा ।
संवुध्यंतं पदं लंकापुरीदहनमीरयेत् ॥ १२ ॥
उदधेर्लंघनं चापि दशग्रीवकृतान्तक ।
सीताश्वासनेति पदमंजनीगर्भसंभव ॥ १३ ॥
श्रीरामलक्ष्मणानन्दकपिसैन्यप्रकाशक ।
सुग्रीवसंधानपदं पर्वतोत्पाटनं तथा ॥ १४ ॥
वालब्रह्मचारिन्निति गंभीरशब्दपदं तथा ।
सर्वग्रहविनाशनसर्वज्वरहरं तथा ॥ १५ ॥
डाकिनीविध्वंसनपदं ततस्तारमुदीरयेत् ।
मायाह्रांत्रयमुच्चार्यं हंसावेहि वदेत्ततः ॥ १६ ॥

सर्वं विषंहरपरं बलं क्षोभयेति द्विरुच्चरेत् ।
सर्वंकार्याणि साधयेति द्विरुच्चरेत् ॥ १७ ॥

हुंफट्स्वाहेतिमंत्रोयं मालाख्यः सर्वकामधुक् ।
नमोभगवतेचांजनेयायेत्यंगुष्टाम्यांमुदीरितः ॥ १८ ॥

रुद्रमूर्त्तयइत्येवं तर्जनीं भ्यामनंतरम् ।
वायुसुतायापि तथा मध्यमाभ्यामपि स्फुटम् ॥ १९ ॥

अग्निगर्भाय च तथानामिकाभ्यां प्रविन्यसेत् ।
रामदूताय च पुनः कनिष्ठिकाभ्यां विचक्षणः ॥ २० ॥

ब्रह्मास्त्रनिवारणाय चास्त्रमंत्रसमीरितः ।
एवं षडंगं च मुने कृत्वा ध्यायेदनन्यधीः ॥ २१ ॥

स्फटिकाभं स्वर्णकान्ति द्विभुजं च कृतांजलिम् ।
कुंडलद्वयसंशोभिमुखांभोजं मुहुर्मुहु: ॥ २२ ॥
अयुतं च पुरश्चर्य्या रामस्याग्रे शिवस्यवा ।
पूजां तु वैष्णवे पीठे शैवे वा विदवीत वै ॥ २३ ॥
आवृतीभिर्विना नित्यं नक्ताशीर्विजितेंद्रियः ।
क्षुद्ररोगनिवृत्यर्थंमष्टोत्तरशतं जपेत् ॥ २४ ॥
जप्त्वा त्रिदिनमेकान्ते तेभ्यो मुच्येत तत्क्षणात् ।
क्षुद्रभूतप्रशांत्यर्थंमष्टोत्तरशतं पुनः ॥ २५ ॥
दिनत्रय मथो जप्त्वा भूतानां मुच्यते भयात् ॥ २६ ॥
भूतप्रेतपिशाचादिशांतयेऽष्टोत्तरं शतम् ।
जप्त्वैव तद्भयान्मुक्तो भवेदेव न संशयः ॥ २७ ॥
महारोगादिशान्त्यर्थंमष्टोत्तरसहस्रकम् ।
जप्त्वा तस्मात्प्रमुच्येत निश्चितं नियताशनः ॥ २८ ॥
जयाभिकांक्षिणं राज्ञामस्मादन्यो न विद्यते ।
ध्यायन्राक्षसहंतारमयुतं नियतात्मना ॥ २९ ॥
जपेन्नियमवांश्चैव जये दुर्जंयमप्यरिम् ।
संधानाय तु सुग्रीवसंधातारं स्मरन्नपि ॥ ३० ॥
अथ तेनैव वलिना संधमाप्नोत्यसंशयम् ।
लंकायादाहकं ध्यात्वा जपन्नयुतमंजसा ॥ ३१ ॥
शत्रुराष्ट्रं दहेदेव दुग्धाब्धिमपि चानघ ।
जपार्थीरिपुसंधानामस्मादन्यो न विद्यते ॥ ३२ ॥

यस्तु गेहे हनूमंतं सर्वदैव प्रपूजयेत् ।
अर्चयेतेनमंत्रेण तस्य लक्ष्मीरचंचला ॥ ३२ ॥
दीर्घमायुर्लभेदेत्र सर्वतो विजयीभवेत् ।
भार्यादिभूतसंक्षोभस्तद्देशेनैव जायते ॥ ३३ ॥
नान्यत्साधनमस्त्येव मंत्रात्तस्माद् हनूमतः । ।
चौरव्याघ्रादिभूतानामयमेव परायणम् ॥ ३४ ॥
परापहृतराज्यानां घर्षितानां परैः पुनः ।
सन्नाहभाजां युद्धेषु रुद्धानां परसैनिकैः ॥ ३५ ॥
शत्रवः सर्वदामित्रभावेनैवासते सदा ।
शैवानां वैष्णवानां च षट्कर्मात्र प्रदर्शितम् ॥ ३६ ॥
यात्राकाले हनूमंतं स्मरन्यस्तु स्वकाद्गृहात् ।
निर्गच्छति सवेगेनस्विष्टार्थमभिगच्छति ॥ ३७ ॥
स्वापत्काले स्मरन्नित्यं चोरभूतादिकान् जपेत् ।
यमद्वयं वासुदेवाख्यं हनूमंतपदं ततः ॥ ३८ ॥
फलेतिफलितपदं घगेतिघगेति च ।
आयुराश्वफडाहेति सद्यः प्रत्ययकारकः ॥ ३९ ॥
चतुर्विंशत्यक्षरको मंत्रोयंप्लीहरोगनुत् !
नागवल्लीदलं चैलमष्टमंगुणितं शुभम् ॥ ४० ॥
वशजं शकलं स्थाप्य क्रमात्प्लीहोदरोपरि ।
जप्त्वारण्योपलाग्नौ च दर्भमुष्टि प्रतापयेत् ॥ ४१ ॥
मंत्रेणानेनाभिमंत्र्यसप्तवारं तथा पुनः ।
तथाभिमंत्रयेदेवं सप्तभिस्तु विचक्षणः ॥ ४२ ॥
स्फोटद्वारा भवेत्प्लीहो भस्मभूता न संशय ।
तारं हकारोग्निसमः षट्दीर्घस्वरबिंदुमान् ॥ ४३ ॥
प्रणवान्तोष्टाक्षरको मूलमंत्र उदाहृतः ।
ताराद्यं वज्रकायेति वज्रतुडेति ह्युद्धरेत् ॥ ४४ ॥
कपिलंपिंगलंचोक्त्वा ऊर्ध्वकेशंमहाबलम् ।
रक्तमुखतडिज्जिह्वमहारौद्रपदं ततः ॥ ४५ ॥
दंष्ट्रोत्कटक हकरान्विनेवदेत्त तः ।
महादृढप्रहारश्च लंकेश्वरवधायच ॥ ४६ ॥
महासेतुबंधपदं महाशैलप्रवायच ।
गगनेचरएह्येहि भगवंस्त्वंमहापदम् ॥ ४७ ॥

बलंपराक्रमपदं भैरवाज्ञां जपेति च ।
एह्येहिमहारौद्र दीर्घपुच्छेनवेष्टय ॥४८॥
वैरिणं भंजयपदं द्विरुक्तहुंफडंतकं ।
पंचाशत्याधिकः प्रोक्तो मंत्रः शताक्षरः ॥४९॥
मालाख्योयं ज्वरादीनांरोगाणांमन्तकः स्मृतः ।
आदौषट्कोणमुद्धृत्य ततो वृत्तं लिखेन्मुने ॥५०॥
दलानि विलिखेदष्टौ ततः स्याच्चतुरस्रकम् ।
सर्वलक्षणसंपन्नं व्यक्तं सर्वमनोहरम् ॥५१॥
तदंतरेण सुव्यक्तं साध्याख्यकर्मगर्भितम् ।
तद्बीजं विलिखेद्भूयस्तत्क्रोडीकृतमन्मथम् ॥५२॥
ततस्तत्पंचबीजानि पुनरावर्त्तयेन्मुने ।
पुनर्दशाक्षरेणैव तदेव परिवेष्टयेत् ॥५३॥
षडंगान्यग्निकोणादि कोणेष्वेवक्रमाल्लिखेत् ।
तथा कोणकपोलेषु ह्रींश्रींदेविलिखेत्ततः ॥५४॥
हुंबीजंप्रतिकोणाग्रं केशराग्नेषु च स्वरान् ।
मालामंत्रस्य वर्णाः स्युश्चत्वारिंशच्च सप्त च ॥५७॥
वर्णाः सप्तदले वषट्षट्पंचाष्टमे दले ।
पूर्वतो वेष्टयेत्काद्यैस्तत्सर्वं च तपोवन ॥५६॥
दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजे नारसिंहवराहयोः ।
क्षौंहूंचेति तु पूर्वादिभूगृहे चतुरस्रके ॥५७॥
यंत्रेस्मिन्सम्यगाराध्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ।
एतद्यंत्रं समालिख्य सौवर्णे राजते पटे ॥५८॥
भूर्जे वा सम्यगालिख्य गुलकीकृत्य धारयेत् ।
अपुत्रो लभते पुत्रानधनो धनमाप्नुयात् ॥५९॥
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम् ।
यंत्रमेतत्समाख्यातं धारणात्पातकापहम् ॥६०॥
षट्कोणादिमनोहरान्तं यंत्रं लिखित्वा
तस्य मध्ये साध्याख्याकर्मगर्भितम् ।
रामबीजं विलिखेत् तत्सर्वंमन्मथेन
क्रोडीकृत्य अवशिष्टैर्मन्त्रार्णैर्मन्मथेन वेष्टयेत् ।
अष्टदलाद्बहिर्द्वादशाक्षरवेष्टनमितिवशिष्ठकल्पाभिः भेद ॥

शेषं स्पष्टं षट्कोणादीण्येतपूर्ववद्विलिखेदथ ।
तस्य मध्ये लिखेत्तारं षट्सुकोणेष्वपि क्रमात् ॥ ६१ ॥
मूलमंत्राक्षराण्येव संविष्वंगं च मन्मथम् ।
मायागंडेषु किंजल्केस्वराणां लेखनं मतम् ॥ ६२ ॥
पत्रेषु पूर्ववन्मालामंत्रो लेख्यः क्रमेण हि ।
दशाक्षरेण संवेष्ट्यकाद्यानि व्यंजनानि च ॥ ६३ ॥
दिग्विदिक्षु लिखेद्बीजे नारसिंहवराहयोः ।
एतद्यंत्रं वरं चात्रसांगावरणमर्चयेत् ॥ ६४ ॥
सौवर्णे राजते भूर्ज्जे लिखित्वार्चनमाचरेत् ।
फलं तु पूर्ववद्ज्ञेयं यंत्रस्यास्य विचक्षणैः ॥ ६५ ॥

अगस्त्य उवाच—
वक्ष्यामि रामचंद्रस्य यंत्रं कवचसंज्ञितम् ।
धारणात्तस्य मर्त्यानां जायन्ते सर्वसिद्धयः ॥ ६६ ॥
नश्यंति सर्वपापानि विपदो यांति संक्षयम् ।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः पलायंते च दर्शनात् ॥ ६७ ॥
मित्राणि स्थिरतां यांति शत्रवो यांति मित्रताम् ।
ग्रहाः प्रसादमायांति दास्यं यांति महीभृतः ॥ ६८ ॥
किमत्र बहुनोक्तेन नास्त्यनेन सुदुर्लभम्। ।
यंत्रेण रामभद्रस्य वज्रपंजरसंज्ञिना ॥ ६९ ॥
कोष्ठैः सहैकविंशत्या पंक्तिद्वयविभूषितम् ।
विन्यस्येदुत्तमं चक्रमेतस्मिन्कवचं लिखेत् ॥ ७० ॥
द्वादशाक्षरवर्णानि गृहाद्यंतेषु विन्यसेत् ।
अनुलोमविलोमाभ्यां प्रादक्षिण्यक्रमेण च ॥ ७१ ॥
राघवादीनि नामानि नमस्कारेण योजयेत् ।
मे शिरः पात्वितीवस्यात्सर्वतो वाक्ययोजना ॥ ७२ ॥
साध्याख्यासंयुतां षष्ट्या स्वाहेत्येकादशे गृहे ।
स्वकामशक्तिवाग्वर्णान्नारसिंहमतःपरम् ॥ ७३ ॥
लक्ष्मीपाशांकुशार्णानि वाराहं फट्स्वरूपकम् ।
स्वाहेतिरामभद्रस्य द्वादशाक्षरमीरितम् ॥ ७४ ॥
सौवर्णे राजते पत्रे भूर्ज्जे वा सम्यगालिखेत् ।
अथवा ताम्रपत्रे च गुलिकीकृत्य धारयेत् ॥ ७५ ॥

जावज्जीवं तु सौवर्णे रौप्ये विंशतिवर्षकम् ।
भूर्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धंताम्रपत्रके ॥ ७६ ॥
एवं लेख्यं विशेषेण यंत्रशक्तिप्रतिष्ठिताम् ।
एतां रामवलोपेतामित्यादिश्लोकषट्कम् ॥ ७७ ॥
यंत्राद्बहिः प्रदेशे तु वृत्ताकारं यथालिखेत् ।
सर्वंदुष्टोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ ७८ ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं पुत्र-पौत्र-प्रवर्द्धनम् ।
सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके स गच्छति ॥ ७९ ॥

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये हनुमन्मंत्रयंत्र श्रीरामकवचयंत्रोद्धारफलश्रुतिकथनं नाम द्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥ समाप्तः ॥ श्रीसंवत् १९१६॥ भाद्रपदे शुक्लपक्षे ११॥ बुधवासरे॥

॥ समाप्तः॥ शुभः॥ श्रीरामः॥

परिशिष्ट 'ग'

हनुमत्प्रतिष्ठाप्रकारः (पंचरात्रोक्तः)

(पा० लि० ००९९१९)

श्रीगणेशाय नमः। । अथ पांचरात्रोक्तहनुमत्प्रतिष्ठाप्रयोगः ॥

देशकालौसंकीर्त्य एतद्राष्ट्रस्य क्षेमसिध्यर्थं ममसकलऐश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं हनुमद्देवताप्रतिष्ठां करिष्ये ।

तदंगत्वेन गणेशपूजनस्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नांदीश्राद्धं आचार्यादिवरणं च करिष्ये ॥

गणेशपूजनादिऋत्विग्वरणांतं कृत्वा प्रतिष्ठास्थानादग्रतो मंडपं कृत्वा ।

अग्रतो मंडपं कृत्वा स्थानादुत्तरतोपि वा ।
वारुण्यां दिशि वा कुर्यान्नैव कुर्याच्च याम्यतः ॥

ऋत्विग्भिः सह सुवासिन्यग्रतः कृत्वा गंधाक्षतबलिसामग्रसी गृहीत्वा वाद्यघोषेण जलाशयं गच्छेत्] । जलसमीपे स्वस्तिकं कृत्वा जलमध्यस्थं हनूमंतं स्वस्तिकोपरि निधाय भद्रंकर्णेभिसूक्ते कुशोदकेनाभ्युक्ष्य गंधपुष्पादिभिः पूजयित्वा मानोमहांतिमिति बलिं दत्वा प्रार्थयेत् ।

मारुतप्रियसूनो त्वां नमामि शुभहेतवे ।
प्रतिष्ठास्थानमाश्रित्य सफलोस्तु सदा मम ।

ततउत्तिष्ठेतिमंत्रेण उत्थाप्य रथे तिष्ठन्निति रथमारोप्य वेदघोषैः सह मंडपमागात्य उत्तरतः स्थाप्य यदग्नेत्याद्यग्निप्रतिष्ठांतं कृत्वा ततो ग्रहस्थापनांतं कृत्वा वेदिकोपरि एकादशकलशान संस्थाप्य कलशेषु रुद्रप्रतिमां संस्थाप्य रुद्राध्यायं जपित्वा विष्णोरराटमसीति च । आज्यभागांते ग्रहहोमं उक्तद्रव्यैः कृत्वा ततो नमः शंभवेतिमंत्रेण विष्णोरराटमसीतिमंत्रेण हनुमते मम इति वा समित्तिलपायसाज्येन हुत्वा देवसमीपं गत्वा ।

स्वागतं देवदेवेश हनुमत्पवनात्मज ।
सर्वत्र त्वदधिष्ठानरक्षाहेतुकरं नृणाम् ॥

इति संप्रार्थ्य पादतलस्पर्शादिदोषपरिहारार्थं मानस्तोकेतिमंत्रेण अंगानि गोमयेन पलिप्य पुरुषसूक्तेन प्रक्षाल्य यवपिष्टेनोद्वर्त्य घृतेनाभ्युक्ष्य उष्णोदकेन प्रक्षाल्य गंधादिभिः संपूज्य चतुर्दिक्षु बलिं दत्वा ततः सुवर्णशलाकया चित्रंदेवानामितिमंत्रेण चक्षुरुन्मीलयेत् पुरतो नानाभक्ष्यादि दर्शयेत् । उत्तिष्ठेतिमंत्रेणोत्थाप्य शिलाया उपरिस्थापयेत् । आकृष्णेनेतिमंत्रेण सर्षपतिलपिष्टेनोद्वर्त्तयेत् । पंचामृतेन संस्नाप्य पौरुषेणेति च ततः प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ॥

ततः पंचदशप्रणवावृत्या देवहृदयं स्पृष्ट्वा संस्कारा जाता इति भावयेत् । ततो कलशोदकैः रुद्राध्यायेन देवमभिषिच्य वस्त्रयज्ञोपवीताजिनमेखलामौंजीदंडानि दत्वा पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य वनवासिने सिंदूरं दत्वा प्रार्थयेत् ।

नमो नमस्ते भयनाशवक्त्रे नमोस्तु तुभ्यं हरिमूर्त्तिकाय ।
नमो नमस्ते सुरवंदिताय नमो नमस्तेस्तु करालवक्त्रे ।

इति क्षमाप्य ततो बलिदानं पूर्णाहुत्यंतं कृत्वा कलशोदकैर्यजमानमभिषिच्य दक्षिणादानेनआचार्यादीन्स्तोषयित्वा भूयंसी दत्वा यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् ।

॥ इतिपंचरात्रोक्तहनुमत्प्रतिष्ठा समाप्ता ॥

परिशिष्ट 'घ'

हनुमन्मालामन्त्रः (शौनकसंहितास्थः)

(वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयीय सरस्वतीभवनपुस्तकालयस्य
पाण्डुलिपिसंख्या २५०८३ की प्रतिलिपि)

(हं)नुमते हुं फट् स्वाहा इशान्यमंडलेवृषभारूढहनुमतेशूलशक्तिसहिताय। चौरव्याघ्र पिशाचोरगब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीवेतालानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्षरक्ष ऊं यं ऊं नमोभगवंतेहनुमते हुं फट् स्वाहा भूमंडलेवृश्चिकारूढहनुमते वज्रपाशसहितायचौरव्याघ्रपिशाचोरगब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीवेतालानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्ष रक्ष ऊं यं ऊं नमोभगवतेहनुमते हुं फट् स्वाहा अंतरिक्षमंडलेवर्तुलवायुवृषभारूढहनुमतेमुद्गरतोमरहस्तसहितायचोरव्याघ्रपिशाचोरगब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीवेलानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्ष रक्ष ऊं यं नमोभगवतेहनुमते हुं फट् स्वाहा ब्रह्ममंडलेहंसारूढहनुमते पद्मशक्तिसहिताय चौरव्याघ्रपिशाचोरगब्रह्मराक्षसशाकिनीडाकिनीवेतालानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्ष रक्ष ऊंयंऊंनमोभगवते (हनु)मते हुं फट् स्वाहा ऊं ह्रीं यं खे खे वीरचंडप्रतापहनुमते हुं फट् खेगतिवंधमतिवंधनाकूपमार्गवंधसर्पवंधचौरवंधवृश्चिकवंधव्याघ्रवंधगजवंधशरभवंधशार्दूलवंधदुष्टनानामृगवंधभेरंडवंधभूतवंधप्रे (त) वंधपिशाचवंध शाकिनीवंधडाकिनी—वंधराक्षसवंधब्रह्मराक्षसबंधवेतालवंधरोगवंध ज्वरवंधशूलवंधसर्ववंध सर्वदेशग्रामवंधराजसभावंध प्रतिवादिवंधपरमंत्रवंधपरयंत्रतंत्रवंध सर्वशत्रुवंध सर्वदेवतावंध आवेशय आवेशय ऊंवीरप्रतापरौद्रभीषणायहनुमानवज्रशरीरायकुंडलकौपीनतुलसीवनमालाधरायसर्वग्रहानुच्चाटयोच्चाटयशाकिनीनुच्चाटयोच्चाटयडाकिनीनुच्चाटयोच्चाटयवेतालानुच्चाटयोच्चाटयब्रह्मराक्षसानुच्चाटयोच्चाटयज्वरसमूहानुच्चाटयोच्चाटयचौररसमूहानुच्चाटयोच्चाटयशत्रुसमूहानुच्चाटयोच्चाटयअंडजसमूहानुच्चाटयोच्चाटय मां रक्ष रक्ष ऊं यं ऊं नमो भगवतेहनुमतेहुंफट्स्वाहा मां रक्ष रक्ष उद्भिजसमूहानुच्चाटयोच्चाटयस्वेदजसमूहानुच्चाटयोच्चाटयजरायुजसमूहानुच्चाटयोच्चाटय हिंसकादिसर्वजंतूनुच्चाटयोच्चाटय ऊंयंऊंनमोभगवतेवीरप्रतापहनुमते पीतांबरधरायकनककुंडलभूषणालंकृताय किरीटतुलसीवनमालाविभूषिताय कनकयज्ञोपवीतकौपीनकटिसूत्रविराजिताय श्रीरामचन्द्रमनोभिलषिताय लंकापुरीदहनकारणायदानवकुलगिरिवज्रदंडाय अक्षयकुमारसंहारकरणाय ऊं रं यंह्रौं ऊं नमोभगवतेरामदूताय हुं फट् स्वाहा।। इतिशौनकसंहीतायांरोगकृत्रिमभूतोच्चाटनहनुमन्मालामंत्रसंपूर्णं ।। श्रीरामचंद्रायनमः ।।

परिशिष्ट 'ङ'

श्रीहनुमन्मन्त्रविवरणम् (सुदर्शनचक्रराजसंहितायाम्)

(वा० सं० वि० वि० सरस्वतीभवनपुस्तकालय पाण्डुलिपि
सं० २५५५१ की प्रतिलिपि)

श्रीगणेशायनमः।

अथ पूजाविधानार्थं यंत्रं तत् कथ्यतेऽगुना ।
षट्कोणवसुयंत्रं च चतुरस्त्रं च वाह्यतः ॥
वीजयुक्तिलिखेत्सम्यक् नामलेख्यं हनूमतः ।
षट्कोणेषु षडंगानि वीजयुक्तानि संलिखेत् ।
बीजमंत्रं च कोणाग्रे लिखेत्सम्यक्पुनस्तथा ।
अंजनीपुत्राय तथा ततो वै रुद्रमूर्त्तये ।
तथा वायुसुतायेति जानकीजीवनायच ।
रामदूताय ब्रह्मास्त्र निवारणाय तत्परं ।
षट्कोणस्यांतरालेषु संलेख्यं नामषट्ककं ।
वसुपत्रे च वीजानि नामानि च समालिखेत् ।
सुग्रीवायांगदायाय सुखेनाय ततः परं ।
नलाय चायनीलाय तथा जांबवते परं ।
प्रहस्ताय सुवेषाय दलमध्येषु संलिखेत् ।
रामभक्तो महातेजाः कपिराजो महावलः ।
द्रोणाद्रिहारको मेरुपीठकार्चनकारकः ।
दक्षिणा· · ·भास्वरश्च सर्वविघ्ननिवारकः ।
दलान्तरेषुलेख्यानि नामान्यष्टौ च यत्नतः ।
लोकपालांसायुधा...चतुरस्त्रे च संलिखेत् ।
रक्षोघ्नाय द्विपघ्नाय रिपुघ्नायतथैव च ।
व्याधिघ्नाय ज्वरघ्नाय भूतघ्नाय ततः परं ।
कृत्याग्रहवलघ्नाय कुलिशघ्नायशेषतः
सर्पव्याघ्र-महाचौर-भयघ्नाय चिदात्मने ।
ब्रह्मग्रह महाराज कोपघ्नाय निरंतरं ।

रामप्रियाय रुद्राय रामभक्तिरताय च ।
भक्तप्रियाय जगतिं दुर्भिक्षार्त्तिनिवारणे ।
पार्थाय संगरानंतशक्ति-विक्रम-वर्द्धिने ।
इत्येतद्दिक्षु संलेख्यं स्तुत्याख्यां नामसंघकं ।
एवं यंत्रवरे सम्यक् पूजाकार्या प्रयत्नतः ।
अप्राप्यं वांछितं सम्यक् प्रापयत्येव निश्चितं ।
अधुना प्रतिमायंत्रं कथ्यते तन्निशामय ।
कपीश्वरस्य रूपंच समालेख्यं प्रयत्नतः ।
वस्त्रेवा कागलेवाथ मश्यावालक्तकेन वा ।
हिंगुलेनाथवान्यैश्च द्रव्यैः सम्यक् सुशोभनं ।
तत्रैव क्रमयोगेन साध्यनामाक्षराणि च ।
प्रथमंहृदयेलेख्यं द्वितीयं मस्तके तथा ।
तृतीयं दक्षिणे वाहौ भुजे वा मे चतुर्थकं ।
पंचमं च तथा षष्ठं पाण्योर्दक्षिणसव्ययोः ।
वदरे सप्तमं चैव दक्षोरौ वाष्टमंमतं ।
वामोरौ नवमंचै वदशमं पक्षमपत्तले ।
एकादशं समालेख्यं वामपादेतलं तथा ।
एवं क्रमेण संलेख्यं वर्णानां च समूहकं ।
वश्ये द्वेषे स्तंभने च मारणे मोहने तथा ।
आकर्षणे वंधमुक्तौ विजये च विशेषतः ।
द्वादशाक्षर विद्यायास्तदक्षरयुतं लिखेत् ।
मंत्राद्यं वीजषट्कंच चतुर्थ्यंतं नमोंतकं ।
तन्नामकथिता विद्या द्वादशाक्षरवर्णिका ।
वशमानय संलेख्यं वश्येवाम्रेडितान्वितं ।
विद्वेषणायाम्रेडितं विद्विषे समुदीरितं ।
आम्रेडितं स्तंभयेति स्तंभने समुदीरितं ।
आम्रेडितं मारयेति मारणे समुदाहृतं ।
आम्रेडितं मोहयेति मोहनेस आम्रेडितंमोक्षयेति मोक्षोस ।
एवंविधं तु संलेख्यं प्रतिमायंत्रमुत्तमं ।
साध्याकृतिं वस्त्रमयीं कृत्वा पूर्ववदुत्तमां ।
रक्तांजनेन संप्रोक्ष्य स्मद्रं कृत्वा प्रयत्नतः ।
क्षीरेण नवनीतेन दध्नावान्येन केनचित् ।

प्राणानां स्थापनं कृत्वा रोपणोच्चाटनं कृतं ।
नामोद्देशेन च रिपोः पीडयेदाकृतिं तु तं ।
तद्वास्थपानं वै कारयेन्मृत्युहेतवे ।
अथवाग्नौक्षिपेत्तां तु चैत्ये मारणहेतवे ।
एवं कृत्वा रिपोः सत्यंमृत्युर्भवति नान्यथा ।
प्राणप्रतिष्ठापूर्वं तु संपूज्य निक्षिपेद् भुवि ।[1]
साध्यस्य द्वारदेशे तु निखन्याच्च महामतिः ।
अथवा भूतले लेख्यं प्रतिमायंत्रमुत्तमं ।
तत्रेमंश्लोकसंदर्भं साध्यनामं लिखेद् ध्रुवं ।
संमार्ज्य पुनरालेख्यं तथैव च पुनः पुनः ।
एवमष्टोत्तरशतं लेखनावृत्तिरिष्यते
वृत्तिः संमार्जनस्यापि तावत्येव विधीयते ।
यद्यत्कार्यं समासाद्य तथा पल्लवयोजना ।
कार्यस्य पूरिका एता ज्ञातव्या मंत्रणा ध्रुवं ।
अथ यंत्र प्रवादि द्वेषकारक ।
कार्यभंजकेतिपदं क्रूरप्रकृतिकं पदं ।
प्रवृद्धकोपावेशिक हंतुवैरत्पदं तथा ।
कामुकादीनितिपदं दूरस्थेति पदांततः
समीपस्थान्भूतभविष्यद्वर्त्तमानाथोच्चरेत्
पुंस्त्रीनपुंसकाश्चातुवर्ण्यान् क्षणेन सत्वरं ।
हनद्विधादहद्विधा सहारय द्विधा वद ।
मोहयेतिद्विधा वाच्यं मदयेत्ति द्विधा ततः ।
हिंषयेतिपुनश्चोत्कामज्जारिमूषकेति च ।
वत्सद्यः प्राणंश्वततांविनियोजय द्विधोच्चरेत् ।
विध्वंसय द्विधाम्रित्किद्विधा मूकय पौनरुक्त्या
जारयेति वंचयेति द्विधाततः ।
जृंभयेति द्विधा चोक्त्वा पातयेति द्विधा वद ।
ततो ममपदं चोक्त्वा परस्य च पदेततः ।
पादतलाक्रमितांकुरु द्वंद्वंतोवद दासीभूतान्संपादयद्विधाहा
वत्रिमोच्चरेत्क्रोधंत्रिधाकवचास्त्राग्निवल्लभा ।
वर्णानां द्विशतं प्रोक्तं पंचपयुत्तरं मनौ ।
विद्वेषवैरिदुष्टानां क्रूरबुद्धिविनाशने ।

मंत्रोयं गदितं सत्यं गुरुभि मंत्रिपारगैः ।
विशिष्यते कलौ सत्यं प्रत्ययायाल्पबुद्धयो ।
महारुद्रावतार जगत्प्राणात्मजस्य च ।
मनुं विद्धि वरिष्ठं च सर्वसिद्धिप्रदं नृणां ।
वारिमंत्राद्यभिमंत्र्य प्रविक्षिरेत्सर्वत्र च सुसाधकः ।
तल्लंघनाद् भवंत्येव सर्वदुष्टास्तु सेवकाः ।
एकादशोक्तबीजानि प्रथमं समुदीरयेत् ।
नमो हनुमते चोक्त्वा त्रैलोक्याक्रमणेतिच ।
पराक्रमेति श्रीरामभक्त ममपरस्य च ।
सर्वशत्रून्सर्ववर्ण संभवानिति वै वद ।
पुंस्त्रीन् नपुंसकान्भूतभविष्यद्वर्त्तमा इति ।
नानदूरस्थ समीपस्थान्नाना इति ततो वद ।
नामधेयांस्ततो नाना संकरेति च जातिजान् ।
कलत्रपुत्रमित्रेति भृत्यबंधुसुहृत्ततः ।
समेतान्प्रभुशक्तीति सहितानि ततः परं ।
धनधान्यादिसंपत्तियुतान् राज्ञः परंतप ।
राजसेवन् मंत्रिपदं सचिवेति सखीं ततः ।
आत्यंतेकं क्षणेनेति त्वरयैःद्दिनावधि ।
नानापायैरितिपदेन्ततो मारय युग्मकं ।
शस्त्रैश्छेदय युग्मं च अग्निना ज्वालयद्विधा ।
दाहयेति द्विधावाच्यं अक्षय्येति ततो वद ।
कुर्मरव त्पालाक्रमणेन शिलातलं ।
आत्राटय द्विधा वाच्यं घातयेति द्विधा वद ।
वधयुग्मं भूतसंघैः सहं भक्षय युग्मकं ।
क्रुद्धयेत् सेतिनखैर्विदारय द्विधा वद ।
देहांशादस्मादितित उच्चाटय द्विधा वद ।
पिशाचवद् भ्रंशयेति द्विधा भ्रामयेति द्विधा ।
भयातुरान्विसंज्ञाश्च सद्यः कुरु युगं वद ।
भस्मीभूतान् द्विधावाच्यमुद्धूय पुनर्वद ।
भक्तजनवत्सलेति सीताशोकापहारक ।
सर्वत्रमां तथैनं च रक्षयुग्मं च हात्रयं ।
क्रोधत्रयंद्येत्रयंवै कवचास्त्राग्निवल्लभः ।

एकचत्वारिंश दुत्तराण्यपि त्रिशतान्य च ।
वर्णानां गणना ज्ञेया दुष्टारिद्वेषणं तथा ।
उच्चाटथ मृत्युपैशाच्यं करणीयंमनुंध्रुवं ।
सप्रत्ययसमर्थंश्च कलौ भक्तेप्सितार्थंकृत् ।
श्रद्धया नियमेनाथ सस्मृतो जपितः खलु ।
कार्यं सावयते नूनं सत्यं सत्यं वतान्यथा ।
हनुमद्वीर्यसामर्थ्याद् दुर्ज्जयो मंत्रविद् भवेत् ।
आदावेकादशोक्तानि बीजानि समुदीरयेत् ।
पुनर्वेदादि मंत्रोक्तानि नमो हनुमते ततः ।
प्रकटेति ततश्चोक्त्वा पराक्रमपदं ततः ।
आक्रातं पदमेतत्तु दिङ्मण्डलपदं ततः ।
यशोवितानेतिपदं घवलीकृत वै वद ।
जगत्त्रितयवज्रेति देहज्वलदितीरयेत् ।
अग्निसूर्यकोटिसमप्रभतनस्तनूरुह ।
रुद्रावतारतो लंकापुरीदहनवै उदधि लंघन ततो
दशग्रीवशिरस्ततः ।
कृतांतक सीताश्वासन ततो वायुसुतेति च ।
अंजनीगर्भसंभूत श्रीरामेति पदं ततः ।
लक्ष्मणानंदरेति कपिसैन्य पदं वद ।
प्राकार सुग्रीवपदं सख्यकारण वै ततः ।
वालिनिर्वहंणपदं कारणेति ततो वद ।
द्रोणपर्वतोत्पाटन ततो वदेत्परंपदं ।
अशोकवनचेत्तु विदारणपदं ततः ।
अक्षयकुमारकेति छेदनेति ततो वद ।
वनरक्षाकरपदं समूहं इति चोत्तर ।
विभजनब्रह्मास्त्रेति ब्रह्मशक्ति पदं वद ।
असनेतिर्लक्ष्मणेति शक्तिभेदनिवारण ।
शल्यविशल्यौषधीति समानयन वै ततः ।
वालोदितभानुपदं मंडल ग्रसनेति च ।
मेघनादं होमपदं विध्वंसन ततः परं ।
इंद्रजिद्वधकारण सीतारक्षक वै पदं ।
ततश्च राक्षसीसंघविदारण पदं ततः ।

कुंभकर्णाय वधेति परायण पदं वद ।
श्रीं रामभक्तितत्पर समुद्रेति ततः पदं ।
व्योमद्रुम लंघनेति महासामर्थ्यं वै पदं ।
महातेजःपुंज पदं विराजमान वै पदं ।
स्वामिवचनेति पदं संपादिताऽर्जुनेति च ।
संयोग सहायेति च कुमारेति पदं ततः ।
ब्रह्मचारिन्निति पदं गंभीरेति पदं ततः ।
शब्दोदय दक्षिणाशा मार्त्तंडमेरु वै पदं ।
पर्वत पीठिकार्चनसकलेति पदं ततः ।
मंत्रागमाचार्यं पदं मम सर्वग्रहेति च ।
विनाशनं सर्वं पदं ज्वरोच्चाटन सर्वं वै ।
विषनाशन सर्वापत्ति निवारणेति च ।
सर्वदुष्टानि पदं निर्वहण पदं ततः ।
सर्पव्याघ्रादि भयेति निवारण पदं ततः ।
सर्वशत्रुवेदनेति पदं मम परस्य च ।
ततस्त्रिभुवने पुंस्त्रीनपुंसकात्मकं पदं ।
ततः सर्वजीवजातं वशयेति द्वयं वदेत् ।
ममाज्ञाकारकं चैव संपादय द्विधा वद ।
ततो नाना नामधेयान्सर्वराज्ञः पदं वद ।
ततः सपरिवारांश्च वदेति मम सेवकान् ।
कुरु युग्मं सर्वपदं शस्त्रास्त्रेति विषाणि च ।
विध्वंसय द्विरुच्चार्यं मायां पूर्ववदुच्चरेत् ।
ह्रांत्रिवा च समुच्चार्यं तद्वतद्वहेहिं त्रिधोच्चर ।
पूर्वोदितं पवकूटं वैश्वरीत्येन वोच्चर ।
सर्वशत्रून हंनद्वंद्वं परवलानि ततः परं ।
परसैन्यानि क्षोभय द्विधा मम पदं ततः ।
ततः सर्वकार्यघातं साधयेति द्विधा वद ।
सर्वदुष्टदुर्ज्जनेति मुखानि कीलय द्विधा ।
घेत्रि योच्चरङ्कारं त्रिधाक्रोधं त्रिधा ततः ।
त्रिधा चास्त्रवह्निनाथय संयुतोयं मनुः स्मृतः ।
मंत्रै वर्णाः समाख्याताः द्विनवत्युत्तराः खलु ।
पंचशतानि सत्यं हि मंत्रविद्भिः पुरादर्नं ।

सर्वकार्यार्थसंसिद्ध्यै प्रोक्तोयं हनुमन्मनुः ।
द्वादशाक्षरविद्यायां विवृतिः क्रियतेधुना ।
शिवमिंद्रस्वराक्रान्तं बिंदुमत्कुरुवादिमं ।
पूर्वोदितं पंचकूटं बीजषट्कं ततोवद ।
हनुमांश्च चतुर्थ्यायं योज्योनतिः पुरःसरम् ।
द्वादशार्णा महाविद्या यस्य कस्यापि मा वद ।
रहस्यंते मयाख्यातं वाल्मीकि मुनिनोदितं ।
ऋष्यादिकं सर्वमेव पूर्वमेव निवेदितं ।
एकमेव हि सर्वेषां सत्यंसत्यं च नान्यथा ।
विशेषोत्र षडंगानि षट्कूटैः कुरु राघव ।
करांगुलिषु विन्यासः कार्यमित्थं शुभो मतः ।
मंत्रपदैरष्टभिश्च देहांगेषु संमतः ।
मूर्द्धिन भाले मुखे स्वांते नाभावूर्व्वोस्तु जंघयोः ।
पादयोश्चैव कर्त्तव्यो ध्यानं पूर्वोदितं कुरु ।
मुद्रान्पूर्वोदिताः कार्याः सर्व्वमेव हि पूर्ववत् ।
वानरी चास्थिमुद्रान्या तां शृणुष्व वदाम्यहं ।
करौ संपुटितौ कृत्वा समश्लिष्टांगुली स्फुटं ।
प्रलोपितौ च अंगुष्ठावंतगर्भस्थितौ कुरु ।
शृ हृदयोपरि विन्यस्त मुकुलाकृति संयुतौ ।
स्वामिपाद स्थिता दृष्टिर्मुद्रोपर्यवस्थिता ।
प्रोक्तोयं वानरीमुद्रा चैतन्मंत्रजपे स्थिता ।
इत्थं सर्वंनिगदितं हनुमन्मंत्र-गह्वरं ।
श्रद्धया परया भक्त्या सेवितोखिल सिद्धिदः ।

इतिश्रीसुदर्शनराजचंक्रराजसंहितायांहनुमन्मंत्रविवरणेमंत्रोद्धाराख्यः प्रथमः पटलः ।

ततो स्तंसमारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत् ।
तावन्मंत्रं जपेद्रात्रौ कार्यमुद्दिश्य मंत्रवित् ।
पुरश्चर्यास्य मंत्रस्य प्रोक्ताचार्क-सहस्रेका ।
भौमस्य वासने पूजाकार्या हनुमतो ध्रुवं ।
प्रियंगवोव्रीहयोथ हव्याज्यक्षीर संयुताः ।
कदली मातुलुंगाम्र फलै हुनेत् ।
दशांशेन ततो ब्रह्मचारिणो भोजयेद् ध्रुवं ।

द्वाविंशति च संख्याकान् हनुमत्प्रीतये सुधीः ।
अष्टोत्तरशतंनामं छेत्रयेद् भस्मवारि च ।
ग्रहघोरे विषे चैव मार्जयेत्पातयेत्तनुं ।
हनुमत्प्रतिमा कार्या ततो भूतांकुशस्य च ।
पूर्वोत्तर गतेनैव मूलेनांगुष्ट नामतः ।
सर्वावयवसंपन्ना वित्त प्राशस्त्यकारिणी ।
प्राणसंस्थापनं तस्यां कृत्वा वैं मारुतं ध्रुवं ।
सिंदूरचर्चितां कृत्वा तथाभ्यवेपि चारकैः ।
मंत्रितानेन मंत्रेण ततस्तांद्वारसावके ।
खनित्वा निक्षिपेद् भूमौ गृहस्याभिमुखं निशि ।
भूतजा विषजा बाधा ग्रहजा कूटमंत्रजा ।
वेडकादिभवा वापि व्याधि-ज्वरविघातजा ।
चोराग्निबाधा च तथा नश्येत्तद् गृहेरिजा ।
तद्गृहं नंदते सर्वसमृद्ध्या संयुतं तदा ।
रात्रौरात्रौ जपेन्मंत्रं षट्शतं त्रिशतं तथा ।
दश वासर पर्यन्तं राजशत्रुभयं हरेत् ।
अभिचारज्वरे भूतज्वरे च भस्मना तनुं ।
मंत्रिते नाम सा बाधा ताडयेद् रोषपूर्वकं ।
त्रिदिना ज्ज्वरमुक्तिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।
औषधे रस मंत्रं दशवारं जपेद् बुधः ।
तेनाभिमंत्रितं दत्तं सर्वसफलतां जजेत् ।
शस्त्रधाराग्रसंस्थस्तंभे शतवारं जपेद्बुधः ।
तेनाभिमंत्रिते तोयं भस्म तस्य प्रदापयेत् ।
भस्मना चर्चितं देहं पयश्च प्रदशं स....
श्वस्तम्भो भवेत्तस्य सत्यं सत्यन्न संशयः ।
शस्त्रक्षतेषु लूतासु रक्तग्रन्यादि सम्भवे ।
भस्मना पयसा तत्र त्रिवारं चाभिमन्त्रयेत् ।
न व्यथा न च पूयं स्यात्संशोषयति स व्रणं ।
सप्त-वासरपर्यंन्तं विद्वेषोच्चाटने तपः ।
सूर्यास्तं च समारम्भ्य कारयेत् सुबुधोत्तमः ।
अरुणोदय-पर्यन्तं भस्म-कीलाभिमन्त्रितं
तद् द्वारे पूरितं गेहे रोपितं वापिता क्षणात् ।

ततस्तस्योदनंतु्स्थातत् परिवारयुतस्य च ।
पुत्रादिभिः सर्वलोकैः पौरैर्जनपदै सह ।
विद्विष्यते प्राणघातं सत्यं सत्यं वचो मम ।
भस्माभिमंत्रितं यस्य देहे चन्दन मिश्रितम् ।
चर्चितम्पेयखाद्यादि योजितं यत्र दापितम् ।
स वश्यो जायते नूनं प्राणैरपि घनैरपि ।
दासतां याति देवोपि मनुष्येषु च का कथा ।
क्रूरसत्वानि सर्वाणि वशयेदमुना खलु ।
प्रकारेण महावीराः ज्वलनाः शान्तितामियात् ।
दिव्यस्थाने च कर्त्तव्यं निःशक्तिश्च हुताशनः ।
भवत्येव न संदेहो लोहतैलेषु संस्थिता ।
मारणे क्रुद्धचित्तेन रात्रौ श्मशान-भूतले ।
रिपोः प्रतिकृतिं कृत्वा भस्मना वा मृदा तथा ।
पूर्ववत्प्राणसंस्थां च कृत्वा मन्त्रेण मन्त्रवित् ।
प्रतिमा हृदि तन्नाम लेख्यंचैव प्रयत्नतः ।
शस्त्रभेदं प्रतिमन्त्रोच्चारं कुर्य्याद्विधा पुनः ।
छिन्धि भिन्धि मारयेति तन्नामान्ते समुच्चरेत् ।
एवं सप्तदिनं कुर्वन्दन्तैरोष्ठम् प्रपीड्य च ।
कृत्वा प्रपीडनम्पाणितलयो दृढमात्मनः ।
होमः कार्यस्तत्र चाथ राजिका लवंङ्गणैः सह ।
उन्मत्त फलपुष्पैश्च श्लेष्मांतक विभांतकैः ।
विष रोम नखैर्वापि काक कौशिक गृद्धकैः ।
पक्षैः कटुकतैलाक्ते भवेच्चन्द्राकृतौ हुनेत् ।
स्थंडिले मुक्तकेशस्तु कार्या मुद्रया बुधः ।
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा पल्लवोच्चारणं कुरु ।
त्रिशतावृत्ति होमेन सप्तवासर मध्यतः ।
शत्रु मृत्युमवाप्नोति रुद्रेणापि सुरक्षितः ।
दिनत्रयं रात्रिभागे श्मशाने षट्शतं जपेत् ।
प्रेतमुत्थापयेत्सत्यं वेतालः किङ्करो भवेत् ।
शुभाशुभं च वदति मन्त्रिणा सह निश्चयात् ।
भाषान्ददाति सत्यं च कारयिष्यति करिष्यति ।
भस्माम्बु मन्त्रितं रात्रो सहस्रावृत्तिकं खलु ।

दिनत्रयन्ततश्चैव तत् क्षिपेत्प्रतिमासु च ।
यासु कासु च स्थूलासु लघुष्वपि विशेषतः ।
मन्त्रप्रभावाच्च तन्नून भवत्येव न संशयः ।
मन्त्रेणानेन सिद्धेन यद्साध्यं च साधयेत् ।
वश्ये भये विवादे च शस्त्रे सङ्ग्राम-सङ्कटे ।
द्यूते दिव्ये स्तम्भने च विद्वेषे मारणे तथा ।
मृतकोत्थापने चै..........चालने ध्रुवं ।
विषव्याधौ ज्वरे भूते ग्रहे कृत्यादिमोचने ।
क्षतेग्रन्थौ महारण्ये दुर्गे व्याघ्रे च दन्तिनि ।
क्रूरसत्वेषु सर्वेषु शस्त्रदन्वे विमोक्षणे ।
बन्धमोक्षे मारणे च मोहे शान्तौ नियोजयेत् ।
मन्त्रमेनं हंनुमतो नाना कार्यं प्रसाधनम् ।
बन्धमुक्तो जपेन्मन्त्रं रात्रौ रात्रौ च निर्भयः ।
निखित्वा प्रतिमाम्भूमौ मारुतेरस्खलन्नरः ।
स्वनामाक्षरसंयंतु द्वितीयान्तं समालिखेत् ।
मंत्रस्यान्ते तथामाञ्च विमोचय विमोचय ।
मार्जयेद्वामहस्तेन तथैव च लिखेत्पुनः ।
एवमष्टाधिकशतं लेखयेत् मार्जयेन्नरः ।
एवं कुर्यान्निवद्धो यः शृंखलाभिर्दृढं नरः ।
महापराधसंयुक्तोनर्थकारी तु प्राणहा ।
सप्तदिनमध्ये तु बन्धनान्मुच्यते सुखं ।
हंनुमान्ध्वंसयत्याशु ह्याय संमोक्षयेन्नरः ।
नतन्दण्डयितुं शक्तो राजानो रिपवो जनाः ।
हवनान्यपि सत्येव दशांशेन निबोध तत् ।
स्तंभने च न कामा वा न्यग्रोधस्य फलानि च ।
हरिद्रा च तथा प्रोक्ता तालकः सल्लकी फलं ।
शल्मली कुसुमान्याहु मधुत्रय समन्वितं ।
उच्चाटे गदितास्तत्र श्लेक्ष्मांतक विभीतकाः ।
वश्यार्थं सर्षपाद्राक्षा मधुकानि च गुग्गुलः ।
विद्वेषे करवीराणां पत्राणि समिधः तथा ।
श्लेष्मांतक-विभीतानां समिधौ केजीरकं तथा ।
मरीचं रामठञ्चैव कटुतैल समन्वितं ।

ज्वरे तापे च शूले च गण्डमाला-भगन्दरे ।
दूर्वा गुडूचीखण्डानि साज्यं क्षीरदधीनि च ।
शूले त्वेरण्डसमिधः कुबेराक्षी तथैव च ॥
निर्गुण्डी समिधश्चैव तिलतैल समन्विताः ।
लक्ष्मीप्राप्तां स राजानि विल्वपत्राणि चैव हिं ॥
समिधस्तस्य होतव्या मधुत्रय समन्वितः ।
पंचखाद्यं नारिकेलः भिक्षवः कदली फलं ।
सर्वसन्तोषकृद्धोमो मधुत्रय समन्वितः ।
सुख सौभाग्य संपत्ति साधकं हवनं शृणु ।
कर्पूरं केसरं नाभीरोचनं चन्दनं तथा ।
तजपत्रं वारणं च लवंगैलागुरुं तथा ।
मांसी नखं जातिपत्रं तत्फलं लोहवाणकं ।
साज्यान्येतानि सर्वत्र विज्ञेयानि मनोषिभिः ।
पुष्पैः सुगन्धिभिर्वासः प्राप्यते चोत्तमोत्तमः ।
द्रोहे च मारणे चैव विषं च राजिका तथा ।
काक कौशिक गृध्राणां पक्षाश्च विजया तथा ।
गृहधूमकराश्चैव लवणं कटुतैलकं ।
पादपांशु तथा राजी लवणं कर्षणे स्मृतं ।
उन्मत्त-फलपुष्पाणि समिधो मोहने स्मृताः ।
धान्यैः संप्राप्यते धान्यमन्नेनान्न-समृद्धयः ।
तिलाज्य-क्षीरदधिभि र्महिषी-गो-समृद्धयः ।
एवं नाना प्रयोगाश्च साधयेन् मंत्रवित्तमः ।
पुरश्चर्या जपेनैव हनुमन्तं समर्च्चयेत् ।

इतिश्री सुदर्शनचक्रराजसंहितायां हनूमन्त्रविवरणे हनुमन्मंत्रप्रयोग-साधनाख्यो द्वितीयः पटलः ॥

॥ शुभमस्तु ॥

परिशिष्ट 'च'

कपीन्द्र प्रयोग : (लेखक तुलसीदास)

(वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय सरस्वतीभवनस्थ पाण्डुलिपि संख्या २४५२० क्रम संख्या ३।८७ लिपिकाल : सं० १९४८)।

१. स्वर्णशैल संकास कोटिरवि तरुण तेजवन ।।
उरविशाल भुजदण्ड चण्डनख वज्रवज्रतनु ।।
पिंगलनयनभृकुटी कराल रशना रद आनन ।।
कपिश केश करकश लंगूर खलदल बल मानन ।।
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुत सुत मूरति विकट ।।
संताप ताप तेहिं पुरुष कह सपनेहु नहिं आवत निकट ।।७।।

२. जयति हनुमान बलवान पिंगाक्ष शुचिकनक गिरिशरिश तनु रुचिर वीरं।।
अंजनी सुवन सियराम प्रिय कीशपति दलन तमीचर कटक विकट वीरं।।
दहन शक्रारिवन महाबुधज्ञानघन सुजश कह निगम सब सुमति धीरं।।
समुझि भुज जोरकर जोरि तुलसी कहै : हरहु दुख दुसह भव भीषम पीरं।।८।।

सवैया—

करम के पाप परिताप कीधौं श्रापहू तें,
बाढ़ी शीस व्यथा सो तो महा दुखदाई है,
जंत्र मंत्र टोटकादि ओषद अनेक किये,
घटत न नेकुमानो अवर बल पाई है :
तुलसी कहत कर जोरि छल छाड़ि नाथ,
तुम्है तनबली जग अवर अधिकाई है,
दीनै मानि महावीर दूरि कीजै शीस पीर
रामदूत तेरो जस सर्व वेद गाई है।।९।।

४. राम काज लागि अवतार लीन्हो कीशराई
जनकी सहाइ हेतु देर न लगाइये।।
शील धाम पूरा काम आठो जाम लेत नाम
कीशपति कृपा करि रोग विनसाइए।।

दास शीस पीर कालनेमि सम जानि वायु
पूत लूमतें लपेटि कें भवाइए।।
डाटिकै चपेटि मारि डूरि डारि कीशनाथ
पुण्यवाहु तुलशी कें सीश ढिग ल्याइए।।१०।।

५. पाप कें प्रभाव की की कर्म कें सुभाव की की
काल कें करालता की प्रेरी काहू रीश कीं।।
जंत्र मंत्र टोटकी की दुसाचार मोटकी की
पूर्वं द्विज द्रोह की जघयोघ सवशीस की
एते हेतु सम्भव पिशाची रूप शिषा पीर
भागि जाहिं वेगवानि जान वलि कीशकी।।
आनि हंनुमान की सपथ बलवान की दोहाई
महावीर की जौ रहै पीर शीस की।।११।।

परिशिष्ट 'छ'

भविष्य पुराण अध्याय १, १३१, १-३६ तथा १, १३२, १-३२। ब्राह्म पर्व में सर्वदेवताओं की तथा विशेष रूप से आदित्य की प्रतिमा बनाने के विषय में अधोलिखित सामग्री प्राप्त होती है। इन्हीं आधारों पर सम्भवतः हनुमान की भी प्रतिमा बनी होगी क्योंकि इनकी प्रतिमा के बनाने के विषय में उपरोक्त अग्निपुराण की सामग्री के अतिरिक्त और कोई सामग्री नहीं मिलती। ये नियम भी किसी प्राचीन ग्रन्थ से लिये हुए प्रतीत होते हैं।

नारद उवाच।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि प्रतिमाविधिविस्तरम्।
सर्वेषामेव देवानामादित्यस्य विशेषतः।।१।।
अर्चा सप्तविधा प्रोक्ता भक्तानां शुभवृद्धये।
कांचनी राजती ताम्री पार्थिवी शैलजा स्मृता।।२।।
वार्क्षी चालेख्यका चेति मूर्तिस्थानानि सप्त वै।।
वार्क्षीविधानं ते वीर वर्णयिष्याम्यशेषतः।।३।।
कर्त्रनुकूले दिवसे संवत्सरविशोधिते।
शुभैर्निमित्तैः शकुनैः प्रस्थानैश्च वनं विशेत्।।४।।
क्षीरिणो वर्जिताः सर्वे दुर्बलास्ते स्वभावतः।
चतुष्पथेषु न ग्राह्या ये च पुत्रकवृक्षकाः।।५।।
देवतायतनस्था ये तथा वल्मीक संभवाः।
उत्कीर्णा देवता येषु चैत्यवृक्षाश्च ये स्मृताः।।६।।
श्मशानभूमिजा ये च पक्षिणां निलयाश्च ये।
सकोटराश्च ये वृक्षाः शुष्काग्रा ये च पादपाः।।७।।
शस्त्रेण निहता ये च कुंजराशास्तथा कृताः।
सामाधाः सरुजोयश्च व्याधिनश्च तथैव च।।८।।
अकाले पुष्पिता ये च काले ते च विवर्जिताः।
शीर्णपर्णाश्च तरवो रक्षोध्वांक्षनिषेविताः।।९।
मधूको देवदारुश्च वृक्षराजश्च चन्दनः।
बिल्वश्चाम्रातकश्चैव खदिरोथांजनस्तथा।।१०।।

निम्बः श्रीपर्णवृक्षश्च पनसः सरलोर्ज्जुनः।
रक्तचन्दनपर्यन्ताः श्रेष्ठाः स्युः प्रतिमाद्रुमाः।।११।।
वर्णानामानुपूर्व्येण द्वौ द्वौ वृक्षौ प्रकीर्तितौ।
निंवाद्याः सर्ववर्णानां वृक्षाः साधारणाः स्मृताः।।१२।।
कथ्यमानान्विशेषेण शृणु वीर तथापरान्।
सुरदारुः शमी चैव मधूकश्चन्दनस्तथा।।
एते वै तरवस्तात ब्राह्मणानां शुभाः स्मृताः।।१३।।
क्षत्रस्य च तथारिष्टः खदिरस्तिदुकस्तथा।
अश्वत्थश्च तथा सांव द्रुमः करकतः शुभः।।१४।।
वैश्यानां तद्वदेव स्युः ददिरश्चंदनस्तथा।
पुण्याश्च तरवश्चैते शुभदास्तु तथैव च।।१५।।
केसरः सर्जकश्चाम्रः शालवृक्षस्तथेतरः।
एते वै तरवः पुण्याः शूद्राणां शुभदायकाः।।१६।।
लिंगं च प्रतिमां चैवमवस्थाप्य यथाविधि।
वृक्षं चाभिमतं गत्वा पूजयेद्बलिपुष्पकैः।।१७।।
शुचौ देशे विविक्ते च केशांगारविवर्जिते।
प्रागुदक्सूचके देशे लोककष्टविवर्जिते।।१८।।
विस्तीर्णस्कन्धविटपः पत्रवानृजुवृद्धिगः।
आतंकहीनोविवंशः. सत्वक्पर्णः शुभस्तथा।।१९।।
स्वेनैव पतिता ये च हस्तिभिः पातितास्तथा।
शुष्काश्च वह्निदग्धाश्च पक्षिभिश्चापि वर्जिताः।।२०।।
तरवो वर्जनीयाश्च ग्रहीतव्याः शुभा द्रुमाः।।
स्निग्धरूपाः सपर्णाश्च सपुष्पाः सफलास्तथा।।२१।।
तेषां तु ग्रहणं चाष्टमासेषु कार्त्तिकादिषु।
भूत्वा शुभे दिने चैव सोपवासोधिवासयेत्।।२२।।
समन्तादुपलिप्याथ तस्याधस्ताद्वसुन्धराम्।
गायत्र्या परिपूतेन परितः प्रोक्ष्य वारिणा।।२३।।
शुक्ले च परिवूते च परिधाय च वाससी।
पूजयेद्गन्धमाल्यैश्च सधूपबलिकर्मभिः।।२४।।
ततः कुशैः परिस्तीर्णे हुत्वाग्नौ तस्य चांतिके।
देवदारुसमिद्भिश्च मन्त्रेणानेन तत्ववित्।।२५।।
ओं भूर्भुवः सुवरिति ततो वृक्षं च पूजयेत्।

ओं प्रजापतये सत्यसदाय नित्यं श्रेष्ठांतरात्मन्सचराचरात्मन्।
सान्निध्यमस्मिन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मण्डलमाविशेश्च नमः॥२६॥
नारद उवाच।
एवं संपूजयित्वा तु वाक्यैस्तं परिसांत्वयन्।
वृक्षलोकस्य शांत्यर्थं गच्छे देवालयं शुभम्॥२७॥
देव त्वं स्थास्यसे तत्रच्छेददाहविवर्जितः।
काले धूपप्रदानेन सपुष्पैर्वलिकर्मभिः॥२८॥
लोकास्त्वां पूजयिष्यंति ततो यास्यसि निर्वृतिम्।
वृक्षमूले कुठारे तु धूपमाल्यैः प्रपूज्य च॥२९॥
पूर्वतस्तु शिरः कृत्वा स्थापनीयः प्रयत्नतः।
परमान्नमोदकौदनपलपूपिकादिभिर्भक्ष्यैः ॥३०॥
मद्यैः कुसुमैर्धूपगन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य।
सुरपितृपिशाचराक्षसभुजंगसुरगणविनायकाद्यानाम् ॥३१॥
कृत्वा पूजां रात्रौ वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥३२॥
अर्चासु देवदेव त्वं देवैश्च परिकल्पितः ।
नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्परिगृह्यताम् ॥३३॥
यानीह भूतानि वसंति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्।
अन्यत्र वासं परिकल्पयंतु क्षमन्तु ते चाद्य नमोस्तु तेभ्यः॥३४॥
प्रभातायां तु शर्वर्यां पुनः संपूज्य तं नगम्।
ब्राह्मणेभ्यस्ततो दत्वा भोजकेभ्यश्च दक्षिणाम्॥
छिन्द्याद्वनस्पतींस्तज्ज्ञैस्तैः कृतस्वस्तिवाचनैः॥३५॥
पूर्वस्यां दिशि पातोऽस्य ऐशान्यां चापि यो भवेत्।
अथवा उत्तरस्यां तु तथा छिन्द्यात्तु नान्यथा॥३६॥
—भविष्य पु० १।१३१।१-३६

अध्याय १।१३२।१-३२
नारद उवाच
हंत ते सर्वदेवानां प्रतिमालक्षणं परम्।
वच्मि ते यदुशार्दूल आदित्यस्य विशेषतः॥१॥
एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिहस्ता वा प्रमाणतः।
तथा सार्द्धत्रिहस्ता च सवितुः प्रतिमा शुभा॥२॥
प्रासादाद्वारतो वापि प्रमाणं च प्रकल्पिम्।
तद्वत्प्रमाणं कर्त्तव्यं सततं शुभमिच्छता॥३॥

एकहस्ता भवेत्सौम्या द्विहस्ता धनधान्यदा।
त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता।।४।।
सार्वत्रिहस्ता प्रतिमा सुभिक्षक्षेमकारिणी।
अग्रे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः समा।
गांधर्वी सा तु विज्ञेया धनधान्यावहा स्मृता।।५।।
देवागारस्य यद्द्वारं तस्मादष्टांशमुद्यता।
त्रिभागैः पिंडिका कार्या द्वौ भागौ प्रतिमा भवेत्।।६।।
अंगुलैश्च तथा मूर्तिश्चतुरशीतिसंमितैः।
विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशांगुलम्।।७।।
मुखत्रिभागैश्चिबुकं ललाटं नासिका तथा।
कर्णौ नासिकया तुल्यौ पादौ चानियतौ तयोः।।८।।
नयने द्व्यंगुले स्यातां त्रिभागा तारका भवेत्।
तृतीयतारकाभागात्कुर्याद्दृष्टिं विचक्षणः।।९।।
ललाटमस्तकोत्सेधं कुर्यात्तत्सममेव च।
परिणाहस्तु शिरसो भवेद्वाविंशदंगुलः।।१०।।
तुल्या नासिकया ग्रीवा मुखेन हृदयांतरम्।
मुखमात्रा भवेन्नाभिस्ततो मेढ्रमनन्तरम्।
मुखविस्तारणमुरस्ततोर्द्धं तु कटिः स्मृता।।११।।
बाहू प्रवाहतुल्यौ तु ऊरू जंघे च तत्समे।
गुल्फाधस्तात्तु पादः स्यादुच्छ्रितश्चतुरंगुलः।।१२।।
षडंगुल सुविस्तारस्तस्यांगुष्ठांगुल त्र्यम्।
प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषा नखैर्युताः।।१३।।
चतुर्दशांगुलः पाद आयामात्परिकीर्तितः।
एवं लक्षणसंयुक्ता प्रतिमार्च्या भवेत्सदा।।१४।।
अंसौ हरेस्तथैवोरू ललाटं च सनासिकम्।
नियते नयने गंडौ मूर्तेः कुर्यात्समुन्नते।।१५।।
विशाल-धवला-त्रामपक्ष्मलायतलोचने ।
सस्मिताननपद्मस्थ चारुबिंबाधरस्तथा ।।१६।।
रत्न-प्रोद्भासिमुकुटं कटकांगदहारवान्।
अव्यंगपदमव्यादि समायोगो पि शोभितः।।१७।।
सुप्रभो मंडलश्चारुविचित्र मणिकुंडलः।।
कराभ्यां कांचनीं मालां प्रोद्वहन्ससरोरुहाम्।।१८।।

एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीहितप्रदाम्।
प्रजाभ्यश्च सदा भानुः शिवारोग्याभयप्रदः ॥१९॥

अल्पांगायां नृपभयं हीनांगायामकल्पता।
खातोदर्यां च क्षुत्पीडा कृशायां तु दरिद्रता ॥२०॥

सक्षतायां भयं शस्त्रात्स्फुटिता मृत्युकारिणी।
दक्षिणावनतायां तु शश्वदायुः क्षयो भवेत् ॥२१॥

उत्तरावनतायां तु वियोगो भवति ध्रुवम्।
नालोक्या नाप्यनालोक्या रक्ता मूर्तिः प्रशस्यते ॥२२॥

तस्माद्भास्करभक्तेन लोकद्वयहितैषिणा।
तन्मूर्तेश्चादरः कार्यस्तदधीनास्तु संपदः ॥२३॥

शिरोलगांडवदनैः सर्वांगावयवैस्तथा।
एवं लक्षणसंपूर्णा प्रतिमा भवते शुभा ॥२४॥

नासा ललाट जंघोरुगंडवक्षोभिरन्विता।
कुर्यादादित्यवेषं तु गूढपादोदरं तथा ॥२५॥

कमलोदरकांतिनिभः कंचुकगुप्तः प्रसन्नमुखः।
रक्तोत्पल प्रभामंडलश्च कर्तुः शुभं करोत्यर्कः ॥२६॥

कुंडलभूषितवदनः प्रलंबहारोऽपि गृहंवृत्तः।
नृपतिभयं व्यंगायां हीनांगायामकल्पना कर्तुः ॥२७॥

खातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशांगायाम्।
मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः ॥२८॥

वामोन्नता तु पत्नीं दक्षिणावनता हिनस्त्यायुः।
अंधत्वमूर्द्ध्वदृष्टिः करोति चिंतामधोमुखी दृष्टिः ॥२९॥

सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भास्करेणोक्तम्॥
ब्रह्मा कमंडलुकरश्चतुर्मुखः पंकजस्थश्च ॥३०॥

स्कंदः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च।
शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेंद्रस्य वज्रपाणित्वम् ॥३१॥
तिर्यगूर्ध्वंललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ॥३२॥

—भविष्य पु० १।१३२।१-३२.

परिशिष्ट 'ज'

पुस्तकों तथा लेखों कीसूची

अ

अनावेसिस अलेक्जाण्डर एण्ड इण्डिका आफ आरियन : दी क्लासिकल अकाउण्ट्स आफ इण्डिया. कलकत्ता १९६०

अनन्त कृष्ण अय्यर, एल० के० रायबहादुर : माइसूर ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स, मद्रास १९३१

अग्निवेश : रामायण—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

अग्रवाल डा० वासुदेवशरण : प्राचीन भारतीय लोकधर्म—ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद १९६०

अग्रवाल डा० वासुदेव शरण : पाणिनि कालीन भारतवर्ष—बनारस सं० २०१२

अथर्ववेद संहिता : (शौनिकीय) सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद सं० १९८६

अगस्त्य संहिता : सरस्वती भवन, पत्र संख्या १-७३ हस्तलिखित नं० १४७०२; २५११४

अहिर्बुध्न्य संहिता : संपादक रामानुजाचार्य, खं० १, २ अडेयर लाइब्रेरी. मद्रास १९१६ ई०

अग्निपुराणम्—आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली ४१. हरिनारायण आप्टे—आनन्दाश्रम, पूना १९०० ई०

अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि : श्री रामाभ्युदयम्—सम्पादक प्रसन्नकुमार गुहा तथा तारक चन्द्र चक्रवर्ती, नोआखाली, बंगाल—बंगीय सं० १३०३

अद्भुत रामायण : महर्षि वाल्मीकि विरचितम् (१) राम शरण विद्यावागीश, प्रकाशक प्रतापचन्द्र मित्र, सरस्वती यन्त्र मुद्रित १८०८ शाके

अध्यात्म रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर १३ वाँ संस्करण सं० २०२०

आनन्द रामायण : प्रकाशक डी० वी० मूलगाँवकर, गोपाल नारायण कम्पनी; कालबादेवी रोड, बम्बई १९२६.

आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया आनुअल रिपोर्ट १९२३-२४, नई दिल्ली

आन्युअल अडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट आफ दी आर्केआलाजिकल डिपार्टमेण्ट आफ ग्वालियर स्टेट—ग्वालियर १९३४-३५, लन्दन १९६३

आल्ट्रेड सिविल : दी इजिपशियन्स—टेम्स एण्ड हड्सन, आक्सफोर्ड १८९२
द्वितीय संस्करण १९३८

आचारांग सूत्र (जैन) एच० जकोबी, सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट सीरीज ख-१२,
आक्सफोर्ड १८९२

आर्केआलाजी इन इण्डिया : मिनिस्ट्री आफ एजुकेशन, डिपार्टमेण्ट आफ
आर्केआलाजी, नई दिल्ली, अक्टूबर ५, १९४९

इ

इण्डियन आर्केआलाजी : आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया नई दिल्ली १९५४-५५
,, ,, १९५७-५८
,, ,, १९६०-६१
,, ,, १९६४-६५

इनजेन वान विलहेल्पमिन्स : फिगिरिन्स फ्राम सालूसाइसिया आन टाइग्रिस,
यूनिवर्सिटी आफ मिशिगन— आन आरबर मिशीगन यू० एस०
ए० अप्रैल १९३९

१. इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स ख २

२. ,, ,, ख–१ एन० डब्लू० टामस—अनिमल्स—१९०८

इलियट डब्लू—रेसेज आफ सदर्न इण्डिया—लन्दन १९८५

इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स सं० जेम्स हेस्टिंग्स ख १-१२
टी० टी० क्लार्क ३८ ज्यार्ज स्ट्रीट—इडिनबरा १९२०

इण्डो योरोपियां ए इण्डो आरियां डु लाण्ड जुस्को बेर ग्रासां आंवां जींजूफी—
डुला वाले पूसां—पारी १९२४ ई०

उ

उत्तर पुराण : गुणभद्र कृत सं० पन्नालाल जैन—ज्ञानपीठ, काशी १९५४

उदयगिरि खण्डगिरि : डिपार्टमेण्ट आफ आर्केआलाजी, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया
पब्लिकेशन्स—नई दिल्ली

उत्तर ध्यान सूत्र : सम्पादक जे० शारपेंतिये—आरकाईव डेज एल्यूड
ओरियन्ताल ख-१८ उपसल १९२१

ए

एनशण्ट पाकिस्तान : बुलिटन ख, २ युनिवर्सिटी आफ पेशावर—१९६५-६६

(दी) एण्डमन एण्ड निकोबार आइलाण्ड्स : दी पब्लिकेशन डिवीजन मिनिस्ट्री
आफ इन्फारमेशन्स एण्ड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया,
नई दिल्ली, जुलाई १९५७

ओ

ओल्डनबर्ग, एच : (१) डाइरिलिजन डेस, वरलिन १८९४
(२) बुद्ध, हिज लाइफ, हिज डक्ट्रिन्स एण्ड हिज आर्डर, अनुवादक विलियम होए—दी बुक कम्पनी लि० कलकत्ता १९२७

औ

औपपातिक सूत्र : अभय देव सूरी की टीका के सहित—सम्पादक अगमोदय समिति—पं० भूरेलाल कालीदास—बम्बई १९३८

ऋ

ऋग्वेद : (१) संहिता—हिम्स आफ दी ऋग्वेद—एफ० माक्स मूलर, तृतीय संस्करण—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १९६५ खं० २।
(२) संहिता—वैदिक यन्त्रालय—अजमेर सं० २०१०

क

कुरान शरीफ : अनुवादक मौलाना अब्दुल कलाम आजाद तथा अब्दुल्ला इब्न यूसुफ अली

काठक संहिता : सम्पादक स्क्रो एडर, एल, वान, लेपजिग १९००-१९११

केम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया : ख-१ ई० जे० रायसन एस चांद कम्पनी, लखनऊ फर्स्ट इण्डियन रिप्रिंट १९५५

क्रामर, साम्युल नोहा : दी सुमेरियन्स देयर हिस्ट्री, कलचर एण्ड कारेक्टर—दी यूनिवर्सिटी आफ शिकागो—शिकागो, यू० एस० ए० १९६३

कूर्मपुराण : विवलोथिका इण्डिका, कलकत्ता १८९० ई०

कोवेल, ई० वी०, दी जातक : केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज १९५७

कनिंघम, एलेकजाण्डर : स्तूप आफ भारहुत—द्वितीय संस्करण—इण्डोलाजिकल बुक हाउस—वाराणसी, १९६२

कपीन्द्र प्रयोग : बगलामुखी मन्त्र, अन्नपूर्णाअष्टोत्तरशत नाम, हनुमान बाहुक योगादि सहित—ग्रंथकार तुलसीदास, सरस्वती भवन, सं० २४५२०। ४६०१ सं० १९४८

कूर्मपुराण : खेमराज श्रीकृष्णदास—वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९८३

कल्कि पुराण : बलदेव प्रसाद मिश्र कृत भाषा टीका सहितम्. गंगा विष्णु श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस कल्याण, मुम्बई १९२७ ई०

कालिका पुराण : श्री कृष्णदास खेमराज—वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९६४

कालिदास ग्रंथावली : (१) रघुवंश (२) कुमार सम्भव—सीताराम चतुर्वेदी—अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी, वि० सं० २००७

कविराज : राघव पाण्डवीयम्—सम्पादक पं० काशीनाथ शर्मा, निर्णय सागर यन्त्रालय, बम्बई १८९७ ई०

कृषि पाराशर : एडिटर्स—गिरजा प्रसन्न मजूमदार एण्ड सुरेश चन्द्र बानर्जी, एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता १९६०

कम्ब रामायण : कंबन रचित—अनुवादक श्री न० वी० राजगोपालन—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९६४

कृत्तिवासी रामायण : रामानन्द चट्टोपाध्याय—प्रवासी प्रेस, कलकत्ता—अष्टम संस्करण १९५३ बंगाब्द

कुमारदास : जानकी हरण—सम्पादक गोपाल नन्दरगिरिका, बम्बई १९०७

केशव कौमुदी : रामचन्द्रिका—प्रथम भाग—टीकाकार लाला भगवानदीन सं० २००१, वि० दूसरा भाग,—रामनारायण लाल पब्लिशर, इलाहाबाद टीकाकार लाला भगवानदीन, १९४५ ई०

कुमार स्वामी, आनन्द यक्षाज—ख-१, २ स्मिथसोनियम इन्स्टीट्यूट, वाशिंगटन १९२८, १९३१ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट—लन्दन १९२७

क्रामरिश, स्टेला : दी आर्ट आफ इण्डिया थ्रू दी एजेज, फायडन प्रेस लिमिटेड—लन्दन; एस० डब्लू, सेकेण्ड एडिशन १९५५

कार, चिन्तामोनी : इण्डियन मेटल स्कल्पचर—अलेक टिरार्न्टी लि० लन्दन १९५२

कोवेल ई० बी०, दी जातक : ख-३ दी केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी १९५७

क्रुक, विलियम्स : दी ट्राइब्स एण्ड दी कास्टस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज़ एण्ड अवध ख-१ कलकत्ता १८९६, पापुलर रिलीजन एण्ड फोक लोर आफ इण्डिया ख-१ पृ० ८५-८६ न्यू एडिशन २ खण्ड लन्दन, १८९६

कोशाम्बी : डी० डी०,मिथ एण्ड रियाल्टी, पापुलर पब्लिकेशन्स—बम्बई १९६३

कोल्डवे : एन्सकवेशन्स एट बाबिलान, लन्दन—१९५२

कोण्टेनो : एवरी डे लाइफ इन बाबिलान एण्ड असीरिया, आरनाल्ड—लन्दन १९५४, ला सिविलिजाशियों डु लईरान इत्यादि—पारी १९३६

क्रूशो पाल लूई : मियोलोजी आजियातिक—लिब्रेर डु फ्रांस पारी १९२८

कुंदमाला—सम्पादक—जयचन्द्र शास्त्री—लाहौर १९३२

कपिदूत : ढाका युनिवर्सिटी मान्युस्क्रप्ट काटलाग नं० ९७५ वां

ग

ग्रिफिथ, राल्फ० टी० एच० दी आरियन्स आफ ऋग्वेद द्वितीय संस्करण—ई० जे० लाजरस एण्ड कम्पनी, बनारस १८९७ ख० २

गुलिक : आर० एच० वान०, सेकचुअल लाइफ इन एनशण्ट चाइना—लाइडन १९६१

गिरनी, ओ० आर० : दी हिटाइट्स—पेलिकन बुक १९५२

गरुड महापुराण : श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, मुम्बई, पण्डित पुस्तकालय काशी १९६३ ई०

ग्रियरसन जी० ए० : दी काश्मीरी रामायण, बिबलियोग्राफी इण्डिका, कलकत्ता १९३०

गांगोली ओ० सी०, गोस्वामी : ए इण्डियन टेराकोटा आर्ट, रूपा एण्ड कम्पनी १५ बंकिम चाटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता १२, १९५६

गोरे, एन० ए० : ए बिबलियोग्राफी आफ दी रामायण पूना—१९४३

गांगोली, एम० एम० : ओरिसा एण्ड हर रिमेन्स एनशण्ट एण्ड मेडीवल—कलकत्ता १९१२ ई०

गार्डनिर बरेण्ड जेम्स : दी फेबुल्स आफ दी वर्ल्ड, डिविज़न १ (पृ० १३९)

च

चाटर्जी : सुनीति कुमार—दी वैदिक एज, भारतीय विद्यामंदिर, बम्बई

चीनी त्रिपिटक : लेशो संस्करण

चतुर्भाणि : डा० मोतीचन्द्र व डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय बम्बई, प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९५९ ई०

छ

छान्दोग्य उपनिषद् : आनन्दाश्रम प्रेस, पूना १९३४

ज

जकोबी हरमन : दास रामायण, अनुवादक एस० एन० घोषाल, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा १९६०

ज़िम्मर हेनरिक : दी आर्ट आफ इण्डियन एशिया, पंथियान बुक्स, हेनेस्ट, यू० एस० ए० १९५५

मिथ्स एण्ड सिम्बल्स इन इण्डियन आर्ट एण्ड सिविलिजेशन, जोसेफ काम्पबेल, हाइपर टार्च बुक्स, हाइपर एण्ड ब्रदर्स न्यूआर्क—१९६९.

जयदेव कवि विरचितम् : प्रसन्न राघव—सम्पादक श्री जीवानन्द विद्यासागर, भट्टाचार्य—श्रीरामपुर महेश सत्य यन्त्रे कलकत्ता १८७२ ई०

ज्योतिषतत्व : जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन १९१०

जोन्स विलियम् सर :१ दी गाड्स आफ ग्रीस, इटली एण्ड इण्डिया—लन्दन १८८४, २ वर्क्स ख-१ लन्दन १७९९

जैन जे० सी० : लाइफ इन एनशण्ट इण्डिया एज़ डिपिक्टेड इन जैन कानन्स—बाम्बे १९४७

त

तैत्तिरीय संहिता : सम्पादक ए० वेबर—बरलिन १८७१-७२

तत्वनिधि : श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, बम्बई सं० १९५९

तुलसीदास (१) रामचरित मानस—गीताप्रेस, गोरखपुर, निर्णय सागर प्रेस, पूना २१ संस्करण। (२) विनय पत्रिका—गीताप्रेस गोरखपुर। (३) कवितावली—अनु० इन्द्रदेव नारायण, गीताप्रेस, गोरखपुर १८ वां संस्करण—२०२१ सं० वि०। (३क) हनुमान बाहुक—टीकाकार—महावीर प्रसाद मालवीय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० २०२२ वि०। (४) दोहावली—गीताप्रेस, गोरखपुर।

तत्वसंग्रह रामायण : राम ब्रह्मानन्द–अनाल्स आफ ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट मद्रास १९५३ पृ० १-५३

त्रिषष्टी शलाका पुरुषचरित : सम्पादक—हेलन एम० जानसन, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज़ ख ५१, बड़ौदा १९३१

तिलंग के० टी० : वाजरामायण, कापीड फ्राम होमर—बम्बई १८७३

द

दिनेशचन्द्र सेन : बंगाली रामायण—युनिवर्सिटी आफ कलकत्ता, कलकत्ता—१९२०

श्रीमद्देवी भागवत : श्रीकृष्णदास क्षेमराज वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई सं० १९८८

दिङ्नाग प्रणीत : कुन्दमाला—सम्पादक कृष्ण कुमार धवन, भारतीय संस्कृत भवन, जालन्धर—प्रथम संस्करण

द्विविद रामायण : कट्ट वरदराजू, मद्रास युनिवर्सिटी—मद्रास, १९५०

न

नरसिंह पुराण : सम्पादक उद्धवाचार्य—द्वितीय संस्करण—गोपाल नारायण कम्पनी, कालवादेवी रोड, बम्बई १९११

नीलमत पुराण : सं० रामलाल कांजीलाल एवं जगद्धर जददू, मोतीलाल बनारसीदास—लाहौर—१९२४

नायक टी० वी० : रामकथा अमंग दी प्रिमिटिव ट्राइब्स आफ इण्डिया, बुलिटिन आफ दी ट्राईबल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, छिन्दवाड़ा, मध्यप्रदेश ख १ नं० २ तथा ३

ट

टामस पी० : एपिक्स मिथ एण्ड लेजेण्ड्स आफ इण्डिया—९वां संस्करण—तारापुरवाला एण्ड सन्स—बम्बई

ट्राइब्स आफ मध्य प्रदेश—डिपार्टमेण्ट आफ ट्राइबल वेलफेयर, गवर्नमेण्ट आफ मध्यप्रदेश, भोपाल १९६४

ड

डेविड्स राइस, तथा स्टेड : पाली इङ्गलिश डिक्सनरी—पक्ख

डूस्सो, आर० एल० रिलीजियों डु वाबिलोन एडुसीरी—पारी, १९४५

प

पद्मपुराण (पद्म चरितम्) : रविषेणाचार्य, सं० पन्नालाल जैन भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम भाग जुलाई १९५८, द्वितीय भाग फरवरी १९५९

पद्म चरिअ : कविराज स्वयम्भू देव, अनुवादक—देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, नवम्बर १९५७

पवनञ्जयम् नाटकम् : हस्तिमल्ल एम० वी० पटवर्धन माणिक चन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, हीराबाग, मुम्बापुरी ४, विक्रम सं० २००६

पद्म पुराण : आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थमाला—१३१ विश्वनाथ नारायण मण्डलीय पूना—१८९४

प्रवरसेन विरचित सेतुबन्ध : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८९५

रावण वाहो : रावण वाही ओडर सेतुबन्ध—सीगफ्रीड, गोल्ड स्केमिडिटवनर एण्ड कम्पनी—लन्दन १८८०

पिल्ले एस वैयापुरी : हिस्ट्री आफ तामिल लांगवेज एण्ड लिटरेचर, मद्रास १९५६

पणिक्कर, आर० नारायण : भाषा साहित्य चिन्ह्म भाग १

परमेश्वरी लाल गुप्त : पटना म्युजियम काटलाग आफ एण्टिक्विटीज़, पटना म्युजियम; पटना १९६५

फ

फ्रांकफोर्ट : (१) दी बर्थ आफ सिविलजेशन इन दी नीयर ईस्ट—लन्दन १९५१।
(२) इराक एक्सकवेशन्स आफ दी ओरियण्टल इंस्टिट्यूट, शिकागो १९३२-३३ शिकागो युनिवर्सिटी, शिकागो, एक्सकवेशन्स एट बाबिलान।

फोगल, जे० पी० एच० : एक्सकवेशन्स एट सहेत महेत—आर्कलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया आन्युअल रिपोर्ट, १९०७-८; १९११, १९१२

फरगूसन जेम्स : ट्री एण्ड सरपेण्ट वरशिप—डब्लू० एम० एच० एलेन एण्ड कम्पनी, लंदन १८६८ ई०।

फोसबोल, वी० : दी जातक १–७ लन्दन १८७७, १८९७

ब

ब्राउन, कोनिन जे० : दी काटलाग आफ दी प्री हिस्टारिक आण्टिक्वेटीज इन दी इण्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता—१९१७

बाइबिल : १ किंग्स १०, ११, २१

बृहत्कथा श्लोक संग्रह :

बेलवेलकर : एस० के० : उत्तर रामचरित—हारवर्ड ओरियण्टल सीरीज ख-२१ केम्ब्रिज मसाचूसेट्स १९१५

ब्रह्मपुराण : मनसुखराय मोर ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता १९५४ ई०, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली २८, १८९४ ई०

बकलाण्ड ए० डब्लू० : अन्थ्रोपालेजिकल स्टडीज—लन्दन १८९१

ब्रह्मवैवर्त पुराण : मोर संस्करण, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता १९५५

बलराम श्रीवास्तव : दक्षिण भारत का इतिहास—चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १९६८

बृहद्धर्म पुराण : एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल—कलकत्ता १८९५ ई०

बुल्के, कामिल रेवरेण्ड फादर : रामकथा—हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग १९६२ द्वितीय सं०

बानर्जी जे० एन० : दी डेवलपमेण्ट आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी—यूनिवर्सिटी आफ कालकटा—१९५६

भविष्य पुराण : खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई—सं० १९६७ वि०

भावार्थ रामायण : एकनाथ (मराठी)

भरत नाट्यशास्त्र : चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सं० ६० वाराणसी

भट्टिकाव्यम् : जयमंगलकृत टीका, विनायक शास्त्री, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई १९२८ ई०

श्रीमद्भागवत : नित्य स्वरूप गोस्वामी ब्रह्मचारिण:, वृन्दावन, सं० १९५५

भास नाटक चक्रम् : (१) अभिषेक नाटकम्—सम्पादक बलदेव उपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस। (२) प्रतिमा नाटकम्—सम्पादक बलदेव उपाध्याय—चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

भवभूति—महावीर चरितम् : सम्पादक टोडरमल—आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस, १९२८। उत्तरराम चरितम्—सम्पादक टी० आर० रत्नम् अय्यर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३९

भास्कर भट्ट : उन्मत्त राघव—सं० दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरंग, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९२५ काव्यमाला १७

भण्डारकर आर० जी० : वैष्णविज्म सैविज्म माइनर रिलीजन्स सिस्टम्स, स्ट्रासवर्ग, १९१३

भट्टाचार्य : वृन्दावन : इण्डियन इमेजेज, बनारस

भगवती सूत्र : अभयदेव सूरि की टीका सहित : अगमोदय समिति, मेहसन १९१८-१९२१ ई०

भरत नाट्यशास्त्र—जयकृष्णदास हरिदास गुप्ता, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, (संवत् नहीं है।)

भूतलिंगम्, नाथूराम—दी स्टोरी आफ रामायण—एशिया पब्लिशिंग हाउस—बम्बई १९६४

म

मार्के० ई० जे० एच : फरदर एक्सकवेशन्स एट मोहनजुदाड़ो—ख १, २ न्यू डेल्ही १९३७-३८ चान्हूदाड़ो एक्सकवेशन्स, १९३५-३६ न्यू हावेन, यू० एस० ए० १९४३

माधोस्वरूप वत्स : एक्सकवेशेन्स एट हड़प्पा ख १, २, न्यू डेल्ही १९४०

मारशल, जान, सर : मोहनजुदाड़ो एण्ड ण्डसवाली सिविलिजेशन ख—१, २, ३ लन्दन १९३१

मेमुआर डेलिगासियों आं पेर्स—पारी ख ११

मेकडानेल ए० ए० : वैदिक माइयालाजी—(अनु० रामकुमार राय) चौखम्बा विद्याभवन, बनारस १९६१

मैकडानेल ए० ए० एण्ड कीथ, ए० बी० : वैदिक इण्डेक्स; मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, लन्दन १९१२ प्रथम संस्करण

महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर—द्वितीय संस्करण सं० २०२०

मत्स्यपुराण : गुरुमण्डल सीरीज नं० १३ नन्दलाल मोर, ५ क्लाइव रोड कलकत्ता १९५४ ई०

महाभागवत पुराण : गीता प्रेस—गोरखपुर

मार्कण्डेय पुराण : अनु० रामस्वरूप शर्मा—सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद १९९२ सं०

मुरारी : अनर्घराघव—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९०९

मल्लाचार्य : उदार राघव—सम्पादक गोपाल नारायण—गोपाल नारायण मुद्रणालय, मुम्बई

महादेव : अद्भुत दर्पण—सम्पादक पं० शिवदत्त तुकाराम जावजी, निर्णय सागर प्रेस बम्बई १८९६ ई०

म्यूर जे० : ओरियण्टल संस्कृत टेक्स्ट्स भाग २ वाल्यूम १

मजूमदार आर० सी० : दी वैदिक एज०, भारतीय विद्याभवन, वाल्यूम १ बम्बई

महानाटक : दामोदर मिश्र

मयरावणचरितम् : मान्युस्क्रप्ट काटलाग, मद्रास—डी० २०८२

महावीर चरितम् : चौखम्बा विद्याभवन, चौक, बनारस १९५५ ई०

मजूमदार एन० जे० : एक्सप्लोरेशन्स इन सिंध—मेमुआर, आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नं० ४८

मारिस जस्ट्रो : जूनियर दी सिविलिजेशन आफ बाबिलान एण्ड असीरिया जे० बी० लिपिन काण्ट कम्पनी, फिलाडेलफिया, लन्दन १९१५

मारशल जान : एक्सकवेशन्स एट मीटा—आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया आनुअल रिपोर्ट—१९११-१२

मारटिमर व्हीलर : घारसड्डा—आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन १९६२

मोरास, ज्यार्ज, एम० : दी कदम्ब कुल—बी० ए वत फुटना एण्ड सन्स, बम्बई—१९३१

मोते, पीं : ला वीथ कोतेदियन आं इजिप्त ओतां डु रामजेज, पारी १९४६

मेमुआर डेलिगासियों आं पेर्स : रोम १३ पारी

मकुलोच जे० ए० : रिलिजन आफ दी एनशण्ट केल्ट्स—एडिनबरो—१९११

मक्रिण्डल जे० डब्लू० : एनशण्ट इण्डिया इन ऐज डिसक्राइब्ड बाई टालमी, कलकत्ता १८८५

मजूमदार आर० सी० : दी क्लासिकल अकाउण्ट्स आफ इण्डिया फर्मा के० मुखोपाध्याय, कलकत्ता १९६०

मेयर, एकरियन सी० : कास्ट एण्ड किनशिप इन सेण्ट्रल इण्डिया रटलेज कीगन पाल, लन्दन १९६०

मैत्रायणी संहिता : सं० सातवलेकर—औंधनगर—सतारा, बम्बई, सं० १९९८

मोनियर विलियम्स—हिन्दूइज्म, लन्दन १८९७

य

यजुर्वेद : शुक्ल वाजसनेयि—सम्पादक वेबर स० लन्दन १८५२

र

रसेल आर० बी० : ट्राइब्स एण्ड कास्ट्स आफ सेण्ट्रल इण्डिया ख-१, कलकत्ता १८९६

रागोजिन जेड० ए० असीरिया : टी० फिशर उनविन, लन्दन १८८७

राव, टी०, ए० जी० एलिमेण्ट्स आफ हिन्दू आइकोनोग्राफी—दी ला प्रिंटिंग हाउस, माउण्ट रोड, मद्रास १९२४ ई०

रामाङ्क—कल्याण : गीता प्रेस, गोरखपुर—जनवरी १९७२ ई०

रामचरित मानस : तुलसी कृत—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

रामायण : वाल्मीकि (१) गीताप्रेस, गोरखपुर २०१७ सं०। (२) वविल्ल रामस्वामी शास्त्र लू एण्ड सन्स चैनपुरा यान १९५२

राजशेखर : बालरामायण, जीवानन्द विद्यासागर १९५२, भट्टाचार्य, कलकत्ता १९८४

रंगनाथ रामायण : राजा गोल बुद्ध राजू रचित—(तिलगू रामायण—अनुवादक—ए० सी० कामाक्षिराव, सम्पादक—अवध नन्दन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना १९६१

रामनाथ त्रिपाठी : कृत्तिवासी बंगला रामायण और राम चरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन, प्रकाशक, चन्द्र प्रकाश शर्मा, आदर्श प्रेस, अलीगढ़ १९६३ रघुवीर डा० एवं चिकियो यमासोटो : रामायण इन चाइना—दी इण्टर नेशनल अकादमी आफ इण्डिया, कल्चर—लाहौर, अगस्त १९३०

राम इकबाल सिंह, राकेश : मैथिली लोक गीत—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० १९९९

राय एस० सी० : दी बिरहोर्स, राँची, १९३५

ल

लिंगपुराण : श्रीकृष्णदास क्षेमराज, श्री वेंकटेश्वर स्टीम यन्त्रालय, मुम्बई, १९८१ सं०

लल्लन जी गोपाल : अर्ली मेडिवल क्वायन्स टाइप्स आफ नारदर्न इण्डिया, न्यूमिसमाटिक नोट्स एण्ड मोनोग्राफ्स नं० १२, न्युमिसमाटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, वाराणसी १९६६

लार्ड्स ए० : एजराइल फ्राम इट्स बिगनिंग टू दी मिडिल आफ दी एट्थ सेंचुरी अ० ड० प्रो०—एस० एच० हुक, लन्दन १९३२

ले यार्ड, ए० एच० डिसकवरीज़ इन दी रूइन्स आफ निनवे एण्ड वाइविलान ख-१–२, लन्दन १८५३

लुइस ए० ए० डी० : ट्राइब्स आफ केरल—भारतीय आदिम जाति सेवक संघ. लिंकरोड, झण्डावाला, न्यू दिल्ली १९६२

वैद्या–सी० वी०—दी रिडिल आफ रामायण, बम्बई, १९०६

वैद्या–पी० एल०—दिव्यावदानम्—मिथिला इन्स्टीट्यूट, दरभंगा १९५९

विष्णुपुराण—श्रीधर स्वामी कृत टीका सहितम्—प्रकाशक, श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, कलकत्ता १८८२ ई०

वायुपुराण—आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथमाला ४९ पूना, १९०५

वामनपुराण—श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालय, सं० १९६०

विष्णुधर्मोत्तर पुराण—गायकवाड ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा १९५८

वाराह पुराण—खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई १९८०

वाजसनेयी संहिता—महीधर की टीका सहित—ए० वेबर. लन्दन १८५२

वह्नि पुराण—इण्डिया आफिस लाइब्रेरी काटलाग, पृ० १२९४

वासुदेव शरण अग्रवाल—प्राचीन भारतीय लोक धर्म—ज्ञानोदय ट्रस्ट, अहमदाबाद १९६४

वांडिये जे०—ला रिलिजियो इजिपशिया—पारी १९४४

विलसन—एच० एच०—ऋग्वेद संहिता, लन्दन—१८५४

वासुदेव हिण्डी—संगदासगणी वाचक—आत्मानंद सभा, भावनगर १९३०-३१

विसरेट आर० ओ०—ए पत्तनी वर्शन आफ दी रामायण—रायल बटावियन. सोसाइटी, फीस्टंवुण्डेल, वरादिया, १९२९

विंटरनिट्ज़—एम०—ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर २ ख, कलकत्ता १९२७

बृहत्संहिता—वराहमिहर—संपादक—सुधाकर द्विवेदी, टी० लाजरस एण्ड को० बनारस १८९७ ख–२ एन हर्न कलकत्ता १८६५ ई०

क्ष

क्षेमेन्द्र—(१) रामायण मंजरी—काव्यमाला ८३ सम्पादक—केदारनाथ इत्यादि, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९०३

(२) दशावतार चरितम्—सम्पादक—पं० दुर्गा प्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग—निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १९३० ई०, दूसरा संस्करण

श

शून्य पुराण—रमई पंडित—साहित्य परिषद्, कलकत्ता

शब्दकल्पद्रुम—राजा सर राधाकान्त बहादुर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, चौखम्बा वाराणसी, द्वितीय संस्करण १९६१

शिवमहापुराण—भाषा टीका सहित—पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, श्री वेंकटेश्वर मुद्रणालय, बम्बई।

शक्तिभद्र—आश्चर्य चूड़ामणि, सम्पादक—कुप्प स्वामी शास्त्री, बाल मनोरमा प्रेस मैलापुर, मद्रास १९३३

शारंगधर पद्धति—दी पद्धति आफ शारंगधर, ए संस्कृत अन्थालोजी एडिटेड बाई

पिटरसनवाल्यूम—दी टेस्ट——गवर्नमेण्ट सेण्ट्रल बुक डीपो——बाम्बे १८८८ ई०

शान्तिकुमार नानूराम व्यास——रामायण कालीन समाज, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५८

शान्तनु बिहारी द्विवेदी—भक्तराज हनुमान—गोरखपुर सं० १९९५

श्वाइसगुट पी०——एतूड सूर ला लितरात्यूर स्थामीज——पारी १९५१

शिवराम मूर्ति——अर्ली ईस्टर्न चालुक्यन स्कल्पचर्स——बुलिटन मद्रास गवर्नमेण्ट म्यूजियम, मद्रास

शाह : यू० पी०——स्टडीज इन जैन आर्ट बनारस, १९५५

व्हाइट हेड आर० वी०——दी विलेज गाड्स आफ साउथ इण्डिया, आक्सफोर्ड १९१६

स

सूर्य पुराण——रमई पंडित——कलकत्ता साहित्य परिषद्, कलकत्ता

सुदर्शन संहिता——हस्तलिखित-सरस्वती भवन नं० ४१८०३।७।२४

स्कन्द पुराण——खेमराज श्रीकृष्णदास, वेंकटेश्वर प्रेस, सं० १९८३

सोमदेव कृत——कथा सरित् सागर——दी ओशन आफ स्टोरीज——सी०डब्लू० टानी, अनुवादक——सम्पादक एन० एम० पिंजर चार्ल्स जे सावियर लिमिटेड लन्दन १९२७ ई०

सूत्रधार मण्डन——प्रासाद मण्डन——पं० जगद्धर जादू——काश्मीर सरकार——श्रीनगर १९४७

सूत्रधार मण्डन, प्रासाद मण्डन——अनु० एवं संपादक——पं० भगवान दास जैन——प्रकाशक——जी० एस० शर्मा, जयपुर सिटी——सं० २०१७ वि०।

स्टाईन आरल——सेर इण्डिया——ख १-४ आक्सफोर्ड १९२१

एन आर्केआलाजिकल सर्वे इन वजीरिस्तान एण्ड नार्थ बलुचिस्तान मेमुआर आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया नं० ३७ कलकत्ता १९३९

स्मिथ, विनसेण्ट——काटलाग आफ क्वायन्स इन दी इण्डियन म्युजियम, कलकत्ता

सावरकर, स्वातंत्र्यवीर——माफी जन्य टेप——परपुरे पुराणिक आणि मण्डली, माधवबाग, बम्बई, दूसरा संस्करण, सं० २००३।

ह

हनुमन्मन्त्र विवरणम्——सुदर्शन चक्रराज संहितायाम्——सरस्वती भवन, नं० ४३८१०।७।४९।

हनुमन् माला मन्त्र——शौनिक संहिता स्थान——सरस्वती भवन नं० ७३६८।-२५०८३ हस्तलिखित।

हनुमत्संहिता——हस्तलिखित——सरस्वती भवन——नं० ४४६३९।१४९६६ सं० १८७२।

हरिभद्रसूरि—धूर्ताख्यान—भारतीय विद्यामंदिर, बम्बई सं० २०००

श्रीमद्धनुमद्विरचित—हनुमान नाटक—राम स्वरूप शर्मा कृत भाषा टीका सहित वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई सं० १९८१

हायकास सी० : दी ओल्ड नादनीज़ रामायण—एम्सटरडम्—१९५८

श्री हनुमत्सहस्रनाम स्तोत्र—वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई

हेरोडोरस—दी ओल्ड जावानीज़ रामायण एम्सटरडम १९५८

हूयकास सी०—दी ओल्ड जावानीज़ रामायण आमस्टरडम १९५८

हाल० ई० मिस—दी डेकोरेटिव आर्ट आफ क्रीट इन दी ब्रांज एज, फिलाडेलफिया १९०७

हाल० एच० आर०—ओल्डेस्ट सिविलिजेशन आफ ग्रीस, लन्दन १९०१
(१) रिलीजन्स आफ इण्डिया—ब्रास्टन १९०८

हापकिन्स—ई० डब्लू (२) एपिक माइथालजी—स्ट्रटजार्ट—१९१५।
ग्रेट एपिक आफ इण्डिया—न्यूयार्क १९०१

हजरा आर० सी० : स्टडीज़ इन दी उप पुरानाज़ ख-१, २, कलकत्ता १९५८, १९६३।

लेख

अ

अरीकिथ स्वामी, एम०—दी पल्लव नायक्स आफ कीर्तम्पेट जुरनाल सोसियते आज़ियातिक ख-४, भाग १, २, १९६३, प्लांश ३।

आण्टिक्वेरी, न्यू इण्डियन—ख-२ १९३९-४० ११३।

आर्चर, डब्लू० जी०—कालीघाट पेण्टिग्स—भाग ५ नं० ४ पृ० ३५ तथा आगे।

आ

दी आयरशिप आफ दी आध्यात्म रामायण—जर्नल गंगानाथ झा इन्स्टिट्यूट २३९ इलाहाबाद—भाग-१ पृ० २१५।

उ

उमाकान्त पी० शाह—वृषाकपि इन ऋग्वेद—जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट—एम० एस० युनिवर्सिटी आफ वड़ौदा, बड़ौदा ख-८ सेप्टेम्बर १९५८ पृ० ४६ तथा आगे।

उटगीकर—दी स्टोरी आफ दशरथ जातक एण्ड आफ दी रामायण, जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी सेन्टेनरी सप्लिमेण्ट १९१४ पृ० २०३-२२१।

ओ

ओवरवेक एच० : हिंकायत महाराज रावण—जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी मलायन ब्रांच ख-२ (१९३३) भाग २।

क

केनेडी० जे०—दी अर्ली कामर्स आफ वाविलान विथ इण्डिया—(७००-३०० ई० पू०, जनरल) रायल एशियाटिक सोसाइटी १८९८ पृ० २४१-२८८।

कमला रत्नम—१. इण्डोनेशिया का जावनीज़ नृत्य नाट्य इत्यादि धर्मयुग—२३-१०-६६ पृ० १४-१५। २. एनशण्ट सिलोन एण्ड तामिल—ट्वेण्टी सिक्सथ कांग्रेस आफ ओरियटलिस्ट्स, न्यू दिल्ली, पृ० २।

कोन्नूर० जे० पी०—दी रामायण इन वर्मा—जनरल आफ वर्मा रिसर्च सोसाइटी ख-१५ (१९१५ पृ० ८० तथा आगे)।

कारपेलेस एस०—अनएपिसोड डु रामायण सिआमोआ एत्यूड आज़ियातिक पारी १९२५ पृ० ३१५ तथा आगे

कुलकर्णी वी० एम०—दी रामायण वरसन आफ संगदास एज़ फाउण्ड इन

वासुदेव हिंग्डी--जरनल आफ दी ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ोदा ख-२ पृ० १२८-१५०।

ग

ग्रियरसन--जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९३३ पृ० १३५-१३९।

गेण्डन ए० एस० गड्स हिन्दू—ई० आर० ई० ख०-६, पृ० २८२-२९०।

गर्दे, ए० एस०—ए रेयर इमेज आफ हनुमान, इजइट पंचमुख आञ्जनेय, न्यू इण्डियन आण्टिक्वेरी ख-२, १९३९-४०, पृ० ११३-११४।

गाण्डे कुम्बुर सी० एच०—दी रामायण—ए वर्शन आफ रामाज स्टोरी फ्राम सीलोन--जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी, सिलोन १९४६, पृ० १४, तथा आगे।

घ

घोष मन मोहन—आन दी सोर्स आफ दी ओल्ड जावानीज रामायण काकविन—जर्नल आफ ग्रेटर इण्डिया सोसायटी, ख-३, पृ० ११३ तथा आगे।

च

चट्टोपाध्याय, के० सी०—वृषाकपि हिम—इलाहाबाद युनिवर्सिटी स्टडीज (जरनल) १९२५ पृ० १०४ तथा आगे।

चक्रवर्ती, चिन्ताहरण--ट्रेडिशन्स अबाउट वानराज एण्ड राक्षसाज इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ख-१ (१९२५) पृ० ७७९ तथा आगे।

चक्रवर्ती ए०—बुद्धिस्टिक एण्ड जैन वरसन्स आफ दी स्टोरी आफ राम—दी जैन गजेट ख-२२ (१९२६) पृ० ११७ तथा आगे।

ज

जरनल न्युमिसमाटिक सोसाइटी आफ इण्डिया—१९५६ अंक १८।

जूयनबोल्ल—डच ट्रांसलेशन आफ रामायण काकविन काण्टोज़ ७-२६, डच् ओरियण्टल जरनल ख-७८-९४।

ट

टामस० एफ० डब्लू—अनिमल्स इन साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स ख-१, पृ० ५२२-५२३।

टेलर आर—प्रिमिटिव कल्ट--इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स ख-१, पृ० ३७६।

टामस० एफ० डब्लू०--ए० रामायण स्टोरी इज़ टिबटन फ्रान चाइनीज़ तुर्किस्तान इण्डियन स्टडीज़ (लानमान कमेमोरेशन वाल्यूम) १९३९, पृ० १९३-२१२।

थ

थामस एफ० डब्लू०—ए रामायण स्टोरी इन तिब्बतन—इण्डियन स्टडीज पृ० १९३।

द

दीक्षित, एम० जी०—सम गोल्ड क्वायन्स आफ दी कदम्ब डाइनेस्टी जनरल आफ दी न्युमिसिमाटिक सोसाइटी आफ इण्डिया ख-११-२ दिसम्बर १९४९ पृ० ९१ तथा आगे।

दीक्षितार, वी० आर०—साउथ इण्डिया इन दी रामायण—प्रोसीडिंग्स एण्ड ट्रानजाकसन्स आफ दी सेविन्थ आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेंस दिसम्बर १९३३, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा १९३५, पृ० २५१।

दे दिये एच०—दी रामायण इन लाओस—जरनल आफ ओरियण्टल रिसर्च सोसाइटी ख-२२ पृ० ६४ तथा आगे।

धनी, प्रिंस—दी राम जातक—ए लाओस वरशन आफ दी स्टोरी आफ राम—दी जरनल आफ दी स्याम सोसाइटी ख-३६ पृ० १ तथा आगे।

न

नारायण दत्तात्रेय कालेलकर—काशी में हनुमान की कुछ दर्शनीय मूर्तियाँ—'आज' २१ अप्रैल १९५७ ई०।

नेशनल हेराल्ड—अतरनजी खेड़ा, लखनऊ ११ अगस्त १९६४ पृ० ७।

नरसिंहाचारी डी० एल०—दी जैन रामायण, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली ख-१५, (१९३९) पृ० ५७४-५९४।

प

पेन्लवरी—जे० डी० 'डिसकवरीज इन ए हाण्टेड केव'—इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज—नवम्बर २८, १९३६ पृ० ३६०, ३६१।

पारजिटर, एफ० ई०—(१) वृषाकपि एण्ड हनुमन्त सजेश्चन्स रिगार्डिंग ऋग्वेद, जरनल आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन १९११ पृ० ८०३ तथा आगे, जरनल १९१३ पृ० ३९६ तथा आगे। (२) एनशण्ट इण्डियन जिन्यालोजी एण्ड क्रानालोजी जे० आर० ए० एस० लन्दन १९१० पृ० ६ तथा आगे।

प्रेजूलस्की—जे० एपिक स्टडीज—इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली ख-१५, पृ० २८९-२९९।

पिगट-एस०—नोट्स आन सरटन मेटल पिन्स एण्ड मेस हेड्स इन दी हरप्पन कलचर—एनशण्ट इण्डिया नं० ४,१९४८ पृ० २६-४०।

ब

बालचन्द जैन—धनपुर होर्ड आफ कालचूरी क्वायन्स, जरनल न्युमिसमाटिक सोसाइटी आफ इण्डिया १८-१, १९५६।

बुल्के, रेवरेण्ड सी०—दी कारेक्टेराइजेशन आफ हनुमान—जरनल आफ दी ओरियण्टल सोसाइटी, एम० एस० युनिवर्सिटी बड़ौदा, ख-९ जून १९६० पृ० ३९३।

बेलंकर, एच० डी०—हिम्स टू इन्द्र इन मण्डल १० आफ ऋग्वेद जरनल आफ दी युनिवर्सिटी आफ बाम्बे, सेप्टेम्बर १९५३ पृ० २ तथा आगे।

बागची, पी० सी०—दी ज्योग्राफिकल काटलाग आफ दी यक्षाज इन दी महामायूरी साइनो इण्डियन स्टडीज ख-३ भाग १-२ एप्रिल-जुलाई १९४७ पृ० २७ तथा आगे।

बुद्धिनाथ मिश्र—तिब्बत, हिन्द एशिया में 'रामकथा', 'आज' वाराणसी साप्ताहिक ७ मई १९६७ पृ० १४ कालम ३।

बुलितां एकोल फ्रासेज डु एकस्ट्रीम ओरियाँ भाग १२।

बेली० एच० डब्लू०—दी राम स्टोरी आफ खोतानीज—जनरल आफ दी अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी ख-५९ पृ० ४६०-४६८।

म

माकुलोच, जे० ए०—कैल्ट्स (सेल्टेस) इण्ट्रोडक्सन इ० आर० ई० ख-३ पृ० २७२ तथा आगे।

मनभयनाथ राय—सरस्वती भवन स्टडीज, भाग ५ पृ०।

मनमोहन घोष—आन दी सोर्स आफ दी ओल्ड जावनीज रामायण काकविन-जरनल आफ दी ग्रेटर इण्डिया सोसाइटी, कलकत्ता ख-३, पृ० ११३ तथा आगे।

माक्सवेल डब्लू ई०—श्री राम—जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी स्ट्रेट्स ब्रांच ख-१७। १८८६ पृ० ८५ और आगे, ख-५५ पृ० १-२४।

महालिंगम टी० वी०—ए रामायण पानेल एंड कांजीवरम जरनल ओरियंटल रिसर्च मद्रास ख-२८ पृ० ६८ तथा आगे।

मलोवन, एम० ई० एल—दी एक्सकवेशन्स एट छागरबजार, ईराक ख-४ भाग-२ आटम १९३७, पृ० ९१-१८१।

मारशल—एक्सकवेशन्स एट भीटा—अर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया आन्युअल रिपोर्ट—१९११-१२ पृ० ३९-४२।

र

रामास्वामी शास्त्री—इण्डियन कल्चर ख-५।

रामजातक—जरनल आफ श्याम सोसाइटी—बैंकाक, भाग ६ पृ० १ तथा आगे।

रघुवीर डा०—जनदेश में रामायण कथा—'आज'—२३-१०-१९६६, पृ० १४ कालम १-३।

रघुवीर डा०—अनामकम् जातक तथा दशरथ जातकम्—डच ओरियण्टल जरनल भाग-७३, पृ० ९४ तथा आगे।

राघवन—दी तत्व संग्रह रामायण आफ राम ब्रह्मानन्द, अनाल्स आफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास १९५३ पृ० १-५५।

रामदास जी—रावण एण्ड हिंज ट्राइब—इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली खं० ६, नं० २ जून १९३६, पृ० २८४-२८९।

ल

लेवी, सिल्वां—ला लेजेण्ड डु राम डॉज अन अवदान शिनुआं—अलबुम फर्म इन्स्टिट्यूट पृ० २७९ तथा आगे।

लाइफ इण्टर नेशनल ख-३९ नं० १०, १५ नवम्बर १९६५ पृ० २८, न्यूयार्क, एन० वाई यू० एस० ए०।

लोकेशचन्द्र—एशिया के हृदयंचलों में भगवान राम धर्मयुग २३-१०-१९६६, पृ० १२ तथा आगे।

लालू० एम० एल० हिस्तुमार राम ओ जिवेदां, जर्नल आँत्रियांतिक १९३६ पृ० ४६० तथा आगे।

व

विजयमित्र शास्त्री—शनिग्रह ने हनुमान का पीछा किया—'आज' दीपावली अंक ता० २८-१०-६१ पृ० १६।

वटनवी० के०—दी ओल्डेस्ट रिकार्ड आफ दी रामायण इन ए चाइनीज बुद्धिस्ट राइटिंग—जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी १९०७ पृ० ९९ तथा आगे।

वेबर, ओ०—इण्डियन मायिटक्वेरी—ख-२१, १८९२ पृ० १२७।

श

शरतचन्द्र राय बहादुर—प्रेसिडेंशल एड्रेस अंथ्रापालाजिकल सेकशन—सेविन्थ ओरियण्टल कान्फरेंस १९३३ ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा-१९३५ पृ० १९८।

श्री

श्री राम मेहरोत्रा—'पहुँचा' एकादश रुद्र क्षुब्ध कर अट्टहास'—'आज' ता० २०-१०-६२ पृ० ६।

स

स्टार्क—जे० एल०:दी न्यू लाशिश डिसकवरीज, इलस्ट्रेट लण्डन न्यूज, अक्टूबर ३, १९३६ पृ० ५७१ लन्दन।

स्टेट्समान-दिल्ली—१ अगस्त, १९६४ पृ० ५ चित्र।

शास्त्री के० ए० : नीलकण्ठ दी रामायण इन ग्रेटर इण्डिया जनरल आफ ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट मद्रास ख-६, १९३२ पृ० ११७।

संकर-त्री० एम०—दी राम इपीसोड० (रामोपाख्यान) एण्ड दी रामायण काणे कमोमरेशन वाल्यूम, पूना १९४१ पृ० ४२२-८८।

सिल्वा लेवी—ला लेजण्ड डु राम डांज अन अवदान शिनुआ आलवुम केर्न पृ० २७९ तथा आगे।

साहू० के० सी०—रामकथा इन सरलादास महाभारत जनरल आफ हिस्टारिकल रिसर्च रांची ख-१ नं० २ पृ० ५६ तथा आगे।

शाह-यूपी०—वृषाकपि इन ऋग्वेद—जरनल आफ ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट एम० एस० युनिवर्सिटी बड़ौदा, ख-८ पृ० ४१-७०।

शर्मा, राम—ए लिटिल नोन परशियनवर्शन आफ दी रामायण इसलामिक कलचर ख-८ पृ० ६७३-६७८।

शेलवियर—हिकायत श्री राम, जरनल रायल एशियाटिक सोसाइटी स्टेट्स ब्रांच ७० एण्ड ७१।

शास्त्री नीलकण्ठ—के० ए० दी रामायण इन ग्रेटर इण्डिया—जरनल आफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास ख-६ १९३२ पृ० ११७ तथा आगे।

ह

हजरा देवी भागवत—जरनल ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट मद्रास ख-२१ पृ० ४९-७९

होपकिन्स ई० डब्लू०—दी ओरिजिनल रामायण जनरल आफ दी अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी ख-४६, १९२६ पृ० २०२-२१२।

ह्यत्रेई०—ला लेजेण्ड डु रामायण आन अन्नाराम—ब्रुलितां डु लाइकोल फ्रांसेज एक्स्ट्रेम ओरियां ख-५, पृ० १६८।

हर्षे, आर० जी० (१) वैदिक नेम्स इन असीरियन रिकार्डस्-अडेयर लाइब्रेरी बुलिटन ख-२१ भाग (२) यहु, यह वह एण्ड जेहोवा :—भारतीय विद्या ख-१५ नं० ३, १९५६ पृ० १२५ तथा आगे।

⊙

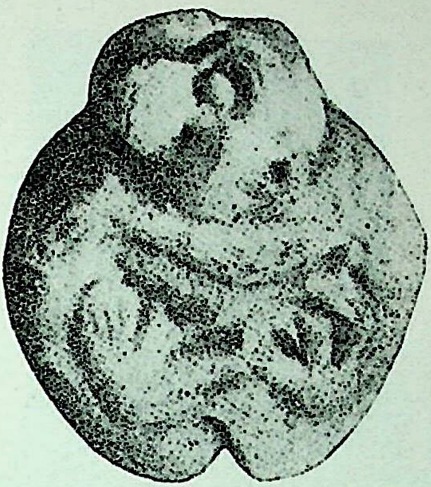

(फलक १ क १००-१३)

मोहन जुदाड़ो की एक वालों के कटिया पर वनी तीन कपियों की आकृतियाँ

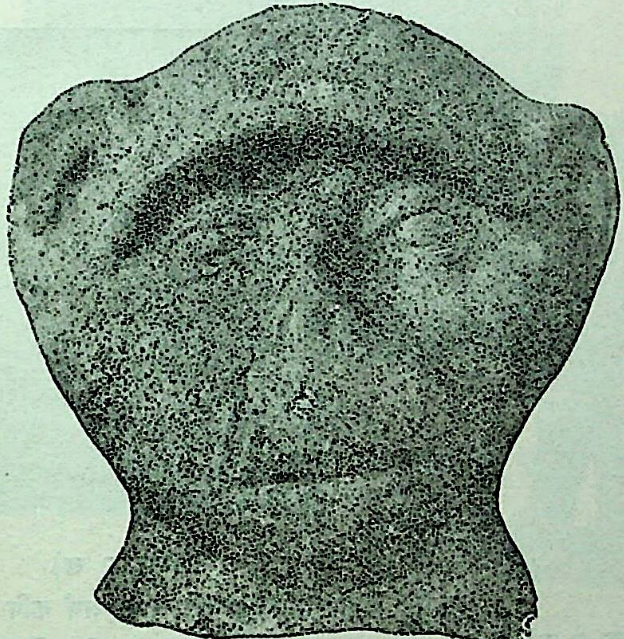

(फलक १ ख)

हड़प्पा से प्राप्त एक कपि की मृणमूर्ति

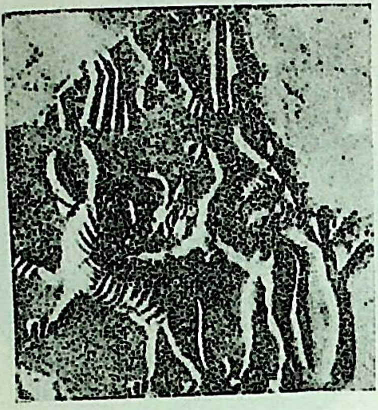

(फलक १ ग)

सिन्धु घाटी की सभ्यता की एक मोहर पर बनी पूंछ
और सींग सहित एक कपि आकृति
(फ्राम दि इण्डियन आर्ट थ्रू दी एजेज़ पृ० २१७ १ ए)

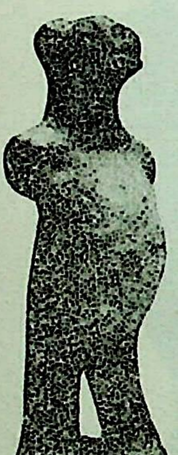

(फलक २ क)
(मोहन जुदाड़ो)
अर्धं कपि एवं अर्धं मनुष्य

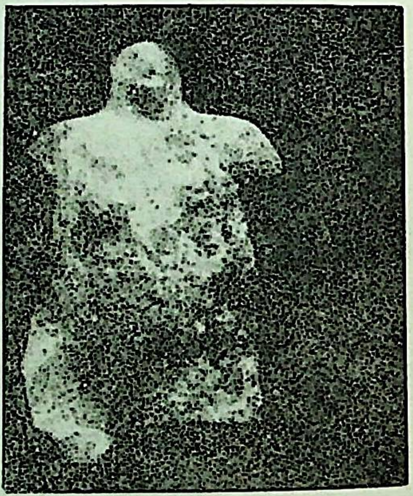

(फलक २ ख)
लोथल से प्राप्त अर्धं कपि एवं
अर्धं मनुष्य की मूर्ति

(फलक ३)

मिस्र के रामनेज के मंदिर के शोध देवता की मूर्ति

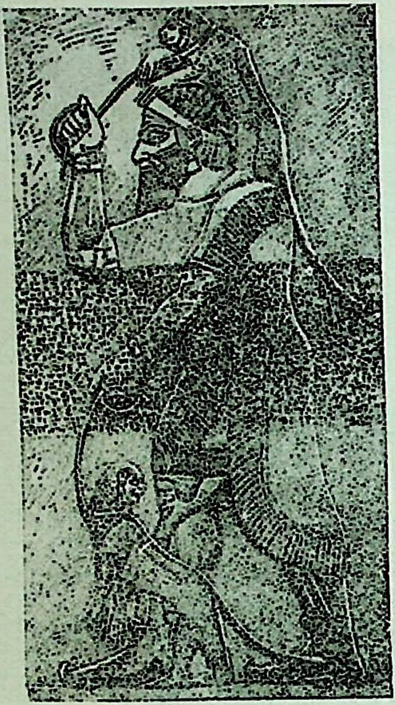

(फलक ४ क)
असीरिया में कपि का महत्त्व

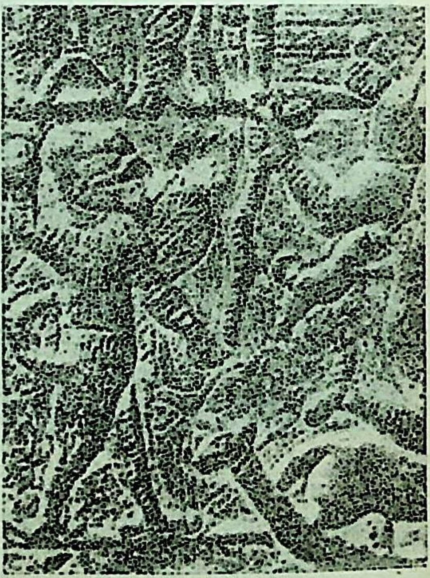

(फलक ५)
असीरिया से प्राप्त कपि चित्र

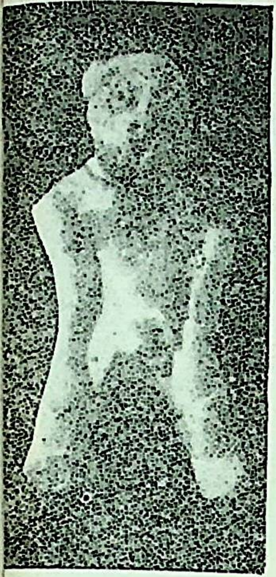

(फलक ६ क)
किस्तान के कोट्ट डिजी
खुदाई से प्राप्त अलंकार
पहिने हुए कपि मूर्ति

(फलक ६ ख) →
चार सड्डा रो प्राप्त कपि की
अलंकृत मूर्ति

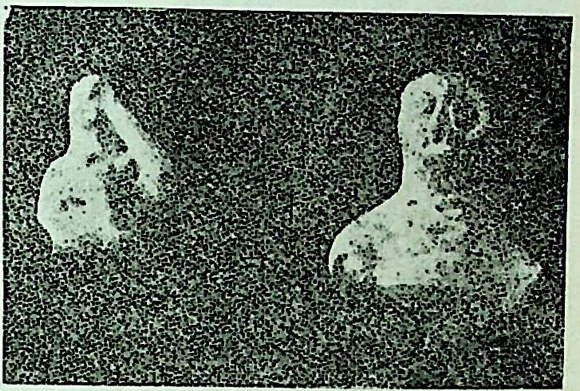

(फलक ६ ग घ)
चार सड्डा की अलंकृत मृणमूर्तियाँ

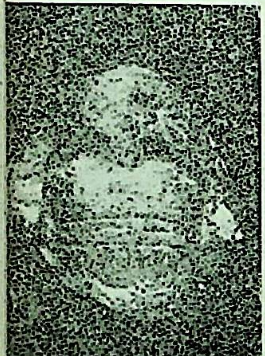

(फलक ६ च)
मौर्यकालीन मृणमूर्ति

(फलक ६ छ) →
र्यकालीन मृणमूर्ति चित्र श्री परमेश्वरी
ल गुप्त संग्रहाध्यक्ष, सतना राजकीय
संग्रहालय की कृपा से प्राप्त

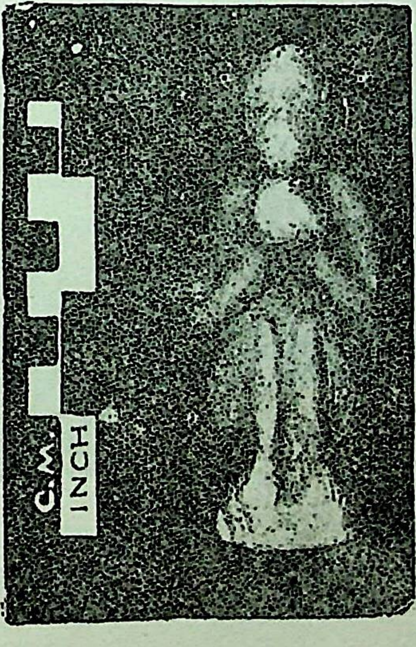

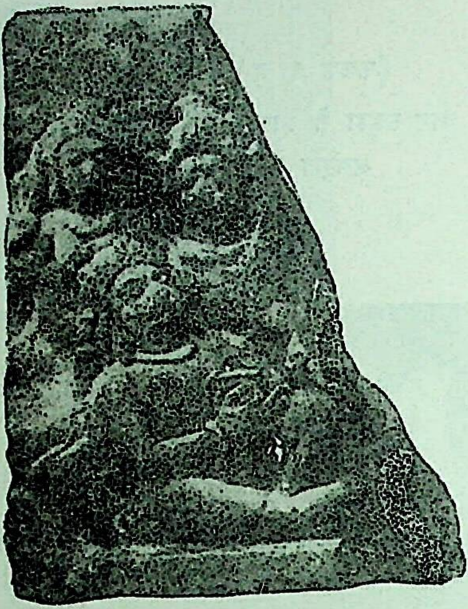

(फलक ७ क)

देवगढ़ से प्राप्त पाषाण खंड पर सुग्रीव को राम के कार्य का स्मरण दिलाते हुए हनुमान

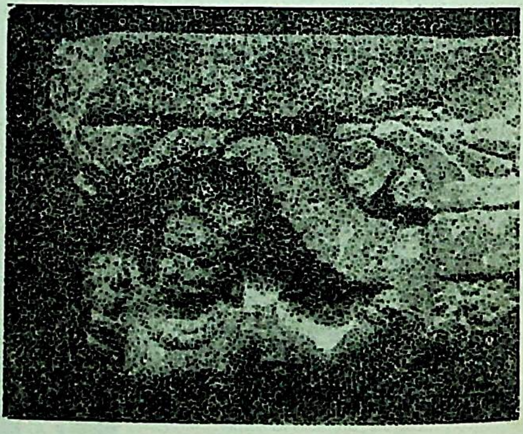

(फलक ७ ख)

देवगढ़ से प्राप्त गुप्तकालीन पर्वत को उठाए हुए हनुमान की मूर्ति

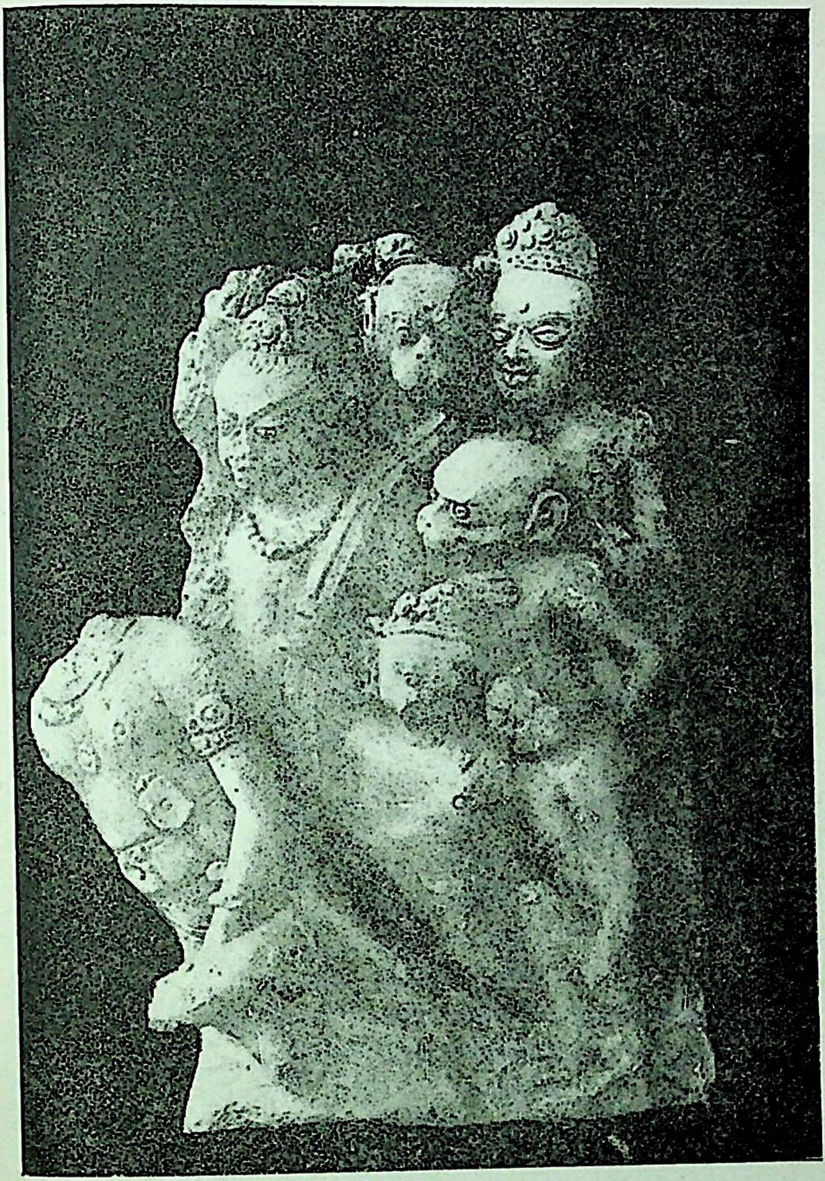

(फलक ८)

चौसा से प्राप्त ईंट पर बनी मूर्ति में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान और हनुमान की आकृतियाँ

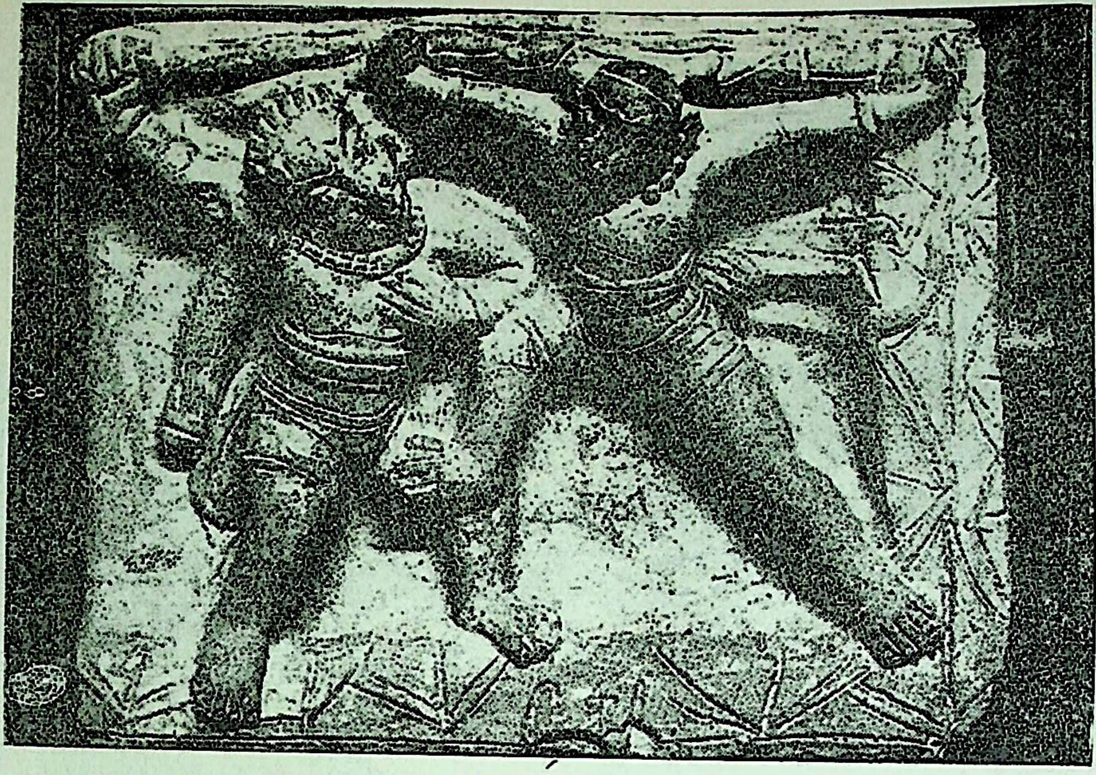

(फलक ९)

सहेत महेत से प्राप्त एक ईंटे पर वनी आकृतियाँ : हनुमान एक राक्षस को मार रहे हैं

(लखनऊ राजकीय संग्रहालय की कृपा से प्राप्त)

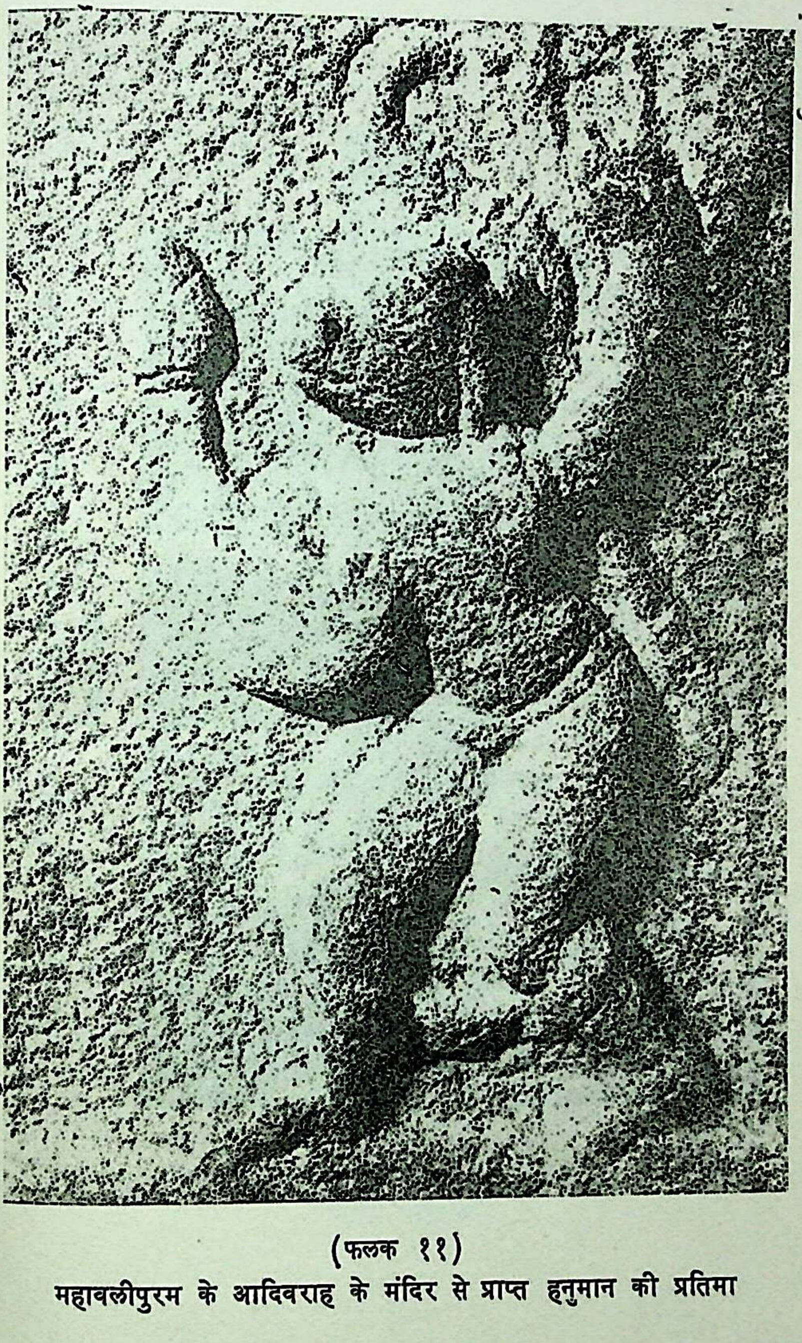

(फलक ११)

महावलीपुरम के आदिवराह के मंदिर से प्राप्त हनुमान की प्रतिमा

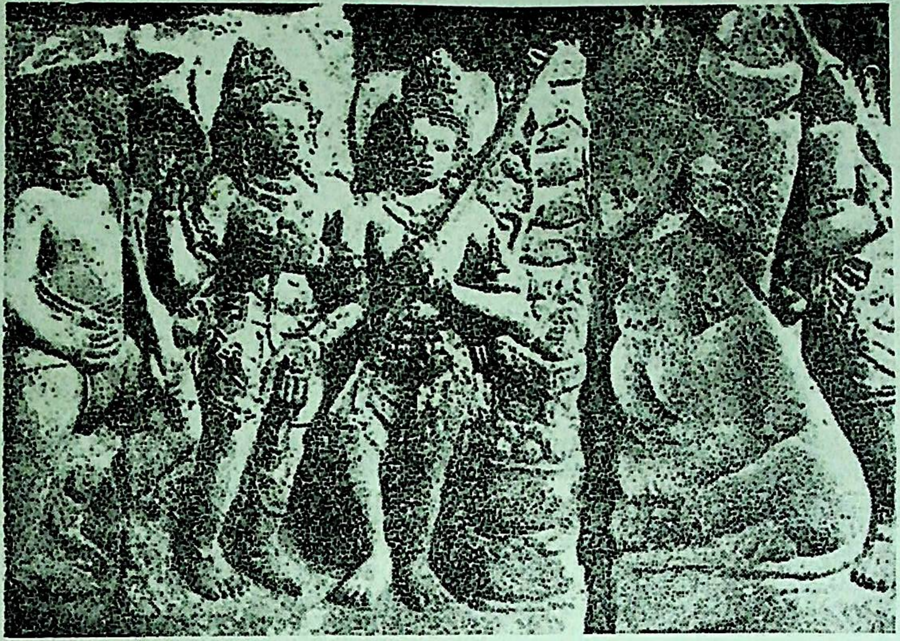

(फलक १३)

जावा के परमवनम मंदिर में उत्कीर्ण फलक पर दाहिनी ओर हनुमान

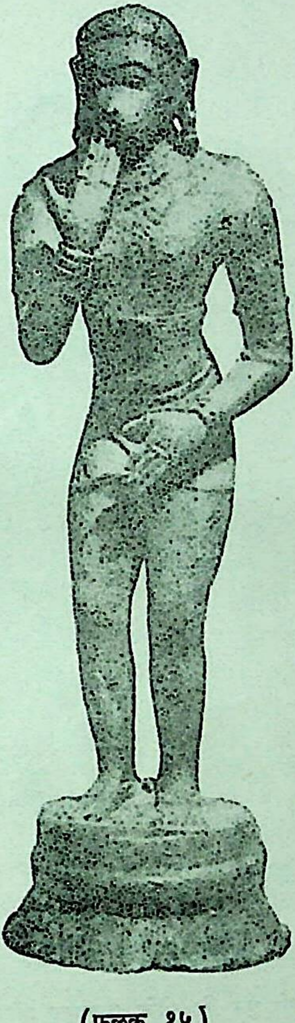

(फलक १५)
हनुमान की कांस्य प्रतिमा
(मद्रास संग्रहालय)

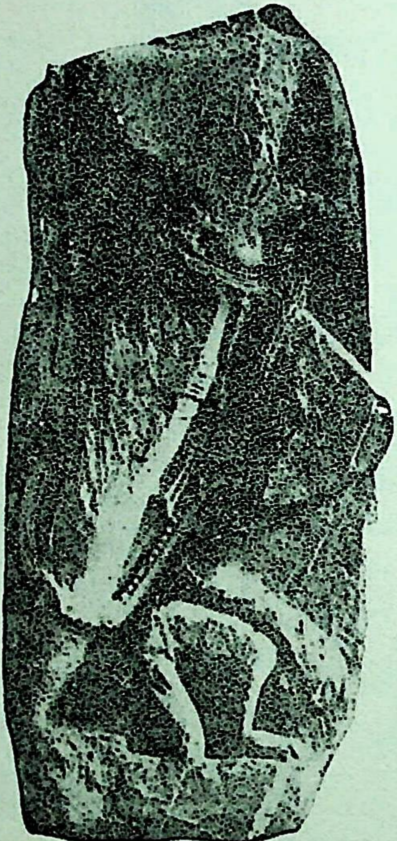

(फलक १६)

राक्षसी पैर के नीचे हनुमान की मूर्ति

(मथुरा)

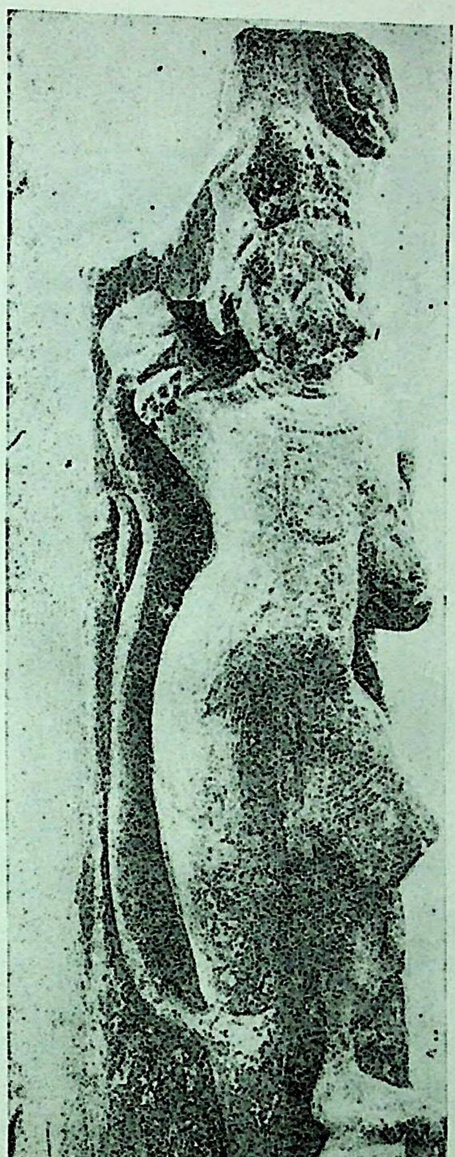

(फलक १७)

मथुरा से प्राप्त हनुमान की मूर्ति

(चित्र ठाकुर नी० पू० जोशी, निदेशक, राजकीय संग्रहालय की कृपा से प्राप्त)

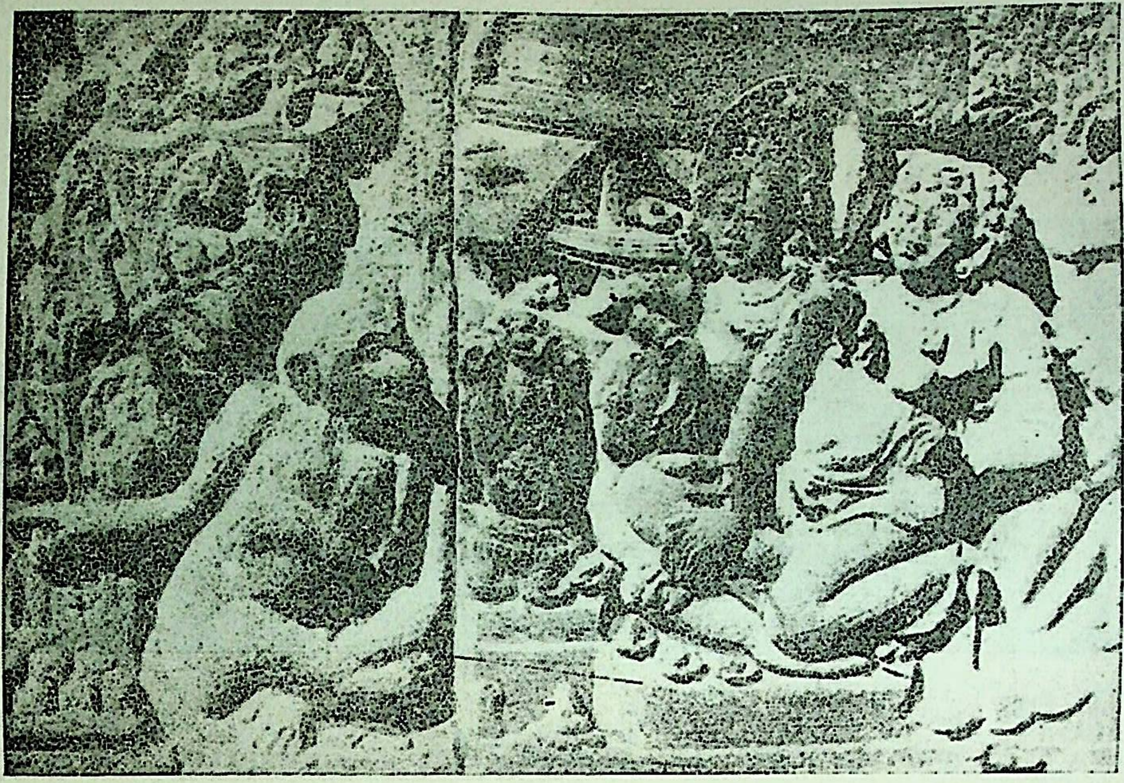

(फलक १८)
जावा के परमवनम लोरो जोंग के शिलापट्ट में हनुमान और सुग्रीव

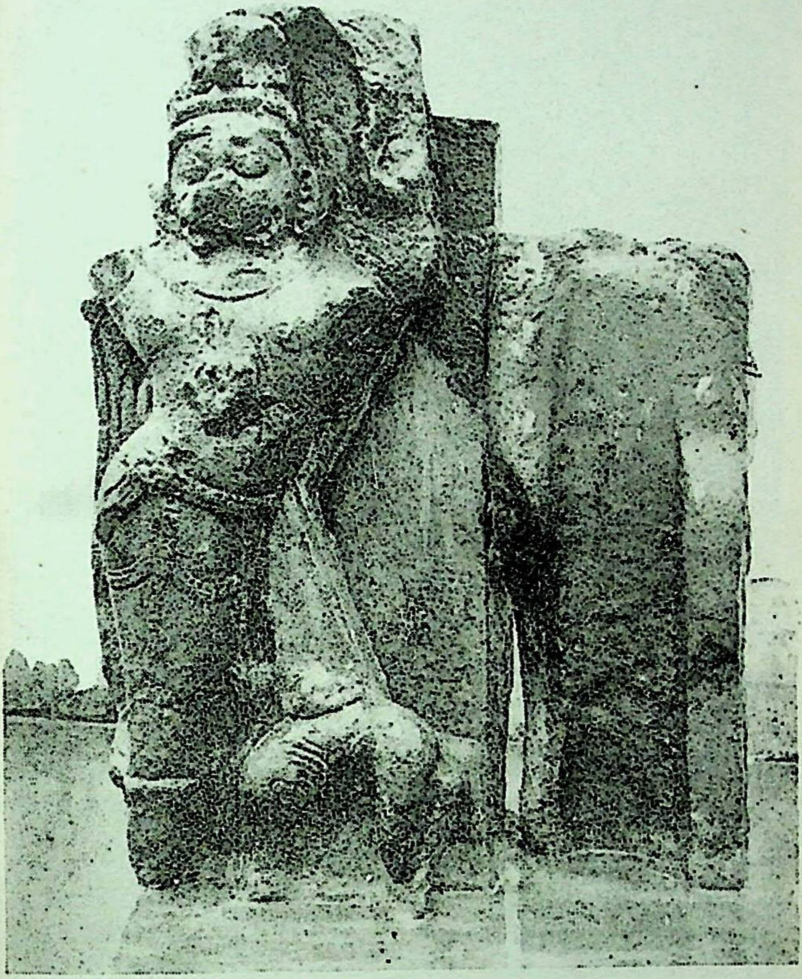

(फलक १८)

९वीं शताब्दी की खजुरी (काशी) में प्राप्त हनुमान की मूर्ति

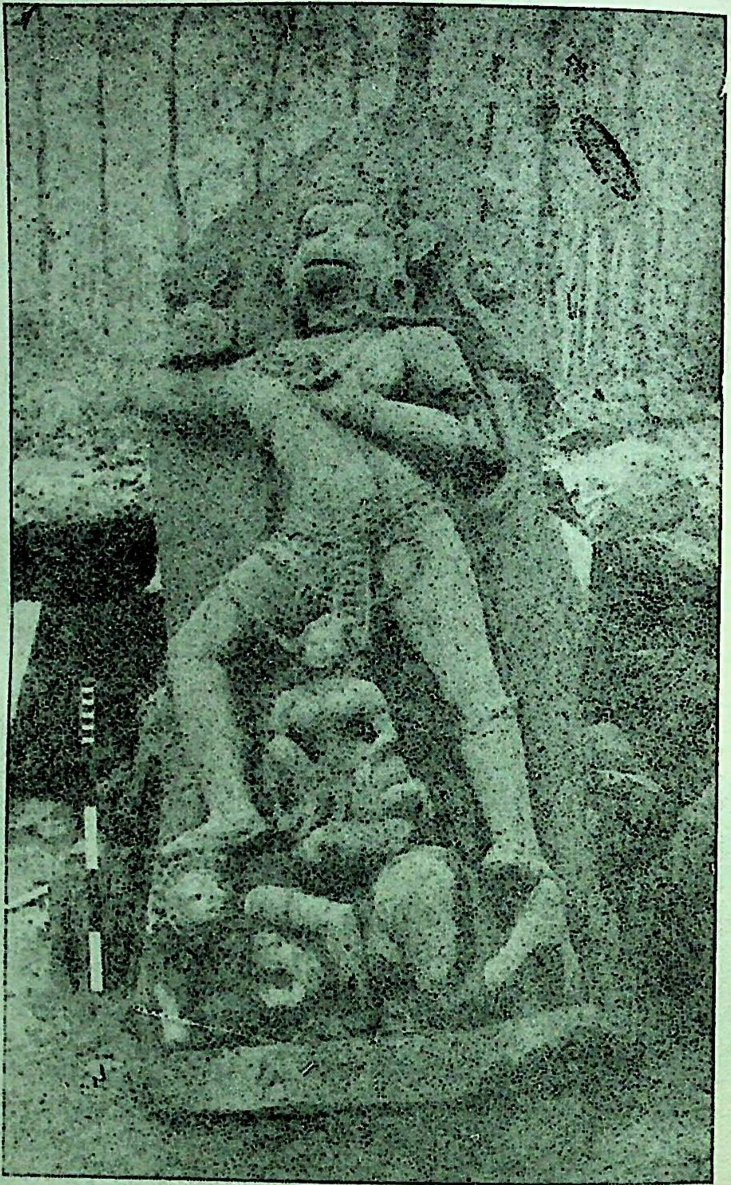

(फलक १९)
बिहार के सिंघभूमि के हनुमान की मूर्ति

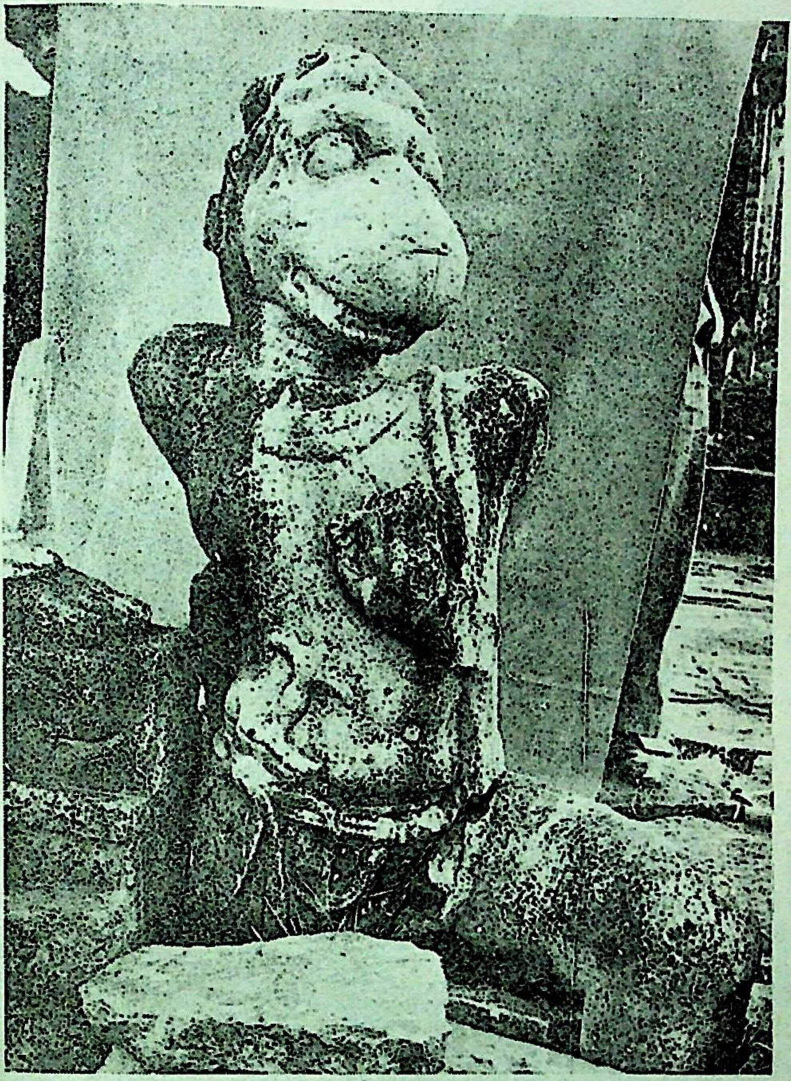

(फलक २०)

मध्यप्रदेश के पाठन स्थान से प्राप्त हनुमान की मूर्ति

(डा० प्रमोदचन्द्र, अमेरिकन अकादमी, काशी की कृपा से प्राप्त)

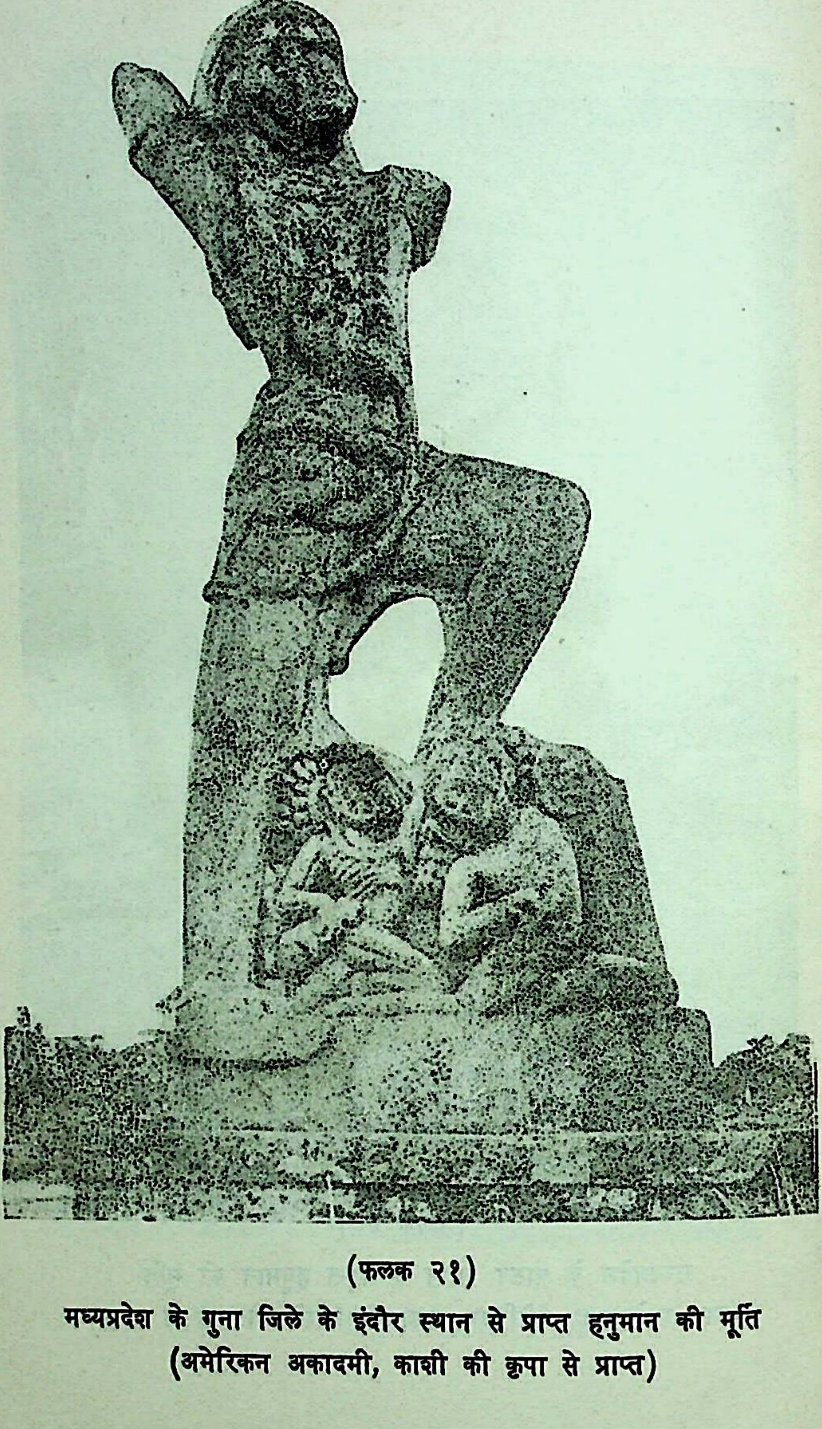

(फलक २१)

मध्यप्रदेश के गुना जिले के इंदौर स्थान से प्राप्त हनुमान की मूर्ति
(अमेरिकन अकादमी, काशी की कृपा से प्राप्त)

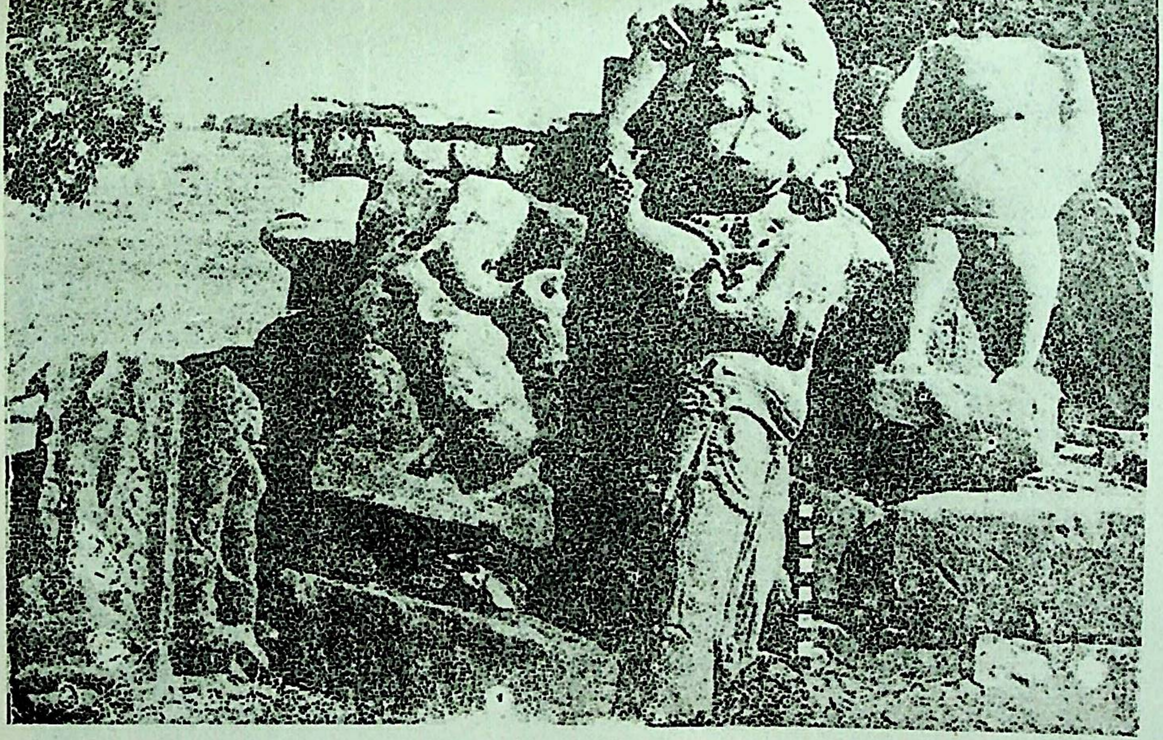

(फलक २३)

जबलपुर के कूदन गाँव की हनुमान मूर्ति (श्री के० डी० वाजपेयी सागर विश्वविद्यालय की कृपा से प्राप्त)

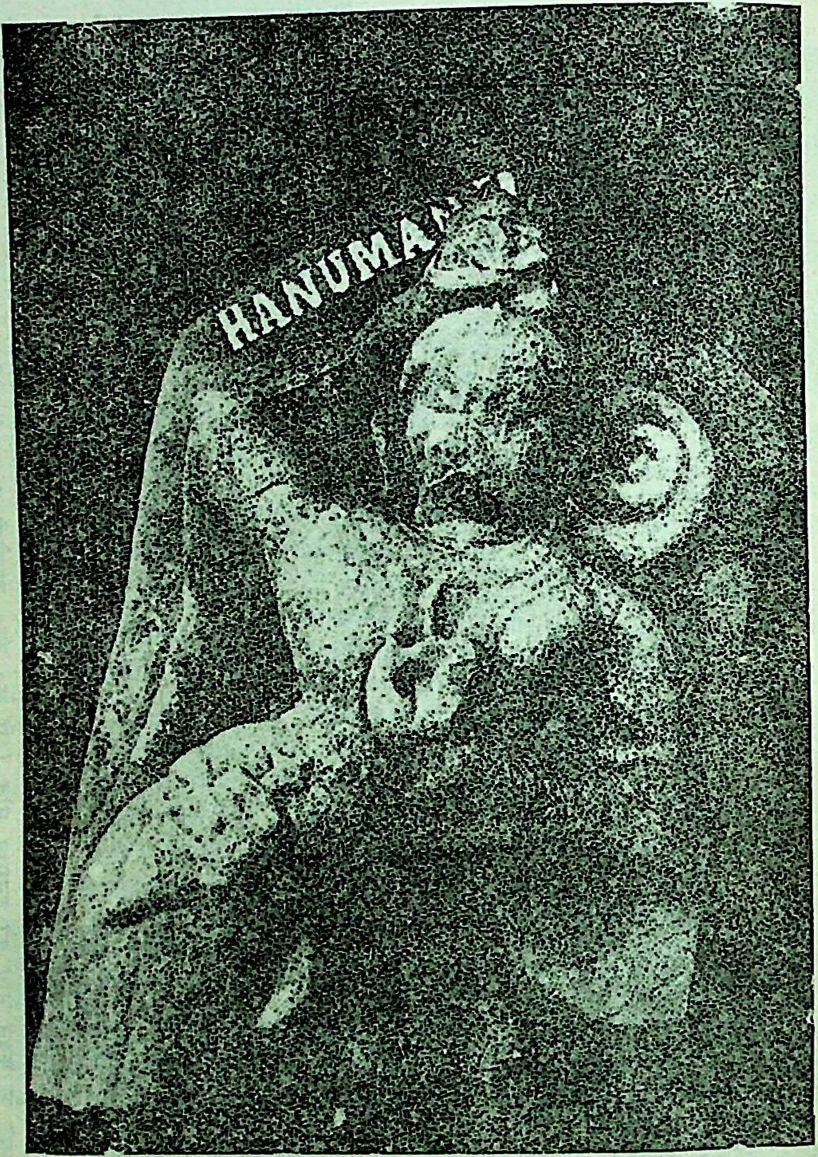

(फलक २४)
काशी पंचक्रोशी के खण्डवा स्थित हनुमान जी की मूर्ति

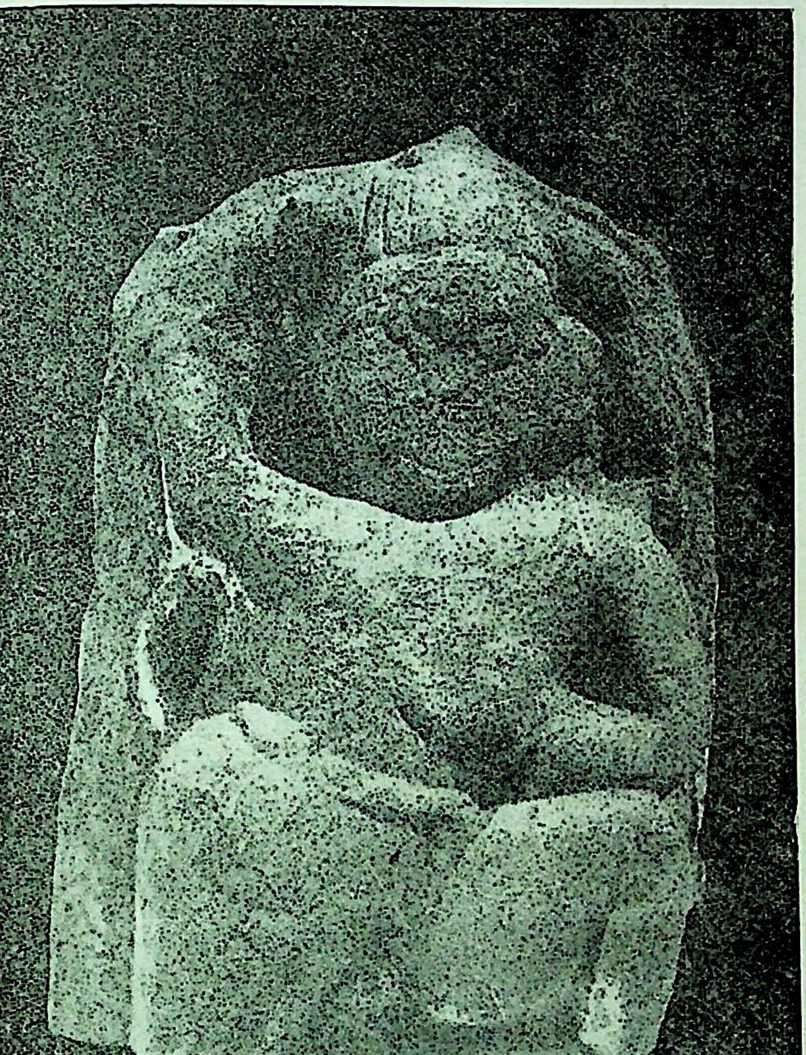

(फलक २५)
नवगाँव के धुवेला संग्रहालय की हनुमान मूर्ति
(चित्र संग्रहालयाध्यक्ष की कृपा से प्राप्त)

(फलक २६)

कम्बोडिया से प्राप्त बालि और सुग्रीव युद्ध का शिलापट्ट : पार्श्व में हनुमान

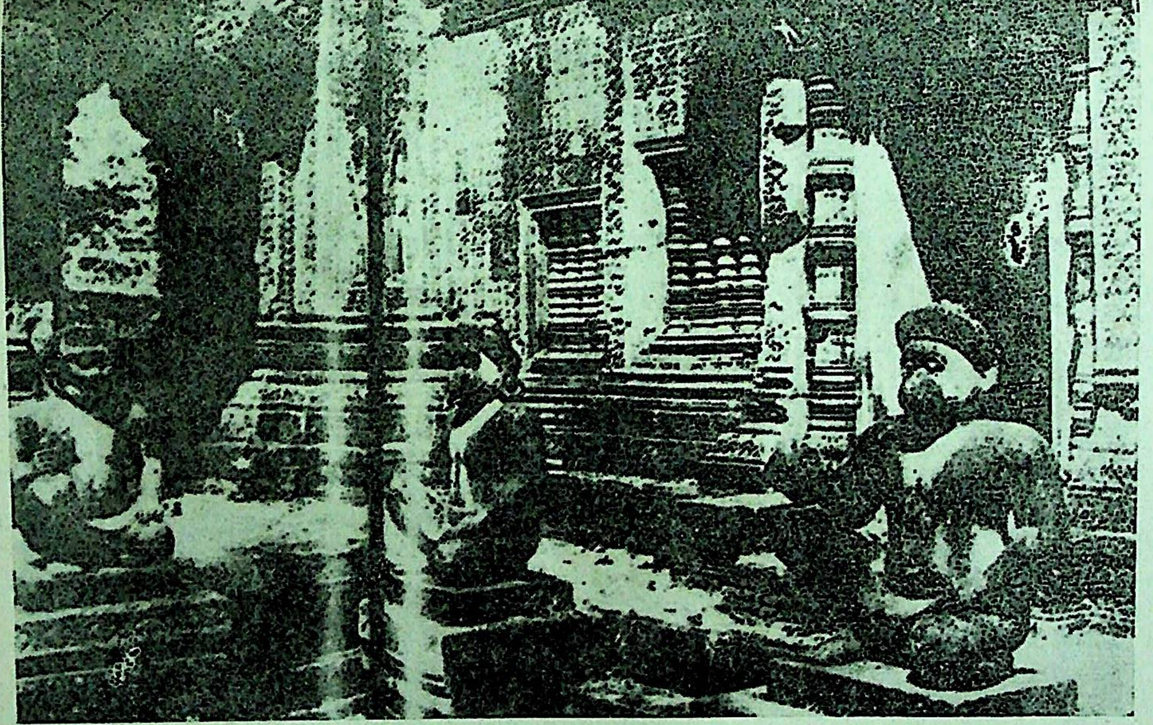

(फलक २७)

कम्बोडिया वेण्टे की हनुमान की प्रहरी रूप में मूर्ति (१४वीं शताब्दी)

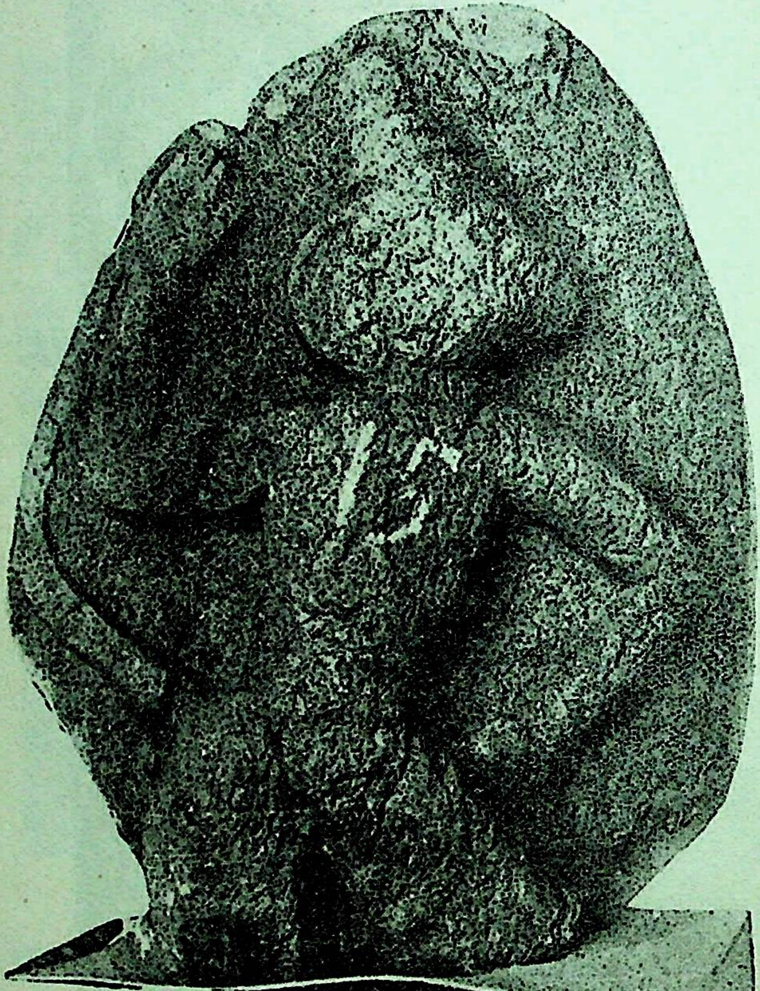

(फलक २९)

प्राचीन गोवा से प्राप्त मूर्ति

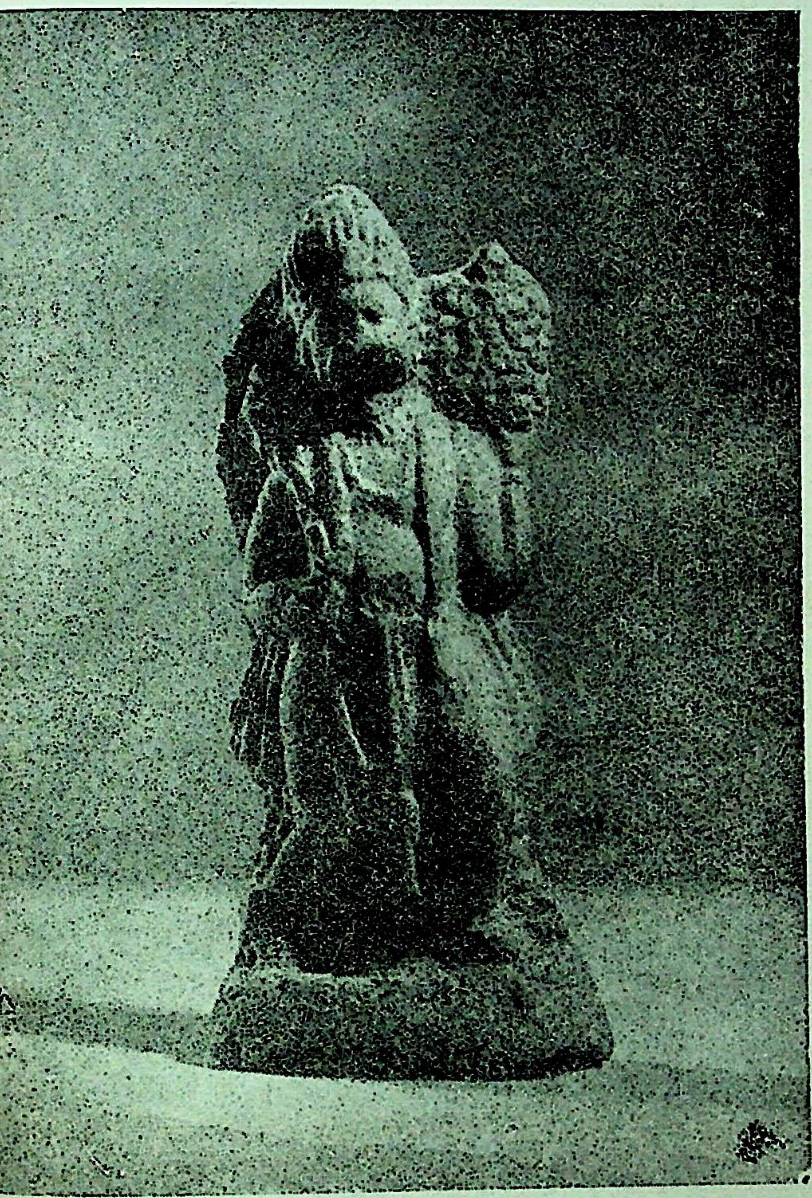

(फलक ३०)

गोवा संग्रहालय की एक हनुमान प्रतिमा

(फलक ३४)

पंचमुखी हनुमान

(राजकोट के वाटसन संग्रहालय की कृपा से प्राप्त)

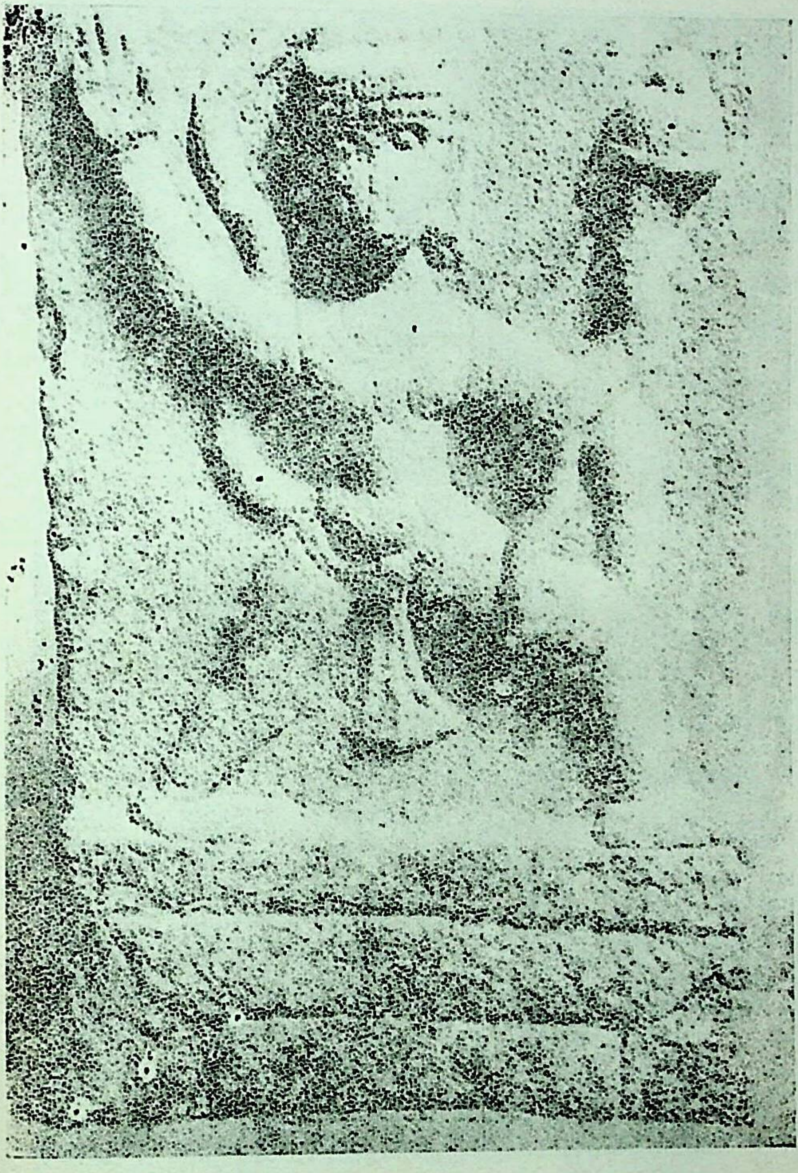

(फलक ३५)

उत्तरी आरकाट के अनन्त ताल गांव की हनुमान प्रतिमा

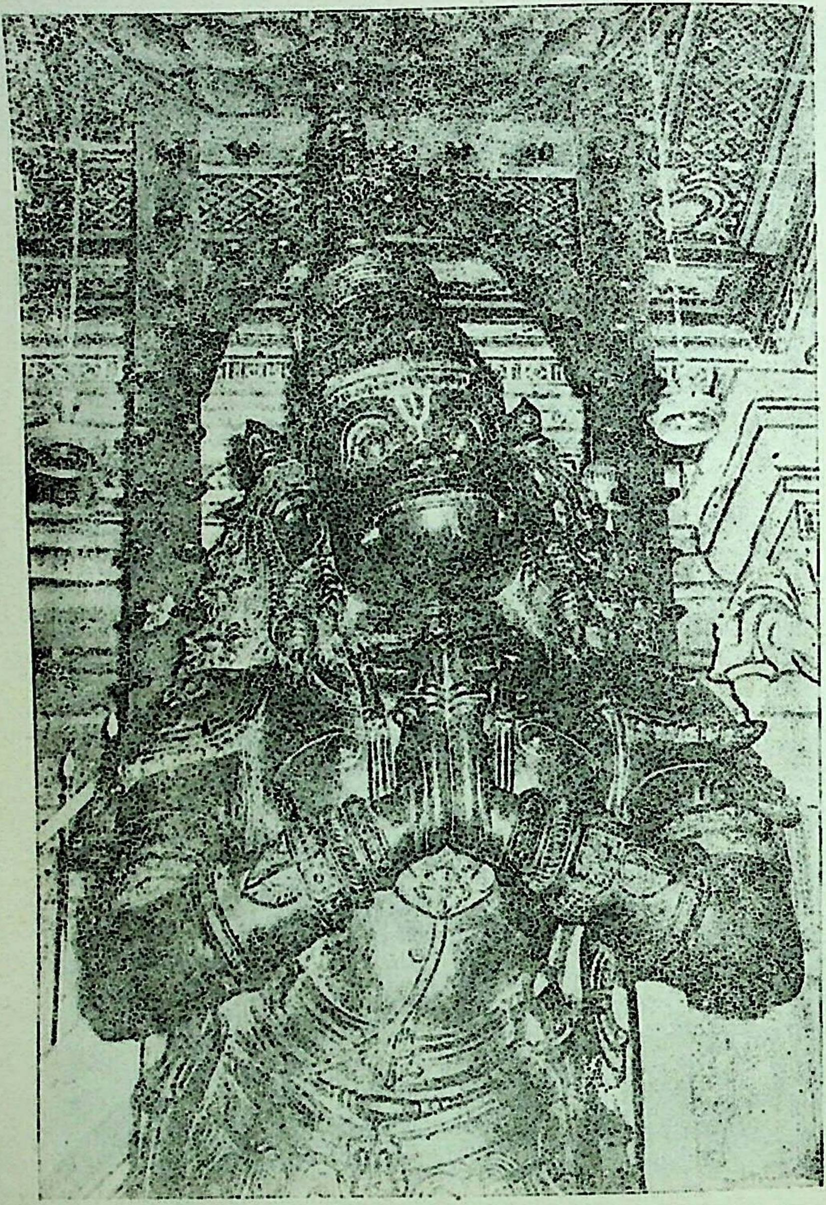

(फलक ३८)

सुचिन्द्रम मंदिर १७वीं शताब्दी की १६'. ४" आकार की
काले पत्थर की हनुमान-मूर्ति

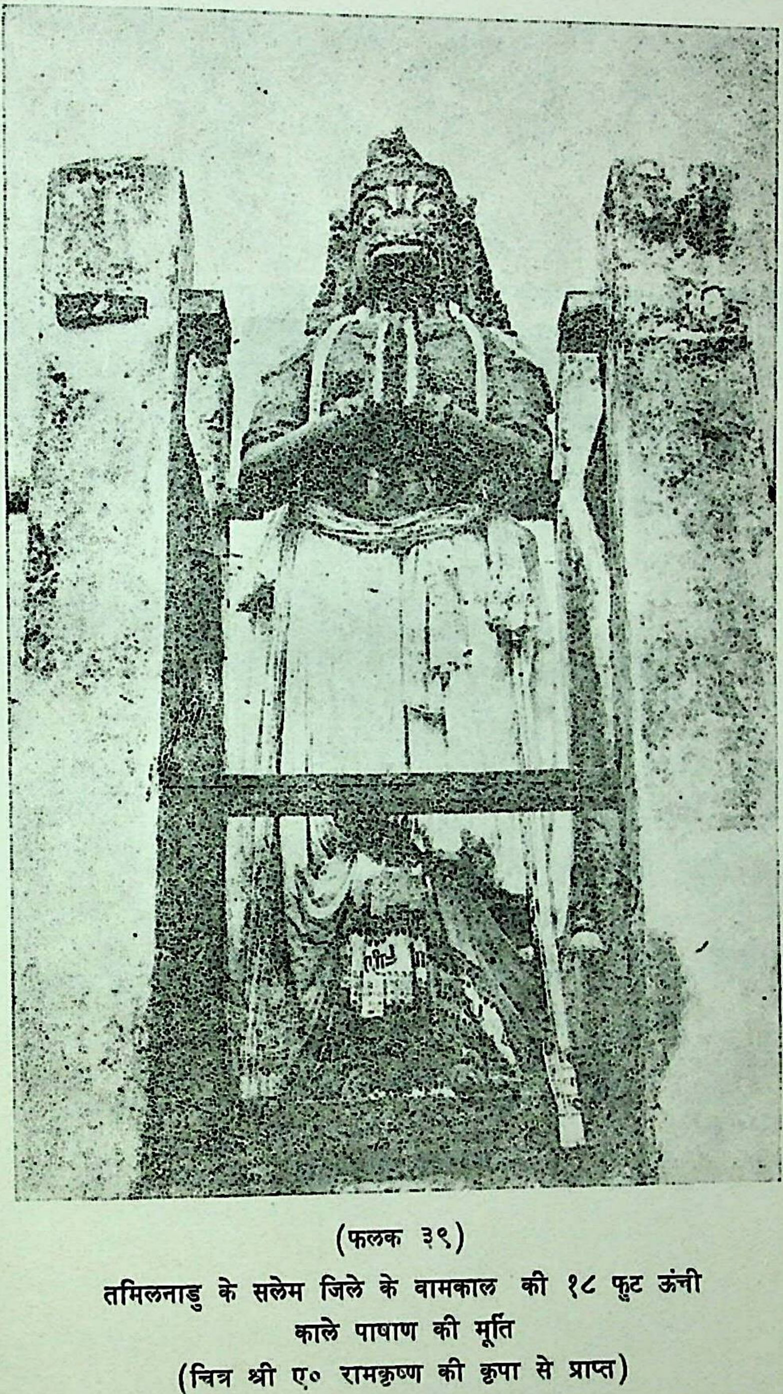

(फलक ३९)

तमिलनाडु के सलेम जिले के वामकाल की १८ फुट ऊंची
काले पाषाण की मूर्ति
(चित्र श्री ए० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त)

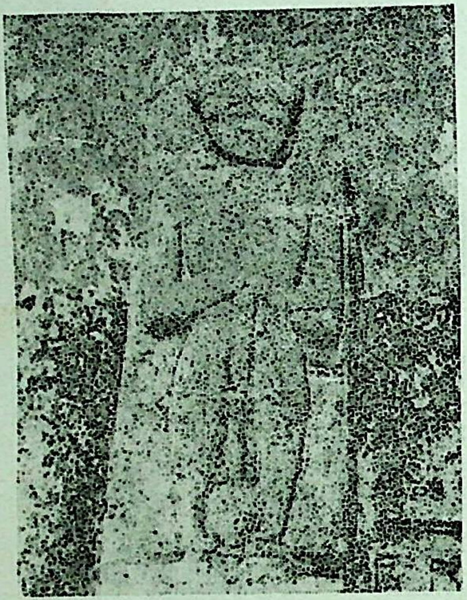

(फलक ३२)

प्रतिहारी हनुमान प्रतिमा

(अध्यक्ष क्षेत्रीय संग्रहालय, मंदसौर के सौजन्य से)

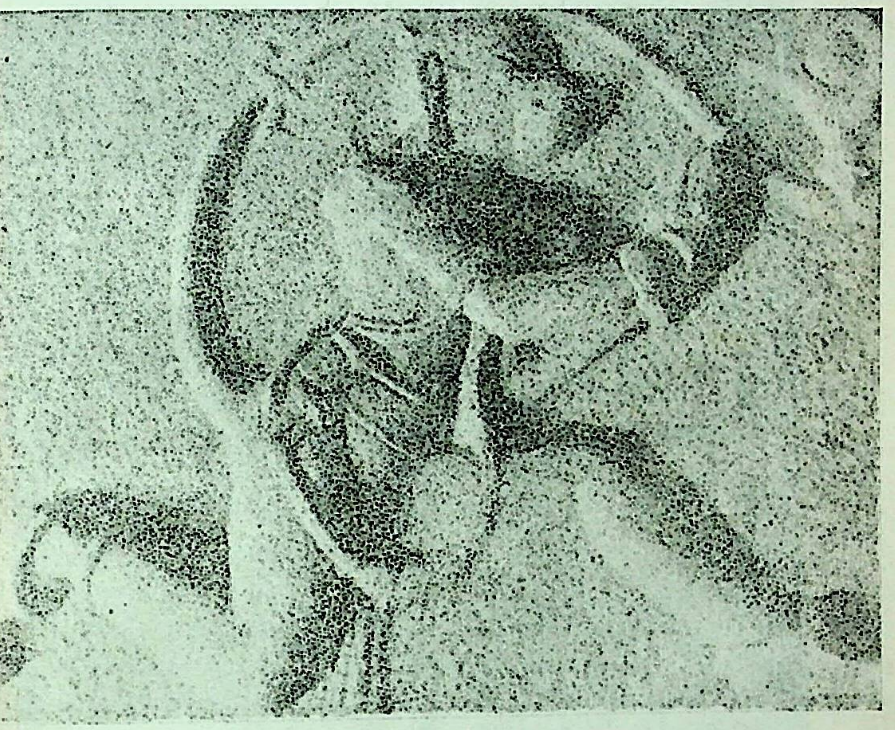

(फलक ३६)

मैसूर के हाम्पी मन्दिर की हनुमान-मूर्ति

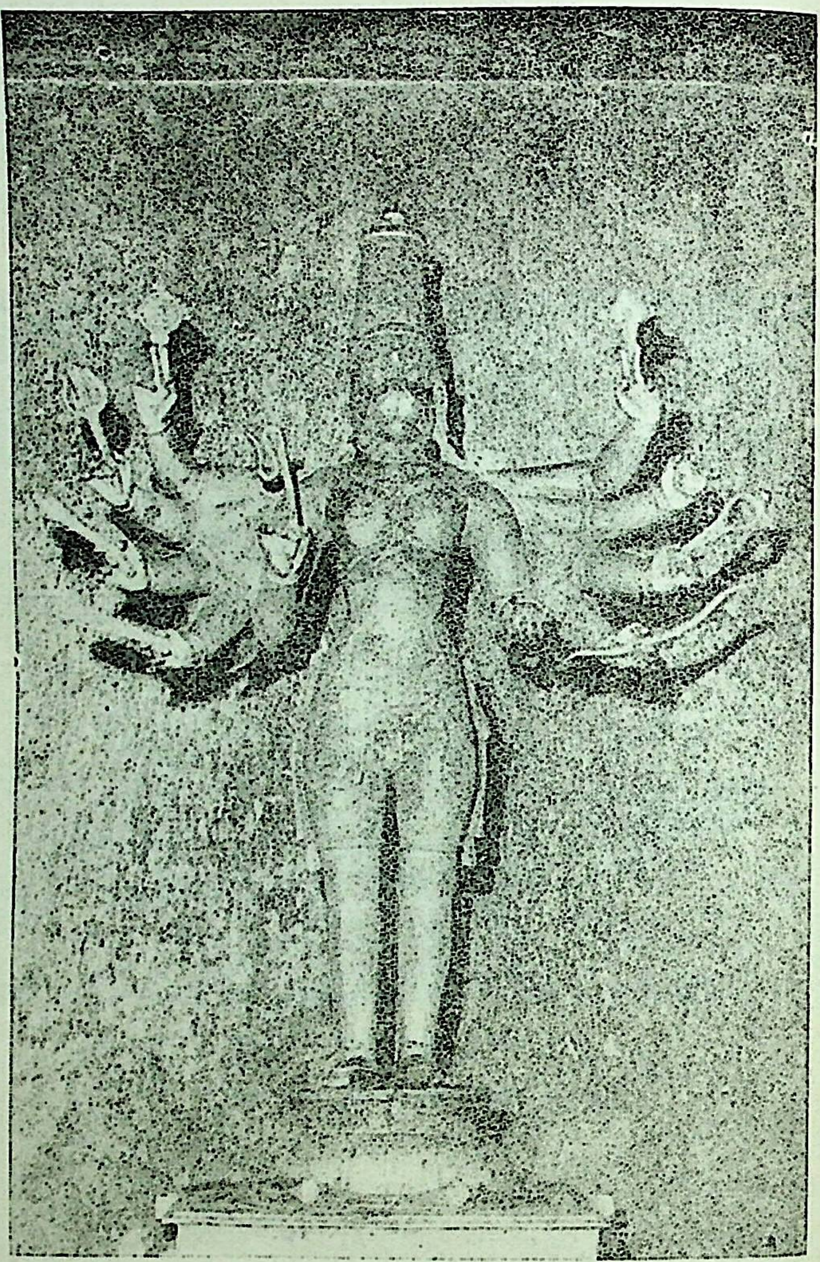

(फलक ४०)

तमिलनाडु के अनाथ मंगलम की ५ फुट ऊंची हनुमान की कांस्य-मूर्ति
(चित्र श्री एन० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त)

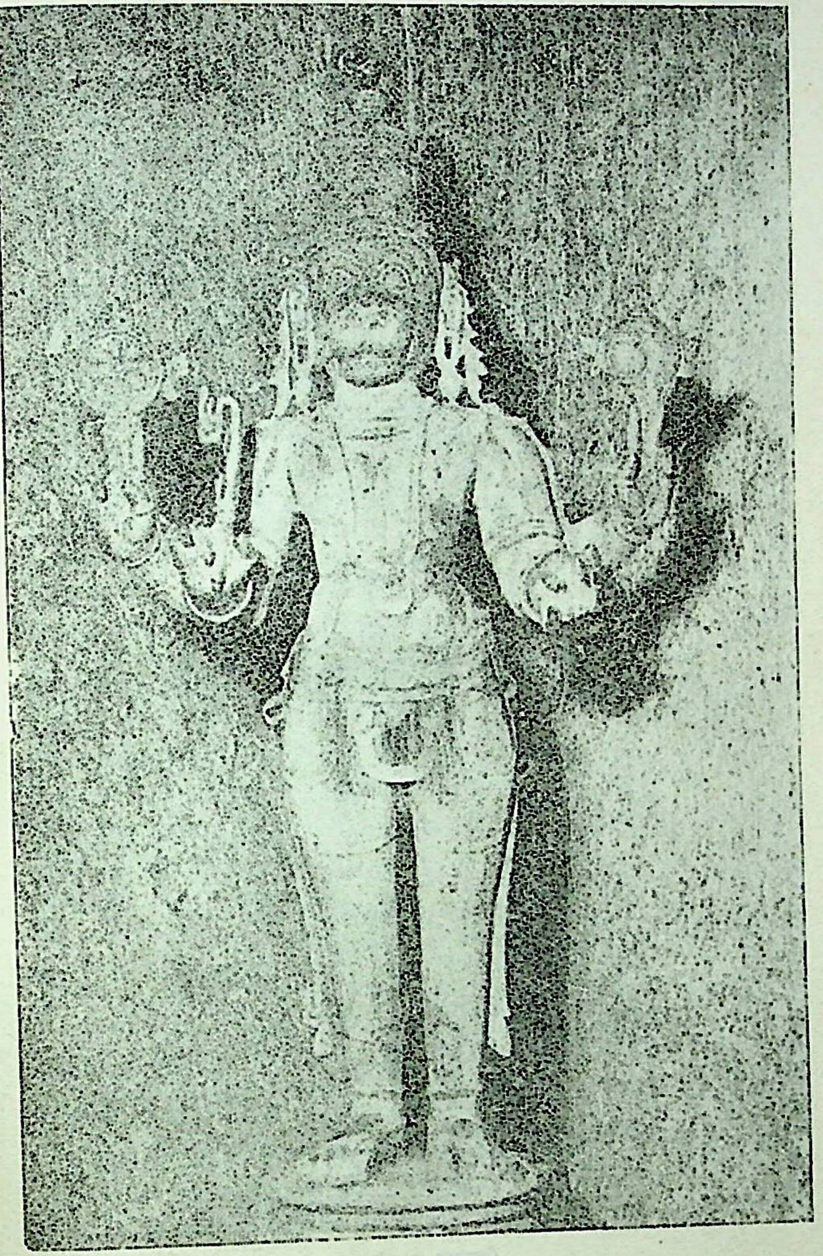

(फलक ४१)

तमिलनाडु के तंजौर के अनाथ मंगलम से त्रंकुआर जाने वाली सड़क के मंदिर की काँसे की हनुमान प्रतिमा

(चित्र श्री एन० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त)

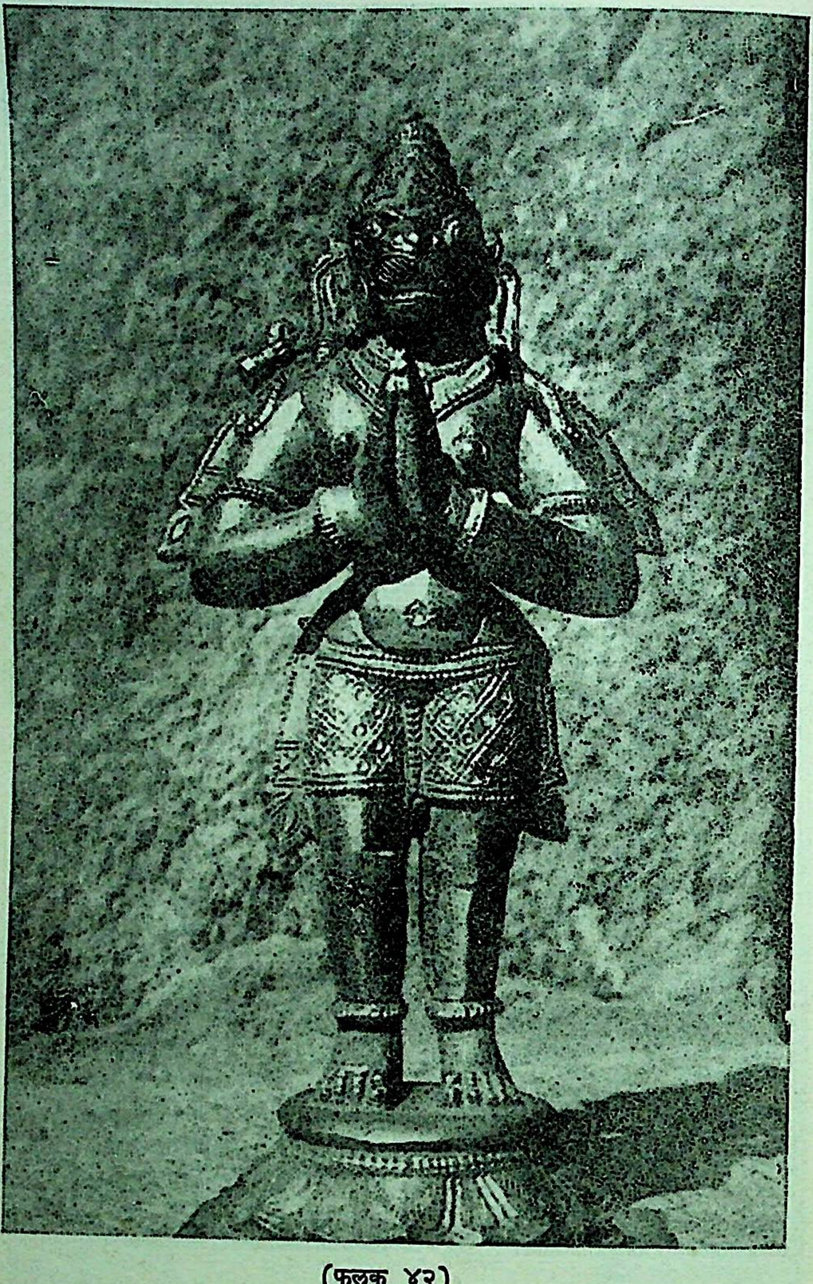

(फलक ४२)

मायूरम तालुके से १० मील दूर तिरुकोरा गुन्म गाँव के मंदिर
की काँसे की हनुमान की मूर्ति
(चित्र श्री एन० रामकृष्ण की कृपा से प्राप्त)

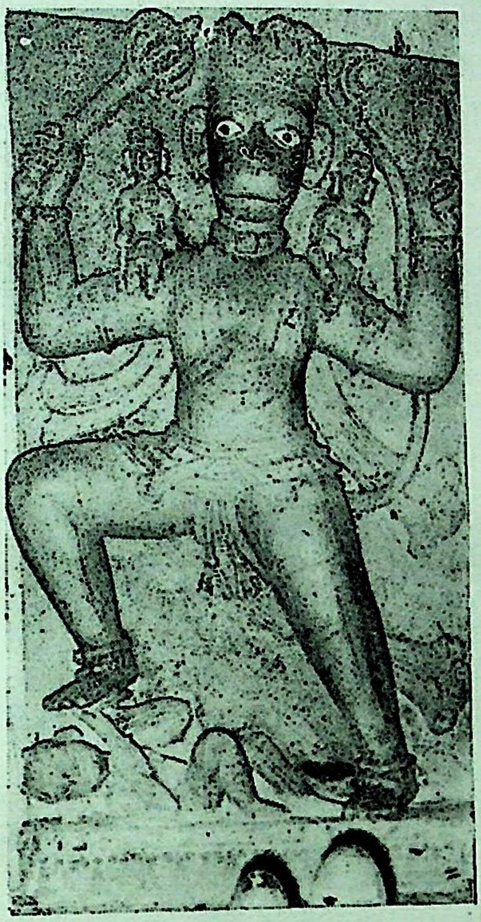

(फलक ४४)

१९वीं शताब्दी की पंचक्रोशी के मार्ग पर स्थित हनुमान मंदिर की मूर्ति
कन्धों पर राम और लक्ष्मण

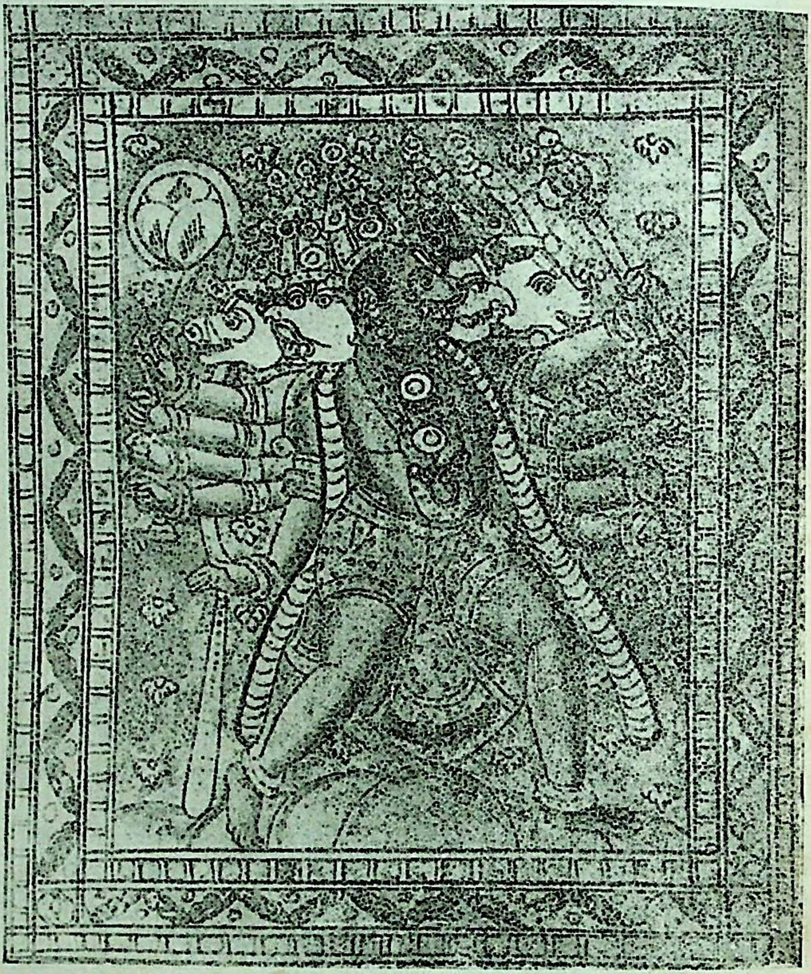

(फलक ४५)

पंचमुखी हनुमान की मूर्ति का चित्र

(स्टाकहॉम संग्रहालय के संग्रहाध्यक्ष की कृपा से प्राप्त)

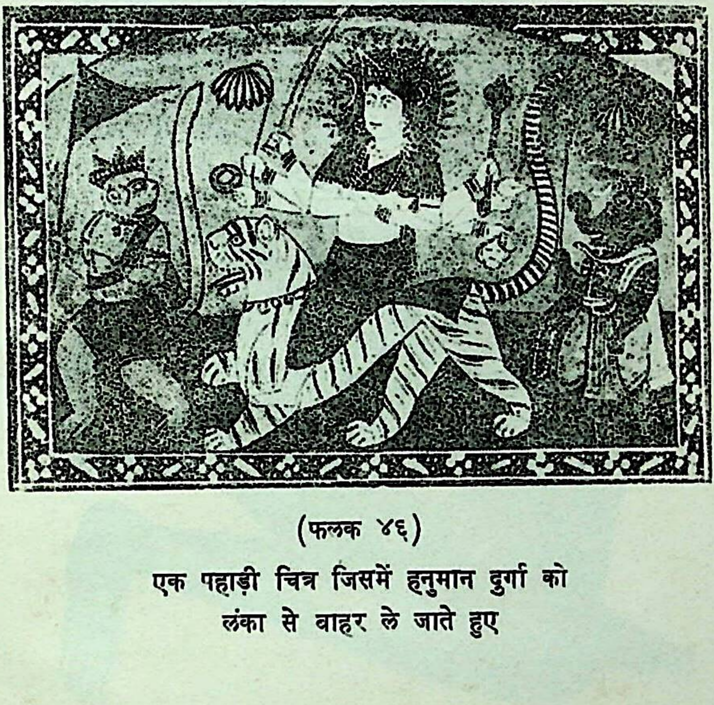

(फलक ४६)

एक पहाड़ी चित्र जिसमें हनुमान दुर्गा को
लंका से वाहर ले जाते हुए

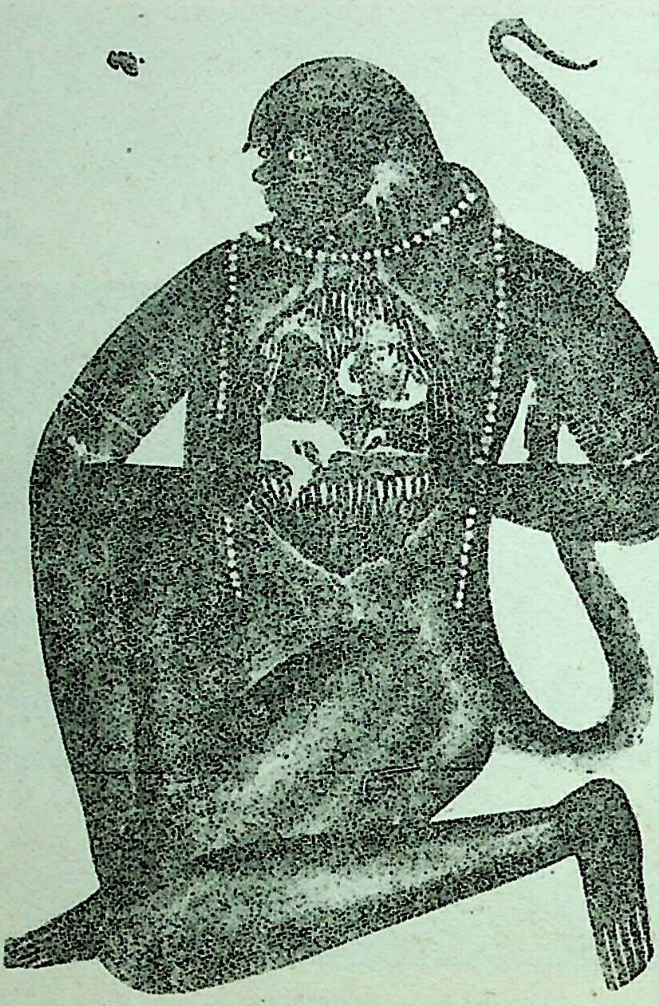

(फलक ४७)

बंगाल के पट पर अपने हृदय में बैठे
राम-सीता को दिखाते हुए हनुमान की मूर्ति